पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति स्मृति संग्रह

सचित्र

भर्तृहरिकृत

वैराग्य शतक

अनुवादक

बाबू हरिदास वैद्य।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी,

मथुरा।

मुद्रक—

सत्यपाल शर्मा,

कान्ति प्रेस, माईथान-आगरा।

चतुर्थ वार ३००० | सितम्बर, १९३३ ई० | अजिल्द का ४) सजिल्द का ५)

भूमिका

सन् १९१५ ई० में, हमारे यहाँ से महाराज भर्तृहरि के "नीतिशतक" का अनुवाद छप कर प्रकाशित हुआ था। तभी से हमारी इच्छा थी, कि "वैराग्य-शतक" का भी अनुवाद प्रकाशित किया जाय। इसके अनुवाद के लिए, हमने कई योग्य विद्वानों से लिखा-पढ़ी की, किन्तु वादा करने पर भी, गत मार्च तक, किसी विद्वान्-सज्जन ने कृपा नहीं की। उधर हमारे प्रेमी ग्राहकों ने इस के लिए तकाज़े करने शुरू किये; तब हमने "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः" के न्याया-नुसार, इस के अनुवाद करने का स्वयं दुःसाहस किया। यद्यपि हम स्वयं अच्छी तरह जानते हैं, कि हम न तो किसी भाषा के विद्वान् हैं और न हिन्दी के ही नामी-गिरामी लेखक हैं; पर सर्वसाधारण हमारी लिखी पुस्तकों की भाषा और शैली को पसन्द करते हैं, हमारी लिखी पुस्तकों को चाह से ख़रीदते हैं, इसी बल-भरोसे पर हमने 'बौने की तरह' चाँद छूने का प्रयास किया है। कह नहीं सकते, हमें कहाँ तक सफलता हुई है। सम्भव है, इस में अनेक त्रुटियाँ रह गई हों; क्योंकि हमने यह

काम, कारणवश, बहुत ही जल्दी में—कोई दो सप्ताह में शेष किया है।

यह कहने की ज़रूरत नहीं, कि महाराज भर्तृहरि के प्रत्येक शतक (नीति, शृङ्गार और वैराग्य) का प्रत्येक श्लोक लाख-लाख रुपयों के लिए भी सस्ता है। आप के पदों का मनुष्य के दिल पर जैसी जल्दी असर होता है, औरों के पदों का वैसा नहीं होता। पढ़ने और समझने वाले को जो मज़ा आता है, वह कह कर और लिखकर बताया नहीं जा सकता। उस मज़े को दिल ही जानता है। दुःख है, कि दिल के ज़बान नहीं और ज़बान के दिल नहीं। प्रत्येक पढ़े-लिखे सज्जन इस "वैराग्य शतक" को रोज़-रोज़ या हफ़ते में एक वार अवश्य देखा करें ताकि इस मिथ्या जगत् की असारता को समझें, विषय-वासनाओं को त्यागें, स्वदेश-सेवा और परोपकार में मन लगावें तथा अपनी आगे की लम्बी सफ़र का सामान करें अथवा परमात्मा की निष्काम भक्ति करते हुए परमपद या मोक्ष-प्राप्ति की चेष्टा करें।

"वैराग्य शतक" के बहुत से हिन्दी-अनुवाद मौजूद हैं; पर उन के अनुवादकों ने यथेष्ट कष्ट नहीं उठाया; इसलिये प्रत्येक थोड़ा पढ़ा-लिखा इस रूखे वेदान्त-विषय को दिल चलाकर भी समझ नहीं सकता। थोड़े-पढ़े लिखे सज्जन भी इस मोक्ष की राह दिखाने वाले विषय को समझें और लाभ उठावें, इसी ग़रज़ से यह अनुवाद किया गया है। इसी से इस की भाषा भी जहाँ तक हो सका है, ख़ूब ही सरल रक्खी गई है। शब्दा-

ध्यान न देकर, भावार्थ पर ध्यान दिया गया है। सरलता के लिये ही पूरी स्वतन्त्रता से काम लिया गया है।

आरम्भ में मूल श्लोक, उस के नीचे भावार्थ, भावार्थ के नीचे व्याख्या, व्याख्या के अन्त में महाराज श्री प्रताप सिंह जू की चित्ताकर्षिणी कविताएँ और शेष में अँगरेज़ी-अनुवाद दिया गया है। भावार्थ, कविता और अँगरेज़ी-अनुवाद के साथ मूल श्लोकों के नम्बर दिये गये हैं। व्याख्या के साथ की कवितात्रों के साथ नम्बर नहीं दिये गये हैं, क्योंकि वे "वैराग्य शतक" के मूल श्लोकों के भाव की अक्षर-अक्षर द्योतक नहीं। वे तो पाठकों की दिलचस्पी के लिये व्याख्या के साथ दे दी गई हैं। जहाँ तक हो सका है, व्याख्याओं के साथ उपयुक्त कविता ही दी गई हैं। आशा है, वे अधिकांश पाठकों को रोचक मालूम होंगी।

इस पुस्तक के तैयार करने में "तुलसी सतसई" "सुन्दर बिलास," "कबीर की साखी" प्रभृति ग्रन्थों के सिवा "उस्ताद ज़ौक़" "महाकवि दाग़" और "महाकवि ग़ालिब" से भी मौक़े-मौक़े की कविताएँ ली गई हैं; उनके लिए हम पूज्यपाद विद्वद्वर श्रीमान् पण्डित ज्वालादत्त जी शर्मा, सम्पादक "प्रतिभा" के बहुत अभारी हैं।

इस पुस्तक की तैयारी में, हमारे एक मित्र महाशय ने कम-से-कम चौथे हिस्से का काम किया है। हम उनका नाम देना चाहते थे। इसके लिये हम ने उन्हें लिखा भी, पर वे इससे

असन्तुष्ट होते हुए मालूम हुए, इसलिये उनका नाम भूमिका में नहीं लिखा गया है। उनके सिवा हमारे विद्वान् मित्र बाबू छोगमल जी चोपड़ा बी० ए०, बी० एल०, वकील, स्माल काज़ कोर्ट, कलकत्ता ने भी हमें बहुत कुछ सहायता दी है, इसलिये हम वकील साहब के अतीव कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक में, इस काग़ज़ के दुर्भिक्ष के समय, ख़ासी रक़म लगा कर, प्रायः २० भावपूर्ण हाफटोन चित्र मौक़े-मौक़े पर सजा दिये गये हैं*। आशा है, हिन्दी-प्रेमी सज्जन हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर, हमें उत्साहित करेंगे, जिससे हम भविष्य में और भी अच्छी तरह मातृभाषा की सेवा कर सकें।

कलकत्ता।
१५-४-२० ई०

विनीत—
हरिदास।

---

* इस वर्त्तमान संस्करण में, बीस नहीं, अड़तीस चित्र हैं।

PREFACE.

——:o:——

In 1915, a translation of NITISHATAK of Maharaja Bhartri Hari was published by my firm well-known as Haridas and Co., I had an intense desire thenceforward, to publish a translation of VAIRAGYA-SHATAK also. I wrote to several well-known scholars but up to March last no one favoured me with a promise to take up the work. In the meantime my worthy customers began to send me repeated reminders and demands for the new book. Finally I ventured to translate it myself, as it was better to do something than nothing. I know very well that I am not scholar in any language nor am I well-known Hindi writer, but the public like the style and language of the books written by me with keenness. This was my only consideration to take up this bold undertaking, although it is like that of a dwarf trying to reach the moon. I do not know how far I have been successful. It is quite possible that there are many short-comings and defects, because I had to do this hurriedly—in fact within the short space of about two weeks.

It is perhaps superfluous to add that every one of the slokas of the Niti, Vairagya and Shringar Shatakas, compiled by MAHARAJA BHARTRIHARI is worth lacs of Rupees. His slokas have a peculiar charm which no other author's slokas have. It is impossible to describe the unspeakable pleasure it produces in the minds of its readers. The pleasure can better be ima-

gined than described. I request every literate person to read it once or twice every week, so that he may think about the transitoriness of the world, and give up worldly desires and may fix his mind in the meditation of the Supreme Being and may devote his life and time in philanthropic and benevolent works.

There are lots of translations of VAIRAGYA SHATAK, but the translators seem not to have taken sufficient pains to explain the deep philosophy underlying its slokas. The present work has been undertaken with the sole object of making it easy to be understood by ordinary literate people and hence it is that its language has been made as easy as possible. The purport has been taken into consideration and not the meanings of the words only and in order to make it as easy as possible, free translation has been made and not literal.

First the original sloka has been put, then the purport and after that the soul-enchanting verses of Shri Maharaja Pratap Singhjoo and last of all the English translation has been put in. The purport verses and English translation all have been numbered as per the original slokas. But in the verses appearing in the explanatory notes no number has been given, because those verses do not give the purport of the original slokas of the VAIRAGYA SHATAKA. They have been put in along with the notes, simply to cheer the readers and it is hoped they will offer a pleasant reading to the reader.

In the preparation of this book much help has been taken from Tulsi Satsai, Sunder Bilas, Kabir's Sakhi. Occasional quotations have also been made from "Ustad Zauq" "Dagh the great poet" and "Ghalib" the great poet. For these quotations I am much indebted to my venerable friend and scholar pandit Jawala Dutta Sharma, Editor "The Pratibha."

I received much assistance from a friend of mine in its preparation. I wanted to disclose his name and wrote for permission, but he seemed to be quite unwilling to consent and it is with regret that I can not publish his name here.

I am also highly thankful to my esteemed friend Babu Chhogmal ji Chopra, B. A., B. L. pleader Small Causes Court, Calcutta for the assistance he gave me from time to time in this connection.

About 20 half-tone pictures have been put in at the proper place at considerable expense and that at a time when there is a famine of printing papers.

I trust that my esteemed friends and admirers would overlook my mistakes and defects and give me encouragement in my present enterprise, so that I may in future serve my mother-tongue more cheerfully and successfully.

CALCUTTA,
The 15th April, 1920 } HARIDASS VAIDYA.

———

निवेदन

जगदीश की कृपा से आज "वैराग्यशतक" का तीसरा संस्करण छपकर तैयार है। लेखक को अपनी लिखी पुस्तक के संस्करण-पर-संस्करण होते देखकर कितनी ख़ुशी होती है, यह कहने की ज़रूरत नहीं। दो-दो हज़ार प्रतियों के दो संस्करण शीघ्र ही खप जाने से साफ़ मालूम होता है कि, हिन्दी-प्रेमियों ने इस तुच्छातितुच्छ लेखक के अनुवाद को ख़ूब पसन्द किया है। हिन्दी के अनेक समाचार पत्रों ने भी हमारे अनुवाद किये नीति, वैराग्य और शृङ्गार शतक की दिल खोलकर तारीफ़ें की हैं।

पाठकों और पत्र-सम्पादकों के उत्साहवर्द्धन से उत्साहित होकर, प्रकाशकों ने इस बार इस में ६ चित्र और भी बढ़ा दिये हैं। पहले संस्करण में २० और दूसरे में २६ चित्र थे। इस तीसरे संस्करण में ३८ हाफटोन चित्र हो गये हैं। इन चित्रों से ग्रन्थ की शोभा और भी बढ़ गई है। हमारे एक विद्वान् मित्र ने हमारी अनुपस्थिति में 'कितने ही स्थलों में' महराज प्रतापसिंहजी की चमत्कारिणी कविताओं के कठिन शब्दों के अर्थ फुटनोटों के स्थानों में लिखने की कृपा की है। इस शब्दार्थ से साधारण हिन्दी जानने वालों को कविताओं का मर्म समझने में अवश्य आसानी होगी; पर अफ़सोस है, सारी ही कविताओं के शब्दार्थ विस्तार-भय से नहीं लिखे गये। सभी कविताओं के शब्दार्थ की ज़रूरत भी नहीं समझी गई, क्योंकि घूम-फिर कर वे ही शब्द बारम्बार आते हैं। आशा है, पाठक इतनेसे ही सन्तुष्ट हो जायँगे।

इस संस्करण में, भाषा की त्रुटियों पर भी जहाँ-तहाँ ध्यान दिया गया है। फिर भी आधी से ज़ियादा पुस्तक हमारी नामौजूदगी में छपी, इसलिये यहाँ कोई सुधार न हो सका। अगर इस संस्करण में भी त्रुटियाँ या ग़लतियाँ रह गई हों, तो पाठकों से हमारा नम्र निवेदन है कि, वे हमें पहले की तरह ही क्षमा प्रदान करें।

भगवान् कृष्ण की असीम कृपा से हमारे अनुवाद किये हुए "शृङ्गार शतक" का भी नवीन संस्करण होने वाला है। पुस्तक प्रेस में दे दी गई है। अगर दैव अनुकूल रहा, विघ्न-बाधाओं का सामना न करना पड़ा, कोई अमङ्गल घटना न घटी और स्वास्थ्य अच्छा रहा, तो "शृङ्गार शतक" के भी चित्रों और पृष्ठों में वृद्धि की जायगी; क्योंकि हमारा शृङ्गार भी पाठकों ने ख़ूब पसन्द किया है। पाठकों की क़दरदानी का ही नतीजा है कि, दो हज़ारी संस्करण प्रायः डेढ़ साल में ही शेष हो गया। अनेक पत्र-सम्पादक महोदयों ने भी हमारा "शृङ्गार शतक" पढ़ कर भूरि-भूरि प्रशंसा की है। "वर्तमान"-सम्पादक श्रद्धेय पण्डित रमाशङ्करजी अवस्थी तो उस पर दिलोजान से फ़िदा हो गये। बस, इन्हीं सब वजूहातों से हमारा और प्रकाशकों का दिल बढ़ा है और हम लोग इस में भी वृद्धि करने पर तैयार हुए हैं। आशा है, मनोरथदाता कृष्ण हमारी मनोकामना सफल करेंगे और हमारे प्रेमी पाठक पहले की तरह ही हमारा उत्साह बढ़ाते रहेंगे।

कलकत्ता
१५ मई, सन् १९२५ ई०

विनीत—
अनुवादक।

चतुर्थ या वर्त्तमान संस्करण पर

दो चार बातें ।

जगदाधार जगन्नायक आनन्दकन्द श्रीकृष्ण भगवान् की असीम कृपा से ही, मैं अपने अनुवाद किये हुए भर्तृहरि महाराज के "वैराग्य शतक" का चतुर्थ संस्करण, अपनी ज़िन्दगी में ही देख रहा हूँ। मुझे ऐसी आशा न थी। अगर मैं हर बार एक-एक हज़ार प्रतियाँ छपाता, तो आज इस शतक का आठवाँ संस्करण होता, पर मेरे द्वारा अनुवादित हुए तीनों शतक (नीति–वैराग्य और श्रृङ्गार) बहुत ही ज़ियादा बिकते हैं। इधर नवीन संस्करण होता है और उधर हिन्दी-प्रेमी जनता उसे चाट जाती है। इसी से मुझे, बारम्बार प्रूफ-संशोधन की तकलीफों से बचने के लिए, तीन-तीन हज़ारी संस्करण कराने पड़ते हैं। अपने लिखे या अनुवाद किये ग्रन्थ के संस्करण-पर-संस्करण होने से, किस लेखक या अनुवादक को ख़ुशी नहीं होती ? मुझे भी बड़ी ख़ुशी का मौक़ा है। पर अपनी इस ख़ुशी का कारण, मैं अपने इष्ट देव कृष्ण की असीम कृपा और हिन्दी-प्रेमी सज्जनों की क़दरदानी समझता हूँ, अतएव भगवान् को कोटिशः धन्यवाद देता और हिन्दी-प्रेमी जनता का आभार मानता हूँ। मैं इस बात का ज़रा भी गर्व नहीं करता कि, मेरा किया हुआ शतकों का अनुवाद उतना ही उत्तम है, जितनी कि उसकी बिक्री है। क्योंकि मैं कोई सुलेखक नहीं। हिन्दी-भाषा-भाषी जनता की मुझ पर विशेष कृपा रहती है, इसी से वह मेरे लिखे या अनुवाद किये ग्रन्थों के दोषों पर नज़र न डालकर, उनमें के थोड़े-बहुत गुणों पर रीझ कर, उनकी धड़ा-धड़ ख़रीद करती है। सचमुच, मेरी समझ में तो यही बात है। सज्जनों का स्वभाव ही ऐसा होता है, कि वे गुणों को देखते और औगुणों से नज़र हटा लेते हैं।

अगर ऐसा न हो, तो उस मक्खी में और उनमें क्या अन्तर रहे, जो मिष्टान्न को छोड़कर मैले पर बैठती है ?

जब से मेरे द्वारा अनुवादित ये तीनों शतक हिन्दी-संसार के सामने आये हैं, आज तक, सिवा एक पक्षपातहीन, न्यायशील सज्जन के, सभी—सौ फी सदी पत्र-सम्पादकों और अन्यान्य हिन्दी-संस्कृत के विद्वानों एवं ग्रेजुएटों ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पर जिसके अनेक प्रशंसक होते हैं, उसके दो चार निन्दक भी निकल आते हैं। खैर, मुझे तो एक ही ऐसे महापुरुष मिले हैं। मुझे इस बात से दुःख नहीं, क्योंकि राम और कृष्ण की सारा जगत् प्रशंसा करता है, उनके गुण गान करता है, पर उनकी निन्दा करने वाले भी इस जहान् में थे और हैं। उनके मुक़ाबले में, मेरी क्या गिन्ती ? मैं किस बाड़ी का बथुआ ? जिन्होंने मेरे ख़िलाफ लिखा है, उनका मुझ पर मुख्य दोषारोप यह है, कि मैंने स्त्री-जाति की ख़ूब निन्दा की है। उनकी बातों का काफी जवाब "गङ्गा" और "माधुरी" नाम की सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं और कानपुर के "वर्त्तमान" में विद्वानों ने स्वतः ही दे दिया है। हिन्दी के सुविख्यात विद्वान् मुन्शी जहूरबख़्श साहब ने तो उनके प्रत्येक आक्षेप का सप्रमाण, विस्तार-पूर्ण और सयुक्तिक उत्तर बड़े ही अच्छे ढँग से दिया है। जवाब क्या है, विद्वत्तापूर्ण मुँहतोड़ जवाब है। यद्यपि मुझे निन्दा और स्तुति, भर्तृहरि की कृपा से, यकसाँ जान पड़ती हैं, तथापि मैं भी, भ्रम-निवारणार्थ, कुछ लिख देना बुरा नहीं समझता। विद्वान् लोग उचित–अनुचित और न्याय–अन्याय का निर्णय स्वयं ही कर लेंगे। पर मैं जो लिखना चाहता हूँ, उसे "शृंगार शतक" में लिखूँगा; क्योंकि इस शतक में और मैटर देने की गुञ्जाइश नहीं। फिर भी, अत्यन्त संक्षेप में, चन्द पंक्तियाँ यहाँ भी लिख देना परमावश्यक है। अगर मैं यहाँ, इस बात को चलाकर, कुछ भी नहीं लिखता हूँ, तो "वैराग्य शतक" के पाठक भ्रम में पड़ जायँगे, उनकी उत्सुकता बढ़ जायगी। मुमकिन है, जब तक वे "शृंगार शतक" को ख़रीदकर न पढ़ें, तब तक और-का-और समझ बैठें।

मैं ऊपर के किसी पैरे में लिख आया हूँ, कि मेरे एक पक्षपातहीन, न्यायशील सच्चे मित्र* ने, मेरा अनुवाद किया हुआ "वैराग्य शतक" पढ़ कर, मुझे "नारी-निन्दक" ठहराया है। मुझे यद्यपि निन्दा और स्तुति समान-सी जान पड़ती हैं, पर 'नारी-निन्दक की उपाधि' मुझे बर्दाश्त नहीं होती, मेरे बूढ़े हृदय में भारी चोट लगती है। अगर मैं सचमुच ही नारी-निन्दक होता, तो मुझे दुःख न होता। पर मैं नारी-जाति को पुरुष-जाति से किसी बात में कम नहीं समझता। इस जाति की पुरुष-जाति से बहुत ज़ियादा इज्ज़त करता हूँ। जिस जाति से राम, कृष्ण, बुद्ध, तिलक और गाँधी जैसे योगेश्वर और महापुरुष जन्मे हैं, उस जाति की निन्दा ज़रा-सी भी अक़्ल रखने वाला मनुष्य हरगिज़ नहीं करेगा। मैंने भी निन्दा नहीं की है। जिसका सिद्धान्त ही नारी-जाति की इज्ज़त करना है, उसे हर बात में पुरुष-जाति से ऊँचा स्थान देना है, वह भला मातृ-जाति की——जगज्जननी की, मर्दों की खान की, निन्दा कैसे करेगा?

"वैराग्य शतक" में महाराजा भर्तृहरि ने स्त्री-जाति की अवश्य निन्दा की है, पर बहुत थोड़े श्लोकों में, क्योंकि वह वैराग्य शतक लिखने बैठे थे, स्त्री-शतक नहीं। उन्हें पिंगला की बेवफ़ाई देखकर, संसार की हरेक चीज़ से—ख़ासकर स्त्री और माया से—कामिनी और काञ्चन से, नफ़रत हो गई थी। अतः उन्होंने वही कहा, जो उनके आत्मा ने कहलवाया; और जो कहा, वह बावन तोले पाव रत्ती ठीक कहा। अगर मनुष्य को कामिनी और काञ्चन से घृणा न हो, विरक्ति न हो, तो वह वैराग्य कैसे लेगा? त्यागी और संन्यासी कैसे होगा?

पुरुष को संसार-बन्धन में बाँधने वाली यही तो दो मुख्य चीज़ें हैं। अगर संसार-सागर के बीच में ये दो रुकावटें न हों, तो लोग सहज में उस के पार न हो जावें। अकेले भर्तृहरि ने ही यह पाप नहीं किया है। वसिष्ट, तुलसी, कबीर प्रभृति जितने भी महापुरुष हुए हैं, सभी ने यह पाप किया है; वशिष्ठ ने राम के सामने घोर नारी-निन्दा की है। अगर इस बीसवीं सदी में वह पाप है।

---

* हमारा सच्चा मित्र वही है जो हमें हमारी ग़लतियाँ दिखाता है; बशर्ते कि वे सच्ची हों।

निन्दक साहब लिखते हैं कि, ये "शतक" ग़लत रास्ते पर ले जाते हैं; अतः पढ़ने-योग्य नहीं। अगर ऐसा होता तो ये विद्वानों-द्वारा क्यों पढ़े जाते ? "नीति शतक" अनेक यूनीवर्सिटियों ने एफ० ए०, बी० ए० के कोर्सों में शामिल किया है। मेरे ज़माने में भी, जब मैं एफ० ए० में पढ़ता था, शायद सन् १८९३ ई० में, यह हमारे कोर्स में था। कुछ भी हो—भर्तृहरि के "शतक त्रय" का इस भूतल के समस्त देशों में ख़ूब आदर है। रुए ज़मीन पर कौनसी क़ौम है, जिसके विद्वान् इन शतकों को देखे बिना रहते हैं ? सभी संसार दिल खोल कर इनकी तारीफें करता है।

मैं अगर स्त्री-निन्दक होता, तो 'शृंगार शतक' में, ज़रा-सा मौक़ा पाकर, स्त्रियों की तारीफ़ में पचासों पेज काले न कर डालता। मेरे उपकारी मित्र ने मेरा अनुवाद किया हुआ "शृंगार शतक" तो देखा नहीं, नीति और वैराग्य शतक देखकर ही, मुझ पर बुरी तरह हमला कर दिया। अनुवादक का फ़र्ज़ है, कि वह मूल लेखक के क़दम-ब-क़दम चले, वही मैंने किया है। मैं भर्तृहरि के शतकों का समालोचक होता, तो निस्सन्देह उनकी नारी-निन्दा का खण्डन करता। पर अनुवादक को तो अपना निज का सिद्धान्त ताक़ पर रख कर अनुवाद करना होता है। वही मैंने किया है।

मेरे सच्चे मित्र, नेहरू महाशय यह भी समझते हैं, कि मैंने भर्तृहरि के श्लोकों का अनुवाद ही नहीं किया है, अपनी तरफ़ से मन-गढ़न्त कहानियाँ जोड़-जोड़ कर, उनकी की हुई स्त्री-निन्दा को और भी घृणित बना दिया है। यह बात नहीं है, भर्तृहरि ने जोभी लिखा है, मैंने दुनियाँ के और विद्वानों की वैसी ही, उनके कथन से मिलती-जुलती उक्तियाँ--बाणियाँ जगह-ब-जगह सजाकर, उनकी बातों की पुष्टि करदी है और जहाँ-तहाँ, अनेक ग्रन्थों से खोज-खोज कर, उदाहरण-स्वरूप, बहुत-सी मौजूँ कहानियाँ लिख दी हैं। वे कहानियाँ मेरी गढ़न्त नहीं हैं। हाँ, उन्हें श्लोकों, शेरों और भाषा वग़ैरःसे मैंने सजाया है। पर यह काम किया है, भर्तृहरि की उत्तमोत्तम शिक्षाओं को पाठकों के दिलों पर नक़्श करने को, उनके दिमाग़ में जमा देने को। क्या मैंने बुरा किया है? अगर मैं

गढ़-गढ़ कर भी कहानियाँ लिख देता, तोभी पाप न होता। ग्रीस के ईसपने क्या किया है? ईसप की कहानियाँ क्या झूठी नहीं हैं? फिर वे मदरसों में क्यों पढ़ाई जाती हैं? अनवार सहेली, पञ्चतन्त्र और हितोपदेश में जो पशु-पक्षियों की कहानियाँ हैं, क्या वे सच्ची हैं? भारत के ईसप, विष्णु शर्मा ने क्या सच्ची कहानियाँ ही लिखी हैं? फिर उन्हें जगत क्यों पढ़ता है? ख़ैर, अब मैं अपनी बातों को यहीं ख़त्म करता हूँ, क्योंकि यहाँ सचमुच ही स्थानाभाव है। परमात्मा चाहे तो "श्रृंगार शतक" के आरम्भ में, मैं भारत के विद्वानों की सम्मतियाँ, और अपना लम्बा-चौड़ा, पर उचित और न्याययुक्त उत्तर पाठकों की ख़िदमत में पेश करूँगा। समझदार पाठक तो इतने से ही सब-कुछ समझ लेंगे, क्योंकि मसल मशहूर है—"अक़्लमन्दाँरा इशारा काफ़ी अस्त" (A word to the wise is enough)। जिन्हें ज़ियादा आनन्द लेना हो, वे "श्रृंगार शतक" को मँगा कर ज़रूर देखें।

अब मैं अपने प्रिय मित्र पण्डित सत्यपालजी शर्मा, मालिक "कान्ति प्रेस" माईथान—आगरा, को हार्दिक धन्यवाद देकर अपना फ़र्ज़ अदा कर देना चाहता हूँ, क्योंकि पण्डितजी ने मेरी इस और अन्य पुस्तकों के जी-जान से उत्तम-से-उत्तम छापने में बड़ी तकलीफें उठाई हैं। जो काम उनका नहीं है, वह भी उन्होंने मेरी वृद्धावस्था की तरफ़ देखकर किया है। छपाई-सफ़ाई तो इस प्रेस की निहायत मनोमुग्धकर और नेत्ररञ्जक होती ही है। सच तो यह है, यू० पी० में, एक दो प्रेसों को छोड़कर, और कोई प्रेस इस प्रेस की-सी सुन्दर छपाई नहीं करता।

छपाई सचमुच नेत्रसुखकर, मनोहर और साफ़-सुथरी है कि नहीं, इसे पाठक "वैराग्य शतक" में ख़ुद अपनी आँखों से देखकर फैसला कर लें। परमात्मा आपकी दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करे!

मथुरा।
१ सितम्बर, १६३३ ई०

विनीत—
हरिदास।

चित्र-सूची

❀ श्रीः ❀

कहते हैं, कोई दो हज़ार वर्ष पहले, राजपूताने के मालवा प्रान्त की उज्जयिनी नगरी में,—जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं,—एक उच्च श्रेणी के विद्वान् नीति-कुशल, न्यायपरायण, प्रजावत्सल, सर्वगुणसम्पन्न नृपति राज करते थे। आप का शुभ नाम महाराज भर्तृहरि था। आप अपनी प्रजा को निज सन्तान से भी अधिक चाहते थे और उसी की हितचिन्तना में दिन-रात मशग़ूल रहते थे। आप की न्यायप्रियता और प्रजाहितैषणा की चर्चा सारे भारतवर्षमें फैल गई थी, इसलिये अन्य राज्योंकी बहुसंख्यक प्रजा भी अपना देश छोड़कर आपके राज्यमें आ कर बस गई थी; इससे उज्जयिनी की शोभा-समृद्धि आजकल के कलकत्ते-बम्बई के समान होगई थी। राजा के धर्मपरायण होने के कारण

प्रजा भी धर्मात्मा थी। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्म का पालन करते थे। ठौर-ठौर यज्ञ और हवन होते थे। मेघ समय पर यथेष्ट जल बरसाते थे। मालवा प्रान्त में लोग अकाल का नाम तक भूल गये थे। राजा-प्रजा के भाण्डार सदा धन-धान्य से पूर्ण रहते थे। ग़रीब दोनों समय पेट भर अन्न खाते थे। प्रजा को किसी बात का दुःख, क्लेश और अभाव नहीं था। चोरी, ज़ोरी, लूट-मार और डकैती एवं अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार प्रभृति का नाम ही उठ गया था। कभी ही कोई ऐसा केस राज दरबार में आता था। इन जुर्मों के मुजरिमों को महाराज सख़्त सज़ा देते थे। न्याय, नीति और धर्म पर चलने वालों के लिये महाराज जैसे दयालु थे; दुष्ट और अन्यायियों के लिये वैसे ही कठोर थे। सारांश यह कि, महाराज में सभी उत्तमोत्तम राजोचित गुण विधाता ने दिये थे। आप के राज्य में शेर बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई किसी की ओर आँख उठा कर नहीं देख सकता था। निबल और सबल सभी अपनी-अपनी खाल में मस्त थे। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ न होती थी। सच तो यह है, कि मालवा प्रान्त की प्रजा फिर से रामराज्य का सुख लूटती हुई, हृदय से महाराज की मंगल-कामना और उनके दीर्घजीवन के लिये जगदीश से कर-जोड़ प्रार्थना करती थी। उस समय प्रजा को कोई ज़बर्दस्ती राजभक्ति का पाठ नहीं पढ़ाता था। सुखी होने के कारण, प्रजा आपही राजा को पिता की तरह मानती थी और उस में अचल-अटल भक्ति रखती थी।

महाराज के एक छोटे भाई भी थे। उन का नाम राजकुमार विक्रम था। विक्रम भी बड़े भाई की तरह ही विद्वान्, न्यायपरायण, धर्मात्मा और राजनीतिकुशल थे। यह राजकुमार विक्रम ही हमारे सुप्रसिद्ध प्रतापशाली महाराजाधिराज वीर विक्रमादित्य थे, जिन्होंने भयंकर युद्धों में विदेशी आक्रमणकारियों को परास्त कर, भारत की रक्षा की और उन्हें इस देश से निकाल बाहर कर, अपने नाम से संवत् चलाया, जो आज तक विक्रम-संवत् के नाम से पुकारा जाता है। आप ही का चलाया संवत् अब तक पञ्चाङ्गों, जन्त्रियों और साहूकारों के बही-खातों में लिखा जाता है। यद्यपि काल की कुटिल गति, ज़माने के फेर या देश के दुर्भाग्य से आज-कल ईस्वी सन् की तूती बोल रही है। लोग चिट्ठी-पत्रियों एवं अन्यान्य काग़ज़ और दस्तावेज़ों में आप के संवत् को छोड़ कर ईस्वी सन् को लिखने की मूर्खता करते हैं; पर बहुत से सज्जन अपनी भूल को सुधार कर, फिर महाराज के संवत् से ही काम लेने लगे हैं। आशा है, सभी भूले हुए राह पर आजायँगे और संवत् के कारण से महाराज का शुभ नाम यावत् चन्द्र-दिवाकर इस लोक में अमर रहेगा।

महाराज विक्रम के समय में बौद्ध-धर्म बड़े ज़ोरों पर था। ब्राह्मण-धर्म की नींव खोखली हो गई थी। आपने ही बौद्धों को मार भगाया और ब्राह्मण-धर्म की फिर से स्थापना की। आप अपने ज़माने में भारत के सर्वश्रेष्ठ नृपति समझे जाते थे। प्रायः सभी राजे-महाराजे आप को अपना सम्राट् या नेता मानते थे। सभी

आप के इशारों पर नाचते थे। आप कहने को तो उज्जैन के राजा कहलाते थे, पर आप के राज्य की सीमा बड़ी लम्बी-चौड़ी थी। अतुल धन-वैभव और सुविस्तृत राज्य के अधीश्वर होने पर भी, आप में अभिमान नाम को भी न था। आप छोटे-बड़े सभी से मिलते और बातें करते थे। आप एक चटाई पर सोया करते और अपने पीने के लिए क्षिप्रा नदी से एक तूम्बा जल स्वयं अपने हाथों से भर लाते थे। आप आजकल के राजाओं की तरह प्रजा के पैसे से ऐश-आराम नहीं करते थे। आप का सारा समय प्रजा की भलाई में ही व्यतीत होता था। आप अधिक-से-अधिक तीन चार घण्टे सोते थे। रात के समय भेष बदल कर, आप अक्सर शहर में ग़श्त लगाया करते थे और इस बात की खोज करते थे, कि मेरी किस प्रजा को कौन सा दुःख है। आप जिसे दुःखी देखते थे, उस का दुःख या अभाव किसी न किसी तरह अवश्य ही दूर कर देते थें। अनेक मौक़ों पर तो आपने अपनी बेशक़ीमत जान को ख़तरे में डाल कर भी, प्रजा का दुःख दूर किया था। इसी से प्रजा आप को "परदुःखभञ्जन" कहती थी। भारत में अब तक हज़ारों-लाखों राजा-महाराजा हो गये होंगे, पर आप के सिवा और किसी को भी यह महा मूल्य उपाधि नसीब नहीं हुई। हाँ, ईरान के ख़लीफ़ा हारूँ-उर-रशीद के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बातें सुनी जाती हैं। ख़लीफ़ा हारूँ रशीद भी, महाराज विक्रम की तरह, रात को भेष बदल कर घूमा करते और दीन-दुःखियों का पता लगा कर उन के कष्ट मोचन किया करते थे। इस पृथ्वी पर आज

तक न जाने कितने एक-से-एक बढ़ कर राजा-महाराजा हो गये, जिन की हुङ्कार से पृथ्वी काँपती थी, जिन के पास असंख्य सेना-सामन्त और अतुल धन-भाण्डार था, पर आज उन का नाम भी कोई नहीं लेता। पर ऐसे प्रजावत्सल, परोपकारी, न्यायी और प्रजाकष्ट मोचन करने वाले महीपालों का नाम, जब तक पृथ्वी रहेगी, लोगों की ज़बान पर रहेगा। इस जगत् में जिन की कीर्ति है, वह मर जाने पर भी अमर हैं। कीर्तिवान् मृतक नहीं समझा जाता। मृतक वही है, जिस की कीर्ति या सुनाम नहीं है। महाराजा विक्रम, ख़लीफ़ा हारूँ रशीद, नौशेरवाँ और सम्राट् अकबर प्रभृति आज इस नापायेदार दुनिया में नहीं हैं, पर उन का सुनाम लोगों की ज़बान पर है; अतः वे सशरीर न रहने पर भी अमर हैं। धन्य हैं ऐसे नरपाल ! ऐसे भूपालों से ही मही की शोभा है !

हमें यहाँ महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में नहीं लिखना है। लिखना है,—महाराजा भर्तृहरि के सम्बन्ध में। प्रसंगवश, हम महाराजा विक्रमादित्य के विषय में इतना लिख गये। अब फिर असली मुक़ाम पर आते हैं। सुनिये, प्रातःस्मरणीय महाराजा विक्रम छोटे थे और महाराजा भर्तृहरि बड़े होने के कारण राज करते थे। महाराजा विक्रम बड़े भाई के प्रधान मन्त्री का काम करते थे। दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम और सद्भाव था। राम-लक्ष्मण की सी जोड़ी थी। राम लक्ष्मण को जिस तरह चाहते थे, उसी तरह महाराजा भर्तृहरि भाई विक्रम को प्यार करते थे। लक्ष्मण राम में जैसी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, वैसी ही श्रद्धा और भक्ति विक्रमादित्य महाराजा

भर्तृहरि में रखते थे। दोनों ही दोनों के लिये जी-जान से चाहते थे। बड़े भाई छोटे को निज पुत्रवत् समझते थे और छोटे बड़े को पितृवत् मानते थे। महाराजा भर्तृहरि यद्यपि निरालसी और राजकार्य्यदक्ष थे, तथापि उन्होंने राजकाज का विशेष भार विक्रम पर ही छोड़ रक्खा था। पिता जिस तरह सुपुत्र पर गृहस्थी का सारा भार छोड़ कर एक तरह निश्चिन्त हो जाता है; उसी तरह महाराज भर्तृहरि विक्रम पर राज-काज का भार छोड़ निश्चिन्त हो गये थे। महराज विक्रम भी अपनी कुशाग्र बुद्धि और राजनीतिज्ञता से सारे काम सुचारु रूप से चलाते थे और राजकाज की जटिल समस्याओं के सुलझाने में महाराज के दाहिने हाथ बने हुए थे। प्रजा सब तरह सुखी और प्रसन्न थी। राज्य में आनन्द की बाँसुरी बज रही थी। पर परमात्मा की इच्छा या होनहार के कारण, आगे चल कर एक विषवृक्ष पैदा हो गया। उस ने इन दोनों भाइयों में मनोमालिन्य करा दिया। इतना ही नहीं, दोनों को एक दूसरे से जुदा करा दिया। जिस का लोगों को स्वप्न में भी ख़याल नहीं था, जिस का होना लोग असम्भव समझते थे, वही हुआ। सच है, भावी बड़ी बलवती है—होनी होकर रहती है।

महाराजा भर्तृहरि की दो या तीन शादियाँ हो चुकी थीं। फिर भी; आपने किसी देश की अपूर्व रूपलावण्य-सम्पन्ना, परमासुन्दरी, रतिमानमर्दिनी, मुनिमनमोहिनी, अप्सराओं को भी शर्माने वाली एक राजकुमारी से शादी कर ली। नयी महारानी का नाम पिंगला था। महारानी पिंगला के असाधारण रूपवती होने के

कारण, महाराज उन के रूप पर ऐसे मोहित हुए कि अपनी विद्या-बुद्धि, विवेक और विचार प्रभृति को ताक़ पर रखकर, उन के हाथों बिक गये—उन के क्रीतदास हो गये। ठीक शाहन्शाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँ का सा हाल हुआ। जिस तरह नूरजहाँ के बिना दिल्लीश्वर जहाँगीर को एक क्षण कल न पड़ती थी; उसी तरह महाराज भर्तृहरि को भी महारानी पिंगला बिना चैन नहीं था। जिस तरह जहाँगीर की नकेल नूरजहाँ के हाथों में थी; उसी तरह महराज भर्तृहरि की नकेल पिंगला के हाथों में थी। जिस तरह बादशाह जहाँगीर नूरजहाँ के हाथों की कठपुतली थे; उसी तरह महाराज भर्तृहरि भी पिंगलाके हाथोंकी कठपुतली थे। बादशाह जहाँगीर, नाम के बादशाह थे; नूरजहाँ ही बादशाहत की असल सञ्चालिका थी। वह जो चाहती थी सो करती थी। बादशाह सिर्फ़ दस्तख़त और मुहर भर कर देते थे। महाराज भर्तृहरि की भी वही दशा थी। महारानी पिंगला जो चाहती थीं, वही महाराज से करा लेती थीं। महाराज बिना कुछ सोचे-समझे, बिना आगा-पीछा देखे, आँखें बन्द करके, रानी पिंगलाकी इच्छानुसार चलते थे। उन दिनों महाराज सच्चे स्त्रैण हो गये थे। रानी पिंगला ने ऐसा जादू कर दिया था, कि महाराज अपने होश-हवास खोकर, पूरे तौर से उन के ज़रख़रीद ग़ुलाम हो गये थे।

स्त्रैण होना अच्छा नहीं, स्त्री का ग़ुलाम होना उचित नहीं, स्त्री के वश में होना सर्व्वनाश का बीज बोना है। पर इन मोहिनियों के आगे प्रायः सभी की सिट्टी गुम हो जाती है। हम

महाराजा को ही दोषी क्यों ठहरावें, जब कि बड़े-बड़े योगीश्वर मोहिनियों के रूप-जाल में फँस कर अपनी बुद्धि खो बैठे? इन योगिजनमनोहरा कामिनियों की मोहिनी शक्ति के आगे किसने हार नहीं मानी? इन के मोहनमन्त्र से कौन पागल नहीं हुआ? इन की मोहिनी माया में कौन नहीं फँसा? शिव-जैसे परम योगीश्वर मोहिनी की रूपच्छटा, चटक-मटक और नाज़-नख़रों पर पागल हो गये। विश्वामित्र-जैसे महामुनि मेनका के रूप-जाल में फँस कर अपना तप भङ्ग कर बैठे। मरीचि और शृंगी-जैसे महर्षि इन की मनोमुग्धकर रूप-माधुरी पर सुध-बुध खोकर तपस्या छोड़ बैठे; तब साधारण मनुष्यों की कौन बात है? बड़े-बड़े शूरवीर जो जगत् को परास्त कर सकते हैं, वे भी इन के सामने कायर हो जाते हैं। किसी कवि ने कहा है—

व्याकीर्ण केशर करालमुखा मृगेन्द्रा,
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः ।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
स्त्रीसंन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति ॥

गर्दन पर बिखरे हुए बालों वाला करालमुखी सिंह, अत्यन्त मदवाला हाथी और वुद्धिमान समरशूर पुरुष भी स्त्रियों के आगे परम कायर हो जाते हैं।

परमात्मा ने भी स्त्रियों के साथ पक्षपात किया है। उस ने इन्हें अपूर्व क्षमता प्रदान की है। उसी क्षमता से ये पुरुषों को

उसी तरह अपने अधीन कर लेती हैं; जिस तरह मनुष्य गाय, बैल, घोड़े, घोड़ी प्रभृति पशुओं को अपने अधीन कर लेते हैं। जो काम बड़े-बड़े धनुर्द्धारी अपनी बाणविद्या से सिद्ध नहीं कर सकते, उसे ये अपने एक कटाक्ष से सिद्ध कर लेती हैं। इन के कटाक्ष बाणों के लगने से बड़े-बड़े युद्धों को जीतने वाले, कभी हार न खाने वाले योद्धा सुन्न हो जाते हैं—भेड़-बकरी की तरह इन के वश में हो जाते हैं। ये मोहिनी नज़रों में मार लेती हैं; मधुर-मधुर बोलने से चित्त को चुरा लेती हैं; हाव-भाव या नाज़-नखरों से हृदय को मोह लेती हैं। मामूली आदमियों का तो ज़िक्र ही क्या—ये हवा और राख खाकर ज़िन्दगी बसर करने वाले महात्माओं को भी मोहित कर लेती हैं; इसी से लोग इन्हें मुनिमनमोहिनी भी कहते हैं।

स्त्रियाँ आशिक़ रूपी हिरनों के बाँधने के लिये मज़बूत रस्सी और हृदय-रूपी मदमत्त गजराज को बन्धन में फँसा रखने के लिये ज़बर्दस्त ज़ञ्जीर हैं। ये अबला होने पर भी सबला हैं, गौ होने पर भी बाघ हैं; कोमलाङ्गी होने पर भी बज्राङ्गी हैं और निर्मला होने पर भी कुमला हैं। ये अपने ऊपर अनुरक्त हुए अपने पति या आशिक़ को अपने वश में कर लेती हैं। जब वह इन के वश में हो जाता है, तब उस का ज्ञान काफूर हो जाता है। ज्ञान-विहीन-अज्ञानी पति अपनी स्त्री के सामने मूक पशुवत् हो जाता है। वह अपनी स्त्री की हाँ में हाँ मिलाता है, उस के कुकर्म देख कर भी नहीं बोलता; क्योंकि स्त्रियाँ अपने चाहने

वालों को ऐसा ही बना लेने की सामर्थ्य रखती हैं। किसी ने कहा है:—

अलक्तको यथा रक्तोऽनिष्पीड्य परुषस्तथा ।
अबलाभिर्बलाद्रक्तः पादमूले निपात्यते ॥

जिस तरह स्त्रियाँ लाख के रंग को ज़ोर से दबा कर अपने चरणों में लगाती हैं; उसी तरह वे अपने अनुरागी या चाहने वाले को अपने चरणों में डाल लेती हैं।

पर इन मोहिनियों पर जीजान से लट्टू होने वालों, इन पर सम्पूर्ण रूप से विश्वास कर लेने वालों और इन की अन्धभक्ति करने वालों को अन्त में दुःख पाना, धोखा खाना और पछताना पड़ता है, इसमें ज़रा भी शक नहीं; अतः इन को मध्य अवस्था से सेवन करना चाहिये; क्योंकि यदि पुरुष इन से दूर रहे, तो फल नहीं मिलता और एकदम इन का हो ले, तो ये सर्व्व-नाश का कारण हो जाती हैं। जो पुरुष स्त्रैण या स्त्री के ग़ुलाम हो जाते हैं, जो इन को सिर पर चढ़ा लेते हैं, जो इन के ही मत पर चलते हैं, उन को दुःख भोगने पड़ते हैं और ये उन्हें ख़ूब नाच नचाती और स्वयं स्वतन्त्र होकर मन-माने दुष्कर्म करती हैं। कहा है:—

तासां वाक्यानि कृत्यानि स्वल्पानि सुगुरुण्यपि ।
करोति यः कृती लोके लघुत्वं याति सर्वतः ॥

नाति प्रसंगः प्रमदासु कार्य्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अति प्रसक्तैः पुरुषैर्युतास्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः ॥

जो कृती पुरुष स्त्रियों की छोटी-बड़ी या थोड़ी-बहुत बातों को मानता है, वह सब तरह से नीचा देखता है।

स्त्रियों से अति प्रसंग न करना चाहिये; क्योंकि अति आसक्त हुए पुरुषों से वह पंख-नुचे कव्वेके समान खेल करती हैं।

अनुभवी विद्वान् और त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनियों ने जो कहा है, वह अक्षर-अक्षर सत्य है। जो शास्त्रकारों के अमूल्य उपदेशों पर ध्यान नहीं देते, उन्हें दुःख के गहरे गड्ढ़े में गिर कर कष्ट उठाना ही पड़ता है। हमारे महाराज भर्तृहरि यद्यपि असाधारण विद्वान् और बुद्धिमान थे; पर भावी के वश होने के कारण, उन्होंने शास्त्रोपदेश पर ध्यान न देकर, महारानी पिङ्गलाको सिर पर चढ़ा लिया; उसकी प्रत्येक बात मानने और हरेक काम उसकी इच्छानुसार करने लगे। नतीजा यह हुआ कि, उसने महाराज को अपने ऊपर पूर्ण रूप से अनुरक्त पा, उनको खेल का पक्षी-सा जान लिया और उन्हें अपनी इच्छानुसार नचाने लगी। साथ ही निर्भय होकर कुकर्म करने पर उतारू हो गई। वह क्या करने लगी, उसका क्या नतीजा हुआ, ये सब बातें पाठकों को आगे चल कर मालूम हो जायँगी। यहाँ हमें यही विचारना है, कि महाराज भर्तृहरि–जैसे चतुरचूड़ामणि और विद्वान् राजा ने ऐसा मौक़ा क्यों दिया ?

पाठक ! जैसी भावी होती है, मनुष्य की बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। अगर भावी के अनुसार बुद्धि न हो जाय, तो भावी कैसे हो ? दशरथनन्दन महाराजा रामचन्द्र तो विष्णु के अवतार माने जाते हैं; वे कुटिया में सीता को छोड़कर, सोने के हिरन के पीछे तीर-कमान ले कर क्यों भागे ? साधारण आदमी भी समझ सकता है, कि सोने का हिरन नहीं हो सकता—सुवर्ण मृग का होना असम्भव है। पर भगवान् रामचन्द्रजी को इतना भी ख़याल न हुआ ! हो कैसे ? होनी तो कुछ और ही थी। जैसी होनी थी, वैसी ही बुद्धि रामचन्द्रजी की हो गई। उनके और लक्ष्मणजी के सीता को सूनी छोड़ जाने से, रावण को मौक़ा मिला और वह यति का वेष धरकर सीता को लङ्का में ले गया। परिणाम में घोर युद्ध हुआ और रावण मारा गया।

हमारे प्रातःस्मरणीय महाराज भर्तृहरि की बुद्धि यदि नहीं मारी जाती, वे पिङ्गला के हाथ की कठपुतली न हो जाते; तो पिङ्गला को व्यभिचारिणी होने का मौक़ा कैसे मिलता ? प्राण-प्यारे भाई विक्रम से वियोग कैसे होता ? शेष में, अपनी प्राण-प्रिया के कुकर्म का हाल जानकर, महाराज को विरक्ति कैसे होती और वे राजपाट त्याग कर आदर्श योगिराज कैसे होते ? कहते हैं, संसार में एक पत्ता भी बिना परमेश्वर की मरज़ी के नहीं हिलता। इस जगत् में जो कुछ होता है, वह जगदीश की इच्छा से होता है; वे जो चाहते हैं, सो करते हैं। पर जगदीश जो करते हैं, वह प्राणी की भलाई के लिये करते हैं; इसमें सन्देह नहीं। जगदीश

की इच्छा से ही, कई रानियों के होते हुए भी, महाराज ने पिङ्गला का पाणिग्रहण किया। जगदीश की इच्छा से ही, वह सब विद्या-बुद्धि विसराकर रानी के क्रीतदास हुए। इससे महाराज का बड़ा उपकार हुआ। ऐसा भला हुआ, जिसकी तुलना नहीं। उनको संसार से विरक्ति न होती, तो क्या आज उनका नाम इस जगत् में अमर रहता? उनकी कीर्त्ति अचल होती? उन्होंने जिस महोच्च पद—परमपद—की प्राप्ति कर ली, क्या उसकी प्राप्ति कर सकते? हरगिज़ नहीं। इसी से कहना पड़ता है, कि महाराज और गोस्वामी तुलसीदासजी दोनों ही को, आरम्भ सें, परले सिरे के विषयी और स्त्रैण होने से ही वैराग्य हुआ। बुराई से भलाई हुई और परमात्मा जो करता है, वह मनुष्य की भलाई के लिए ही करता है, यह बात सत्य प्रमाणित हुई। विष-वृक्ष से अमृत-फल की उत्पत्ति हुई। ठीक गोस्वामि तुलसीदासजी की सी घटना घटी। गुसाईं जी को भी स्त्री के ही कारण से वैराग्य हुआ और हमारे महाराज को भी स्त्री के ही कारण से। हाँ, घटनाक्रम में थोड़ा अन्तर अवश्य है।

स्त्रियों के स्वभाव की कोई बात समझ में ही नहीं आती। ये अपने व्याहता सुन्दर, ख़ूबसूरत, नौजवान, बलवान्, वीर्य्यवान्, चतुर और कामकला-कुशल पति को त्याग कर एक नीच-कुलोत्पन्न, गँवार, बदसूरत, कालेकलूटे, अधेड़ और बूढ़े पर मरने लगती हैं। ये पुरुषमात्र को भोगने की इच्छा रखती हैं। इन्हें वयस और रूप-कुरूप से कोई मतलब नहीं। इन्हें न कोई

प्यारा है न कुप्यारा। जिस तरह गाय नई-नई घास पसन्द करती है, उसी तरह ये नित्य नये पुरुषों को चाहती है। जब तक इन्हें कोई चाहने वाला नहीं मिलता या मौक़ा हाथ नहीं आता, तभी तक ये सती बनी रहती हैं। ये अपने सच्चे प्रेमी को नहीं चाहतीं, उससे घृणा करती हैं अथवा उदासीन रहती हैं, किन्तु जो इन्हें नहीं चाहता, जो इनके साथ चालें चलता है, जो परले सिरे का धूर्त्त और दग़ाबाज़ होता है, जो दुर्गुणों की मूर्त्ति और दुष्टता की खान होता है, उसके लिये ये अत्यातुर रहती हैं।

जो पुरुष स्त्रियों को सद्गुण-शालिनी और उत्तम स्वभाव-वाली समझते हैं, ये बड़ी ग़लती करते हैं। ये इतनी चालाक और मायाविनी होती हैं कि, अच्छे-से-अच्छे चालाक को भी अपने कुकर्म्मों का पता नहीं लगने देतीं। ये किसी की भी बात को जान-सुनकर पेट में नहीं पचा सकतीं, पर अपनी बात को छिपाना ये ख़ूब जानती हैं। जब ये कुकर्मों पर उतर पड़ती हैं, तब इन्हें लोकलाज, लोकनिन्दा प्रभृति की परवा नहीं रहती। दुनियाँ बुराई करे करो; माता-पिता, भाई और जेठ ससुर प्रभृति की नाक-कटाई हो तो हो—यहाँ तक कि, इनके जीवन में भी सन्देह हो जाय, तो हो जाय; पर ये जिस बात को धार लेती हैं, उससे पीछे कदम नहीं रखतीं। ये देखने में पुष्पवत् कोमल दीखती हैं, पर हृदय इनका वज्रवत् कठोर होता है। इनको किसी पर दया-माया नहीं। इन्हें तो अपनी कुवासना पूरी करने से मतलब। अपनी कुवासना को है

करने के लिये, ये अपने सब सुखों के देने वाले पति के प्राण नाश कर देती हैं, अपने जेठ-ससुर को मरवा डालती हैं। यहाँ तक, कि अपनी पेट की औलाद तक की हत्या पर उतारू हो जाती हैं। कहा है—

आस्तां तावत्किमन्येन दौरात्म्येनेह योषिताम् ।
विधृतं स्वोदरेणापि घ्नन्ति पुत्रं स्वकं रुषा ॥

स्त्रियों के दौरात्म्य की बात कहाँ तक कहें? ये क्रोध में आकर अपने पेट के पुत्र को भी मार डालती हैं।

महारानी पिङ्गला पर महाराज भर्तृहरि जान देते थे, अष्ट पहर चौंसठ घड़ी उसी का ध्यान रखते थे। महारानी रात को दिन और दिन को रात कहती, तो महाराज भी वैसा ही कहते। हर तरह उस की आज्ञा पालन करने और हाँ में हाँ मिलाने को तैयार रहते थे। महाराज में कोई दोष भी न था। आप पूर्ण विद्वान्, बलवान्, वीर्य्यवान् और सर्व्वकला-कुशल पुरुष थे; पर महारानी ऊपर से आप के चाहने का ढोंग करती थी और भीतर से आप से उदासीन रहकर एक नीच को चाहती थी। महारानी जैसी रूपवती थी, वैसी ही चालाक, मक्कार और दुश्चरित्रा थी। ऊपर से गोरी और भीतर से काली, प्रत्यक्ष में सुन्दर और अप्रत्यक्ष में असुन्दर, प्रकट में सती और अप्रकट में असती थी। उसने लोकनिन्दा और कुल की कानकी परवा न करके, एक नीच नमकहराम अस्तबल के दारोग़ा से आशनाई

कर ली। यह बात उस ने बहुत दिनों तक महाराज से छिपाई। महाराज जब महलों में आते, तब वह अपने हावभाव और नाज़ नख़रों से महाराज का मन हाथों में कर लेती। उन से ऐसी ऐसी बातें करती, जिन से महाराज यही समझते कि, मेरी रानी सच्ची सती-साध्वी है। इस ज़माने की दूसरी सीता-सावित्री है। पर उन के पीठ फेरते ही, दरोग़ा को बुलवा कर उस के साथ ऐश-आराम करती। महाराज बेचारे इस त्रियाचरित्र को समझ न सकते थे। किसी ने ठीक ही कहा है—

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं मनोरथंदुर्जन मानवानां।
स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

राजा के चित्त को, कृपण के धन को, दुष्टों के मनोरथ को स्त्रियों के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जानते मनुष्य कौन चीज़ है ?

बहुत दिनों तक यह कलंक-कथा छिपी रही। मनुष्य अपने पापों को कितना ही छिपावे, पर एक न एक दिन वे प्रकट हो ही जाते हैं, एक न एक दिन संसार उन को जान ही जाता है। मनुष्य मनुष्य के गुप्त कामों को नहीं देख सकता। मनुष्य मनुष्य के दिल का हाल नहीं जान सकता; पर परमात्मा से कुछ नहीं छिपता, उस की नज़र हर जगह पहुँचती है। वह सात कोठोंके अन्दर भी मनुष्य के कुकर्मों को देख लेता है। वह घटघट-निवासी अन्तर्य्यामी मनुष्यमात्र के हृदय के भीतर के

बात को जानता है। जब तक उस की इच्छा नहीं होती, मनुष्य के कुकर्म छिपे रहते हैं; उस की इच्छा होते ही उन्हें जगत् जान जाता है। मनुष्य मनुष्य की आँखों में धूल झोंक सकता है; पर परमात्मा की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता। जब तक समय नहीं आया, महारानी की पाप-लीला छिपी रही। समय आते ही, पहले-पहल वह गुप्त रहस्य राजकुमार विक्रम को मालूम हुआ। महारानी के कुकर्म की बात उन के कानों तक पहुँच गई। हाँ, महाराज अँधेरे ही में रहे।

भौजाई के पर-पुरुषता होने की बात से राजकुमार विक्रम को असह्य मनोवेदना हुई। उन का खाना-पीना, सोना-बैठना सब छूट गया। सोते-जागते हरदम वही ख़याल उन के नेत्रों के सामने चक्कर लगाने लगा। अपने सुप्रसिद्ध उच्च कुल में दाग़ लगने और पूज्य भाई के अनिष्ट की आशंका से उन्हें नींद हराम हो गई। करवटें बदलते और छत की कड़ियाँ गिनते रातों-पर-रातें गुज़रने लगीं। उन्होंने अनेक बार महाराज से यह बात कहने का विचार किया; पर महाराज का महारानी पर निश्चल विश्वास और अटल प्रेम देख कर साहस न हुआ। शेष में, एक दिन मौक़ा पाकर, एकान्त में, उन से बात छेड़ ही तो दी। वे बोले,—"पूज्य अग्रज ! आप मेरे पिता के समान ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप सब तरह से चतुर, होशियार और परले सिरे के बुद्धिमान हैं; पर एक जगह आप धोखा खा रहे हैं। मेरा ऐसा कहना, छोटे मुँह बड़ी बात करना है। इच्छा तो नहीं होती,

कि आप से अर्ज़ करूँ। मेरी साँप-छछूँदर की सी गति हो रही है; कहूँ तो ख़राबी, न कहूँ तो ख़राबी। न कहने से कुल में दाग़ लगता है, बदनामी होती है और आप के जीवन में सन्देह होता है; कहने से आप का भय लगता है। आशा नहीं, कि आप मेरी सच्ची बात पर भी विश्वास करें। दिल को बहुत रोका, बहुत समझाया; पर आज वह न माना, तब मजबूर होकर आप से अर्ज़ करने का मन्सूबा किया। कहिये, क्या आप अपने प्यारे छोटे भाई और अपने तुच्छातितुच्छ सेवक की बात पर कान दीजियेगा ?

"सुनिये, भाई साहब ! क्या कहूँ, कहा नहीं जाता, गला रुका आता है, ज़बान लड़खड़ाती है; पर लाचारी से कहना पड़ता है। मैंने भाभी के सम्बन्ध में एक कलङ्कपूर्ण बात सुनी है। सुन कर ही मैंने उसे ठीक नहीं मान लिया; उसकी पूरी तरह से, पोशीदा तौर पर, तहक़ीक़ात भी की। जाँच में बात के सच्ची उतरने पर, मैंने आप से कहने का दृढ़ संकल्प किया है। आप से मेरी विनीत प्रार्थना है कि, आप सावधान होकर चलें; अत्यधिक विश्वास अच्छा नहीं; शास्त्रकारों ने कहा है:—

'नदीनाञ्च नखीनाञ्च शृंगीणां शस्त्रपाणिनां ।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥'

"यह राई-रत्ती सच है। इस में ज़रा भी झूठ नहीं। यह महावाक्य बड़े भारी अनुभव के बाद कहा गया है। महाराज! आप भाभी की माया में भूल रहे हैं। स्त्रियों का जो विश्वास

करते हैं, उनको सती-साध्वी समझे रहते हैं, उन पर सन्देह भी नहीं करते, वे बड़ी भूल करते हैं। किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है—

'यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः।
स्त्रीणां तदा सतीत्वं स्याद्यदि स्याद् दुर्जनो हितः॥'

"अगर आग शीतल हो जाय, चन्द्रमा गर्म हो जाय, दुर्जन हितकारी हो जाय; तो स्त्रियों के सतीत्व का विश्वास हो। महाराज! स्त्रियों की मीठी बातों में न भूलना चाहिये। इनकी बातें जैसी हैं, वैसा दिल नहीं है। कहा है:—

सुमुखेन वदन्ति वल्गुना प्रहरन्त्येव चेतसा।
*मधु तिष्ठति वाचि योषितां *हृदये हालाहलं महाद्विषम्॥*

"स्त्रियाँ सुन्दर मुँह से मनोहर-मनोहर बातें करती हैं और तीक्ष्ण चित्त से प्रहार करती हैं। इनकी बातों में मधु और हृदय में हलाहल विष रहता है।"

राजकुमार विक्रम की सारी बातें चुपचाप सुन कर महाराज ने कहा—"भाई! तुमको भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि विकृत हो गई है; तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है। महारानी पिङ्गला आदर्श सती हैं। इस समय उन के जैसी सती विरल हैं। वह रात-दिन मेरे लिये प्राण देती हैं, मेरा ही जप-तप और ध्यान करती हैं, मेरे सुख में सुखी और दुःख में दुःखी

* "हृदि हालाहलमेव केवलम्" ग्रन्थान्तरे।

रहती हैं। ऐसी सती को असती कह कर, उन पर कलंक कालिमा पोतकर तुम अच्छा नहीं करते। खैर, जो हुआ सो हुआ। तुम छोटे भाई हो, इस से क्षमा करता हूँ; अगर और कोई होता, तो अभी शूली पर चढ़वा देता। आज तो कहा सो कहा, किन्तु भविष्य में फिर कभी ऐसी बेहूदा बात ज़बान से न निकालना।

राजकुमार ने, महाराज के इतना कहने पर भी, उन्हें बहुत कुछ समझाया, कुछ प्रमाण भी दिये; पर पिंगला के रंग में रंगे हुए महाराज पर कुछ भी असर न हुआ। अन्त में जब राजकुमार ने इस से सुफल की कोई सम्भावना न देखी, तब मन में यह समझ कर कि, समय आये बिना कोई काम नहीं होता, समय आने पर भाई की आँखें आप ही खुल जायँगी; उस समय चुप रह जाना ही उचित समझा।

कह चुके हैं, कि महारानी पिङ्गला बड़ी चालाक थीं। उन्हें यह बात पहले ही मालूम हो गई, कि मेरे कुकर्म की बात—मेरे पाप-कर्म का रहस्य—राजकुमार जान गये हैं। इसलिये उन्होंने पहले से ही चाल चलनी शुरू कर दी। वे महाराज के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम-भाव दिखाने लगीं। जब उन्हें अच्छी तरह से मालूम हो गया, कि महाराज के दिल में उन की ओर से ज़रा भी वहम नहीं है, उन का उन पर सोलह आने विश्वास है, उन्होंने एक दिन उन्हें ख़ूब ही राज़ी करके, राजकुमार के विरुद्ध उन के कान भर दिये। कह दिया,—"आप बुरा न मानियेगा; आपके

छोटे भाई की नीयत बड़ी ख़राब है। मैं उन की माता के समान हूँ; पर वे इस बात को न समझ कर मुझे बुरी दृष्टि से देखते हैं। और कोई होती, तो उनके फन्दे में फँस जाती, पर मुझ पर उन का फन्दा कोई काम नहीं कर सकता। परमात्मा ऐसे कुकर्मी का मुँह न दिखावे। मैंने सुना है, कि वह अपने नगर-सेठ की पुत्रवधू पर भी आशिक़ हैं। उस के पीछे उन्होंने बहुत दिनों से दूतियाँ लगा रक्खी हैं। उस बेचारी को अनेक प्रकार से फुसलाया, तरह-तरह के लालच दिये; पर वह भी मेरी तरह सच्ची पतिव्रता है, इसलिये आज तक उनके जाल में नहीं फँसी। अब सुनती हूँ, उन्होंने नगर-सेठ को धमकी दी है। नहीं जानती, यह बात कहाँ तक सच है। वे आपके सुनाम में बट्टा लगाते हैं। अतः मेरी विनीत प्रार्थना है, कि आप उन पर नज़र रक्खें, उन से सावधान रहें।"

महारानी की इन बातों को सुन कर महाराज सन्न हो गये, मुँह सूख गया, चेहरा तमतमा आया, आँखें लाल हो गईं। उनका मन कभी कहता था:—"नहीं नहीं, ये सब नितान्त अमूलक बातें हैं। तुम्हारा भाई विक्रम ऐसा नहीं है। वह पण्डित है, वह पर-स्त्रियों को निज जननी के समान समझता है।" कभी उन का मन कहता था,—"हो सकता है, विक्रम का चरित्र ख़राब हो। पिंगला-सी सती नारी मिथ्या दोष नहीं लगा सकती। इसे उस से क्या बैर है? हाय! भर्तृ-हरि का भाई और ऐसा दुराचारी!" इस तरह उधेड़बुन करते-

करते, ताना-बाना बिनते-बिनते, कभी इधर कभी उधर भटक भटकते, शेष में महाराज का मन महारानी पिङ्गला की बातों ही ठहर गया। उन्हें विश्वास हो गया, कामिल यक़ीन हो ग कि विक्रम सचमुच ही दुराचारी और व्यभिचारी है। पर; इ पर भी, उन्होंने प्रकाश्य में भाई से कुछ न कहा।

इधर तो रानी ने महाराज को यह पट्टी पढ़ायी; उधर न सेठ को बुलवा कर उस से कहलवाया कि, तुम से कहूँ सो क नहीं तो तुम्हारी जानकी ख़ैर नहीं। राजा मेरी मुट्ठी में हैं तुम्हारे बच्चे-बच्चे को कोल्हू में पिलवा कर तुम्हारा सर्व अपहरण करा लूँगी।

नगरसेठ ही क्यों—सारा नगर जानता था, कि महा पिंगला के हाथ की कठपुतली हैं। वह जो नाच नचाती हैं, राज वही नाच नाचते हैं। इसलिये सेठ जी ने हाथ जोड़ कहलवाया—"महारानी जी! आप इतनी बातें क्यों कहती दास तो आप की आज्ञा से बाहर नहीं। आप का हुक्म आँखों पर। जो हुक्म कीजिये, ग़ुलाम वही करने को तैयार है

सेठ की यह बात सुनकर रानी ने कहलवाया—"आप ही हैं, कि राजकुमार विक्रम कैसे अत्याचारी हैं। प्रजा कितना कष्ट देते हैं। महाराज स्वयं तो राज-काज देखते सारा काम राजकुमार ही चलाते हैं। मैं नहीं चाहती, कि प्रजा को कष्ट दें। इसवास्ते किसी तरह महाराज का मन करके; उन्हें यहाँ से नौ दो ग्यारह करवाना चाहती हूँ।

काम आपकी सहायता से बड़ी आसानी से हो जायगा। आप कल राज-सभा में जाकर पुकार कीजिये, कि महाराज ! आपके छोटे भाई साहब बहुत ही अत्याचारी, अनाचारी और व्यभिचारी हो गये हैं। वे बहुत दिनों से मेरी पुत्रबधू को अपनी प्रणयिनी बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने उसके फँसाने के लिये बड़े-बड़े जाल फैलाये, पर मेरी सती-सावित्रीसी पुत्र-बधू उनके जाल में न फँसी ; इसी से मेरी इज्ज़त-आबरू अबतक बची हुई है। आप यदि न सुनेंगे, तो मैं आपका राज्य छोड़ कर किसी और राजा के राज्य में चला जाऊँगा।"

नगरसेठ रानी की बातों पर राज़ी हो गया। दूसरे ही दिन जबकि महाराज की सभा लगी हुई थी, हाली मुहाली, कामदार, मुसाहिब, मन्त्री, सेनापति प्रभृति सब बैठे हुए थे ; नगरसेठ दरवाज़े से ही कानों के पर्दे फाड़नेवाला "फरियाद है" "फरियाद है" का शोर मचाता हुआ राज-सभा में पहुँचा। महाराज ने उसे सामने बुलाकर उस की फरियाद सुनी। उसने रानी की सिखाई हुई सारी बातें ज्यों-की-त्यों महाराज को कह सुनाईं। महाराज के दिलमें रानी ने पहले ही ये बातें बैठा दी थीं। अब सेठ की शिकायत से उन्हें कोई सन्देह न रह गया। रानी की कही हुई सारी बातें उन के नेत्रों के सामने नाचने लगीं। उनका चेहरा क्रोध के मारे लाल हो गया।

राजकुमार उस वक्त सभा में ही बैठे थे। वे इस बात को सुनकर, मन में समझ गये, कि यह षड्यन्त्र पिंगला का रचा

हुआ है। उन्होंने सेठ से कहा—"सेठ जी! भगवान् का भय करो, मनुष्य से मत डरो। इस बुढ़ापे में स्वार्थ के लिये झूठ बोल कर क्यों पाप की गठरी बाँधते हो? परमात्मा सब देखता है। उसकी नज़रों से कुछ भी नहीं छिपा है। मैं तुम्हारी पुत्रवधू को जानता भी नहीं। मैं नहीं जानता, वह काली है या गोरी, भली है या बुरी, मेरी तो वह माता के समान है। मैं पर-स्त्रियों को अपनी जननी के समान समझता हूँ। जिस में आप का पुत्र तो मेरा मित्र है। मित्र की स्त्री तो सच्ची माता ही होती है। कहा है:—

राजपत्नी गुरोःपत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पञ्चैता मातरःस्मृताः॥

"राजा की स्त्री, गुरु की स्त्री, मित्र की स्त्री, स्त्री की माता और अपनी माँ—ये पाँच माता कहलाती हैं। इस के सिवा, मैं अपनी विवाहिता स्त्रीको छोड़ कर, जगत् की सभी नारियों को माता समझता हूँ; क्योंकि जो पराई स्त्रियों को माता के समान नहीं मानता, वह महा मूर्ख है। उस के पाप का प्रायश्चित नहीं। पर स्त्री-गामी को नरकों की असह्य यंत्रणा सहनी पड़ती है। शास्त्रों में कहा है:—

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यतिः॥

"पर स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान समझता है, वही देखता है और तो अन्धे या अज्ञानी हैं।

"आप धर्म से डरिये; धर्म के सिवा कोई सच्चा साथी नहीं है। और सब जीते-जी के साथी हैं, मरने पर कोई साथ न देगा। आप मुझ पर वृथा दोषारोपण करके यदि अपना मतलब बना लोगे, तो क्या होगा? पार्थिव धन-वैभव आपके साथ न जायँग। धन-वैभव का क्या ठिकाना? आज है, कल नष्ट हो जाय। कहा है:—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शास्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

शरीर अनित्य है, ऐश्वर्य अनित्य है, मृत्यु सदैव पास है, इसलिये धर्म करो।

और भी कहा है—

चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एकोहि निश्चलः॥

"इस चराचर जगत् में धन-प्राण सभी चलायमान हैं; केवल धर्म ही निश्चल है। अतः सेठजी! धर्म को न छोड़ो। धर्म से डर कर, आप अपनी बात को वापिस लीजिये। आप किसी के बहकाने से मुझ पर मिथ्या दोष लगा रहे हैं। जब इस बात की जाँच की जायगी, तब सारा भण्डा फूट जायगा—आपका जाल खुल जायगा। उस समय आपकी क्या दशा होगी, जानते हो?

राजकुमार की ये बात सुनते ही महाराज भर्तृहरि लाल-पीली आँखें करके बोले—"अरे कुलाङ्गार! नीच! अधम! पापी! तू मेरे सामने ज़ियादा बात न बना। मैं तेरे सब हालों को जानता हूँ। अब तेरी चालाकी और मक्कारी न चलेगी। यदि अपनी जीवन-रक्षा चाहता है; तो इसी क्षण मेरे नगर से निकल जा! शीघ्र काला मुँह कर! मैं तेरा यह काला मुँह देखना पसन्द नहीं करता! शीघ्र ही मेरी नज़र के सामने से हट जा, नहीं तो तुझे अभी शूली पर चढ़वा दूँगा! राजा पिता है; प्रजा पुत्र के समान है। राजा ही यदि ऐसा अन्याय करे, तो प्रजा किस के पास जाय? मैं प्रजा के सुख से सुखी और प्रजा के दुःख में दुःखी रहता हूँ। दूर हो मेरे सामने से! दूर हो!!"

भाई की यह बातें सुन कर राजकुमार विक्रम ने कहा—"भाई! मैं तो अभी—इसी क्षण चला जाऊँगा; आप के राज में जल भी न पीऊँगा। पर आप क्रोधान्ध होकर कर क्या रहे हैं! आप को कम-से-कम इस मुक़दमे की जाँच तो करनी थी। इस तरह इकतरफा फ़ैसला देना, किसी भी राजा या विचारक को शोभा नहीं देता। अगर आप इसी तरह न्याय करेंगे, तो आप की प्राणप्यारी प्रजा का नाश हो जायगा, वह आपसे दुःखी होकर और राज्यों में जा बसेगी। आप जिस के हाथ की कठ-पुतली बन रहे हैं, वह आप के साथ छल कर रही है। उस के सुख में मैं ही एक काँटा हूँ; इसलिये वह मुझे निकलवाने की ग़रज़ से ही ये जाल रच रही है। ख़ैर, मैं तो जाता हूँ; पर

देवता ब्राह्मण की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसे "अमरफल" प्रदान कर रहे हैं।

पृष्ठ २६

आप के अनिष्ट की आशङ्का अब भी मेरे हृदय में खलबली मचाती है। आप को एक दिन पछताना होगा। आप का हृदय मुझे याद करके रोयेगा। परमात्मा आपका मङ्गल करे, आप की आँख भी मैली न हो।" यह कह कर राजकुमार फौरन सभा-भवन से निकल बन को चले गये। महाराज सिर पर हाथ धर कर कुछ सोच में पड़ गये। इस के बाद कई वर्ष निकल गये। कोई नई घटना न घटी।

नगरी का एक दरिद्र ब्राह्मण, अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये वन में जाकर, किसी देवता की घोर तपस्या करता था। उसे तप करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। तपः कष्ट से जब उसका शरीर एकदम कृश हो गया; तब देवता का आसन हिला। उस ने ब्राह्मण के सामने सशरीर आकर उस से कहा—"ब्राह्मण! मैं तेरी तपस्या से अतीव सन्तुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुझे यह "फल" देता हूँ। यह फल मामूली फल नहीं है। इस का नाम "अमरफल" है। इस के खाने वाले पर मौत का ज़ोर नहीं चलता। मृत्यु उस का बाल भी बाँका नहीं कर सकती। तू इसे खाकर पृथ्वी पर अमर रह और सुख-पूर्वक अपनी ज़िन्दगी बसर कर!" यह कह कर और फल देकर देवता अन्तर्द्धान हो गया।

ब्राह्मण उस "अमरफल" को लेकर अपने घर आया और अपनी स्त्री को उस फल का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणी उस फल की बात सुन कर सन्तुष्ट नहीं, वरन् असन्तुष्ट हुई। उस ने कहा—"नाथ! देवता ने आपको 'अमर फल' दिया

है; पर इस से अपना कष्ट घटने के बजाय उल्टा बढ़ेगा। अगर वह धन देते तो हमारा भला होता। हम लोग जन्म से दरिद्र हैं। हमारे घर में प्रत्येक वस्तु का अभाव है। आज-कल धन-बिना सुख कहाँ? धन-बिना समाज में प्रतिष्ठा कहाँ? जिस के पास धन है, वही सुखी है। निर्धन को इस जगत् में सुख नहीं। दरिद्री से भाई-बन्धु लजाते हैं; उसे अपना कहने में भी उन्हें शर्म आती है; इसलिये वे लोग अपना रिश्ता या सम्बन्ध तक छिपाते हैं। दरिद्र विपत्तियों का घर है। यह मरण का दूसरा पर्य्याय है। नाथ! दरिद्र देह-धारियों को परम दुःख और अपमान है। दरिद्री को नाते-रिश्तेदार मरा हुआ ही समझते हैं। शौच से शेष रही मिट्टी की क़ीमत है, पर दरिद्री की क़ीमत नहीं; निर्धन उस मिट्टी से भी निकम्मा है। हम लोग दरिद्रता के मारे यों ही इस ज़िन्दगी से आरी आ रहे हैं; अब तो अपना कष्ट और भी बढ़ जायगा। अब तक यह आशा तो थी, कि कभी मृत्यु आकर हमारे कष्टों का अन्त कर देगी; पर जब यह फल खा लिया जायगा, तब तो अनन्त काल तक महादारिद्रय-कष्ट भोगना पड़ेगा। सारी ज़िन्दगी, जिस का ओर-छोर नहीं, दरिद्रावस्था में ही व्यतीत करनी पड़ेगी। यह फल तो उन के लिये अच्छा है, जिन्हें परमात्मा ने धन-रत्न-राजपाट प्रभृति सभी संसारी सुख दिये हैं। आप यदि मेरी सलाह मानें, तो इसे महाराजा भर्तृहरि को दीजिये और उन से बदले में धन लेकर सुख से शेष जीवन व्यतीत कीजिये।"

वैराग्यशतक

तपस्वी ब्राह्मण महाराजाधिराज भर्तृहरि को "अमरफल" दे रहा है। पृष्ठ २८

महाराजाधिराज भर्तृहरि "अमरफल" जैसे अलभ्य फलको, आप न खाकर, अपनी प्यारी रानी पिंगला को देते हैं। पृष्ठ ३०

बहुत कुछ तर्क-वितर्क और सोच-विचार के बाद ब्राह्मण-देवता भी इसी बात पर जम गये। उन्हें ब्राह्मणी की बात ही सोलह आने ठीक जची। इसलिये वह कपड़े पहन, फल हाथ में ले, महाराज की सभा में पहुँचे। चोबदार ने ख़बर दी। महाराज ने उस ब्राह्मण को अपने निकट बुला लिया और पूछा—"देवता! क्या चाहते हो? आज्ञा कीजिये; इसी क्षण आपकी आज्ञा पालन की जायगी।" ब्राह्मण ने उस अमर-फल की सारी कहानी सुनाकर, वह फल राजा के हाथ में दे दिया। राजा ने भी उसे ख़ुशी से ले लिया और ब्राह्मण को कई लक्ष सुवर्ण मुद्रा देने का हुक्म दिया। ब्राह्मण अशरफियाँ लेकर हँसता-हँसता अपने घर आया।

अब महाराज मन-ही-मन विचार करने लगे—"वास्तव में यह फल परमात्मा ने ही दया करके मेरे पास भिजवाया है। पर अब यह समझ में नहीं आता, कि इस फल को मैं खाऊँ या अपनी प्राणप्रतिमा, प्राणाधिका, प्राणप्रदा रानी पिंगला को खिलाऊँ। अगर मैं इसे खाऊँगा, तो सदा अमर रहूँगा; मेरा रूप-यौवन सदा स्थिर रहेगा; दुःखदायी बुढ़ापा पास न आवेगा; पर मेरी प्यारी पिंगला, मेरे सुखों की मूल पिंगला तो कुछ दिन बाद ही बूढ़ी हो जायगी—उसका यह रूप-लावण्य नष्ट हो जायगा। उस दशा में, मैं किसके साथ सुख उपभोग करूँगा? इसलिये मैं इसे पिंगला को ही खिलाऊँगा। वह यदि अमर रहेगी, वह यदि बूढ़ी न होगी, यदि उस की सौन्दर्य्य-प्रभा ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी; तो मैं उसी के साथ संसारी सुखों का आनन्द

उपभोग करूँगा। यह सोच और इस विचार पर दृढ़ हो, महाराजा फल को हाथ में लेकर रनवास को चल दिये।

महाराज के महल के द्वार पर पहुँचते ही दासियों ने जाकर महारानी को महाराज के आगमन की सूचना दी। पिंगला शीघ्र ही तैयार हो, उन्हें लेने के लिये द्वार तक आई और उनके गले में हाथ डाल उन्हें अन्दर लिवा ले गई। उन्हें एक परमोत्कृष्ट आसन पर बिठा आप भी उन की बग़ल में बैठ गई और अपने हाव-भाव और नाज़ोनख़रों से उनका मन अपने हाथ में करने लगी। शेष में पूछा—"महाराज! आज असमय में इस दासी पर कैसे कृपा की?" महाराज ने कहा—"प्रिये! आज एक अपूर्व फल मेरे हाथ लगा है। उसी को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।"

रानी ने कहा—"महाराज! वह फल मुझे दिखाइये और यह भी बताइये, उस में ऐसा कौनसा गुण है, कि जिस से आप उस की इतनी लम्बी-चौड़ी तारीफ़ करते हैं?"

राजा ने कहा—"रानी! यह फल जिसे आप मेरे हाथ में देख रही हैं, "अमरफल" है। इसे एक देवता ने एक ब्राह्मण को उसके तप से सन्तुष्ट होकर दिया था। ब्राह्मण ने इसे मुझे दिया। इस में यह गुण है, कि इसका खानेवाला न कभी बूढ़ा होता और न कभी मरता है; सदा नौजवान रहता है। मैं चाहता हूँ कि इस फल को तुम खाओ, जिस से तुम सदा नवयुवती बनी रहो—तुम्हारा रूप-लावण्य सदा आज-जैसा ही बना रहे।" यह कहकर राजा ने वह अमरफल रानी के हाथ में दिया।

महाराजाधिराज भर्तृहरि की परमप्यारी रानी पिंगला, महाराज का दिया हुआ "अमरफल" अपने यार दारोग़ा को दे रही है।

पृष्ठ ३१

रानी उस फल को हाथ में लेकर कहने लगी,—"नहीं, प्राण-नाथ ! आप ही इस फल को खायँ; क्योंकि आप ही मेरी माँग के सिन्दूर हैं, आप हीं से मेरा सौभाग्य है, आप ही मेरे सूर्य्य और चाँद हैं, आप ही से मुझे जगत् में उजियाला है। परमात्मा आप को सदा अजर-अमर रखे, इसी में मेरा सुख-सौभाग्य है;" रानी की ये बातें बनावटी थीं। मुँह में राम और बग़ल में छुरी वाली बात थी। उस के पेट में कपट की कतरनी चल रही थी। राजा उस के जाल में पूर्ण रूप से फँसे हुए थे, इसलिये वह उस के फरेबों को कैसे समझ सकते थे ? उन्होंने फिर कहा—"नहीं, यह फल तुमको ही खाना होगा। तुम्हारे फल खाने से ही मुझे सन्तोष होगा।" रानी तो यह चाहती ही थी, कि फल को राजा न खावे और वह मेरे हाथ में रहे; इसलिये शेष में वह राज़ी हो गई और कहने लगी—"आप की आज्ञा को मैं उल्लङ्घन नहीं कर सकती। जिस में आप राज़ी उसी में मैं राज़ी हूँ। आपके ही सन्तोष में मुझे सन्तोष है। आप का जब यही हुक्म है, तो मैं ही इस फल को खाऊँगी; पर यह देवता का दिया हुआ है, इसलिये इसे अशुद्ध अवस्था में न खाऊँगी। स्नान-ध्यान पूजा-पाठ करके खाऊँगी।" राजा उस मक्कारा की बात पर राज़ी हो गये और फल उसे देकर सभा में लौट आये।

राजा के पीठ फेरते ही, रानी ने दासी भेज कर, अपने उप-पति—अस्तबल के दारोग़ा को बुला भेजा। वह शैतान सन्देशा पाते ही दौड़ा चला आया। रानी उसे लेने को दरवाज़े पर पहुँची और उस के गले में हाथ डाल कर महल में ले आई। उसे मखमली

पलँग पर बैठा कर, आप उस की गोद में पड़ गई और उसे प्यार करने लगी।

दारोग़ा ने पूछा—"रानी साहिबा! आज यह ग़ुलाम असमय में ही क्यों याद किया गया? क्या बात है?"

रानी—प्यारे! आज महाराज ने मुझे एक फल दिया है। उस के खाने से मनुष्य अमर बना रहता है, जवानी सदा स्थिर रहती है, बुढ़ापा कभी नहीं आता। राजा साहब मुझ से उस फल के खाने को कह गये हैं। मैंने उन से वादा भी कर लिया है। पर, प्राणाधार! संसार में मुझे आप से अधिक कोई प्रिय नहीं, आप ही मेरे सुख के कारण हो, आप ही से मेरा आनन्द है; इसलिये मैं चाहती हूँ, कि आप ही उस फल को खावें।

दरोग़ा—अच्छा प्यारी! आप की आज्ञा सर-आँखों पर। मैं ही इसे खाऊँगा; पर यह देव-दत्त वस्तु है, इसलिये पवित्र होकर खानी चाहिये। मैं अभी जाकर क्षिप्रा में स्नान करूँगा और इसे खा लूँगा।

यह सुनते ही रानी ने दारोग़ा को वह फल दे दिया। वह भी फल लेकर चलता हुआ। रानी उसे द्वार तक पहुँचा आई। दारोग़ा जाते-जाते राह में सोचने लगा—"उस रण्डी को मैंने अच्छा चकमा दिया। मैं इस फल को खाऊँगा, तो क्या फ़ायदा होगा? यदि मैं इसे अपनी आशना को खिलाऊँगा, तो सच-मुच ही बड़ा लाभ होगा। मेरी प्राणप्यारी इस के खाने से सदा आज-जैसी ही रूपलावण्य-सम्पन्ना नवयुवती बनी रहेगी और

नमकहराम दारोग़ा साहब दुराचारिणी असती रानी के दिये हुए "अमरफल" को अपनी प्रणयिनी वेश्या को दे रहे हैं। पृष्ठ ३२

दारोग़ा की प्यारी वेश्या उसी "अमरफल" को लेकर महाराजा भर्तृहरि के सामने खड़ी है। यह उस फल को महाराज को देना चाहती है।

पृष्ठ संख्या ३३.

मैं सदा उस के साथ आनन्द उपभोग करूँगा।" यह सोचता हुआ वह अपनी आशना—वेश्या के मकान पर जा पहुँचा। उस समय वह वेश्या एक तकिये के सहारे बैठी हुई थी। उस के चन्द यार उस की सेवा में बैठे थे। दारोग़ा साहब को वेश्या ने आदर से सामने बिठाया और आने का कारण पूछा।

दारोग़ा ने कहा—"प्रिये! आज मुझे एक अद्भुत फल मिला है। इस को खाने वाला कभी बूढ़ा नहीं होता और मृत्यु उस का बाल भी बाँका नहीं कर सकती। मैं चाहता हूँ, इस फल को तुम खाओ। तुम्हारे सदा-सर्वदा आज-जैसी नवयुवती बनी रहने से मेरी ज़िन्दगी सुख से कटेगी।"

वेश्या ने कहा,—"अच्छा प्यारे! आप की आज्ञा को मैं टाल नहीं सकती। मैं स्नान कर के इस फल को खाऊँगी।

वेश्या की यह बात सुनते ही दारोग़ा ने वह अमर-फल उसे दे दिया और आप अपने डेरे को चला आया। उस के जाते ही वेश्या सोचने लगी—"मुझे सारी उम्र पाप कमाते बीती। न जाने इतने पापों का ही मुझे क्या-क्या दण्ड भोगना होगा? यदि मैं इस फल को खाऊँगी, तो अनन्तकाल तक इसी तरह पापों की गठरियाँ बटोरती रहूँगी; अतः मुझे यह फल खाना हरगिज़ मुनासिब नहीं। इसे तो मेरे प्यारे महाराज भर्तृहरि खायँ तो अच्छा। उन के अजर अमर रहने से मेरी आत्मा को सन्तोष होगा। ऐसे राजा के राज्य में प्रजा सदा सुखी रहेगी। हमारे महाराज आदर्श राजा हैं। ऐसे राजा बहुत कम हैं।"

यह सोच कर, वह कपड़े-लत्तों से टिचन हो, फल लेकर राज-सभा की ओर चली। सभा में पहुँचते ही चोपदार ने महाराज को ख़बर दी, कि एक बाईजी साहिबा तशरीफ लाई हैं। महाराज ने वेश्या को सामने बुलाया और उस के आने का सबब पूछा।

वेश्या ने कहा—"महाराज! आज मुझे एक अपूर्व फल मिला है। यह फल अजीब तासीर रखता है। इस के खाने वाला सदा अमर रहता है। मैं इस फल को खाऊँगी, तो सदा पाप कमाऊँगी; इसलिये यह फल आप ही के खाने-योग्य है। आप अजर-अमर रहेंगे, तो पृथ्वी सुखी रहेगी।"

वेश्या के हाथ में उस फल को देख तथा उस की बातें सुन कर महाराज के चेहरे का रंग उड़ गया। वह आश्चर्य्य-चकित हो गये। ऊपर का साँस ऊपर और नीचे का साँस नीचे रह गया। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सोच में पड़ गये। शेष में; होश-हवाश ठिकाने आने पर, उन्होंने वह फल वेश्या के हाथ से ले लिया और धोकर खा गये।

परमात्मा की इच्छा से ही, वह फल घूमघाम कर फिर राजा के पास पहुँचा। राजा ने अनुसन्धान-द्वारा सारा भेद जान लिया। उन्हें पिंगला के छल-छिद्र-युक्त कपट-व्यवहार पर बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई। उन्हें अपनी सब से अधिक प्यारी रानी के दुर्व्यवहार और विश्वासघात से बड़ा दुःख हुआ। उन के दिल पर सख़्त चोट लगी। मालूम हो गया कि स्त्रियों की

वैराग्यशतक

महाराजाधिराज भर्तृहरि को संसार से विरक्ति हो गई है। आप राज-पाट धन-दौलत प्रभृति को तृणवत परित्याग कर वन को जा रहे हैं।

पृष्ठ ३४

प्रीति में सार नहीं; स्त्री-जाति की मुहब्बत का कोई ठिकाना नहीं। उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। उन्हें संसार और विषय-भोगों से एक दम नफरत हो गई। उन्होंने समझ लिया, संसार में कोई किसी का नहीं है। यह मिथ्या जाल है। इसमें फँस कर लोग अपना दुष्प्राप्य जीवन वृथा खोते हैं। उन्होंने अपने तईं धिक्कारते हुए कहा—

"यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साप्यन्यमिच्छाति जनं सजनोऽन्यसक्तः॥
अस्मत्कृते च परितुष्याति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥"

मैं जिस को सदा चाहता हूँ, वह (मेरी रानी पिंगला) मुझे नहीं चाहती; वह दूसरे पुरुष को चाहती है! वह पुरुष (दारोग़ा) रानी को नहीं चाहता; वह दूसरी ही स्त्री पर मरता है! वह स्त्री जिसे रानी का यार दारोग़ा चाहता है, वह मुझे चाहती है! इसलिए रानी को धिक्कार है! उस दारोग़ा को धिक्कार है! उस वेश्या को धिक्कार है! मुझको धिक्कार है और उस कामदेव को धिक्कार है, जो ये सब काण्ड कराता है।

इस घटना से संसार महाराज के लिये बिल्कुल ही बुरा मालूम होने लगा। आपने प्रधान मन्त्री को सामने बुला, राज का सारा काम उसे सम्हला, अपनी राजसी पोशाक उतार कर उसे दे दी और—

"भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

"अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः ।
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवंशिवशिवोति प्रलपतः ॥"

"विषयों के भोगने में रोगों का भय है, कुल में दोष होने का भय है, धन में राज का भय है, चुप रहने में दीनता का भय है, बल में शत्रुओं का भय है, सौन्दर्य्य में बुढ़ापे का भय है, गुणों में दुष्टों का भय है, शरीर में मौत का भय है, संसार की सभी चीजों में मनुष्य को भय है, केवल "वैराग्य" में किसी प्रकार का भय नहीं है।

"हे परमात्मन्! मेरे शेष दिन किसी पवित्र वन में शिव-शिव रटते बीतें; सर्प और पुष्पहार, बलवान् शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थर की शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी स्त्रियों के समूह में मेरी दृष्टि एकसी हो जाय—यही मेरी इच्छा है।"

यह कहते हुए आपने सारा राज-पाट धन-दौलत प्रभृति एक क्षण में त्याग कर वन का रास्ता लिया। चलते समय

उन्होंने मन्त्री से और भी कहा,—"मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी सहोदर भाई विक्रम के साथ बड़ा अन्याय किया! उस समय मेरी अक्ल पर पर्दा पड़ा हुआ था। मुझे उचित-अनुचितका ज़रा भी ज्ञान नहीं था। उस कुलटा ने मुझ पर जादू-सा कर दिया था। मैं अब संसार के लोगों को सलाह देता हूँ कि, वे अगर सुख से जीवन बिताना चाहें, तो स्त्रियों का विश्वास न करें और जो परमपद के अभिलाषी हों, वे तो उन का नाम भी न लें। मन्त्रीवर! आप विक्रम का पता लगाना। यदि वह मिल जाय, तो उसे राजगद्दी पर बिठा देना।"

यदि महाराज भर्तृहरि चाहते, तो रानी पिंगला को जीती ही ज़मीन में गड़वा देते, उस दारोग़ा को तोप के मुँह से बँधवा कर उड़वा देते तथा और शादी कर लेते; पर आपको तो निर्मल ज्ञान हो गया था, आप संसार की असलियत को समझ गये थे, इसी से आपको संसार से घृणा हो गई। आपने उप-भोग, वस्त्र, चन्दन, वनिता, रत्न और राज-पाट सब को तृण के समान समझ कर एक क्षण में त्याग दिया। ऐसा सब किसी से नहीं हो सकता। ऐसा उन से ही होता है, जिन पर जगदीश की दया होती है या पूर्व्व-सञ्चित पुण्यों का उदय होता है। मनुष्य से फूटे-टूटे हाँडी-बर्तन और गुदड़े ही नहीं छोड़े जाते, कोरी इच्छाओं का भी त्याग नहीं होता, तब राजपाट और धन-दौलत का छोड़ना तो बड़ी बात है।

महाराजा भर्तृहरि भूपालों में आदर्श भूपाल होगये हैं। उन्होंने जो किया है वह शायद ही कोई भूपाल उनके बाद कर सका हो। जब तक सूर्य्य-चन्द्रमा रहेंगे, जब तक यह दुनिया रहेगी, तब तक महाराज का प्रातःस्मरणीय पुण्यश्लोक नाम लोगों की ज़बान पर रहेगा।

हमने महाराजा भर्तृहरि और महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह एक थियेट्रिकेल कम्पनी के तमाशे और एक पुरानी पुस्तक के आधार पर लिखा है, जो हमने कोई ३५ साल पहले, एक पल्टन की लाइब्रेरी में अँग्रेजी और हिन्दी में देखी थी। हमें जो याद था वही लिखा है। इस समय न तो हमारे पास वह पुस्तक ही है और न हमें उसका नाम ही याद है। हम नहीं कह सकते, यह कहानी या कथानक कहाँ तक सत्य है। हमने जो कुछ लिखा है वही लोक में प्रसिद्ध भी है।
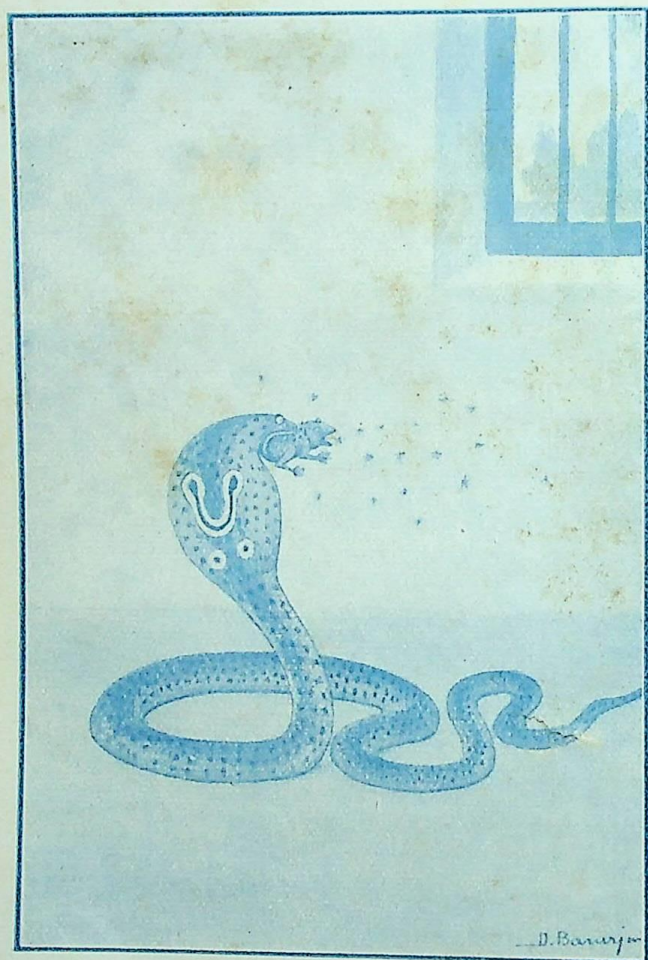
साँप के मुख में मेंढक है, मौत में कसर नहीं है ; तथापि मेंढक मच्छरों को खाना चाहता है : बस यही हालत संसारी मोहान्धों की है। वे हर क्षण मौत के मुख में रहते हुए भी, मेंढक की तरह विषयों को भोगने की चेष्टा करते हैं। पृष्ठ १

* श्रीः *

भर्तृहरिकृत
वैराग्य शतक।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

जो दशों दिशाओं और तीनों कालों में परिपूर्ण है, जो अनन्त है, जो चैतन्य-स्वरूप है, जो अपने ही अनुभव से जाना जा सकता है, जो शान्त और तेजोमय है, ऐसे ब्रह्म रूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो परमेश्वर पूरब-पच्छम प्रभृति दशों दिशाओं एवं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल,—इनमें संकुचित नहीं है; यानी जो सब दिशाओं और तीनों कालों में मौजूद रहता है; किसी दिशा और किसी काल की क़ैद में नहीं है, जो तीनों लोक

और चौदहों भुवनों में व्याप रहा है, जो पहले भी था, अब भी है और आगे आनेवाले समय में भी रहेगा, इसलिये वह अनन्त है, उसका विनाश नहीं है, वह चैतन्य स्वरूप है, वह केवल अपने ही अनुभव से जाना जा सकता है, वह परम शान्त और तेजोरूप है, उसी की मैं वन्दना करता हूँ।

1. To One unlimited by time or space, to the Boundless, to Him who is all consciousness, to one who is know-able only by self-contemplation and to the Supreme Peace and Light I bow down in prayer.

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥२॥

जो विद्वान् हैं, वे ईर्षा से भरे हुए हैं; जो धनवान् हैं, उनको अपने धन का गर्व है; इसके सिवा जो और लोग हैं, वे अज्ञानी हैं; इसलिये विद्वत्तापूर्ण विचार, सुन्दर-सुन्दर सारगर्भित निबन्ध या उत्तम काव्य शरीर में ही नाश हो जाते हैं ॥२॥

खुलासा ।

जो विद्वान् हैं, पण्डित हैं, जिन्हें अच्छे बुरे का ज्ञान या तमीज़ है, वे तो अपनी विद्वत्ता के अभिमान से मतवाले हो रहे हैं, वे दूसरों के उत्तम-से-उत्तम कामों में छिद्रान्वेषण करते या नुक़ताचीनी करने में ही अपना पाण्डित्य समझते हैं; अतः ऐसों से कुछ कहने में लाभ की ज़रा भी सम्भावना नहीं।

दूसरे प्रकार के लोग जो धनी हैं, वे अपने धन के गर्व से भूले हुए हैं। उन्हें धन-मद के कारण कुछ सूझता ही नहीं, उन्हें किसी से बातें करना या किसी की सुनना ही पसन्द नहीं; अतः उनसे भी कुछ लाभ नहीं। अब रहे तीसरे प्रकार के लोग; वे नितान्त मूर्ख या अज्ञानी हैं; उन गँवारों में अच्छे-बुरे की तमीज़ नहीं, अतः उनसे कुछ कहने या अपनी कृति दिखाने-सुनाने को दिल नहीं चाहता; इसलिये हमारे मुँह से निकल सकने वाले उत्तमोत्तम विचार, निबन्ध, काव्य या सुभाषित संसार के सामने न आकर, हमारे शरीर में ही नष्ट हुए जाते हैं, हमारा परिश्रम व्यर्थ जाता है और संसार हमारे कामों के देखने और लाभान्वित होने से वञ्चित रहता है !

और भी स्पष्ट।

संसार में घमण्डियों की संख्या बहुत है। कितने ही अपनी विद्या के गर्व से चूर हो रहे हैं और कितने ही लक्ष्मी के नशे से मतवाले हो रहे हैं। यदि कोई विद्वान् या कारीगर विद्या-गर्वियों के पास जाता है, तो, अव्वल तो वे धुरन्धर विद्वान् बेचारे को पास ही नहीं फटकने देते और यदि कोई श्रीचरणों में पहुँच गया, तो वे उसके काम के उत्तम अंशों पर ध्यान न देकर, बुरे अंशों को देखते हैं और उसमें तरह-तरह के दोष निकाल कर उसके दिल को चोट पहुँचाते हैं; इसलिये ऐसे विद्या-गर्वियों के पास जाना और अपने काम की क़दरदानी

की आशा करना भूल है। अब रहे धन-गर्वी; धन से मतवालों की तो बात ही न पूछिये। प्रथम तो उन तक पहुँचना ही कठिन काम है। यदि पहुँच भी गये, तो उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। सैकड़ों बार उनकी देहल की धूल चाटने पर, कदाचित् ही कभी नम्बर आवे-तो-आवे। फिर; वहाँ पराई बुराई करने वालों या चुग़लख़ोरों की तूती बोलती है, अतः वहाँ भी सफलता नहीं होती। इन दोनों प्रकार के लोगों के सिवा, जो तीसरे प्रकार के लोग हैं, वे तो निरे मूर्ख—अज्ञानी या कोरे बाबाजी हैं। उनको किसी प्रकार का ज्ञान ही नहीं, वे सुभाषित और कुभाषित, सुशिक्षा और कुशिक्षा, काव्य और अलङ्कार को समझते ही नहीं। ऐसी दशा में, क़दरदान या गुणग्राहक के अभाव से, ख़ामुख़ाह मन में विरक्ति या वेदना होती है। मन दुःखी होकर कहता है—"हाय! रसिक और समझदारों के दिल साफ़ नहीं हैं, उनके चित्त मत्सरता से कलुषित हो रहे हैं! धनवानों को धन के नशे के मारे कुछ सूझता ही नहीं, वे किसी से बात ही नहीं करते। अज्ञानियों की समझ में कुछ आ नहीं सकता। अब हम अपना पाण्डित्य या कारीगरी किसे दिखावें ?

शिक्षा—जो तुम्हारी तरफ मुख़ातिब हों, तुम्हारी बातों पर कान दें, तुम्हारी बातों को ध्यान से सुनें, उन्हीं को अपनी बातें सुनाओ। जो तुम्हारी बातें सुनना न चाहें, उनके गले मत पड़ो। ऐसा करने से आपकी आत्मप्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा—आपका अपमान होगा!

कुण्डलिया ।

परिडत मत्सरता भरे, भूप भरे अभिमान ।
और जीव या जगत के, मूरख महाअजान ॥
मूरख महा अजान, देखके संकट सहिये ।
छन्द प्रबन्ध कवित्त, काव्यरस कासों कहिये ॥
वृद्धा भई मनमाँहि, मधुर वाणी गुणमण्डित ।
अपने मनको मार, मौन धर बैठत पण्डित ॥२॥

2. The learned are full of jealousy; the wealthy are intoxicated with vanity; while others are in the hold of ignorance. Hence there is no other resource for one's literary talents, save that of their being suffocated within one's own self.

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं ।
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया ।
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥३॥

मुझे संसारी कामों में ज़रा भी सुख नहीं दीखता । मेरी राय में तो पुण्यफल भी भयदायक ही हैं । इसके सिवा, बहुत से अच्छे-अच्छे पुण्यकर्म करने से जो विषय-सुख के सामान प्राप्त

किये और चिरकाल तक भोगे गये हैं, वे भी विषय-सुख चाहने वालों को, अन्त समय में, दुःखों के ही कारण होते हैं ॥३॥

खुलासा ।

इस जीवन में सुख का लेश भी नहीं है। जिनके पास अक्षय लक्ष्मी, धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, मोटर, नौकर-चाकर, रथ-पालकी प्रभृति सभी सुख के सामान मौजूद हैं, राजा भी जिनकी बात को टाल नहीं सकता, जिनके इशारों से ही लोगों का भला या बुरा हो सकता है, ऐसे सर्व-सुख-सम्पन्न लोग भी, चाहे ऊपर से सुखी दीखते हों, पर वास्तव में सुखी नहीं हैं; भीतर-ही-भीतर उन्हें भी घुन खाये जाता है; किसी न किसी दुःख से वे जर्ज्जरित हुए जाते हैं। इस मौक़े की दो कहानियाँ हमें याद आई हैं। हम उन्हें दृष्टान्त के तौर पर यहाँ लिखते हैं:—

एक महात्मा अपने शिष्य के साथ किसी नगर में गये। वहाँ उन्होंने देखा कि, एक साहूकार इन्द्रभवन-जैसे मकान में बैठा है, सैकड़ों सेवक आज्ञा पालन को तैयार खड़े हैं, जोड़ी-गाड़ी द्वारपर खड़ी है, हाथी झूम रहे हैं, सामने सोने चाँदी और हीरे पन्नों के ढेर लग रहे हैं। महात्मा को देख कर सेठ ने अपने एक कर्मचारी को उनको भोजन कराने की आज्ञा दी। जब गुरु चेले भोजन करने बैठे, तब चेला बोला—"गुरुजी! आप कहते थे, संसार में कोई भी सुखी नहीं है। देखिये,

यह सेठ कैसा सुखी है ! इसे किस बात का अभाव है ? लक्ष्मी इसकी दासी हो रही है।" गुरु ने कहा—"ज़रा सब्र करो। हम पता लगा कर कुछ कह सकेंगे।" महात्मा ने जब भोजन कर लिया, तब सेठ से कहा—"सेठजी ! परमात्मा ने आपको सभी सुख दिये हैं।" सेठ ने रोकर कहा—"महाराज ! मेरे समान इस जगत् में कोई दुःखी नहीं है। मुझे परमात्मा ने धनैश्वर्य सब कुछ दिया है, पर पुत्र एक भी नहीं। पुत्र बिना, ये सुख बिना नमक के पदार्थ की तरह अलौने और बेस्वाद हैं। मेरा दिल रात-दिन जला करता है, कभी मुझे सुख की नींद नहीं आती। मैं इसी सोच में जला जाता हूँ कि, पुत्र बिना इस सम्पत्ति को कौन भोगेगा ?" सेठ की बातें सुन कर चेले ने कहा—"हाँ गुरुजी, आपकी बात राई-रत्ती सच है। संसार में कोई भी सुखी नहीं। कोई किसी दुःख-से-दुःखी है तो कोई किसी दुःख से।

और भीः—

किसी नगर में एक साहूकार था। उसके यहाँ धन-दौलत की कमी न थी। उसका धन-भण्डार कुबेर के समान अक्षय था। जिसके पास अतुल धन है, उसे किस पदार्थ का अभाव है ? वह साहूकार सब तरह से इन्द्र के समान स्वर्ग-सुख भोग रहा था। इसी बीच में, दैवयोग, से उसकी स्त्री बीमार हो गयी। हर तरह की उत्तम चिकित्सा होने पर भी, उसके बचने की आशा न रही। सेठ रोने लगा। स्त्री ने कहा—"आप क्यों

रोते हैं ? आप धनी हैं, आपके सैकड़ों विवाह हो सकते हैं। मेरे मरते ही आपकी दूसरी शादी फ़ौरन हो जायगी। दुःख मुझे है कि, मैंने जगत् में आकर कुछ भी सुख न देखा।" सेठ ने कहा—"अगर तुम मर गयीं, तो मैं हरगिज़ दूसरी शादी न करूँगा।" सेठानी ने कहा—"क्यों बातें बनाते हो ? मेरे चल बसते ही, आप ये सब बातें भूल जायँगे !" सेठ ने जोश में आकर मोह से अपनी लिंगेन्द्रिय काट कर फैंक दी। दैवयोग से सेठानी उसी समय से चङ्गी होने लगी और चन्द रोज़ में हृष्ट-पुष्ट हो गयी। शरीर सुखी होने पर उसे पुरुष की दरकार होने लगी। सेठ को निकम्मा देख कर, उसने नौकर चाकरों से कुकर्म करना आरम्भ कर दिया। सेठ यह हाल देख कर दिन-रात कुढ़ने और जलने लगा। इसी बीच में एक दिन गुरु नानक, भाई मरदान के साथ, उस नगरी में पहुँचे। भाई मरदान ने उस सेठ का सुखैश्वर्य देख कर कहा—"गुरुजी ! आप कहा करते हैं कि, इस जगत् में सुखी कोई भी नहीं है। कहिये इस सेठ को क्या दुःख है ?" गुरु नानक ने कहा—"मरदान ! यह सेठ ऊपर से सुखी दीखता है, पर भीतर से किसी न किसी दुःख से अवश्य दुःखी होगा। चलो, हम इससे पुछवा देते हैं।" गुरुजी ने सेठ से बात-चीत की, तो सेठने कहा—"महाराज ! सचमुच ही मुझे कोई दुःख न था; पर अब इस दुःख से जल-जल कर ख़ाक हुआ जाता हूँ।" यह सुन गुरुजी ने कहा—"मरदान। इस गृहस्थाश्रम में कोई भी सुखी नहीं।"

संसारी लोग धनवानों को सुखी समझते हैं, पर धन अनर्थों का मूल है। धन बड़े-बड़े अनर्थों से जमा होता है और जमा होने पर भी दुःखों का ही कारण होता है। इसके कमाने में कष्ट और इसके रखने में कष्ट। मतलब यह कि, इसमें सब तरह दुःख-ही-दुःख हैं। धन-लोभ से चोर मार डालते हैं। अगर मार भी नहीं डालते, तो धन हर ले जाते हैं, तब धनी को महा कष्ट होता है। धनी के पुत्र-पौत्र या अन्य रिश्तेदार धनी की मरण-कामना करते रहते हैं। धनी को हज़ारों तरह की चिन्तायें घेरे रहती हैं। फलाँ आदमी में रक़म डूब जायगी; अमुक दिसावर में घाटा होने का भय है इत्यादि चिन्ताओं में वह जला करता है।

अनेक लोग राजाओं को सुखी समझते हैं; पर राजाओं को ज़रा भी सुख नहीं। राज्य महा अनर्थों का कारण है। राजा को सदा यह भय लगा रहता है कि, कहीं ग़नीम चढ़ न आवे। चोरों का भय रहता है कि, कहीं वे राजलक्ष्मी को हर न ले जावें। अपने सगे-सम्बन्धियों का भय लगा रहता है कि, वे कहीं राज्य-लोभ से धोखे में मार न डालें। क्योंकि अनेक पुत्रों या भाइयों ने राज्य-लोभ से राजा-बादशाहों को मार डाला है। दुर्योधन ने राज्य हड़पने के लिये भीम को विष दिया था; पाँचों पाण्डवों को लाक्षा भवन में जीते ही जलाना चाहा था; कैकेयी ने अपने पुत्र को राज्य दिलाने की ग़रज़ से रामचन्द्रजी को वनवास की आज्ञा दी थी। राज्य के लिये ही सुग्रीव ने बालि को मरवा डाला था। राज्य के लिये ही

कंस ने अपनी सगी बहन देवकी के नवजात पुत्रों की हत्या करवा डाली थी। औरङ्गज़ेब ने अपने भाइयों को जान से मरवा डाला और पूज्यपाद पिता को क़ैद कर दिया। इससे स्पष्ट है कि राजा को भी सुख नहीं। राजा लोग भय के मारे कभी एक पलँग पर नहीं सोते। मख़मली पलँग होने पर भी उन्हें सुख की नींद नहीं आती।

जिसके अतुल धन-सम्पत्ति है, वह स्त्री के व्यभिचारिणी होने या पुत्र के अभाव अथवा पुत्र के सुपुत्र न होने से दुःखी है। जो राजराजेश्वर है, वह राज्य के सदा बने रहने की चिन्ता से दुःखी है। जिसके स्त्री-पुत्र प्रभृति हैं, वह उनके मरण हो जाने या वियोग से दुःखी है। कोई जवानी के चले जाने और बुढ़ापे के आ जाने से दुःखी है। कोई मौत का ख़याल करके दुःखी है। सारांश यह कि, संसार में कोई भी सुखी नहीं। इस जीवन में सुख का नाम भी नहीं।

संसारी सुख अनित्य हैं।

सांसारिक सुख-भोग असार, अनित्य और नाशमान् हैं। ये सदा स्थिर रहने वाले नहीं; आज जो लक्ष्मी का लाल है, वह कल दर-दर का भिखारी देखा जाता है; जो आज जवान-पट्ठा है, मिर्ज़ा अकड़बेग की तरह अकड़ता हुआ चलता है, वह कल बुढ़ापे के मारे लकड़ी टेक-टेक कर चलता है। जिसे पहले सब लोग ख़ूबसूरत कहते थे और मुहब्बत से पास बिठाते

थे, अब उसके पास खड़ा होना भी नहीं चाहते। मतलब यह है कि, यौवन, जीवन, मन, धन, शरीर-छाया और प्रभुता ये सब अनित्य और चंचल हैं; अतः दुःख के कारण हैं। काया में मरण, लाभ में हानि, जीत में हार, सुन्दरता में असुन्दरता, भोग में रोग, संयोग में वियोग और सुख में दुःख—ये सब दुःख के कारण हैं। अगर बिना मृत्यु का जीवन, बिना रंज की खुशी, बिना बुढ़ापे की जवानी, बिना दुःख का सुख, बिना वियोग का संयोग और सदा-सर्वदा रहने वाला धन होता, तो मनुष्य को इस जीवन में अवश्य सुख होता।

विषय-भोगों में सुख नहीं है। ये असार हैं; केले के पत्ते या प्याज़ के छिलकों की तरह सारहीन हैं। फिर भी; मोहवश मनुष्य विषयों में फँसा रहता है। पर एक-न-एक दिन मनुष्य को इन विषय-भोगों से अलग होना ही पड़ता है। अलग होने के समय विषय-भोगी को बड़ा दुःख होता है। इससे विषय, परिणाम में, दुःखदायी ही हैं।

इसके सिवा, तरह-तरह के पुण्य संचय करने, यज्ञ-याग आदि करने अथवा दान करने से मनुष्य को स्वर्ग मिलता है। वहाँ वह अमृत पीता और अप्सराओं को भोगता है, कल्प-वृक्ष से मनवाञ्छित पदार्थ पाता है, पर पुण्य-कर्मों के नाश हो जाने या उनके फल भोग चुकने पर, वह स्वर्ग से नीचे गिरा दिया जाता है; उसे फिर इसी मृत्यु लोक में आना होता है। उस समय वह स्वर्ग-सुखों की याद कर-करके मन-ही-मन

रोता और दुःखी होता है। इसी से मुझे वे पुण्य-फल भी भय
वह मालूम होते हैं। परिणाम में, वे भी दुःखों के ही कारण
होते हैं। तात्पर्य यह कि, संसार मिथ्या और सारहीन है। इस
सुख-भोग अनित्य, चंचल और सदा न रहने वाले हैं। इसी
दुःख के कारण हैं। मृत्युलोक और स्वर्गलोक में कहीं भी प्राणि
को सुख नहीं है।

शिक्षा—अगर मनुष्य दुःखों से दूर रहना चाहे, सदा सुख भोग
चाहे, तो उसे अनित्य और नाशमान् पदार्थों से अलग रहना चाहिये
उनमें मोह न रखना चाहिये। स्त्री, पुत्र, धन, यौवन और स्वामित्व प्रभृ
अनित्य हैं। ये आज हैं और सम्भव है कि, कल न रहें। स्त्री-पुत्र प्रभृ
नातेदार हमारे सदा के संगी नहीं। आज ये और हम सराय के मुसाफि
की तरह मिल गये हैं, पर उम्मीद नहीं कि, फिर कभी मिलें। आज इ
संयोग हुआ है, तो कल इनसे वियोग अवश्य होगा। ये तो क्या—
काया को हम सबसे ज़ियादा चाहते हैं, मलते हैं, धोते हैं, सजाते हैं, वह
तो एक दिन हमसे अलग हो जायगी। एक क्षण में जीव का जन्म ह
है, दूसरे क्षण ही नाश हो जाता है। जो अज्ञानी ऐसे नाशमान् पदार्थों
राग करते हैं, उन्हें दुःखों के गहरे खड्डे में गिरना ही होता है। इसी
बुद्धिमान्को, लोक-परलोककी असारता और संयोग-वियोग का विचार क
अनित्य पदार्थों से प्रेम न करना चाहिये। उसे सदा नित्य अविन
आत्मा या परमात्मा से प्रेम करना चाहिये। शरीर नाश हो जाते
स्त्री-पुत्र धन आदि नाश हो जाते हैं, पर परमात्मा का कभी, किसी काल
भी, नाश नहीं होता। यह जगत् मिथ्या, नाशमान्, जड़ और दुःखम
पर यह आत्मा—ब्रह्म—चेतन, नित्य और सुखमय है। इस देह
देवमन्दिर में आत्मा ही देवता है। यही आत्मा संसार के सभी प्राणि
में वर्त्तमान है। इसी आत्मा का चिन्तन करो, तो सदा सच्चा सुख
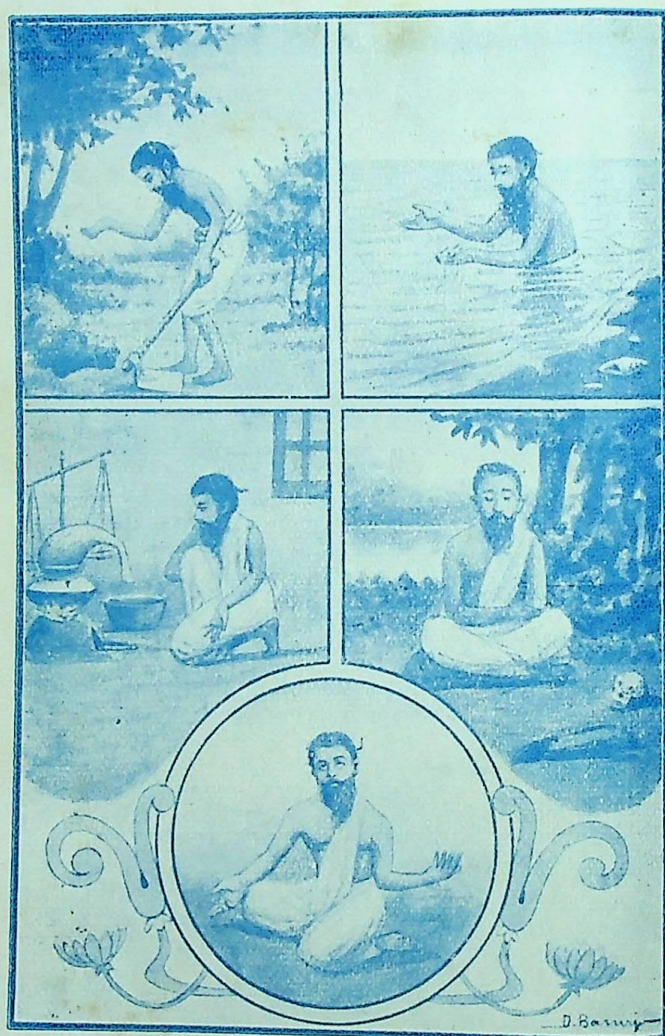
धन के लिये मैंने अनेक उपाय किये, ज़मीन खोदी, समुद्र में ग़ोते लगाये, धातुएँ फूँकीं, रात-रात भर श्मशान में मन्त्र जपे,—पर हाय ! मुझे एक कानी कौड़ी भी न मिली। पृष्ठ १३

करोगे; पर आत्मचिन्तन करना सहज काम नहीं है। इसके लिये मन को वशमें करना होगा, उसे विषयों से हटाना होगा, उसे वृत्तियों से अलगकर एकाग्र करना होगा। जब चित्त एकाग्र होगा, तभी सफलता हो सकेगी।

3. I do not see a good end of the deeds done in this world, and when I consider deeply even acts of benevolence which might have lost their usefulness after they have given the results, fill me with fear. The objects of pleasure which have been acquired by the accomplishment of meritorious deeds and after long sustained efforts, do only give anxiety and torture to the pleasure-seeking mortals, when they have to part with them in the flag-end.

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ॥
मंत्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्रासःकाणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुंचमाम् ॥४

धन मिलने की उम्मीद से, मैंने ज़मीन के पैंदे तक खोद डाले; अनेक प्रकार की पार्वतीय धातुएँ फूँक डालीं; मोतियों के लिये समुद्र की भी थाह ले आया; राजाओं को राज़ी रखने में भी कोई बात उठा न रखी; मन्त्रासिद्धि के लिये रात-रात भर श्मशान में एकाग्र चित्त से बैठा हुआ जप करता रहा; पर अफ़सोस की बात है, कि इतनी आफ़तें उठाने पर भी, एक कानी कौड़ी तक न मिली ! इसलिये हे तृष्णे ! अब तो तू मेरा पीछा छोड़ ॥४॥

यह जान-सुनकर, कि ज़मीन में धन है, मैंने ज़मीन को पै तक खोद डाला, पर कुछ भी न मिला। रसायन सिद्ध करने या सोना-चाँदी बनाने के लिये, मैंने अनेक तरह की धातु फूँक डालीं, पर रसायन न बनी। फिर मैंने यह जानकर, कि समुद्र रत्नों की खान है--उस में मोतियों की इफ़रात है; समुद्र में भी घुसा और उसकी थाह ले आया, मगर कुछ हा न आया। फिर यह सोचकर, कि राजाओं की सेवा करते धन हाथ आता है; मैंने उनके सन्तुष्ट करने की भी भर पूर चेष्टायें कीं; उन्हें सब तरह ख़ुश किया, पर फिर भी धन हाथ न आया। शेष में, मैंने मन्त्र-सिद्धि करनी चाही; इसलिये रात-रात भर, अकेला, मरघट में, मुर्दों के पास बैठकर मन्त्र जपता रहा, कि वशीकरण मन्त्र सिद्ध हो जाय और राजाओं को वश करके धन प्राप्त करूँ; पर यहाँ भी मुझे निराशा का ही सामना करना पड़ा। सारी चेष्टायें करने पर भी, एक फूटी कौड़ी तक न मिली! इसलिये हे तृष्णा! अब मैं निराश हो गया हूँ। मुझे सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार दीखता है। अब तो तू दया करके मेरा पीछा छोड़ दे!

इसका यही मतलब है कि, भाग्य के विरुद्ध चेष्टा करना वृथा है। जितना धन भाग्य में लिखा है, उतना तो बिना कोशिश किये, बिना किसी की ख़ुशामद किये, बिना देश विदेश डोले, घर बैठे ही मिल जायगा। भाग्य के लिखे से अधिक, हज़ारों चेष्टायें करने पर भी, न मिलेगा। सिकन्दर

अमृत के लिये अँधेरी दुनिया में गया; पर अमृत के कुण्ड के पास पहुँच जाने पर भी, वह अमृत को चख न सका; क्योंकि उसके भाग्य में अमृत न था। मूर्ख मनुष्य भाग्य पर सन्तोष नहीं करता; धन के लिये मारा-मारा फिरता है। जब कुछ भी हाथ नहीं लगता, तब रोता और कलपता है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है:—

कवित्त।

जो कुछ विधाता तेरे लिख्यो ललाट-पाट,
ताही पर आपनो आप अमल करले।
सोने को सुमेर भावे देख वार पार माँझ,
घटै बढ़ै नहिं यह निश्चय जिय धारले॥
देवीदास कहै जोई होनहार सोई ह्वै है,
मनमें विचार रैन दिन अनुसर ले॥
वापी कूप सरिता भरे हैं सात सागर पै,
तू तो तेरे बासन-समान पानी भर ले॥

शिक्षा—हे मनुष्य! यदि तू सुख-शान्ति से जीवन यापन करना चाहता है, तो तृष्णा-पिशाची के फन्दे से निकल कर भाग्य पर सन्तोष कर। सन्तोष के सिवा सुख-शान्ति लाभ करने का और उपाय नहीं है। यदि सन्तोष न करेगा, तो तृष्णा के मारे भटक-भटक कर सारी उम्र योंही गँवा देगा, और अन्त में कुछ हाथ भी न आयेगा।

छप्पय ।

खोदत डोल्यो भूमि, गड़ीहु न पाई सम्पति ।
धौंकत रह्यो पखान, कनक के लोभ लगी मति ॥
गयो सिन्धु के पास, तहाँ मुक्ताहु न पायो ।
कौड़ी कर नहीं लगी, नृपन को शीश नवायो ॥
साधे प्रयोग श्मशान में, भूत प्रेत वैताल साजि ।
कितहूँ भयो न वांछित कछू, अब तो तृष्णा ! मोहि ता- ॥४॥

4. I dug up the surface of the earth in search of treasure, burnt down various minerals in my hankering after alchemy, explored the ocean in search of pearls or in my greed after trade, tried my best to please the kings, and spent the whole nights in lonely cremation grounds reproducing chants with an all attentive mind, but it is a pity that I have gained not a single broken cowrie although I did all this. Do thou, O Greed, now leave me !

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकव-
त्तृष्णे दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥५॥

मैं अनेक दुर्गम और कठिन स्थानों में डोलता फिरा, पर कुछ भी नतीजा न निकला। मैंने, अपनी जाति और अपने कुल का

अभिमान त्यागकर, पराई चाकरी भी की; पर उससे भी कुछ न मिला। शेष में, मैं कव्वे की तरह डरता हुआ और अपमान सहता हुआ पराये घरों के टुकड़े भी खाता फिरा। हे पाप-कर्म कराने वाली और कुमतिदायिनी तृष्णे! क्या तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ? ॥५॥

धन के लालच में, मैं अपना देश और घर-द्वार छोड़कर ऐसे-ऐसे स्थानों में गया, जहाँ मनुष्य बड़ी कठिनाई से पहुँच सकते हैं; पर वहाँ जाने पर भी मुझे एक पाई न मिली। मैंने अपने द्विजत्व या ऊँची जाति के अभिमान को त्याग कर पराई नौकरी भी की और मालिक ने जो-जो नीच कर्म कराये वही किये, लेकिन उससे भी मुझे धन न मिला। शेष में, मैं मान-अपमान को छप्पर पर रखकर, बिना बुलाये ही लोगों के घर गया और कव्वे की तरह डरते-डरते खाता रहा। मुझे इन सब कामों से बड़ी ठेस लगी। मैंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाये, मान खोया, लोगों के कुबचन सहे, पर फिर भी मेरी कामना सिद्ध न हुई! इसलिये कम्बख्त तृष्णा! मैं तुझसे पूछता हूँ कि, इतने कुकर्म कराकर भी तुझे सन्तोष हुआ या नहीं?

छप्पय।

भटको देश-विदेश, तहाँ फल कछुहु न पायो।
निज कुलको अभिमान छोड़, सेवा चित लायो॥

साहि गारी अरु खीझ, हाथ झारत घर आयो।
दूर करत हूँ दौरि, स्वान-जिमि परगृह खायो॥
इहि भाँति नचायो मोहि तैं, बहकायो दै लोभतल।
अबहूँ न तोहि सन्तोष कहु, तृष्णा! तू पापिन प्रबल॥५॥

5. I roamed about many difficult and impassable lands but it was all fruitless. I served others forsaking the reasonable pride of my tribe and family but it was of no use. I even dined in other people's houses where no respect was shown to me and where I had always been in suspense like a crow. Art thou not O evil natured Avarice, even now satisfied with having perpetrated so many misdeeds?

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै-
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपिशून्येन मनसा।
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम्॥६॥

मैंने दुष्टों की सेवा करते हुए उनकी तानेज़नी और ठट्ठेबाज़ी सही, भीतर के दुःख से आये हुए आँसू रोके और उद्विग्न चित्त से उनके सामने हँसता रहा। उन हँसने वालों के सामने, चित्त को स्थिर करके, हाथ भी जोड़े। हे झूठी आशा! क्या अभी और भी नाच नचायेगी?॥६॥

मैंने नीचों की नौकरी करली। उनकी सेवा करते हुए मैंने उन दुष्टों के अवाज़े-तवाज़े, गाली-गलौज़ और दिल्लगी सभी

कुछ बर्दाश्त की। उनके वाग्बाणों से मेरे कलेजे में छेद हो जाते थे और हृदय रोने लगता था। उसके कारण से जो आँसू आते थे, उन्हें मैं रोक लेता था। भीतर से मेरा दिल एकदम मुर्भा गया था, पर फिर भी मैं उनके सामने हँसा करता और क्रोध को दबाकर और चित्त को स्थिर और शान्त करके उन मसखरों को मैंने हाथ भी जोड़े; पर फिर भी उनसे मुझे कुछ न मिला ! हे आशा ! निष्फला आशा ! इतने नाच तो नचाये, अब और तेरे दिल में क्या है ?

छप्पय ।

सहे खलन के बैन इतै, पर तिनहिं रिझाये ।
नैनन को जल रोक, शून्य मन मुख मुसक्याये ।।
देत नहीं कछु वित्त, तऊ कर जोर दिखाये ।
कर कर चाव करोर, भोरही दौरत आये ।।
सुनि आस ! प्यास तेरी प्रबल, तू अति अद्भुत गति रहत ।
इहि भाँति नचायो मोहि, अब और कहा करिबो चहत ? ।।६।।

6. I tolerated the jokes of evil-minded persons some how or other in my efforts to please them and while trying to stop my tears, I smiled at heart with an extremely desolate heart and even clasped my hands in feigned satisfaction before these sneering persons while trying hard to control the indignation of my heart. Wilt thou, O delusive Hope, make me dance still further ?

**आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥७॥**

सूर्य के उदय और अस्त के साथ मनुष्यों की ज़िन्दगी रोज़ घटती जाती है । समय भागा जाता है, पर कारोबार में मशगूल रहने के कारण, वह भागता हुआ नहीं दीखता । लोगों को पैदा होते, बूढ़े होते, विपत्ति-ग्रसित होते और मरते देखकर भी मनमें भय नहीं होता । इससे मालूम होता है कि, मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा (शराब) के नशे में संसार मतवाला हो रहा है ॥७॥

देखते हैं, रोज़ ही सूर्य्य उदय होते हैं और अस्त होते हैं । रोज़ ही सवेरा होता है और रोज़ ही सन्ध्या होती है । सूर्य्यके उदयास्त के साथ-ही-साथ मनुष्योंकी आयु क्षीण होती जाती है; यानी उम्र घटती जाती है । किसी ने क्या ख़ूब कहा है—

*सुबह होती है शाम होती है ।
योंही उम्र तमाम होती है ॥*

और भी खुलासा ।

रोज़ सवेरा होता है और साँझ होती है; इस तरह नित्य हमारी आयु कम होती जा रही है । विचार कर देखने से

बड़ा विस्मय होता है कि, दिन और रात कैसी तेज़ी से होते चले जाते हैं। जिनको कोई काम नहीं है अथवा जो दुखिया हैं, उन्हें तो ये बड़े भारी मालूम होते हैं, काटे नहीं कटते—एक-एक क्षण एक-एक वर्ष के बराबर बीतता है; पर जो कारोबार या नौकरी-चाकरी में लगे हुए हैं, उनका समय हवा से भी अधिक तेज़ी से उड़ा चला जाता है, यानी कारोबार या धन्धे में लगे रहने के कारण उन्हें मालूम नहीं होता। वे अपने कामों में भूले रहते हैं और मृत्युकाल तेज़ी से नज़दीक आता जाता है। जिस तरह डाक गाड़ी में बैठने वाला यात्री अगर अकेला और उदासचित्त रहता है, तो उसके सफ़र का समय बड़ी कठिनाई से बीतता है; पर यदि उसके साथ दो-चार मित्र या स्त्री-पुत्र प्रभृति होते हैं और वे उस गाड़ी में हँसते-बोलते, खाते-पीते या आनन्द करने लगते हैं, आपस में मनोरञ्जक कथा-वार्त्ता करते हैं, तो वह लोग तो आनन्द में मग्न रहते हैं, और गाड़ी अपनी पूरी तेज़ी से चली जाती है, उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि, कितनी राह तय हो गयी। जब सुनते हैं कि, देहली आ गयी, तब उन्हें विस्मय सा होता है; इसी तरह कारोबार में लगे हुए लोगों को मालूम नहीं होता और समय हवा से भी अधिक तेज़ी से उड़ा चला जाता है और अन्त में उनका अन्त करने वाला काल आ जाता है।

मनुष्य नित्य आँखों से देखता है कि, आज फलाँ मनुष्य चल बसा; आज अमुक आदमी जो जवानी में ऐश आराम

करता था, घोड़े गाड़ियों पर चढ़ कर चलता था, बूढ़ा हो गया है; उसकी जवानी, उसकी सुन्दरता न जाने कहाँ विलीन हो गयी है। अमुक आदमी जो करोड़पति था, जिसके यहाँ सैकड़ों दास-दासी थे, जिसके सामने हीरे पन्ने और सोने चाँदी के ढेर लगे रहते थे, स्वयम् भिखारी हो गया है; राजा ने उसे जेल में बन्द कर दिया है और उसके स्त्री-पुत्र उसकी ख़बर भी नहीं लेते। नित्य मरण, जीवन, बुढ़ापा और विपत्ति देख कर भी मनुष्य के मनमें भय नहीं होता। वह दूसरे को बूढ़ा हुआ देखता है, पर आप यही समझता है कि, मैं तो सदा जवान बना रहूँगा। अपने मित्र और नातेदारों को सर्वस्व छोड़कर मरते देखता है, पर आप समझता है कि, वे मर गये तो मर गये, मैं न मरूँगा। दूसरों पर विपत्ति पड़ी देखता है, पर इतना नहीं समझता कि, मुझ पर भी किसी दिन ऐसी ही विपत्ति आ सकती है। बहुतों को श्मशान पर जाकर वैराग्य होता है, पर वह क्षण-भर ही टिकता है। स्नान करके घर आते ही याद भूलने लगती है और मनुष्य अपने धन्धों में लगकर तो बिलकुल ही भूल जाता है। मनुष्य इतनी ग़फ़लत क्यों करता है ? इस ग़फ़लत और बेहोशी का कारण मोहमयी मदिरा है, जिसे पीकर संसार मतवाला हो रहा है; क्योंकि मनुष्य को औरों को बूढ़े होते और मरते देखकर भी चेत नहीं होता। इतना ही नहीं, अपनी काया में रोग और बुढ़ापा प्रभृति देखकर भी उसे जीने और सुख भोगने की आशा बनी रहती है। वह उसी आशा के सहारे लटका हुआ

अपना जीवन नष्ट करता है और उधर काल अपनी कतरनी से उसकी जीवन-डोरी को काटता रहता है। शंकराचार्य्यजीने "मोहमुद्गर" में कहा है—

दिन यामिन्यौ सायं प्रातः,
शिशिर वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीड़ति गच्छत्यायुः,
तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥

दिन-रात, सवेरे-साँझ, शीत और वसन्त आते और जाते हैं, काल क्रीड़ा करता है, जीवनकाल चला जाता है; तो भी संसार आशा को नहीं छोड़ता।

शिक्षा—मनुष्यो! मिथ्या आशा के फेर में दुर्लभ मनुष्य-देह को योंही नष्ट न करो। देखो, सिर पर काल नाच रहा है; एक साँस का भी भरोसा न करो। जो साँस बाहर निकल गया है, वह वापस आवे या न आवे। इसलिये ग़फ़लत और बेहोशी छोड़कर, अपनी काया को क्षणभंगुर समझ कर, दूसरों को भलाई करो और अपने सिरजनहार में मन लगाओ; क्योंकि नाता उसी का सच्चा है; और सब नाते झूठे हैं। कहा है:—

माया सगी न मन सगो, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीव को, सगो सो सिरजनहार॥

छप्पय ।

उदै अस्त रवि होत, आयुको छीन करत नित ।
गृह-धन्धे के माहिं, समय बीतत अजान चित ॥
आँखिन देखत, जन्म जरा अरु विपति मरण नित ।
तऊ डरत नाहिं नैक, शंकहु नाहिं करत चित ॥
जग जीव मोह-मदिरा पिये, छाके फिरत प्रमाद में ।
गिर परत उठत फिर फिर गिरत, विषय-वासना स्वाद में ॥७॥

7. Along with the rising and setting of the sun, one's life is being daily exhausted. The Flight of Time is not perceived owing to the heavy transaction of business absorbing all attention. O even the phenomena of birth, old age, distress and death do not strike terror into heart of man. It seems the head of the world has been turned by drinking the intoxicating wine of carelessness.

**दीना दीनमुखै' सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी ।
याञ्चाभंगभयेन गद्गदगलत्रुट्यद्विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः ॥८॥**

स्त्री के फटे हुए कपड़ों को दीनातिदीन बालक खींचते हैं, घर के और मनुष्य भूख के मारे उसके सामने रोते हैं—इससे स्त्री अतीव दुःखित है । ऐसी दुःखिनी स्त्री यदि घर में न होती, तो

रोटी के टुकड़ों के लिये बच्चे स्त्री का कपड़ा खींच रहे हैं। इस अवस्था को देखकर पुरुष के दिल में कैसी वेदना हो रही है! संसार में स्त्री ही सब दुःखों की कारण है। पृष्ठ २४

कौन धीर पुरुष, जिसका गला माँगने के अपमान और इनकारी के भय से रुका आता है, अस्पष्ट भाषा या टूटे-फूटे शब्दों में, गिड़-गिड़ा कर "कुछ दीजिये" इन शब्दों को, अपने पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये, कहता ? ।।८।।

यदि किसी के घर में ऐसी दुखिया स्त्री न हो, जिसके फटे हुए कपड़ों को दीनातिदीन बच्चे खींच रहे हों और जो घर के दूसरे मनुष्यों के अन्न के लिये रोने से दुःखित हों; तो कौन धीर पुरुष है, जो अपना पेट भरने के लिये, याचना-भंग होने के भय से, टूटे-फूटे शब्दों में गिड़-गिड़ाकर "दीजिये" शब्द कहे ?

मतलब यह है, कि स्त्री के कारण से ही पुरुष को तरह-तरह के कष्ट उठाने और अपमान सहने पड़ते हैं; इसलिये स्त्री-पुत्र प्रभृति दुःख के कारण हैं। जब दरिद्रता में खाने को अन्न नहीं होता, बालक माँके कपड़े पकड़-पकड़कर खींचते और रोटी माँगते हैं, तब वह बेचारी एक दम से दुःखित हो जाती है। उसके मलिन चेहरे को देखकर पुरुष, अपने मानापमान का ख़याल छोड़कर, भीख तक माँगने पर उतारू हो जाता है। उस समय, इस डर से कि कहीं मुझे कोई भिक्षा देने से नाहीं न करदे, पुरुष का गला घुटता है; पर बेचारा लड़खड़ाती ज़बान से "कुछ मुझे दीजिये" शब्द कहता ही है। यदि स्त्री न होती, तो कौन पुरुष अपने पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये ऐसा करता ?

संसार में पर से माँगनेके समान मनुष्य का मान नाश कराने-वाली दूसरी बात नहीं है। माँगना और मरना दोनों समान हैं। किसी-किसी का तो यह मत है कि, माँगने से मरना भला। याचना करने से त्रिलोकीनाथ भगवान् को भी छोटा होना पड़ा, तब औरों की कौन बात है? इसीलिये तुलसी-दासजी ने कहा है—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरण करो॥

हाथ के ऊपर हाथ करो, पर हाथ के नीचे हाथ न करो, जिस दिन हाथ के नीचे हाथ करो, उस दिन मरण करो; यानी दूसरों को दो, पर दूसरों के आगे हाथ न फैलाओ। जिस दिन दूसरों के आगे हाथ फैलाने की नौबत आवे, उस दिन मरण हो जाय तो भला।

दरिद्रता में माँगने की बात कण्ठ तक आती है; फिर बड़ी-बड़ी तक़लीफों से किसी तरह ज़बान तक आती है; पर ज़बान पर ताले लग जाते हैं; अतः वहाँ से आगे नहीं निक-लती। प्राणों की बाज़ी लगाने पर भी, महत् पुरुषों की ज़बान से "कुछ दो" ये शब्द नहीं निकलते; पर स्त्री के लिये बड़े-बड़ों को भी नीचा देखना ही पड़ता है। अगर स्त्री न होती, तो महत् पुरुष अपने पापी पेट के लिये कभी किसी से याचना न करते; अतः स्त्री ही सब दुःखों की मूल है। इस स्त्री के लिये

पुरुष क्या-क्या कष्ट नहीं भोगता ? स्त्री-पुत्रों के पालन-पोषण की चिन्ता में उसकी सारी आयु बीत जाती है; पर परमात्मा के भजन में उसका मन नहीं लगता ! मन तो तब लगे, जबकि वह शुद्ध हो । उसे तो हरदम नोन-तेल लकड़ी और आटे दाल की चिन्ता लगी रहती है । ईश्वर में मन न लगने और शेष दिन आ जाने से, उसे फिर जन्म-मरण के झंझटों में फँसना होता है । अतः जो लोग संसार में सुख-शान्ति से जीवन बिताना और मरने पर फिर संसार में न आना चाहें, वे स्त्री रूपी माया की क़ैद में न पड़ें । यह स्त्री-माया ही संसार-वृक्ष का बीज है । शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध उसके पत्ते; काम क्रोधादि उसकी डालियाँ और पुत्र-कन्या प्रभृति उसके फल हैं । तृष्णारूपी जल से यह संसार-वृक्ष बढ़ता है । स्पष्ट है कि, संसार-बन्धन का कारण नारी ही है । जिसने नारी से नाता नहीं जोड़ा अथवा जिसने स्त्री को त्याग दिया, वह सच्चा संसारत्यागी है । उसे दुःख कहाँ ? वह निश्चय ही मोक्ष पावेगा । पर जो इस पिशाची के फन्दे में फँस गया, उसे सुख कहाँ ? वह न इस जन्म में सुख पा सकता है और न पर जन्म में ही । संसार बन्धन से मुक्त होने में "कनक और कामिनी" ये दो ही बाधक हैं । कहा है:—

चलूँ-चलूँ सब कोई कहै, पहुँचे विरला कोय ।
एक कनक और कामिनी, दुर्लभ घाटी दोय ॥

एक कनक और कामिनी, ये लम्बी तरवारि ।
चाले थे हरिमिलन को, बिचही लीने मारि ॥
नारि नसावै तीन सुख, जेहि नर पासे होय ।
भक्ति-मुक्ति अरु ज्ञान में, पैठ सके ना कोय ॥

एक बार व्यासजी ने शुकदेवजी से शादी करने को कहा। व्यासजी ने समझाने में घाटा न रखा, पर शुकदेवजी ने एक न मानी । उन्होंने कहा—"पिता जी ! लोह और काठ की बेड़ियों से चाहे कभी छुटकारा हो जाय; पर स्त्री-पुत्र प्रभृति की मोह रूपी बेड़ियों से पुरुष का पीछा नहीं छूट सकता । हे पिता, गृहस्थाश्रम जेलख़ाना है; इसमें ज़रा भी सुख नहीं । स्त्री के लिये पुरुष को संसार में नीचे-से-नीचे काम करने पड़ते हैं। जिनके मुँह देखने से पाप लगता है, उनकी ख़ुशामदें करनी पड़ती हैं; इस वास्ते मैं स्त्री के बन्धन में नहीं पड़ना चाहता ।"

छप्पय ।

फट्यो पुरानो चीर, ताहि खेंचत अरु फारत ।
छोटे-छोटे बाल, दुःख-ही-दुःख पुकारत ॥
घरमाहीं नाहिं अन्न, नारिहू निर्दय याते ।
भई महा जड़रूप, करत मुखसों नहिं बातें ॥
यह दशा देखि अखरत्त चित, जीव थरथरत रुकत मुख ।
अपने मुजरे या उदराहित, "देह", कहै को सतपुरुष ? ॥८॥

8. If one had not to see the distressed face of a house-wife, wearing worn out clothes, the skirts of which are continually being drawn by miserable looking children and who has to feel the agony of listening to the cries of hunger-stricken members of her family, who having a sense of self-respect would utter, for the satisfaction of his own hunger, the word "Give" spoken in a faltering tone, owing to his throat being choked by the fullness of his heart, in fear of his appeal for charity being refused.

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ।
शनैर्यष्ट्योत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥६॥

बुढ़ापे के मारे भोग भोगने की इच्छा नहीं रही; मान भी घट गया; हमारी बराबर वाले चल बसे; जो घनिष्ट मित्र रह गये हैं, वे भी निकम्मे या हम-जैसे हो गये हैं। अब हम बिना लकड़ी के उठ भी नहीं सकते और आँखों में अँधेरी छा गई है। इतना सब होने पर भी, हमारी काया कैसी वेहया है, जो अपने मरने की बात सुनकर चौंक उठती है ! ॥६॥

ख़ुलासा यह है, कि हमारी जवानी चली गयी है; वह जोशख़रोश और चटक-मटक अब नहीं रही है; बुढ़ापे का

दौरदौरा हो गया है; गालों में खड्डे हो गये हैं; बदन पर झुर्रियां पड़ गयी हैं; सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं; दाँतों ने जवाब दे दिया है; यह तो हमारी दशा हो गयी है। लोगों में जो हमारा आदरमान था, अब वह भी घट रहा है। अब लोग हमें निकम्मा बूढ़ा समझकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं। हमारी उम्र के लोग हमारे देखते-देखते चल बसे। जो रह गये हैं, वे भी हम-जैसे निकम्मे हैं। अब हम ऐसे कमज़ोर हो गये हैं, कि बिना लकड़ी टेके चल भी नहीं सकते। आँखों से सूझता नहीं। इतने पर भी, हमारी काया मरने के नाम से काँप उठती है ! जीवन के मोह की अजब हालत है !!

जगत् की विचित्र गति है ! इस जीवन में ज़रा भी सुख नहीं है। मनुष्य के मित्र और नातेदार मर जाते हैं, आप निकम्मा हो जाता है, आँख-कान प्रभृति इन्द्रियां बेकाम हो जाती हैं, आँखों से सूझता नहीं और कानों से सुनाई नहीं देता, घर-बाहर के लोग अनादार करते हैं, बुढ़ापे के मारे चला-फिरा नहीं जाता, खाने को भी कठिनाई से मिलता है; तो भी मनुष्य मरना नहीं चाहता, बल्कि मरने की बात सुनकर चौंक उठता है। इसे मोह न कहें तो क्या कहें ?

लकड़हारा और मौत।

एक वृद्ध अतीव निर्धन था। बेटे-पोते सभी मर गये थे। एक मात्र बुढ़िया रह गयी थी। बूढ़े के हाथ-पैरों ने जवाब दे

दिया था। आँखों से दीखता न था। फिर भी; अपने और बूढ़ी के पेट के लिये, वह जङ्गल से लकड़ी काटकर लाता और बेचकर गुज़ारा करता था। एक दिन उसने जीवन से निहायत दुःखी होकर मौत को पुकारा। उसके पुकारते ही मौत मनुष्य-रूप में उसके सामने आ खड़ी हुई। बूढ़े ने पूछा—"तुम कौन हो ?" उसने कहा—"मैं मृत्यु हूँ, तुम्हें लेने आई हूँ, ।" मौत का नाम सुनते ही लकड़हारा चौंक उठा और कहने लगा—"मैंने आपको यह भारी उचवाने को बुलाया था।" मौत उसकी भारी उचवा कर चली गयी।

देखिये! बूढ़ा लकड़हारा हर तरह दुःखी था, उसे जीवन में ज़रा भी सुख न था; फिर भी वह मरना न चाहता था; बल्कि मौत को देखकर ही चौंक पड़ा था। यही गति संसार की है।

एक दुःखित बूढ़ा सेठ।

एक वैश्य ने उम्र भर मर-पचकर खूब धन जमा किया। बुढ़ापे में पुत्रों ने सारे धन पर क़ब्ज़ा कर, बूढ़े को पौली में एक टूटी सी खाट और फटीसी गुदड़ी पर डाल दिया और कुत्ता मारने के लिये हाथ में लकड़ी दे दी। सुबह-शाम घर का कोई आदमी बचा-खुचा वासी-कूसी उसे खाने को दे जाता। सेठ बड़े दुःख से अपनी ज़िन्दगी पार करता था। पुत्र-बधुएँ दिन-भर

कहा करती थीं—"यह मर नहीं जाते। सबको मौत आती है, पर इनको मौत नहीं। दिन-भर पौली में थूक-थूककर मैला करते हैं।" एक दिन एक पोता उन्हें पीट रहा था। इतने में नारदजी आ निकले। उन्होंने सारा हाल देख कर कहा—"सेठ जी ! आप बड़े दुःखी हैं। स्वर्ग में कुछ आदमियों की ज़रूरत है। अगर तुम चलो तो हम तुम्हें ले चलें।" सुनते ही सेठ ने कहा—"जारे वैरागीड़ा ! मेरे बेटे-पोते मुझे मारते हैं चाहे गाली देते हैं तुझे क्या ? तू क्या हमारा पंच है ? मैं इन्हीं में सुखी हूँ। मुझे स्वर्ग की ज़रूरत नहीं।" सेठ की बातें सुनते ही नारदजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगे—"ओह ! संसार सचमुच ही मोह-पाश में फँसा है। मोह की मदिरा के मारे इसे होश नहीं। मनुष्य ने क़ब्र में पैर लटका रक्खे हैं; फिर भी विषयों में ही उसका मन लगा है !" किसी ने ठीक ही कहा है:—

गतं तत्तारुण्यं तरुणिहृदयानन्दजनकं,
विशीर्णा दन्तालिर्निजगतिरहो यष्टिशरणं।
जड़ीभूता दृष्टिः श्रवणरहितं कर्णयुगलं,
मनोमे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यःस्पृहयति ॥१०॥

तरुणियों के हृदय में आनन्द पैदा करने वाली जवानी चली गई है, दन्तपांक्ति गिर गयी है, लकड़ी का सहारा लेकर चलता हूँ, नेत्र-

ज्योति मारी गयी है, दोनों कानों से सुनाई नहीं देता, तो भी मेरा वेहया मन विषयों को चाहता है ।

छप्पय ।

गयी भोग की चाह, गयो गौरव गुमान सब ।
मित्र गये सुरलोक, अकेले आप रहे अब ॥
उठत सु लकड़ी टेक, तिमिर आँखन में छायो ।
शब्द सुनत नाहिं कान, बचन बोलत बहकायो ॥
यह दशा वृद्ध तन की, तऊ चकित होत मरिबो सुनत ।
देखो विचित्र गति जगत की, दुखहूँ को सुख सों लुनत ॥६॥

9. Along with the approach of old age the power for the enjoyment of sensual pleasures has vanished and the great respect and honour paid by the people have also declined. Our equals in age have already died. Our surviving friends are not so better off in the world as to be of any use to us. Owing to physical weakness we can only rise and that slowly with the help of a stick. Our eyes has become dim with ever-increasing darkness. How shameless should our body be to think that notwithstanding all these disabilities it still fears to meet death. ?

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रामरुत्कल्पितं ।
व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां ।
यामन्वेषयतां प्रयांति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः॥१०॥

विधाता ने हिंसा-रहित और बिना उद्योग के मिलने वाली हवा का भोजन साँपों की जीविका बनाई, पशुओं को घास खाना और ज़मीन पर सोना बताया; किन्तु जो मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से भवसागर के पार हो सकते हैं, उनकी जीविका ऐसी बनाई कि, जिसकी खोज में उनके सारे गुणों की समाप्ति हो जाय, पर वह न मिले ॥१०॥

विधाता या रचयिता ने साँपों के लिये तो हवा का भोजन बता दिया है, जिसके हासिल करने में किसी प्रकार की हिंसा भी नहीं करनी पड़ती और वह बिना किसी प्रकार की चेष्टा या उद्योग के उन्हें अपने वासस्थानों में ही मिल सकता है। जानवरों के लिये घास चरने को और ज़मीन सोने को बतादी, इससे उनको भी अपने खाने के लिये किसी प्रकार की विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती, वे जङ्गल में उगी-उगाई घास तैयार पाते हैं और इच्छा करते ही पेट भर लेते हैं। उन्हें सोने के लिये पलँगों और गद्दे-तकियों की फिक्र नहीं करनी पड़ती, ज़मीन पर ही जहाँ जी चाहता है पड़ रहते हैं। सर्प और पशुओं के साथ भगवान् ने पक्षपात किया, उन्हें बेफिक्री की ज़िन्दगी भोगने के उपाय बता दिये, किन्तु मनुष्यों के साथ ऐसा नहीं किया! उन बेचारों को बुद्धि तो ऐसी दी, कि जिससे वे संसार-सागर से पार हो सकें अथवा दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त कर सकें; पर उन्हें जीविका ऐसी बताई, कि जिसकी

खोज में उनकी सारी कोशिशें बेकार हो जायँ, पर जीविका का ठिकाना न हो। यह क्या कुछ कम दुःखकी बात है ? यदि विधाता मनुष्यों को भी साँपों और पशुओं की सी ही जीविका बताता, तो कैसा अच्छा होता ? मनुष्य, जीविका की फिक्र न होने से, सहज में ही अपनी बुद्धि के ज़ोर से मोक्ष पा जाते।

उस्ताद ज़ौक़ भी कुछ इसी तरह की शिकायत करते हैं,—

बनाया ज़ौक़ जो इन्साँ को उसने जुज़्व ज़ईफ़।
तो उस ज़ईफ़ से कुल काम दो जहाँ के लिए ॥

ऐ ज़ौक़ ! ईश्वर को देखो, कि उसने मनुष्य को कितना कम-ज़ोर बनाया, पर काम उससे दोनों लोकों के लिये। उसे इस लोक और परलोक दोनों की फिक्र लगादी।

किसी ने ठीक ही कहा है:—

घृतलवणतैलतण्डुल शाकेन्धनचिन्तयाऽनुदिनम्।
विपुल मतेरपि पुंसो नश्यति धीर्मन्दविभवत्वात् ॥

घी, नोन, तेल, चाँवल, साग और ईंधन की चिन्ता में बड़े-बड़े मतिमानों की उम्र भी पूरी हो जाती है; पर इस चिन्ता का ओर-छोर नहीं आता। इसी से मनुष्य को ईश्वर-भजन या परमात्मा की भक्ति-उपासना को समय नहीं मिलता। अगर मनुष्य इतनी आपदाओं के होते हुए भी परलोक बनाना चाहे, तो उसे चाहिये कि, अपनी ज़िन्दगी की ज़रूरियातों को कम करे,

क्योंकि जिसकी आवश्यकतायें जितनी ही कम हैं, वह उतना ही सुखी है। इसीलिये महात्मा लोग महलों में न रहकर वृक्षों के नीचे उम्र काट देते हैं। वन में जो फल-फूल मिलते हैं, उन्हें खाकर और झरनों का शीतल जल पीकर पेट भर लेते हैं। आवश्यकताओं को कम करना ही सुख-शान्ति का सच्चा उपाय है।

छप्पय।

बिन उद्यम बिन पाप, पवन सर्पन को दीन्हीं।
तैसे ही सब ठौर, घास पशुवन को कीन्हीं॥
जिनकी निर्मल बुद्धि, तरन भवसागर समरथ।
तिनकी दूबर वृत्ति, हरत गुण ज्ञान ग्रन्थ गथ॥
विधि ! अविधि करी तें अति अधिक, यातें नर पर घर फिरत।
निशि-दिवस पचत तन मन नचत, लचत रचत उर झत गिरत॥१०॥

10. The Creator has designed the harmless and easily obtainable air to be the food of serpents. The quadrupeds have been made to eat the green grass and to sleep on the flat earth. But the tendency of human beings, who have been endowed with sufficient reason to enable them to attain a life of everlasting bliss, has been created such as to baffle all the faculties of an observer in his attempt to explain its working.

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुधर्मोऽपि नोपार्जितः॥

नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितं ।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥११॥

हमने संसार-बंधन के काटने के लिये, यथाविधि, ईश्वर के चरणों का ध्यान नहीं किया; हमने स्वर्ग के दरवाज़े खुलवाने वाले धर्म का भी सञ्चय नहीं किया; और हमने स्वप्न में भी स्त्री के कठोर कुचों का आलिङ्गन नहीं किया। हमतो अपनी माँ के यौवन रूपी बनके काटने के लिये कुल्हाड़े ही हुए ॥११॥

हमने लोक-परलोक साधन के लिये, जन्म-मरण का फन्दा काटने के लिये अथवा परमपद की प्राप्ति के लिये, शास्त्रों में लिखी विधि से, परमात्मा के कमल-चरणों का ध्यान नहीं किया; उसकी पूजा-उपासना नहीं की; सारी उम्र पेट की चिन्ता में ही बिता दी। हमने पूर्वजन्म या वर्तमान जन्म के पापों के समूल नाश करने के लिये प्रायश्चित्त नहीं किये, न जीवों को अभय किया, न दानपुण्य किया; फिर हमारे लिये स्वर्ग का द्वार कैसे खुल सकता है? क्योंकि धर्म का संचय करने से ही स्वर्ग का द्वार खुलता है। न हमने परमात्मा के पदपङ्कजों का ध्यान किया, न धर्म संचय किया और न स्त्री के पीनपयोधरों का स्वप्न में भी आलिङ्गन किया! मतलब यह है, न हमने संसार के मिथ्या विषय-सुख ही भोगे और न हमने मोक्ष या स्वर्ग-प्राप्ति के उपाय ही किये। "दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम" अथवा "इधर के रहे न उधर के रहे,

.ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम ।" हमने यों ही संसार में जन्म लेकर अपनी माता की जवानी और नाश की ! अगर हम जैसे निकम्मे न पैदा होते, तो बेचारी की जवानी की रेढ़ तो न होती !

छप्पय ।

विधि सों पूजे नाहिं, पाँय प्रभु के सुखकारी ।
प्रभु को धरो न ध्यान, सकल भव-दुख को हारी ॥
खोले स्वर्ग-कपाट, धर्महू कर्‌यो न ऐसो ।
कामिन-कुच के संग, रंग भर रह्यो न तैसो ॥
हरि ! हाय २ कीन्हौं कहा, पाय पदारथ नर जनम ? ।
जननी यौवन वन दहन कों, अग्नि रूप भे प्रगट हम ॥११॥

11. We did not meditate in an appropriate way upon the essence of Godhead for the termination once for all of our ever recurring births and deaths. Neither did we practise religion which is the surest means for throwing open the door leading to Paradise. Nor did we embrace even in our dreams the pair of fat breasts or seductive niples of a woman. Having done nothing for the present or the next world, we are only like an axe meant to hew down the wood of our mothers' youth.

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥

कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥१२॥

विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने हमारा ही भुगतान कर दिया; हमने तप को नहीं तपा, किन्तु तपने हमें ही तपा डाला; काल का ख़ात्मा न हुआ, किन्तु हमारा ही ख़ात्मा हो चला। तृष्णा का बुढ़ापा न आया, किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आ गया ॥१२॥

हमने बहुत कुछ भोग भोगे, पर भोगों का अन्त न आया; हाँ हमारा अन्त आ गया। काल या समय का अन्त न आया, किन्तु हमारा अन्त आ गया—हमारी उम्र पूरी हो चली। हमें जो धर्म-कार्य करने थे, वह हम न कर सके। हमने तप तो नहीं तपा, किन्तु संसारी तापों ने हमारे तईं तपा डाला—संसार के जंजालों में फँसकर हम ही शोक-तापों से तप गये। हमारा अन्त आ पहुँचा, हम निर्बल और वृद्ध हो गये; पर तृष्णा बूढ़ी और कमज़ोर न हुई—हमें संसार से विरक्ति न हुई।

ऐसी ही बात उस्ताद ज़ौक़ ने कही—

दुनिया से ज़ौक़ ! रिश्तये उल्फ़त को तोड़ दे।
जिस सरका है यह बाल, उसी सर में जोड़ दे ॥१॥
पर ज़ौक़ न छोड़ेगा, इस पीरा ज़ाल को।
यह पीरा ज़ाल, गर तुझे चाहे तो छोड़ दे ॥२॥

मतलब यह, कि लोग दुनियाँ को नहीं छोड़ते, दुनियाँ ही उन्हें निकम्मा करके छोड़ देती है।

छप्पय।

भोग रहे भरपूर, आयु यह भुगत गई सब।
तप्यो नाहिं तप मूढ़, अवस्था तपत भई अब॥
काल न कितहूँ जात, वैस यह चली जात नित।
वृद्ध भई नहिं आस, वृद्ध वय भई छाँड़ हित॥
अजहूँ अचेत चित! चेतकर, देह-गेहसों नेह तज।
दुख-दोषहरण मंगलकरन, श्रीहरिहर के चरण भज॥१२॥

12. We did not exhaust the enjoyments of life, rather we ourselves were exhausted. We did not practise penances, but it was rather undergoing a life of extreme misery. It was not Time that passed, rather it was ourselves that Passed away. It is not Avarice that has become monotonous and weak, rather we ourselves have become so.

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः॥
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैःफलैर्वंचितम्॥१३॥

क्षमा तो हमने की, परन्तु धर्म के ख़याल से नहीं की। हमने घर के सुख-चैन तो छोड़े, परन्तु सन्तोष से नहीं छोड़े।
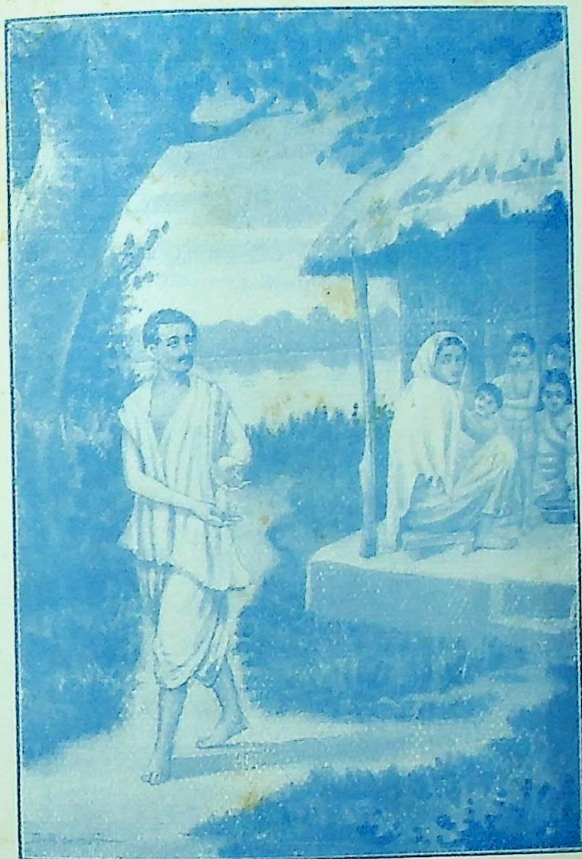
दरिद्रावस्था में वैराग्य

आपके घर में कंगाली और मुहताजी का राज है। आप स्त्री बच्चों का पालन कर नहीं सकते : इसलिए स्त्री आपको नफ़रत की नज़र से देखती है। यह सब देखकर आपके दिल में वैराग्य पैदा हुआ है। यह नीचे दर्जे का वैराग्य है। पृष्ठ ४०
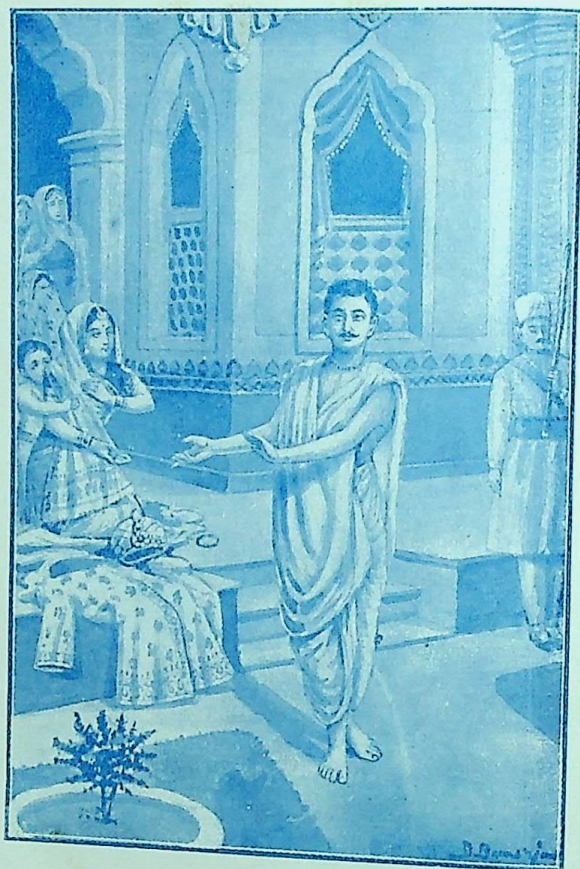
सुखैश्वर्य में वैराग्य

आपका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है : अतः आप धनैश्वर्य और पुत्रकलत्रादि को त्यागकर बन को जा रहे हैं। आप कहते हैं "अब मुझे विषय सुख अच्छे नहीं लगते। मैं वन में जाकर जगदीश का भजन करूँगा।" यही वैराग्य उत्तम वैराग्य है और ऐसे नर-रत्न प्रशंसा के पात्र हैं।

हमने सर्दी-गर्मी और हवा के न सह सकने योग्य दुःख तो सहे; किन्तु हमने ये सब दुःख तप की ग़रज से नहीं, किन्तु दरिद्रता के कारण सहे। हम दिन-रात ध्यान में लगे तो रहे, पर धन के ध्यान में लगे रहे—हमने प्राणायाम-क्रिया द्वारा शम्भु के चरणों का ध्यान नहीं किया। हमने काम तो सब मुनियों के से किये, परन्तु उनकी तरह फल हमें नहीं मिले! ॥१३॥

हमने क्षमा तो की, परन्तु दयाधर्म्म-वश नहीं की, हमारी क्षमा असमर्थता के कारण से हुई; हममें सामर्थ्य नहीं थी, इसी से हम शान्त होगये। हमने अच्छा खाना-पीना ऐश-आराम छोड़े, पर मजबूरी से छोड़े; अपनी भीतरी इच्छा से नहीं छोड़े। हमने उन्हें रोग प्रभृति के कारण या और किसी घटना के कारण त्यागा, पर सन्तोष से नहीं त्यागा। हमने गर्म-सर्द हवा के झोके सहे; हमने सर्दी-गर्मी सही ज़रूर, पर तप की ग़रज़ से नहीं; किन्तु घर में पैसा न होने की वजह से। हम सोते-जागते आठ पहर चौंसठ घड़ी ध्यान तो करते रहे, पर पैसे या स्त्री-पुत्रों का अथवा संसार के और झगड़ों का। हमने भोलानाथ के कमल-चरणों का ध्यान नहीं किया! सारांश यह, हमने मुनियों की तरह विषय-सुख भी त्यागे, उनकी तरह सर्दी-गर्मी के दुस्सह कष्ट भी उठाये, उनकी तरह हम ध्यान-मग्न भी रहे—पर वे जिस तरह सामर्थ्य होते भी शान्त होते हैं—सन्तोष के साथ विषय-सुखों से मुँह मोड़ लेते हैं—शिव का

ही ध्यान करते हैं, उस तरह हमने नहीं किया; इसी से हम उन फलों से वञ्चित—महरूम—रहे, जिनको वे लोग प्राप्त करते हैं।

जो लोग शक्ति-सामर्थ्य रहते विषयों को छोड़ते हैं, वे ही प्रशंसा-भाजन होते हैं। सामर्थ्य न रहने या धातुओं के क्षीण होने पर जो लोग विषयों को छोड़ते हैं, वे तो मन से नहीं—लाचारी से छोड़ते हैं; इसलिये वे प्रशंसा-भाजन नहीं हो सकते। घर-जंजाल में रहकर, सर्दी-गर्मी और शोक-ताप आदि के कष्ट उठाने ही पड़ते हैं; फिर तप ही क्यों न किया जाय ? क्योंकि घर-जंजालों के शोक-ताप से कोई लाभ नहीं, किन्तु तप से स्वर्ग और मोक्ष-की प्राप्ति हो सकती है। धन का ध्यान करने से सच्चा सुख नहीं मिल सकता। धन से जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और झूठा है। इसलिये धन-ध्यान छोड़कर, आशुतोष भगवान् शिव के चरणों का ध्यान करना अच्छा; जिससे सभी मनोरथ पूरे होते हैं और अन्त में जन्म-मरण के झगड़ों से छुटकारा मिलकर परमपद—मोक्ष मिल जाती है। वह बड़े मूर्ख हैं, जो कष्ट तो उठाते हैं, पर वे कष्ट नहीं उठाते, जिनसे उभय लोक साधन हों।

छप्पय।

क्षमा क्षमा-बिन कीन, बिना सन्तोष तजे सुख।
सहे सीत तप घाम, बिना तप पाय महा दुख॥

धर्‌यो विषै कौ ध्यान, चन्द्रशेखर नहिं ध्यायौ।
तज्यौ सकल संसार, प्यार जब उन विसरायौ॥
मुनि करत काज सोई करे, फल दीसत विपरीत अति।
अब होत कहा चिन्ता किये ? अजहूँ कर हरचरणरति॥१३॥

13. We forgave, but not for the sake of forgiveness. We renounced the comforts of the home, but not for the sake of renounciation and contenment. We suffered the unbearable rigours of cold, heat and the winds, but it was through adversity that we did so and not for the sake of practising Tapa. We meditated day and night with regulated breath on Mammon and not on God. We practised the very deeds which the sages do, but devoid of the fruits which the latter reap of them.

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥१४॥

चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं, सिर के बाल पककर सफेद हो गये, सारे अंग ढीले हो गये,—पर तृष्णा तो तरुण होती जाती है॥१४॥

बुढ़ापा आ गया है, क्योंकि चहरे का चमड़ा सुकड़ गया है, झुर्रियाँ पड़ गयीं हैं, रङ्ग-रूप हवा हो गया है, हाथ पैर आदि अङ्ग शिथिल या ढीले हो गये हैं, किसी काम की सामर्थ्य नहीं रही है। शरीर की तो यह दशा हो गयी; पर तृष्णा का न तो

बुढ़ापा आया, न बल घटा; वह तो उल्टी तेज़ हो रही है। हमारे शरीर का बुढ़ापा आ गया, पर तृष्णा की तो जवानी चढ़ रही है! महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं—

नैनन की पल ही पल में, छण आधि घरी घटिका जु गई है।
जाम गयो जुग जाम गयो, पुनि साँझ गई तब रात भई है।
आज गई अरु काल गई, परसों तरसों कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसे ही आयु गई, तृष्णा दिन ही दिन होत नई है।

आज सारा संसार तृष्णा के फेर में पड़ा हुआ है। अमीर और ग़रीब सभी इसके बन्धन में बँधे हैं। ग़रीबों की अपेक्षा धनियों को तृष्णा बहुत है। धनी हमेशा निन्न्यान्वें के फेर में लगे रहते हैं। ९९ होने पर १०० पूरे करने की फिक्र रहती है। हज़ार होने पर दस हज़ार की, दस हज़ार होने पर लाख की लाख होने पर करोड़ की और करोड़ होने पर अरब-खरब की तृष्णा लगी रहती है। इसी फेर में मनुष्य रोगी और बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा न रोगिणी होती है और न बूढ़ी। "सुभाषितावलि" में लिखा है:—

यौवनं जरया ग्रस्तमारोग्यं व्याधिभिर्हतम्।
जीवितम् मृत्युरभ्येति तृष्णैका निरुपद्रवा॥

जवानी बुढ़ापे से, आरोग्यता व्याधियों से और जीवन मृत्यु से ग्रसित है; पर तृष्णा को किसी उपद्रव का डर नहीं।
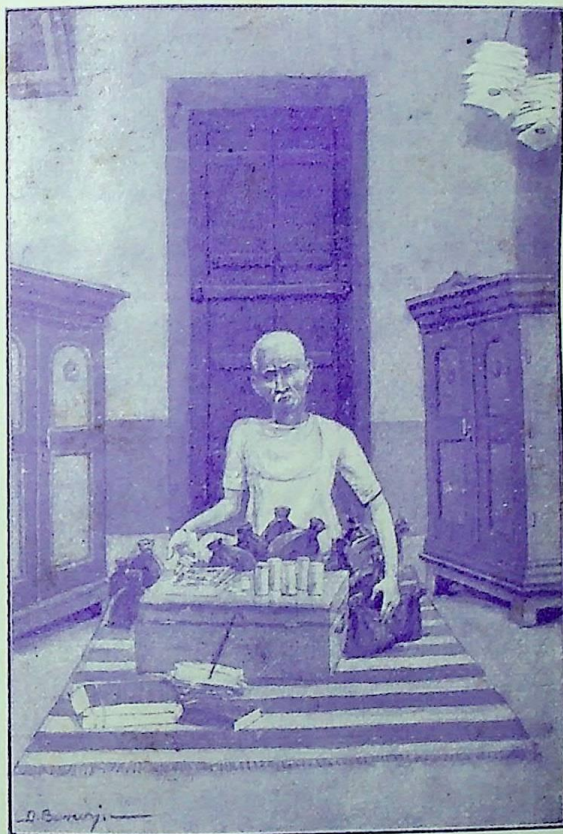
बुढ़ापे में तृष्णा

आप बूढ़े हो गये हैं, पर आपकी तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई है। आप रात-दिन निन्यानवे के फेर में लगे रहते हैं।

पृष्ठ ४३

पेट पसार दियो जितही तित,
तैं यह भूख किती इक थापी ।
ओर न छोर कछू नाहिं आवत,
मैं बहु भाँति भली विधि मापी ।
देखत देह भये सब जीरन,
तू नित नूतन आहि अद्यापि ।
सुन्दर तोहि सदा समुझावत,
हे तृष्णा ! अजहूँ नाहि धापी ॥

और भी:—

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः,
जीर्य्यंतेचक्षुषी श्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ॥

जीर्ण होने से बाल जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से दाँत जीर्ण हो जाते हैं, जीर्ण होने से आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा तरुण होती जाती है ।

सारांश यह कि, मनुष्य नितान्त निकम्मा और जर्जर शरीर होने पर भी तृष्णा को नहीं त्यागता, यही बड़े आश्चर्य की बात है । शङ्कराचार्य्य महाराज ने "मोहमुद्गर" में ठीक ही कहा है:—

अंगं गलितं पलितं मुण्डं,
दन्तविहीनम् यातं तुण्डम् ।

करधृतकम्पितशोभितदण्डम् ।
तदपि न मुञ्चत्याशाभण्डम् ॥

अंग शिथिल हो गये हैं, बुढ़ापे से सिर सन हो गया है, मुँह में दाँत नहीं रहे हैं, हाथ में ली लकड़ी की तरह शरीर काँपता है; तो भी मनुष्य आशा रूपी पात्र को नहीं त्यागता!

संसार आशा और तृष्णा के बन्धन में बँधा है । तृष्णा न होती तो मनुष्य को स्वर्ग या मोक्ष पाने में कुछ भी दिक्कत न होती; क्योंकि तृष्णा का नाश ही तो मोक्ष या स्वर्ग है। शंकराचार्यकृत "प्रश्नोत्तरमाला" में लिखा है:—

बद्धो हि को यो विषयानुरागी ।
का वा विमुक्तिर्विषयेविरक्तिः ॥
का वोस्ति घोरो नरकस्स्वदेह—
स्तृष्णाक्षयस्स्वर्गपदं किमस्ति ?

बन्धन में कौन है ? विषयानुरागी ।
विमुक्ति क्या है ? विषयों का त्याग ।
घोर नरक क्या है ? अपना शरीर ।
स्वर्ग क्या है ? तृष्णा का नाश ।

और भी किसी ने कहा है:—

कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्त्तितः ।
तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभिः ॥

हृदय में जो कामनाओं का निवास है, उसी को "संसार" कहते हैं और उनके सब तरह से नाश हो जाने को "मोक्ष" कहते हैं।

संसार में बारम्बार आना और यहाँ से जाना; यानी जन्म लेना और मरना ये बहुत ही दुःखदायी हैं; अतः जिन्हें अपने तईं जन्म-मरण से मुक्त करना हो, वे कभी भूल कर भी तृष्णा-राक्षसी के भुलावे में न आवें; क्योंकि इसके चक्कर में पड़ने से इस लोक में नीच-से-नीच कर्म्म करने होंगे और इतने पर भी तृष्णा शान्त न होगी और उधर परलोक भी न बनेगा। जो निस्पृह हैं, जिन्हें कामना या तृष्णा नहीं, वे मनुष्य रूप में ही देवता हैं। मरने पर वे स्वर्ग या मोक्ष के अधिकारी होंगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

दोहा।

सेत चिकुर तन दशन बिन, बदन भयो ज्यौं कूप।
गात सबै शिथिलित भये, तृष्णा तरुण स्वरूप ॥१४॥

14. In old age, the face is marked with wrinkles, the head is lined with grey hair and the limbs all grow loose, but Desire alone becomes rejuvenated and predominant.

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमाः।
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥१५॥

आकाश के जिस टुकड़े को ओढ़कर चन्द्रमा रात बिताता है, उसी को ओढ़कर सूर्य्य दिन बिताता है । इन दोनों की कैसी दुर्गति होती है ! ॥१५॥

आकाश के जिस हिस्से को, रात के समय, चन्द्रमा तय करता है, उसी को दिन में सूर्य्य तय करता है। सूरज और चाँद—ज्योतिष्कों में सर्व्व श्रेष्ठ और सब से बड़े हैं। जब ऐसे-ऐसों की ऐसी दुर्गति होती है, कि बेचारों को रात-दिन इधर से उधर और उधर-से-इधर चक्कर लगाने पड़ते हैं और परिणाम में कोई फल भी नहीं मिलता; तब हमारी आपकी कौन गिन्ती है ? जब ये पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं, इन्हें ज़रासी भी आज़ादी नहीं है, एक दिन क्या—एक क्षण भी ये अपनी इच्छानुसार आराम नहीं कर सकते, तब इतर छोटे प्राणियों की क्या बात है ?

शिक्षा—बड़ों की दुर्दशा देखकर छोटों को अपनी विपत्ति पर रोना-कलपना नहीं, बल्कि सन्तोष करना चाहिये। संसार में कोई भी सुखी नहीं है।

दोहा ।

इक अम्बर के टूक को, निशि में ओढ़त चन्द ।
दिनमें ओढ़त ताहि रवि, तू कत करत छछन्द ? ॥१५॥

15. The sun has to move during the day through the same parts of the heavens as the moon does at night.
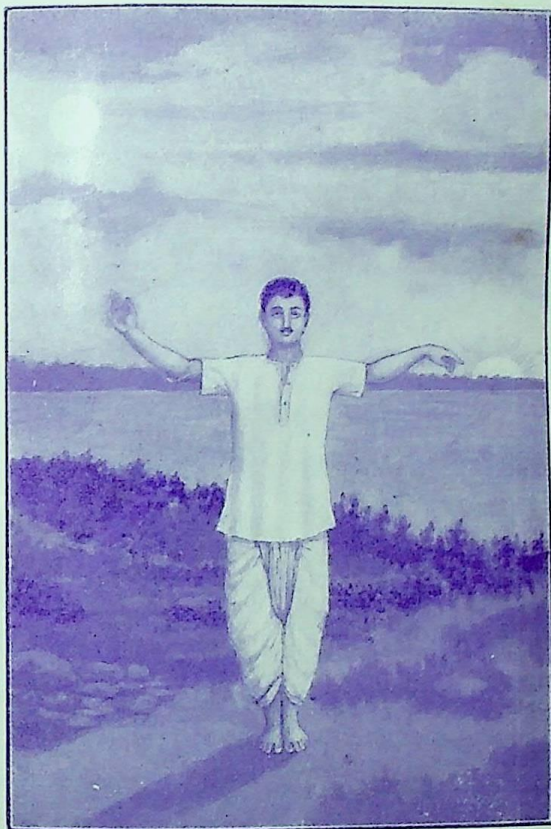
जब ये सूरज और चाँद पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। इन्हें ज़रा भी आज़ादी और सुख नहीं—तब और प्राणियों की क्या बात है?

पृष्ठ ४७

Being the two greatest Luminaries, mark how wonderful is their dependent career! Can a tiny mortal hope to be more free?

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया।
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्॥
व्रजन्तः स्वातंत्र्यादतुलपरितापाय मनसः।
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥१६॥

विषयों को हम चाहें जितने दिनों तक क्यों न भोगें, एक दिन वे निश्चय ही हमसे अलग हो जायँगे; तब मनुष्य उन्हें स्वयम् अपनी इच्छा से ही क्यों न छोड़ दे? इस जुदाई में क्या फ़र्क़ है? अगर वह न छोड़ेगा, तो वे छोड़ देंगे। जब वे स्वयं मनुष्य को छोड़ेंगे, तब उसे बड़ा दुःख और मनःक्लेश होगा। अगर मनुष्य उन्हें स्वयं छोड़ देगा, तो उसे अनन्त सुख और शान्ति प्राप्त होगी॥१६॥

जिन विषय-सुखों को हम चिरकाल से भोगते आ रहे हैं, वे सदा हमारे साथ न रहेंगे; निश्चय ही वे एक दिन हमारा साथ छोड़ देंगे। इससे, यदि हम ही उन्हें पहले से ही छोड़ दें, तो हमें महासुख और शान्ति मिलेगी। यदि हम न छोड़ेंगे और वे हमें छोड़ेंगे, तो हमें महा दुःख और मनस्ताप होगा।

जो लोग विषयों को पहले ही त्याग देते हैं, उन्हें उनके न होने पर दुःख नहीं होता; किन्तु जो उन्हें नहीं छोड़ते, उन्हें

उनके न होने पर महा कष्ट होता है। जो बुद्धिमान् पहले से ही धन-दौलत स्त्री-पुत्र आदि से मोह हटा लेते हैं, उन्हें मरते समय कष्ट नहीं होता। जो अपना मन उनमें लगाये रहते हैं, वे मरते समय रोते हैं, पर ज़बान बन्द हो जाने से अपने मन की बात जता नहीं सकते। इसलिये जो सुख से मरना चाहें, उन्हें पहले से ही विषयों से मुँह मोड़ लेना चाहिये। इसी तरह जो आज नाना प्रकार के सुख भोग रहा है, यदि कल उसे वे सुख न मिलें, तो वह बड़ा दुःखी होता है; किन्तु जो विषयों को भोगते तो हैं, किन्तु उनमें आसक्ति नहीं रखते, उन्हें विषय-सुखों के न मिलने या उनसे बिछुड़ने पर ज़रा भी कष्ट नहीं होता।

शिक्षा—जो विषय एक दिन तुम्हें निश्चय ही छोड़ देंगे, उन्हें तुम स्वयं ही क्यों न छोड़ दो? तुम्हारे छोड़ने से तुम्हें अनन्त सुख मिलेगा और उनके छोड़ने से तुम्हें घोर मनस्ताप वा मनोवेदना होगी।

16. The objects of the sensual pleasure are sure to part from us, even if we enjoy them for a considerable length of time. A man can part with them of his own accord. What is the difference in parting if he does not follow the latter course? They generate great agony and distress in our mind if they themselves leave us; but if we renounce them ourselves, they are sure to give us unbounded peace of mind and happiness.

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा-
परिष्वंगे तुंगे प्रसरतितरां सा परिणतिः॥

जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणस्तृषापात्रं
यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥१७॥

जब ज्ञान का उदय होता है, तब शान्ति की प्राप्ति होती है। शान्ति की प्राप्ति से तृष्णा शान्त हो जाती है, किन्तु वही तृष्णा विषयों के संसर्ग से बेहद बढ़ती है। मतलब यह है, कि विषयों से तृष्णा कभी शान्त नहीं हो सकती। सुन्दरी के कठोर कुचों पर हाथ लगाने से काम-मद बढ़ता है, घटता नहीं। जरा-जीर्ण ऐश्वर्य्य को देवराज इन्द्र भी नहीं त्याग सकते ॥१७॥

ज्ञान से ही तृष्णा का नाश और शान्ति की प्राप्ति होती है। विषयों के भोगने से तृष्णा घटती नहीं, उल्टी बढ़ती है। जो तृष्णा को त्यागते हैं, तृष्णा से नफ़रत करते हैं, उसे पास नहीं आने देते, उनसे तृष्णा भी दूर भागती है। हम जब किसी स्त्री को प्यार करते हैं, उसका आदर-मान करते हैं, तब वह हमारे चेंटती है; किन्तु जब हम उससे मुँह फेर लेते हैं, उसे मुँह नहीं लगाते, उसे प्यार नहीं करते, उसे नफ़रत की नजर से देखते हैं; तब वह भी हमसे अलग रहती है,—हमारे पास आने की उसे हिम्मत नहीं होती। इसलिये जो तृष्णा से पीछा छुड़ाना चाहें, उन्हें विषयों से मुँह मोड़ लेना चाहिये। देखिये, यद्यपि स्वर्ग के राज्य को भोगते लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये, तो भी इन्द्र उस स्वर्ग-राज्य को छोड़ नहीं सकता। जब इन्द्र की भी तृष्णा लाखों-करोड़ों वर्ष राज्य भोगने से शान्त

नहीं होती, तब मनुष्य बेचारे किस खेत की मूली हैं ? तृष्णा पुरानी होने से बढ़ती है, घटती नहीं। हम ज्यों-ज्यों विषय भोगते हैं, त्यों-त्यों वे पुराने होते हैं और हमारी तृष्णा बढ़ती है। पुराने होने पर, उन्हें छोड़ने में हमें बड़ा कष्ट होता है।

शिक्षा—तृष्णा को शीघ्र छोड़ो। पुरानी होने से वह पापीयसी और भी बलवती हो जायगी; फिर उसे त्यागना आप की शक्ति के बाहर हो जायगा। उसके नाश के लिये "ज्ञान" का पैदा होना ज़रूरी है, क्योंकि उसका सच्चा मार "ज्ञान" ही है।

छप्पय।

तृष्णा-मूल नसाय, होय जब ज्ञान उदय मन।
भये विषय में लीन, बढ़ै दिन-पर-दिन चौगुन॥
जैसे मुग्धा नार-कठिन कुच, हाथ लगावत।
बढ़त काममद अधिक, अधिक तन में सरसावत॥
जराजीर्ण ऐश्वर्य को, त्यागत लागत दुःख अति।
तोहि तजिवे को असमर्थ यह, वासव जो है वायुपति॥१७॥

17. Desire cools down when peace of mind is attained through the advent of knowledge. The same expands to an unlimited extent when its connection is established with its highest objects. Hence Desire can never be satisfied by enjoyment or Desire is only insatiable in its fulfilment. The proof of this lies in the person of Indra, the great king of the gods, who is totally unable to give up his kingdom of Swarga,

मरणासन्न कुत्ते को कुतिया के पीछे दौड़ते हुए देखकर कहना पड़ता है, कि कामदेव मरे हुए को भी मारता है ! पृष्ठ ५२

although it is worn out by long, long ages having passed over it.

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो ।
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ॥
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः ।
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥१८॥

दुबला काना और लँगड़ा कुत्ता, जिसके कान और पूँछ नहीं हैं, जिसके ज़ख्मों से राध बह रही है, जिसके शरीर में कीड़े किलबिला रहे हैं, जो भूखा और बूढ़ा है, जिसके गले में हाँडी का घेरा पड़ा है—कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ता है। कामदेव मरे हुए को भी मारता है ॥१८॥

जिस कुत्ते की ऐसी बुरी हालत है, वह कुत्ता भी मैथुन करने के लिये कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ता है; तब मोटे-ताज़े मावा-मलाई और मिष्टान्न खाने वाले अपनी कामवासना को कैसे रोक सकते हैं? इसी से बचने के लिये, ज्ञानी लोग अपनी देह को एक दम गला देते हैं, तरह-तरह के व्रत और उपवास करते हैं, धूनी तपते हैं और शीत-घाम सहते हैं। कामदेव बड़ा बलवान् है। जो उसके काबू में नहीं आते, वे सब से बलवान् और सच्चे योद्धा हैं। वे भीष्म और अर्जुन हैं।

18. The lean blind and lame dog, without either ears or tail, with blood oozing out of its wounds, hundreds and thousands of worms sticking to his

body, hungry and old, with the upper portion of a broken earthen vessel hanging round his neck, is pursuing the bitch. How cruel is Cupid to shoot his arrows at those who are already dead.

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं।
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था।
हा हा तथाऽपि विषया न परित्यजन्ति॥१६॥

वह मनुष्य जो भीख माँगकर दिन में एक समय ही नीरस अलौना अन्न खाता है, धरती पर सो रहता है, जिसका शरीर ही उसका कुटुम्बी है, जो सौ थेगलियों की गुदड़ी ओढ़ता है, आश्चर्य है कि, ऐसे मनुष्य को भी विषय नहीं छोड़ते ! ॥१६॥

जो दिन-भर में एक बार अलौना—फीका अन्न खाते हैं और वह भी माँग-ताँग कर; जिनके पास सोने के लिये पलँग और गद्दे-तकिये नहीं, बेचारे पेड़ों के नीचे या खुले मैदान में घास-पात पर सो रहते हैं; जिनके नाते-रिश्तेदार कोई नहीं, उनका अपना शरीर ही उनका नातेदार है; जिनके पास पहनने को कपड़े नहीं, बेचारे ऐसी गुदड़ी ओढ़ते हैं, जिसमें सैकड़ों चीथड़े लटकते हैं—ऐसे लोगों का भी विषय पीछा नहीं छोड़ते, तब धनियों का पीछा तो वे कैसे छोड़ने लगे, जहाँ उन्हें सब तरह के ऐशो-आराम मिलते हैं ? कहा है:—
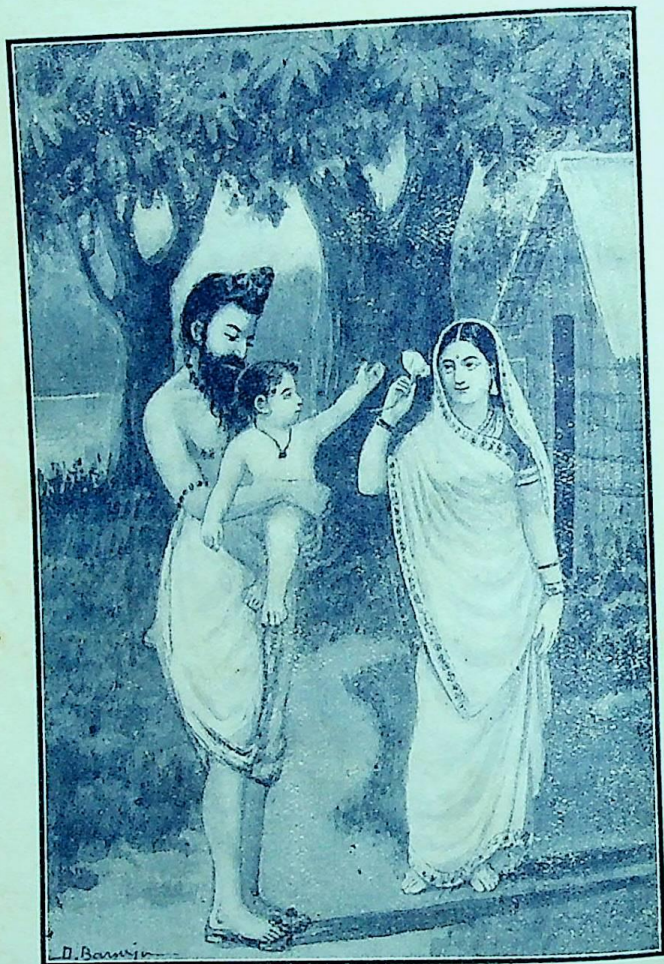
महामुनि विश्वामित्र जैसे तपस्वी को मेनका ने गृहस्थी के जंजाल में जकड़ दिया, तब मोहिनियों से और कौन बच सकता है ? देखिये, आप कन्या को गोद में लिये खड़े हैं।

पृष्ठ ५४

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत् सागरे ॥

विश्वामित्र और पाराशर प्रभृति ऋषि भी,—जो हवा, जल और पत्ते खाते थे—स्त्री का कमल-मुख देख कर मोहित हो गये; फिर शालिचाँवल, दही और घी मिला भोजन जो खाते हैं, उनकी इन्द्रियाँ यदि उनके वश में हो जायँ, तो विन्ध्याचल पर्वत भी समुद्र में तैरने लगे। मतलब यह है कि, पत्तों और जल पर गुज़र करने वाले ऋषि भी जब स्त्रियों पर मोहित हो गये, तब घी दूध खाने वालों की क्या बात है ? कामदेव का वश करना बड़ा कठिन है। पराशर ऋषि ने दिन की रात कर दी और नदी को रेत में परिणत कर दिया, पर वे भी काम को वश में न कर सके। इतना ही नहीं; बड़े-बड़े देवता भी काम को वश में न कर सके। स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश तक को काम ने जीत लिया। "आत्मपुराण" में लिखा है:—

कामेन विजितो ब्रह्मा, कामेन विजितो हरिः ।
कामेन विजितः शम्भुः, शक्रः कामेन निर्जितः ॥

कामदेव ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र को जीत लिया।

"पद्मपुराण" में लिखा है,—शान्तनु नामक ऋषि की स्त्री का नाम अमोघा था। वह परम सुन्दरी और पतिव्रता थी। एक

दिन ब्रह्मा जी ऋषि से मिलने गये। ऋषि उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। उस पतिव्रता ने ब्रह्माजी को आसन बिछा कर बिठाया। ब्रह्माजी उसका रूप देख कर मुग्ध हो गये। उनका वीर्य निकल गया; अतः वे लज्जित हो उठ गये। इतने में ऋषि आ गये। उन्होंने वीर्य पड़ा देख स्त्री से पूछा—"यह क्या!" उसने कहा—"स्वामिन्! ब्रह्माजी आये थे।" सुन कर ऋषि ने कहा—"स्त्री का दर्शन ही ऐसा है कि, जिससे देवता भी धैर्य्य त्याग देते हैं।"

एक बार महादेवजी समाधिस्थ थे। वहीं वन में मनुष्यों की सुन्दरी और युवती स्त्रियाँ क्रीड़ा कर रहीं थीं। शिवजी का मन चल गया। उन्होंने अपने तपोबल से उन्हें आकाश में ले जाकर उनसे भोग किया। अन्त में पार्वतीजी ने स्त्रियों को नीचे गिरा दिया और शिवजी को समाधि में लगाया।

विष्णु भगवान् ने जलन्धर नामक राक्षस की वृन्दा नामक पतिव्रता स्त्री से छलकर भोग किया। उसने उन्हें श्राप दिया।

इन्द्र ने गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या से छल से भोग किया और इतने में ऋषि आ गये। उन्होंने इन्द्र को देखते ही श्राप दिया। ऋषि के श्राप से इन्द्र के शरीर में भग-ही-भग हो गयीं।

एक बूढ़ा तपस्वी किसी मन्दिर में अकेला रहता था। वह पूरा जितेन्द्रिय था। दैवात् एक युवती उस मन्दिर के सामने से निकली। तपस्वी मुग्ध हो गया और उसके पीछे हो लिया।

वृक्ष के पत्तों और जल पर गुजर करनेवाले, दिन को रात में और नदी को रेत में परिणत कर सकनेवाले पराशर ऋषि नाविक की कन्या को आलिंगन कर रहे हैं। (पृष्ठ ५४)

जब वह अपने घर पहुँची, तब ऋषि भी द्वार पर जाकर उससे प्रार्थना करने लगा। उसने द्वार बन्द करना चाहा और ऋषि ने सिर अड़ा कर घुसना चाहा। उसने ज़ोर से द्वार बन्द करने की चेष्टा की। इससे ऋषि का सिर कट गया और वह वहीं मर गया। ऐसे-ऐसे बूढ़े और अभ्यासी जितेन्द्रिय पुरुष जब स्त्रियों को देखते ही पागल हो जाते हैं, तब औरों का क्या कहना ?

यद्यपि काम को क़ाबू में करना महाकठिन है;
तथापि कामदेव को वश में करो; क्योंकि स्त्री
संसार-बंधन की मूल या जन्म-मरण की कारण है।

स्त्री भक्ति-मुक्ति और सुख-शान्ति की नाशक है। जिनके स्त्री है, वे परमेश्वर की भक्ति कर नहीं सकते, क्योंकि उन्हें जञ्जालों से ही फ़ुरसत नहीं मिल सकती। यों तो सभी विषय विष के समान घातक हैं, पर स्त्री सब से ऊपर है। जहाँ स्त्री है, वहाँ सभी विषय हैं। विषय दुःख और ताप के कारण हैं, अतः बुद्धिमानों को विषयों से बचना चाहिये। मोक्ष चाहने वालों को तो स्त्री के दर्शन भी न करने चाहियें। कहा है:—

संभाषयेत् स्त्रियं नैव पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्।
कथां च वर्जयेत्तासां नो पश्येल्लिखितामपि ॥

न तो स्त्री के साथ बात करनी चाहिये, न पहले की देखी स्त्री की याद करनी चाहिये और न उसकी चर्चा करनी चाहिये। यहाँ तक कि, उसका चित्र भी न देखना चाहिये।

जो स्त्री-जाति से इस तरह अलग रहेंगे, वे ही कदाचित् इस बला से बच सकेंगे। इसे देख कर मन को वश में रखना बड़ा कठिन काम है। सभी भीष्म और अर्जुन नहीं हो सकते। संसारी लोग कितने ही दुःख, ताप और कष्ट क्यों न पावें; किन्तु उनका मन उस ऊँट की तरह है, जो काँटेदार वृक्षों को खाना पसन्द करता है; काँटेदार वृक्षों के खाने से उसके मुँह से खून बहने लगता है, पर वह उनका खाना नहीं छोड़ता; इसी तरह जिन्हें विषयों का स्वाद आ गया है, वे अनेक तरह के कष्ट भोगने पर भी उन्हें नहीं त्यागते; किन्तु जब उनमें विवेक आ जाता है, उनमें सत-असत के विचार की शक्ति हो जाती है, तब उन्हें उनसे विरक्ति हो जाती है। उस अवस्था में स्त्री जाति से नफ़रत हो जाती है।

शिक्षा—विषय विष हैं। इनका त्याग ही सुख की जड़ है। जो विषयी हैं, उन्हें कहीं सुख नहीं है। अतः काम को जीतो। जिसने काम को जीत लिया, उसने सब को जीत लिया।

छप्पय।

भीख-अन्न इकबार, लौन बिन खाय रहत हूँ।
फटी गूदरी ओढ़, वृक्ष की छाँह गहत हूँ॥
घास पात कछु डारि, भूमि पर नित प्रति सोवत।
राख्यौ तन परिवार, भार यह ताको ढोवत॥
इहि भाँति रहत चाहत न कछु, तऊ, विषय बाधा करत।
हरि! हाय हाय तेरी शरण, आय पर्‌यो इनसे डरत॥१६॥

19. A man may go a-begging for his food and get a tasteless meal once a day, he may have earth only for his bed and his own body for his servant. His clothes may only consist of an old and dirty sheet with hundreds of rags hanging from it. But what a pity that the objects of pleasure do not desert even such a man.

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्द्धि जघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥२०॥

स्त्रियों के स्तन माँस के लौंदे हैं, पर कवियों ने उन्हें सोने के कलशों की उपमा दी है। स्त्रियों का मुँह कफ का घर है, पर कवि उसे चन्द्रमा के समान बताते हैं और उनकी जाँघों को, जिनमें पेशाब प्रभृति बहते रहते हैं, श्रेष्ठ हाथी की सूँड़ के समान कहते हैं। स्त्रियों का रूप घृणा योग्य है, पर कवियों ने उसकी कैसी तारीफ़ की है ! ॥२०॥

स्त्री नरक-कुण्ड है।

स्त्रियों की छातियाँ—जिन पर विषयी मरे मिटते हैं, जिनकी कवियों ने बड़ी-बड़ी प्रशंसायें की हैं, जिन्हें वे सोने के कलसों अथवा अनार और नारङ्गियों के समान बताते हैं—वास्तव में

मांस की पोटली हैं। उनके मुख को वे चन्द्रमा के समान बताते हैं, पर वास्तव में वे कफ के आगार हैं। जिन जाँघों को वे गजवर की सूँड़ के समान बताते हैं, वास्तव में वे मूत और सफ़ेदे के टपकने से सूगली रहती हैं। स्त्रियों का शरीर सर्वथा निन्दा योग्य है, उसमें प्रशंसा की कोई बात नहीं; पर अज्ञानी और मूर्ख विषयी उन पर मरे मिटते हैं!! यह उनकी भारी भूल है। महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं—

(१)

कामिनी को तन, मानु कहिये सघन बन।
वहाँ कोउ जाय, सो तौ भूले ही परत है॥
कुञ्जर है गात, कटि-केहरी को भय जामें।
बेनी काली नागिनीऊ, फनिकुँ धरत है॥
कुच हैं पहार जहाँ, काम-चोर बसे तहाँ।
साधि के कटाक्ष बाण, प्राण कूँ हरत हैं॥
सुन्दर कहत, एक और डर जामें अति।
राक्षसी-बदन, खाउँ-खाउँ ही करतु है॥१॥

(२)

कामिनी को अँग, अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं॥
हाड़ माँस मज्जा मेद, चामसुँ लपेटि राखै।
ठौर-ठौर रकत के, भरेइ भण्डार हैं॥
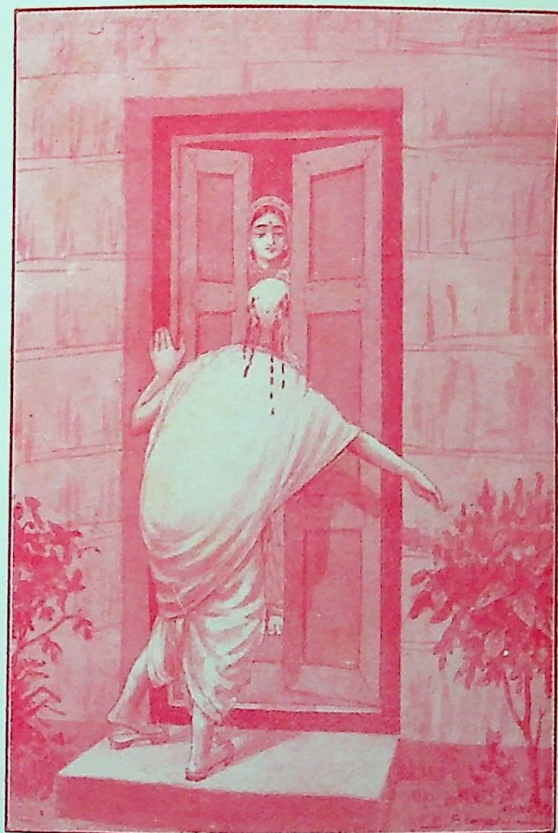
तपस्वी स्त्री पर मुग्ध होकर ज़बरदस्ती उसके घर में घुसने लगा। स्त्री ने द्वार बन्द करना चाहा और ऋषि ने सिर अड़ाकर घुसना चाहा। स्त्री ने ज़ोर से द्वार बन्द करने की चेष्टा की : इससे ऋषि का सिर कट गया।

पृष्ठ ५५
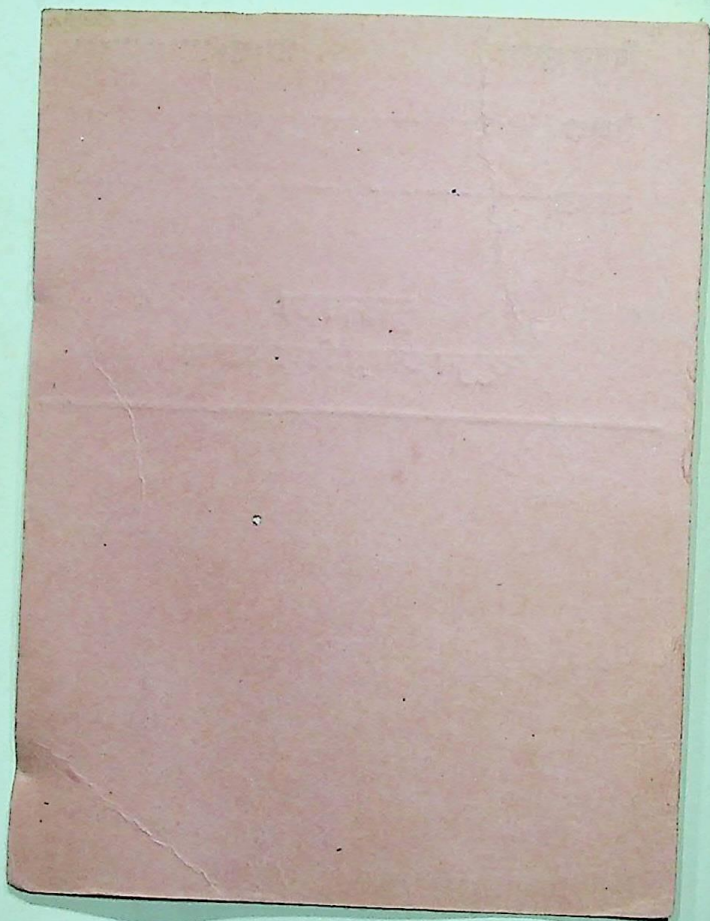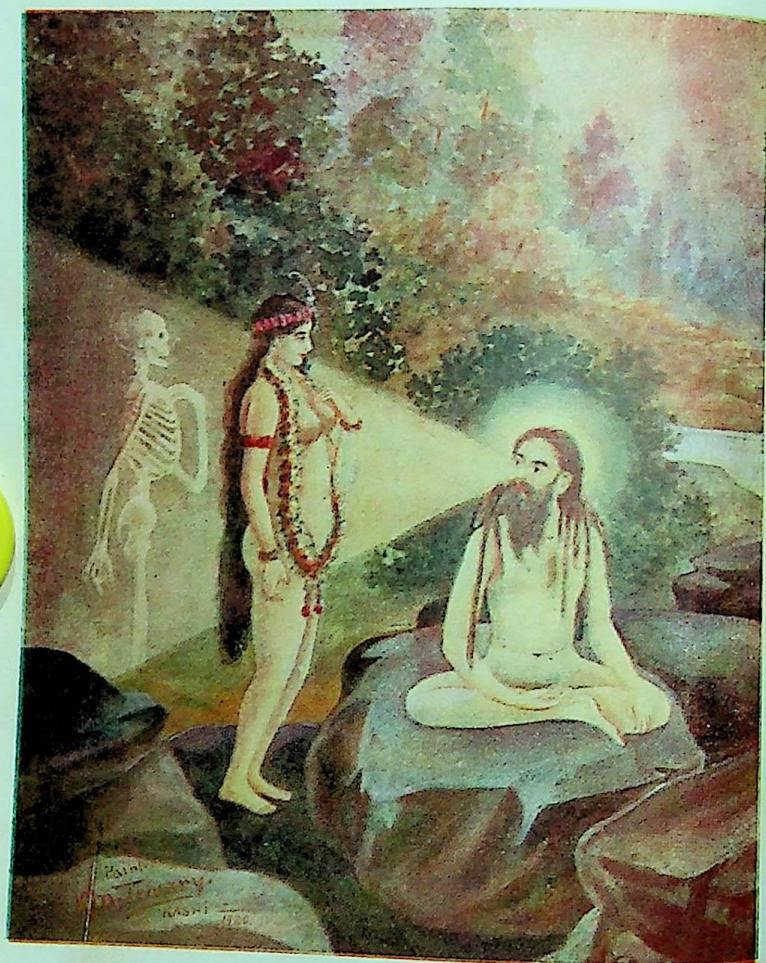
महापुरुष ज्ञान-दृष्टि से कामिनी की असलियत को देख रहे हैं। कामी लोग भी स्त्रियों की असलियत को बग़ौर देखें और इनसे घृणा करें। वास्तव में स्त्री में कुछ भी नहीं है। मांसचर्म-हीन स्त्री कंकाल है।

(पृष्ठ ५८)

इस पुस्तक के चित्र 'सरस्वती प्रेस, काशी' में छपे।

मूत्रहु पुरीष आँत, एकमेक मिलि रहीं ।
और ही उदर माँहि, विविध विकार हैं ॥
सुन्दर कहत, नारी नख शिख निन्दा-रूप ।
ताहि जो सराहै, सो तो बड़ोई गँवार है ॥२॥

(३)

(राग सोरठ)

अनाड़ी मन ! नारी नरक का मूल ।
रंग रूप पर भया लुभाना,
क्यों भूल गया हरि नाम दिवाना ? ।
इस धन योवन का नाहिं ठिकाना,
दो दिन में हो जाय धूल ॥ १ ॥
कंचन भरे दो कलश बतावे,
ताहि पकड़ आनन्द मनावे ।
यह तो चमड़े की थैली हैं मूरख,
जिन पै रह्यो तू भूल ॥ २ ॥
जा मुख को तू चन्दा कर माने,
थूक राल वा में लिपटाने ।
धिक धिक धिक ! तेरे या मुख पै,
श्लिष्टा में रह्यो तू भूल ॥ ३ ॥

कैसा भारी धोका खाया,
तन पर कामिन के ललचाया ! ।
कहें कबीर आँख से देखा,
यह तो माटी का स्थूल ॥ ४ ॥

(४)

उदर में नरक, अध द्वारन में नरक,
कुचन में नरक, नरक भरी छाती हैं ।
कण्ठ में नरक, गाल चिबुक नरक-बिम्ब,
मुख में नरक, जीभ लालहु चुवाती है ॥
नाक में नरक, आँख कान में नरक बहे,
हाथ पाउँ नख शिख, नरक दिखाती है ।
सुन्दर कहत, नारी नरक को कुण्ड यह,
नरक में जाइ परे, सो नरक पाती है ॥

स्त्री में रूप नहीं ।

स्त्रियों के जिस शरीर की कामियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, तत्त्वविद् वेदान्तियों ने उसी की पेट-भर निन्दा की है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। असल में नारी उतनी सुन्दरी नहीं, जितनी कि कवियों ने लिखी है। गुम्बद पर क़लई है। सचमुच ही नारी नरक का कूप है; इसके भीतर मल-मूत्र थूक और खखार भरे हैं। पर लोग ऊपर की चमक-दमक पर मरे मिटते

हैं; असलियत पर ध्यान नहीं देते। ज्ञानियों को जो नरक-कुण्ड मालूम होता है, अज्ञानियों को वही परमशोभा की खान मालूम होता है। "शान्तिशतक" में कहा है:—

समाश्लिष्यत्युच्चैः पिशितघनपिण्डं स्तनधिया
मुखं लालापूर्णं पिबाति चषकं सासवमिति।
अमेध्यक्लेदार्द्रे पथि च रमते स्पर्शरसिको
महामोहान्धानां किमपि रमणीयं न भवति॥

स्त्री सब तरह गन्दी है, पर स्पर्श के रसिया गन्दे रास्ते में ही रमते हैं। मोह से अन्धों के लिये कौनसी चीज़ रमणीय नहीं होती ?

स्त्री में प्रीति नहीं।

अव्वल तो स्त्री में प्रीति है ही नहीं; और यदि है भी, तो वह अपने मतलब की प्रीति है; यानी अपने सुख के लिये स्त्री पति को चाहती है; पति के सुख के लिये प्रेम नहीं करती। अगर यह मान लें कि, स्त्री पति के सुख के लिये प्रेम करती है, तो उसे रोगी, ऋणी, नपुंसक और निर्धन पति से भी प्रेम करना चाहिये; पर यह बात तो संसार में देखी नहीं जाती। "आत्म-पुराण" में लिखा है:—

दरिद्रं पुरुषं दृष्ट्वा नार्यः कामातुरा अपि।
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपं यद्वच्च कृमिदूषितम्॥

ब्रह्मादिभ्यो विवाहेभ्यः प्राप्ता नारी पतिव्रता ।
भर्तुर्दरिद्रस्य मृतिं वाञ्छति क्षुधयार्दिता ॥

जिस तरह कीड़ों से दूषित मुर्दे को कोई छूना नहीं चाहता; उसी तरह काम से आतुर होने पर भी स्त्री अपने दरिद्री पति को छूना नहीं चाहती ।

धर्म-शास्त्र के अनुसार विवाही हुई पतिव्रता स्त्री भी—यदि भूखी हो, तो—दरिद्री पति की मृत्यु-कामना करती है ।

याज्ञवल्क्यजी मैत्रेयी से कहते हैं:—

न वारे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति ।
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ॥

अपने मतलब के लिये स्त्री को पति प्यारा होता है । पति के लिये स्त्री को पति प्यारा नहीं होता ।

जो लोग यह समझते हैं कि, स्त्री हमको प्यार करती है, वे बड़ी ग़लती पर हैं । जब तक मनुष्य निरोग रहता है, उसमें बल-वीर्य रहता है, उसके पास धन-सम्पद् रहती है, वह स्त्री की इच्छाओं और फ़रमायशों को पूरी करता है, तभी तक कदाचित् स्त्री पुरुष को चाहती है । अनेक स्त्रियाँ तो अपने रूपवान्, बलवान्, धनवान् और कोकादि सर्व कलाकुशल पति को भी त्याग देती हैं, इसीलिये शास्त्रों में लिखा है कि, स्त्री का विश्वास न करना चाहिये । कहीं-कहीं तो यहाँ तक लिखा है कि, गोद में बैठी स्त्री का भी विश्वास नहीं करना

चाहिये। किसी ही पुण्यात्मा को ऐसी स्त्री मिलती है, जो उसे दिल से चाहती हो। स्त्री का स्वभाव है कि, वह देखती किसी को है, बात किसी से करती है और चाहती किसी को है।

स्त्री की प्रीति-परीक्षा।

एक सेठ का पुत्र, सत्संग से लिये, नित्य किसी महात्मा के पास जाया करता था। माँ-बाप को उसका महात्मा के पास जाना पसन्द न था। उन्हें भय था कि, हमारा पुत्र वैरागियों की संगति में कहीं वैरागी न हो जाय, इसलिये उन्होंने शीघ्र ही उसकी शादी करदी। घर में बहू आ गयी। फिर भी लड़के का महात्मा के पास जाना कम न हुआ। तब सेठ-सेठानी ने बहू से कहा कि, तू इसकी ऐसी सेवा कर, जो यह महात्मा के पास जाना छोड़ दे। बहू ने अपनी सेवा-टहल और नाज़-नखरों से पति को वश में कर लिया। लड़के का मन महात्मा की संगति से हटने लगा। पहले वह रोज़ जाता था, आगे दूसरे-तीसरे दिन जाने लगा। एक दिन स्त्री ने कहा—"आप जब रात को चले जाते हैं, मैं अकेली पड़ी रहती हूँ। रात में स्त्री का अकेला रहना अच्छा नहीं; इसके सिवा, रात को मुझे डर भी लगता है। यह बात सुन कर, लड़के ने महात्मा के पास जाना कतई छोड़ दिया।"

एक दिन महात्मा कहीं जा रहे थे। राह में वही लड़का उन्हें मिल गया। उन्होंने उससे न आने की वजह पूछी। लड़के ने कहा—"महाराज! मेरी स्त्री बड़ी ही पतिव्रता है। वह मुझे हर तरह सुखी रखती है। मेरे बिना वह क्षण-भर भी अकेली नहीं रह सकती। मेरे लिये वह प्राण देती है। उसकी सच्ची प्रीति देख कर, मैं उसके वश में हो गया हूँ और इसीसे आपकी सेवा में नहीं आ सकता।"

महात्मा ने कहा—"भैया! सब अपने मतलब से प्रीति करते हैं। तुम्हारी स्त्री भी अपने सुख के लिये तुम से प्रीति करती है, तुम्हारे सुख के लिये नहीं। अगर विश्वास न हो, तो आज़माइश कर लो।" लड़का इस बात पर राज़ी हो गया। महात्मा ने उसे श्वास रोकने की विधि समझा दी और कहा,—"एक दिन तुम अपनी स्त्री से कहना कि, आज हम खीर-पूरी खायेंगे। जब वह खीर-पूरी बनाने लगे, तब तुम श्वास रोक कर लम्बे पड़ जाना। जब वह समझेगी कि तुम मर गये, तब हमारी बात की सचाई की परीक्षा हो जायगी।"

एक दिन लड़के ने घर पहुँचते ही स्त्री से कहा—"आज हमारा मन खीर-पूरी खाने पर है।" स्त्री ने कहा—"स्वामिन्! अभी बनाती हूँ।" यह कह वह खीर-पूरी बनाने लगी। उधर लड़का साँस चढ़ा कर पड़ गया और मुर्दा हो गया। थोड़ी देर बाद जब खीर-पूरी बन गयी, स्त्री ने आवाज़ दी,—"आइये, खाना
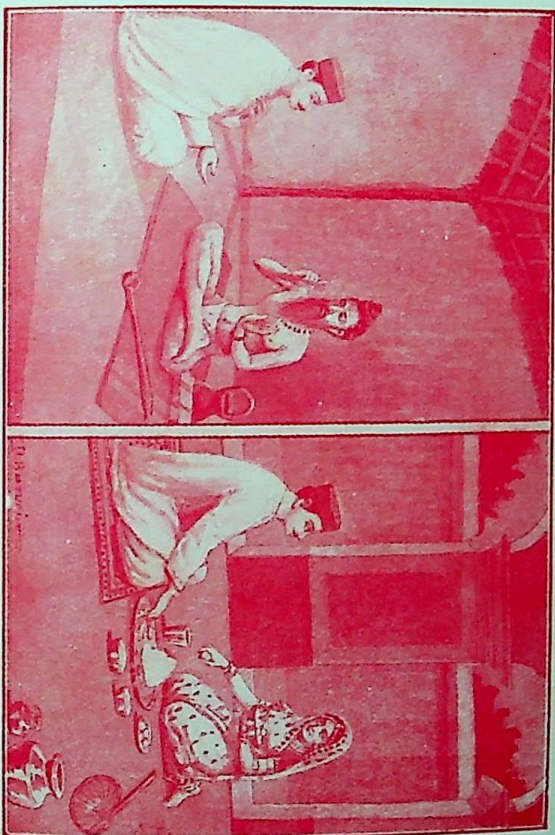
महात्मा कहते हैं—'भैया ! सब अपने मतलब से प्रीति करते हैं। अगर विश्वास न हो तो परीक्षा कर लो। पृष्ठ ६६

बहू अपनी सेवा-टहल और नाज़-नखरों से पति को वश में करती है। पृष्ठ ६५
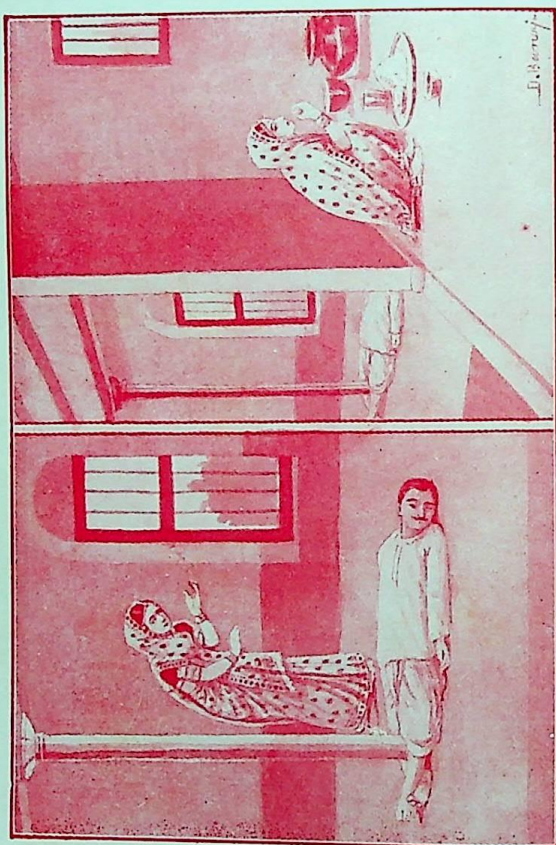
लड़का साँस चढ़ाकर पड़ गया और मुर्दा सा हो गया। आवाज़ देने पर जब वह खाने को न आया ; स्त्री ने जाकर देखा

अगर मैं पहले रोना पीटना आरंभ कर दूँ, तो न जाने कब तक भूखी मरूँगी, इसलिये पहले खीर खा लूँ और बचे सो

खा लीजिये।" जब वह न आया, तो स्त्री स्वयम् आयी। देखा तो लड़का मरा पड़ा है। कहीं साँस नहीं है। स्त्री ने विचार किया, यह तो मर गया। अगर मैं अभी रोना-पीटना आरम्भ करती हूँ, तो न जाने कब तक भूखी मरूँगी, और खीर भी बिगड़ जायगी। इसलिये पहले खालूँ और जो बचे उसे छींके पर रख दूँ। स्त्री ने अपने विचारानुसार पहले ख़ूब खीर-पूरी खाई, और शेष रख दी। इसके बाद रोना और छाती-माथा कूटना शुरू किया। उसका रोना सुन, घर के लोग इकट्ठे हो गये और पूछा, "यह कैसे मर गया ?" स्त्री ने कहा—"पेट में दर्द बताते थे, शायद उसी से मरे हैं।" लोगों ने कहा—"अब देर करना व्यर्थ है। इसे शीघ्र श्मशान पर ले चलो।" वे लोग उसे उठाने लगे, लेकिन उस के पैर दो खंभों में फँस जाने से न निकले। तब लोगों ने कहा कि, इन खंभों को काट कर पाँव निकालने चाहियें। यह सुनते ही स्त्री ने कहा—"ऐसा न करो; खंभे कट जायँगे, तो फिर कौन बनवा देगा ? इसलिये खंभ न काट कर, इनके पैर ही काट डालो; क्योंकि पाँव आखिर जलाये ही जायेंगे।" लोगों ने कहा "ठीक है।" ज्योंही उन्होंने पैर काटने को कुह्लाड़ा उठाया कि, लड़का उठ बैठा और बोला—"मेरा दर्द मिट गया।" यह देख, लोग अपने-अपने ठिकाने चले गये। लड़का महात्मा के पास गया और कहने लगा—"महात्मन् ! आपका कहना राई-रत्ती सच है। अब मुझे ज़रा भी शक़ नहीं। निस्सन्देह स्त्री अपने ही लिये पति को प्यार

करती है। सब की प्रीति झूठी है। अब मैं गृहस्थाश्रम में न रहूँगा। बस, उसी दिन से उसने अपनी स्त्री को त्याग कर वैराग्य ले लिया।

स्त्री आफ़तों की जड़ है।

स्त्री अनेक आपदाओं की मूल है। अनेक रूपवती स्त्रियों के कारण उन के पतियों के प्राण नष्ट हुए हैं। नूरजहाँ के कारण शेर अफ़ग़ान की जान मारी गई। स्त्री के पीछे सुन्द-उपसुन्द आपस में लड़ कर मर गये। स्त्री के पीछे राजा नहुष को स्वर्ग से गिरना पड़ा। स्त्री के कारण बालि मारा गया और रावण का सर्वनाश हुआ एवं शिशुपाल का सिर काटा गया। स्त्री के पीछे ही भारत को ग़ारत करने वाला महाभारत हुआ। स्त्री साँप से भी भयङ्कर है। साँप के तो काटने से मनुष्य मरता है, पर स्त्री की रूप-चिन्तना-मात्र से ही मनुष्य मर जाता है। विष खाने से मनुष्य एक बार ही मरता है, पर स्त्री-विष के सम्बन्ध से मनुष्य को बारबार जन्म लेना और मरना पड़ता है; क्योंकि मरते समय पुरुष का मन अपनी स्त्री में ज़रूर जाता है। मरण-समय जिस की वासना जिसमें रहती है, वह उसे अवश्य मिलता है। कहा है:—

वासना यत्र यस्य स्यात्सतं स्वप्नेषु पश्यति ।
स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासनातो वपुर्नृणाम् ॥
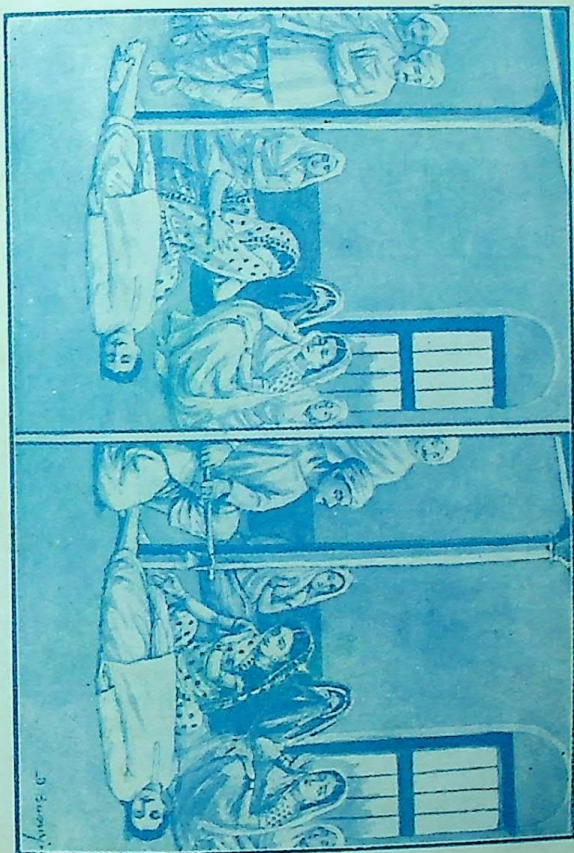
लड़के की स्त्री और माँ वगैरः उसके चारों तरफ जमा होकर रोने पीटने लगे।

(पृष्ठ ६६)

लोग मुर्दे को श्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे, किन्तु उसके पैर खंभे में अड़-जाने से न निकले। लोगों ने खंभा काटना चाहा, तो स्त्री ने कहा—"उनके पैर काट दो, क्योंकि आखिर यह जलाये ही जायेंगे।

जिस में जिसकी वासना रहती है, वह उसे स्वप्न में दीखता है। स्वप्न की तरह ही मरण को समझो। मरणकाल में जिस की वासना रहती है, वही उसे मिलता है; क्योंकि यह शरीर ही वासनामय है।

स्पष्ट है, कि स्त्री संसार-बन्धन का कारण है। स्त्री के कारण से पुरुष को जन्म लेना और मरना पड़ता है, इसलिये सच्चे संन्यासी स्त्री को त्याग देते हैं और स्त्री का नाम तक नहीं लेते। क्योंकि स्त्री की याद करने से ही धीरतानाशक काम उत्पन्न हो जाता है, फिर देखने-छूने और बातें करने से तो काम के जागने में सन्देह ही क्या है? कहा है:—

विलीयते घृतं यद्वदग्नेः संसर्गतस्तथा।
नारी संसर्गतः पुंसो धैर्य्यं नश्यति सर्वथा॥

जिस तरह अग्नि के सम्बन्ध से घी पिघल जाता है; उसी तरह स्त्री के सङ्ग से पुरुष का धीरज नाश हो जाता है।

स्त्री परलोक-साधन में बाधक है।

मनुष्य जैसे के संग रहता है वैसा ही हो जाता है। स्वाति की बूँद केले में कपूर हो जाती है, सीप में मोती बन जाती है और काले नाग में भयंकर विष का रूप धारण करती है। उसी तरह पुरुष भी ज्ञानियों की संगति में ज्ञानी, अज्ञानियों की

सङ्गति में अज्ञानी और कामियों की सङ्गति में कामी-क्रोधी हो जाता है। कहा है:—

कामिनां कामिनीनां च संगात्कामी भवेत्पुमान् ।
देहान्तरे ततः क्रोधी लोभी मोही च जायते ॥

कामी पुरुषों और कामिनियों के संसर्ग से पुरुष कामी हो जाता है तथा आगे के जन्म में भी क्रोधी, लोभी और मोही होता है। काम, क्रोध और मोह प्रभृति से मन ख़राब हो जाता है। वैसे अशुद्ध मन में ब्रह्म का उदय नहीं होता। शुद्ध मन से ही परमेश्वर प्राप्त हो सकता है। जिस के घर में स्त्री है, वह काम, क्रोध और मोह से बच नहीं सकता, और जिस का मन दर्पण काम-क्रोध रूपी धूल से मैला हो रहा है, उस मैले दर्पण में परमेश्वर कैसे दीख सकता है? अतः मोक्ष चाहने वालों को स्त्री से सदा दूर रहना चाहिये। महात्मा कबीर कहते हैं:—

(१)

नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर ।
देखत ही तें बिष चढ़ै, मन आवे कछु और ॥

(२)

सर्व सोने की सुन्दरी, आवे बास-सुवास ।
जो जननी हो आपनी, तौहू न बैठे पास ॥

(३)

कामिनि काली नागिनी, तीन लोक मंझारि ।
नाम सनेही ऊबरा, विषिया खाये झारि ॥

(४)

नारी कहूँ कि नाहरी, नख-सिख सों यह खाय ।
जल बूड़ा तो ऊबरे, भग बूड़ा बहि जाय ॥

(५)

एक कनक अरु कामिनी, तजिये भगिये दूर ।
हरि बिच पारें अन्तरा, यम देंसी मुख धूर ॥

(६)

जहाँ काम तहाँ राम नहीं, राम तहाँ नहीं काम ।
दोऊ कबहूँ ना रहें, काम राम इक ठाम ॥

(७)

अविनाशी बिच धार तिन, कुल कंचन अरु नार ।
जो कोई इन ते बचै, सोई उतरे पार ॥

(१)

स्त्री को घूर कर न देखना चाहिये और देख कर उसके पीछे न लगना चाहिये; क्योंकि स्त्री को देखने-मात्र से ही ज़हर चढ़ जाता है और मन और ही तरह का हो जाता है ।

(२)

सुन्दरी सोने की ही क्यों न हो और उस में मनभावन सुगंध भी क्यों न आती हो, यदि वह अपनी जननी भी हो, तो भी उसके पास न बैठो।

(३)

स्त्री काली नागिन है। केवल ईश्वर का नाम जपने वाले उस से बचे; विषय-भोगियों को तो वह एक दम से खागई—कोई न छोड़ा।

(४)

इसे मैं नारी कहूँ या नाहरी—सिंहनी कहूँ ? क्योंकि यह नख-सिख से खा जाती है। जल में डूबा बच जाता है; पर स्त्री में डूबा नहीं बचता।

(५)

एक सुवर्ण और दूसरी स्त्री इन से बच कर रहो। यह भगवान् के और जीव के बीच में खाई बनाते हैं, जिससे यमराज मुँह में धूल डालता है।

(६)

जहाँ स्त्री है वहाँ राम नहीं है और जहाँ राम है वहाँ स्त्री नहीं। स्त्री और राम दोनों एक जगह नहीं रह सकते।

(७)

अविनाशी भगवान् और जीव के बीच में तीन खाइयाँ हैं:— (१) कुल, (२) कंचन, और (३) कामिनी। जो इन तीनों से बचता है, वही पार होकर भगवान् तक पहुँच जाता है।

क्या स्त्री में आनन्द है ?

स्त्री में कुछ भी आनन्द नहीं है। स्त्री हर तरह दुःखों की खान और मन की अशान्ति की मूल है। स्त्री से मैथुन करने में पुरुष को जो आनन्द आता है, वह उसका अपना आनन्द है; स्त्री का नहीं। कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है; पर सूखी हड्डी में ख़ून नहीं होता। कुत्ते का अपना ख़ून निकलता है और उसे उसी का स्वाद आता है, पर वह अज्ञानी उस आनन्द को हड्डी में समझता है। विषयी पुरुष भी कुत्ते की तरह ही हैं। विषय जड़ हैं। विषयों में आनन्द कहाँ ? आनन्द आत्मा में है। जब पुरुष का वीर्य मैथुन के अन्त में स्खलित होता है, तब क्षण-भर के लिये मन की वृत्ति स्थिर हो जाती हैं। उस स्थिर वृत्ति में चेतन आत्मा का अक्स पड़ता है। बस, उसी से पुरुष को आनन्द आता है। पर अज्ञान से, कुत्ते की तरह, वह उस आनन्द को स्त्री में समझता है। तात्पर्य यह निकला कि, स्त्री में कुछ भी आनन्द नहीं, आनन्द आत्मा में है।

स्त्री-त्यागी ही पण्डित है।

मनुष्यों और पशुओं में क्या भेद है ? मनुष्य खाते, सोते डरते और स्त्री-भोग करते हैं और पशु भी यही चारों काम करते हैं। पर इन दोनों में अन्तर यही है कि, मनुष्य को धर्म्म-

ज्ञान है और पशु को नहीं। यदि मनुष्य पशुओं की तरह अज्ञानी हो, तो वह भी पशु ही है। कहा है—

अधीत्य वेदशास्त्राणि, संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति, सधर्मा श्वाश्वसूकरैः॥

जो पुरुष वेद-शास्त्रों को पढ़कर भी संसार से या स्त्री-पुत्र आदि से प्रीति रखते हैं, उनसे बढ़कर मूर्ख कौन है? क्योंकि स्त्री-पुत्र प्रभृति में तो कुत्ते, घोड़े और सूअर भी प्रेम रखते हैं। शुकदेवजी ने भी "भागवत" में कहा है:—

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य, वेदशास्त्राण्यधीत्य च।
बध्यते यदि संसारे, को विमुच्येत मानवः?

दुर्लभ मनुष्य-चोला पाकर और वेद-शास्त्र पढ़कर भी यदि मनुष्य संसार में फँसा रहे, तो फिर संसार-बन्धन से छुटेगा कौन?

कबीरदासजी कहते हैं:—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट में खानि।
कहा मूर्ख कहा पंडिता, दोनों एक समान॥

जब तक मन में काम, क्रोध, मद और लोभ है, तब तक पण्डित और मूर्ख दोनों समान हैं। जिस में काम, क्रोध, मद और लोभ नहीं, वही पण्डित है और जिस में ये हैं वह मूर्ख या अज्ञानी है।

शंकराचार्य्यकृत "प्रश्नोत्तरमाला" में लिखा है—

शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा ?
मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु ।
प्राज्ञोऽति धीरश्च शमोऽस्ति को वा ?
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥

संसार में सब से बड़ा शूरवीर कौन है ? जो काम-वाणों से पीड़ित नहीं है । प्राज्ञ, धीर और समदर्शी कौन है ? जिसे स्त्री के कटाक्षों से मोह नहीं होता ।

महात्मा तुलसीदासजी को स्त्री से विरक्ति ।

एक बार महात्मा तुलसीदासजी की स्त्री अपने पीहर चली गई; महात्माजी को आधीरात के समय स्त्री-प्रसंग की इच्छा हुई। आपकी ससुराल और आपके गाँव के बीच में नदी पड़ती थी। आप फौरन ही घर छोड़ ससुराल को चल दिये। भयङ्कर रात में प्रबल बेग से बहती हुई नदी को पार कर आप ससुराल पहुँच गये। लेकिन जब घर के द्वार पर पहुँचे तो पौली का द्वार बन्द पाया। अब आप मकान में चढ़ने की तरकीब सोचने लगे। इतने में आप को एक रस्सी सी नज़र आई, आप उसे पकड़ कर चढ़ गये और अपनी स्त्री के कमरे में जा पहुँचे। स्त्री आपको देखते ही चौकन्नी सी हो गयी। आपने कहा—"प्यारी ! मैं तेरे लिये इस समय महा कष्ट भोग कर आया हूँ। मेरी अभिलाषा पूर्ण कर।"

स्त्री आपको देखते ही पलँग से नीचे बैठ गई और बोली—"हे मेरे पतिदेव ! देखिये तो रात कैसी भयावनी हो रही है। बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़क से मनुष्य का हृदय काँप उठता है। उधर नदी चढ़ रही है। आपने अपने शरीर की परवा न कर मुझे दर्शन दिये; इसलिये मैं आप की अनुग्रहीत हूँ। परन्तु स्वामिन् ! यह तो बताइये, आप मकान में आये कैसे, क्योंकि द्वार बन्द है ?" आपने कहा—"एक रस्सी लटक रही थी, उसी के सहारे मैं चढ़ आया।" स्त्री ने जाकर देखा, तो वह रस्सी नहीं, वरन् एक लम्बा-चौड़ा काला सर्प था। देखते ही स्त्री के सिर में चक्कर आ गया। उसके मुँह से इतना ही निकला—"स्वामिन् ! जितना प्रेम आपका मुझ में है, यदि इतना ही हरि में होता, तो आपका निश्चय ही बड़ा उपकार होता।

"जितना प्रेम हराम से, उतना हरि से होय।
चला जाय बैकुण्ठ को, पला न पकड़े कोय॥"

कहते हैं, तुलसीदासजी तत्क्षण उसे गुरु कह कर वन को चले गये।

पुरुष आठ पहर-चौंसठ घड़ी स्त्री की सेवा करता है, उसे हर तरह प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, उसकी आज्ञा-पालन के लिये तैयार रहता है, आप नाना प्रकार के कष्ट सहता, जने-जने की .खुशामद करता, नर्म-गर्म सहता, पर स्त्री
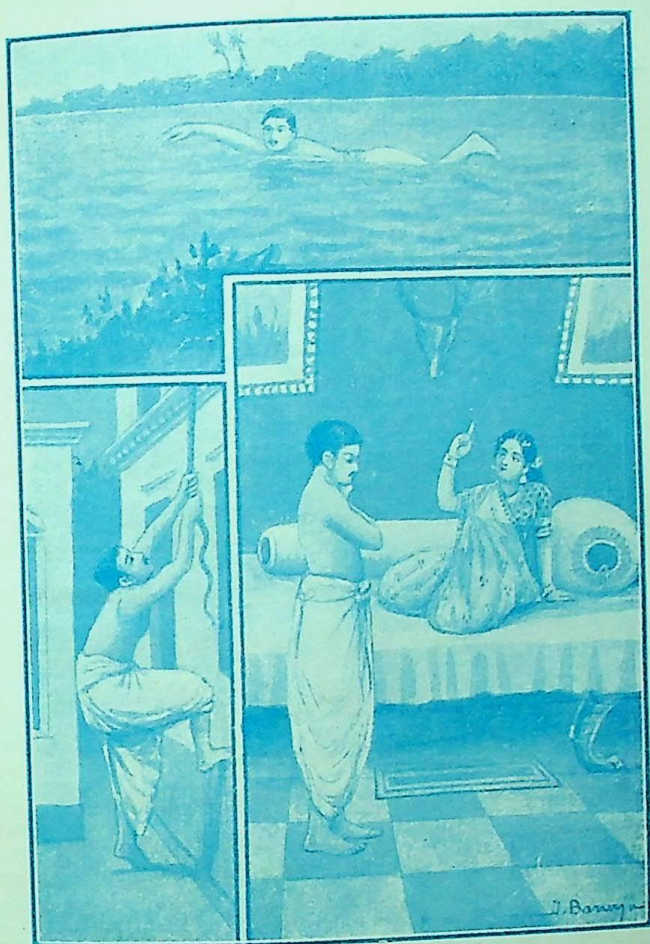
गोस्वामी तुलसीदासजी नदी पार कर ससुराल पहुँचे, द्वार बन्द पाकर सर्प को रस्सी समझ उसे पकड़ ऊपर चढ़ गये। जब स्त्री के सामने पहुँचे—स्त्री कहने लगी:—"आप का जितना प्रेम मुझ में है, उतना उस जगदीश में हो, तो आपका भला हो जाय।

पृष्ठ ७४

के लिये तो कुछ न कुछ लेकर ही घर में घुसता है; रात-दिन बाहर-भीतर उसी का ध्यान रखता और उस के लिये अपने प्राणों तक की परवा नहीं करता। इस के एवज़ में स्त्री से उसे क्या मिलता है ? भग या पेशाब का पात्र। दिन-रात चिन्ता और अशान्ति। यहाँ नरक और वहाँ नरक। अगर पुरुष इतनी ही या इससे कुछ कम भक्ति भी परमात्मा की करे, तो निश्चय ही उसका उपकार हो सकता है। इस जन्म में उसे सुख-शान्ति मिले और देह छोड़ने पर स्वर्ग या परमपद मिले। शङ्कराचार्य्य जी ने कहा है:—

कामं क्रोधं लोभं मोहं त्यक्त्वात्मानं पश्य हि कोऽहम्।
आत्मज्ञानविहीना मूढ़ाः ते पच्यन्ते नरक निगूढ़ाः॥

काम, क्रोध, लोभ और मोह को छोड़ कर आत्मा में देख कि, मैं कौन हूँ। जो आत्मज्ञानी नहीं हैं, जो अपने स्वरूप या आत्मा के सम्बन्ध में नहीं जानते, वे मूर्ख नरकों में पड़े हुए पकते हैं।

जहाँ स्त्री होगी, वहाँ काम, क्रोध, लोभ और मोह अवश्य होंगे; और जहाँ ये होंगे, वहाँ भगवान् नहीं होंगे। मतलब यह है कि, जब मनुष्य के हृदय में काम, क्रोध आदिक नहीं रहते, तब उसका हृदय शुद्ध रहता है। शुद्ध हृदय में ही आत्मा का दर्शन होता है। जिस तरह साफ़ आईने में मुँह स्पष्ट दीखता है, स्थिर और निर्मल जल में सूर्य-विम्ब साफ़ दीखता है;

उसी तरह शुद्ध, स्थिर और निर्मल मन में परमात्मा साक्षात्
दीखता है।

शिक्षा—जो परमात्मा के दर्शन करना चाहें; जो सदा सुख भोगना चाहें, जो भव-बन्धन से पीछा छुड़ाना चाहें, उन्हें कामिनी और काञ्चन में आसक्ति न रखनी चाहिये। जो इनमें मन लगाये रहते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—भगवान् उनसे सदा दूर रहते हैं।

छप्पय।

कुच आमिष की गाँठ, कनक के कलश कहत छवि।
मुखहू कफ को धाम, कहत शशि के समान कवि॥
झरत मूत्र अरु धातु, भरी दुर्गन्ध ठौर सब।
ताकौ चंपकबेल कहत, रस रेल ठेल दब॥
यह नारि निहारी निन्दतन, बहँके विषयी बावरे।
याकों बढ़ाय, वाकों विरद, बोले बहुत उतावरे॥२०॥

20. The breasts of a woman which are nothing but lumps of flesh, are likened by poets to a pair of vessel made of gold. Her mouth which is only a depository of saliva is likened to the Moon. Her thighs although wet with falling drops of urine are likened to the trunk of an elephant. Oh ! how contemptible is the person of a woman which is so servilely flattered by the poets !

कुच = स्तन। आमिष = मांस। कनक = सोना। कलश = घड़ा। धाम = घर। शशि = चन्द्रमा। ठौर = जगह। चम्पकबेल = चम्पकलता। बावरे = पागल। विरद = तारीफ़ कर।

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ॥
विजानन्तोऽप्येतान्वयमिह विपज्जालजटिला-
न्नमुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥२१॥

अज्ञानवश, पतंग दीपक की लौ पर गिरकर अपने तईं भस्म कर लेता है; क्योंकि वह उसके परिणाम को नहीं जानता; इसी तरह मछली भी काँटे के मांस पर मुँह चलाकर अपने प्राण खोती है, क्योंकि वह उससे अपने प्राण-नाश की बात नहीं जानती। परन्तु हम लोग तो अच्छी तरह जान-बूझकर भी विपद्-मूलक विषयों की अभिलाषा नहीं त्यागते। मोह की महिमा कैसी विस्मयकर है! ॥२१॥

पतङ्ग दीपक के रूप पर मरता है, उसके प्रेम में रँगा रहता है; इसलिये उसको आलिङ्गन करने के लिये उस पर झपट कर गिरता है और अपना नाश कराता है। पतङ्ग को ज्ञान नहीं है, कि इस पर गिरने से मेरी मौत हो जायगी। इसी तरह मछली मछुए के लगाये हुए काँटे के मांस पर मुँह लपकाती है और कण्ठ में काँटा लगने से मर जाती है; क्योंकि वह नहीं जानती, कि मेरी मृत्यु का सामान है। पतङ्ग और मछली तो अज्ञानवश अपनी जान खोते हैं; पर आश्चर्य्य तो यह है कि, मनुष्य—जिसे भगवान् ने समझ दी है, जो जानता

है कि, विषयों की कामना आफ़त की जड़ है, विषयों में सुख नहीं, घोर विपद् है; विषय विष से भी अधिक दुःखदायी हैं,— विषयों की इच्छा करता है। इससे कहना पड़ता है कि, मोह की माया बड़ी कठिन है। महात्मा कबीरदास कहते हैं:—

शंकर हूँ ते सबल है, माया या संसार।
अपने बल छूटे नहीं, छुड़ावे सिरजनहार॥

21. The moth may burn itself by falling over the flame of a lamp, because it is ignorant of the result of its action. The fish may swallow the bait hung by a fisherman, because it is similarly ignorant. How wonderful should the force of attachment be, that we, being thoroughly conversant with the result of action, do not care to renounce the network which brings distress and misery in the end !

फलमलमशनाय स्वादुपानाय तोयं
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥२२॥

खाने के लिये फलों की इफ़रात है, पीने के लिये मीठा जल है, पहनने के लिये वृक्षों की छाल है; फिर हम धनमद से मतवाले दुष्टों की बात क्यों सहें ? ॥२२॥

जब कि भगवान् ने हमारे लिये खाने को फल-ही-फल पैदा कर दिये हैं, पीने को जगह-जगह मीठा और शीतल जल भर दिया है, पहनने के लिये दरख़्तों की छाल पैदा कर दी हैं; फिर क्या ज़रूरत, जो हम धन से मतवाले लोगों के ताने और कठोर बचन सहें ?

मनुष्य को सन्तोष नहीं, उसे तृष्णा नहीं छोड़ती; इसीसे वह विषयों के भोगने की लालसा से धनियों की ख़ुशामदें करता है, उनकी टेढ़ी-सूधी सुनता है, अपनी प्रतिष्ठा खोता है, निरादर और अपमान सहता है। अगर वह सन्तोष कर ले, तो उसे ऐसे दुष्टों और धन-मद से मतवाले शैतानों की ख़ुशामद क्यों करनी पड़े ? अपनी मानहानि क्यों करानी पड़े ? परमात्मा इन शैतानों से बचावे ! एक तो ना तजरुबेकार और तंगदिल लोग वैसे ही शैतान होते हैं, पर जब उन पर दौलत का नशा चढ़ जाता है, तब तो उनकी शैतानी का ठिकाना ही क्या ? उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं और ख़ूब कहते हैं—

नशा दौलत का बद अतवार को, जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतान के, एक और भी शैतान चढ़ा॥

अनुभव-विहीन और तंगदिल मनुष्य पर जिस समय दौलत का नशा चढ़ गया, तब मानो शैतान के सिर पर एक और शैतान चढ़ गया।

जिसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, वह किसी की खुशामद क्यों करेगा ? वह अपना मान क्यों खोवेगा ? निस्पृह के लिये तो जगत् तिनके के समान है। इसलिये, सुख चाहो तो इच्छाओं को त्यागो।

अगर आप आशा, तृष्णा और इच्छा को न त्यागोगे, धनियों के पीछे-पीछे फिरोगे, तो आपको सिवा मानहानि और बे-इज़्ज़ती के कुछ भी न मिलेगा; पर यदि आप कुछ भी इच्छा न रक्खोगे, किसी के भी पास न फटकोगे तो दुनिया आपकी खुशामद करेगी, आपकी पूजा-प्रतिष्ठा करेगी और लक्ष्मी आपकी चेरी होकर आपके क़दमों में पड़ी रहेगी। किसी ने ठीक ही कहा है:—

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफ़रत हमने की, तो बेक़रार आने को है॥

दोहा।

भूमि शयन बल्कल वसन, फल भोजन जल पान।
धन मदमाते नरन को, कौन सहत अहमान ? ॥२२॥

22. While there is plenty of fruit to eat, delicious water to drink, the surfaces of the earth to sleep upon and the bark of trees to wear, we should not care to bear the taunts of evil-minded persons whose senses have all been taken prisoner by newly-got wealth.

तलब करना = बुलाना। नफ़रत = घृणा। बेक़रार = बेचैन। भूमि = ज़मीन। शयन = सोना। बल्कल = छाल। वसन = कपड़ा। अहमान = अभिमान पूर्ण बातें।

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा ।
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ॥
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते ।
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥२३॥

कोई तो ऐसे बड़े दिल वाले लोग हुए, जिन्होंने प्राचीन-काल में इस जगत् की रचना की; कुछ ऐसे हुए जिन्होंने इस जगत् को अपनी भुजाओं पर धारण किया; कुछ ऐसे हुए जिन्होंने समग्र पृथ्वी जीती और फिर तुच्छ समझ कर दूसरों को दान कर दी; और कुछ ऐसे भी हैं जो चौदह भुवन का पालन करते हैं। जो लोग, थोड़े से गाँवों के मालिक होकर, अभिमान के ज्वर से मतवाले हो जाते हैं, उनके सम्बन्ध में हम क्या कहें? ॥२३॥

इस जगत् में ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने ने जगत् की रचना कर डाली, पर उन्हें ज़रा भी अभिमान न हुआ। कुछ ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने इसे अपनी भुजाओं पर रक्खा, पर अभिमान न किया। कुछ ऐसे हुए, जिन्होंने सारी दुनियाँ को जीत लिया और फिर तुच्छ समझ कर दान भी कर दिया, पर उन्हें अभिमान न हुआ। कोई ऐसे हैं, जो इस संसार का पालन करते और इस पर आधिपत्य रखते हैं, पर उन्हें ज़रा भी घमण्ड नहीं। फिर वे लोग जो चन्द गाँवों के मालिक बन जाते हैं, घमण्ड के मारे क्यों ऐंठने लगते हैं?

सज्जन लोग धनैश्वर्य्य और प्रभुता पाकर कभी अहङ्कार नहीं करते; ओछे या नीच ही थोड़ी सी विषय-सम्पत्ति पाकर अभिमान किया करते हैं। नीति-रत्न में लिखा है:—

दिव्यं चूतरसं पीत्वा, न गर्वं याति कोकिलः।
पीत्वा कर्दमपानीयं, भेको मकमकायते॥
अगाधजलसञ्चारी, न गर्वं याति रोहितः।
अंगुष्ठोदकमात्रेण, सफरी फरफरायते॥

उत्तम रसाल के रस को पीकर कोकिल गर्व नहीं करता, किन्तु कीचड़-मिला पानी पीकर ही मैंडक टरटराया करता है।

अगाध जल में रहने वाली रोहित मछली गर्व नहीं करती, किन्तु अँगूठे जितने चल में सफरी मछली ख़ुशी से नाचती फिरती है।

बस; छोटे और बड़े, पूरे और ओछे लोगों में यही अन्तर है। जो जितना छोटा है, वह उतना ही घमण्डी और उछलकर चलने वाला है और जो जितना ही बड़ा और पूरा है, वह उतना ही गम्भीर और निराभिमानी है। नदी नाले थोड़े से जल से इतरा उठते हैं; किन्तु सागर, जिसमें अनन्त जल भरा है, गम्भीर रहता है।

अभिमान या अहंकार महा अनर्थों का मूल है। यह नाश की निशानी है। अहंकारी से परमात्मा दूर रहता है।

जिस से परमात्मा दूर रहता है, उस के दुःखों का अन्त कहाँ ? अतः मनुष्यो ! अभिमान को त्यागो। जो आज टुकड़ों का मुहताज है, वह कल राजगद्दी का स्वामी दिखाई देता है और आज जिस के सिरपर राजमुकुट है, सम्भव है, कि कल वह गली-गली मारा-मारा फिरे। संसार की यही गति है, इसलिये अभिमान वृथा है। परमात्मा ने एक-से-एक बढ़ कर बना दिया है। कहा है:—

एक-एक से एक-एक को, बढ़कर बना दिया।
दारा किसी को, किसी को सिकन्दर बना दिया॥

आपको किस बात का गर्व है ? यह राज्य और धन-दौलत क्या सदा आपके कुल में रहेंगे या आपके साथ जायँगे ? जो रावण लंकेश्वर था, जिसने यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और देवताओं तक को अपने अधीन कर लिया था, आज वह कहाँ है ? उसका धन-वैभव क्या उसके साथ गया ? जिस राम ने समुद्र का पुल बाँधकर, बानर-सेना से रावण का नाश किया, वही

---

* दारा ईरान का बादशाह था। वह अपने समय में मध्याह्न के मार्त्तण्ड की तरह तपता था। उसने बहुत से देश जीत लिये। किसी को उम्मीद न थी कि, दारा भी किसी से पराजित होगा; पर ईश्वर ने तो एक से एक बढ़ कर बनाये हैं। उसने दारा को भी परास्त करने वाला सिकन्दर पैदा कर दिया। सिकन्दर आज़म ने दारा को शिकस्त दी और भारत पर भी चढ़ाई की।

राम आज कहाँ हैं ? जिस बालि ने रावण जैसे त्रिलोक-विजयी को अपने पुत्र के पालने से बाँध रक्खा था, आज वह बालि कहाँ है ? जिस सहस्रबाहु ने रावण के सिर पर चिराग़ रख कर जलाया था, वह सहस्रबाहु ही आज कहाँ है ? चारों दिशाओं को अपने भुजबल से जीतने वाले भीमार्जुन आज कहाँ हैं ? हरिश्चन्द्र, कर्ण और बलि से दानी आज कहाँ हैं ? इस पृथ्वी पर अनेक एक-से-एक बली राजा और शूरवीर हो गये, पर यह पृथ्वी किसी के साथ न गई। क्या आपकी धन-दौलत-ज़मीन्दारी या राजलक्ष्मी अटल और स्थिर है ? क्या यह आपके साथ जायगी ? हरगिज़ नहीं। आप जिस तरह ख़ाली हाथ आये थे, उसी तरह ख़ाली हाथ जायेंगे।

अभिमानियों का नशा उतारने के लिये उस्ताद ज़ौक़ ने भी ख़ूब कहा है:—

दिखा न जोशो ख़रोश इतना, ज़ोर पर चढ़कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर—चढ़कर॥

हे मनुष्य ! ज़ोर में आकर इतना जोश-ख़रोश न दिखा; इस दुनिया में बहुत से दरिया चढ़-चढ़ कर उतर गये,— कितने ही बाग़ लगे और सूख गये।

महात्मा कबीरदासजी कहते हैं—

धरती करते एक पग, करते समन्दर फाल।
हाथों परवत तोलते, ते भी खाये काल॥

हाथों परवत फाड़ते, समुन्दर घूँट भराय ।
ते मुनिवर धरती गले, कहा कोई गर्व कराय ? ॥

छप्पय ।

भये जगत में धन्य ! धीर, जिन जगत रच्यो है ।
काहू धारयो शीश, अजौं वह नाहिं लच्यो है ॥
काहू दीनों दान, जीत काहू बस कीनो ।
भुवन चतुर्दश भोग कियो, काहू जस लीनों ॥
इमि अधिक एक सों एक भे, तुम हो तिन में तुच्छवित ।
दश बीस नगर के नृपति ह्वै, यह मद को ज्वर तोहि कित ? ॥२३॥

23. There were many large-hearted people in the past who helped in the early creation of the world. There were others who maintained it by the force of their arms and still others who won the whole earth and then gave it away to the needy valuing it no better then a straw. There are some even now in this world who enjoy the overlordship of the fourteen regions. What should we say of the fever of vanity contracted by persons who won only a few villages ?

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ।

रच्यो = रचना की । काहू = किसी ने । धारी = धारण की । शीश = सिर पर । अजौं = अब तक । लच्यौ = झुका । भुवन चतुर्दश = चौदह भुवन । जस = यश । इमि = इस तरह । भे = हुए । तिन में = उनमें । तुच्छवित = नाचीज़ । तोहि = तुझे ।

इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसिवयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ॥२४॥

अगर तू राजा है, तो हम भी गुरु की सेवा से सीखी हुई विद्या के अभिमान से बड़े हैं। अगर तू अपने धन और वैभव के लिये प्रसिद्ध है, तो कवियों ने हमारी विद्या की कीर्त्ति भी चारों ओर फैला रक्खी है। हे मानभञ्जन करने वाले, तुझ में और हम में ज़ियादा फ़र्क़ नहीं है। अगर तू हमारी ओर नहीं देखता, तो हमें भी तेरी परवा नहीं है ॥२४॥

अगर तुझे अपने बल और धन का अभिमान है, तो हमें भी अपनी विद्या का अभिमान है। तुझमें और हम में कोई बड़ा भेद नहीं है। यदि तुझे हमारी ज़रूरत नहीं है, तो हमें भी तेरी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमें तुझ से कुछ लेना नहीं।

छप्पय ।

तुम पृथ्वीपति भूम, भरे अभिमान विराजत।
हम पाई गुरु-गेह बुद्धि, बल ताके गाजत ॥
तुम धन सों विख्यात, सुकवि गावत कछु पावत।
हम यश सों विख्यात, रहत निश द्योस पढ़ावत ॥
तुम हमहिं बीच अन्तर बड़ौ, देखो सोच विचार चित।
एते पर जो मुख फेरहो, तौ हमकों एकान्तहित ॥२४॥

पृथ्वीपति = राजा। गुरु-गेह = गुरु के घर। गाजत = गरजते हैं। विख्यात = प्रसिद्ध। सुकवि = उत्तम कवि। निशद्योस = रातदिन। अन्तर = फ़र्क़। एतेपर = इतने पर भी। मुखफेर हो = मुँह फेरोगे।

24. If thou art a king, we too are great in our pride of knowledge learnt by serving our teacher. If thou art famous for the power and riches, the poets have proclaimed the fame of our knowledge for and wide. Thus O thou! who dost not honour anybody, there is not much difference between us both. If thou dost not care to look towards us, we too are absolutely without any desire to court thy attention.

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम्।
तदंशस्यात्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जड़ाः प्रत्युत मुदम् ॥२५॥

सैकड़ों हज़ारों राजा इस पृथ्वी को अपनी-अपनी कहकर चले गये, पर यह किसी की भी न हुई; तब राजा लोग इस के स्वामी होने का घमण्ड क्यों करते हैं? दुःख की बात है, कि छोटे-छोटे राजा छोटे-से-छोटे टुकड़े के मालिक होकर अभिमान के मारे फूले नहीं समाते! जिस बात से दुःख होना चाहिये, मुर्ख उससे उल्टे खुश होते है ॥२५॥

इस पृथ्वी पर रावण और सहस्रबाहु प्रभृति एक-से-एक बढ़कर राजा हो गये, जिन्होंने त्रिकोली अपनी अँगुली पर नचा डाली। वे कहते थे, कि हमारे बराबर जगत् में दूसरा कोई नहीं

है। यह पृथ्वी सदा हमारे ही पास रहेगी। पर वे सब एक दिन इसे छोड़कर चल बसे; यह उन की न हुई; वे इसे सदा न भोग सके। तब आजकल के छोटे-छोटे राजा, जो अपने तईं पृथ्वीपति समझ कर अभिमान के नशे में चूर रहते हैं, इसके लिये लड़ते हैं, खून-ख़राबी करते हैं, क्या यह उनकी अज्ञानता नहीं हैं? उनकी यह छोटी सी प्रभुता—मलिकाई सदा-सर्वदा न रहेगी; यह बिजली की-सी चमक और बादल की-सी छाया है। इस पर घमण्ड करना बड़ो भूल की बात है। महात्मा कबीर कहते हैं:—

चहुँदिशि पाका कोट था, मन्दिर नगर मँझार।
खिरकी-खिरकी पाहरू, गज बन्धा दरबार॥
चहुँदिशि तो योद्धा खड़े, हाथ लिये हथियार।
सब ही यह तन देखता, काल ले गया मार॥
आस-पास योद्धा खड़े, सबै बजावें गाल।
मञ्झ महल ते ले चला, ऐसा परबल काल॥

हे मनुष्य! मौत से डर, अभिमान त्याग। किसी राजा की नगरी के चारों तरफ पक्की शहरपनाह थी, उसका महल शहर के बीचों-बीच था, हरेक फाटक की खिड़की पर पहरेदार थे, दरबार में हाथी बँधा था, चारों तरफ मुसल्ला सिपाही-हथियार बाँधे हुए खड़े थे। आस-पास खड़े हुए योद्धा गाल बजाते ही रह गये और वह बलवान् काल, ऐसा बन्दोबस्त होने पर भी,

बीच महल से राजा को ले गया। सब देखते-के-देखते रह गये। वही बलवान् काल तुम्हारी घात में तुम्हारे सिर पर मँडरा रहा है। आप भी उस से किसी तरह बच नहीं सकते।

यह दुनिया नापायेदार है, मनुष्य-शरीर का कोई ठिकाना नहीं; फिर भी मनुष्य के अभिमान की सीमा नहीं। थोड़ी सी विषय-सम्पत्ति पर वह इतना इतरा उठता है, कि ईश्वर को भी मान्य नहीं समझता। उस्ताद ज़ौक़ ने ठीक ही कहा है—

मौत ने कर दिया नाचार, वगर्ना इन्साँ।
है वह ख़ुदबीं, कि ख़ुदाका भी न क़ायल होता॥

मनुष्य के घमण्ड का कुछ ठिकाना है—किसी को कुछ नहीं समझता। मौत ने इसे लाचार कर रक्खा है, नहीं तो यह ईश्वर को भी कुछ न समझता।

शिक्षा—अगर अपना भला चाहते हो, तो अभिमानको त्यागो; यह बड़ा भारी शत्रु है। जिन्होंने इसकी संगति की, उन्हीं का नाश हुआ। अभिमान से ही उस लंकाधिपति रावण का नाश हुआ, जिसने त्रिलोकी को अपने अधीन कर रक्खा था और जो देवताओं से सेवा और हवा-पानी से टहल कराता था। अभिमानसे ही मध्याह्न के मार्त्तण्डकी भाँति तपते हुए देहली के मुग़ल बादशाह औरङ्गजेबकी सल्तनतकी जड़ हिल गई, मुग़लिया ख़ान्दानसे बादशाहत बिदा ही हो गई। अभिमान ने ही उस जर्मन कैसर को राव से रङ्क बना दिया, जिसने छोटे से देश का राजा होकर भी, सारी पृथ्वी को चार साल तक अपनी उँगली पर नचाया। भाइयो, इन दृष्टान्तों को ध्यान में रख कर, अपने प्रबल शत्रु-अभिमान का नाश करो।

छप्पय ।

छिनहूँ छाँड़ी नाहिं, भोग भुगती वह भूपनि ।
कुलटासी यह भूमि, लाभ मानत महीप मनि ॥
ताहू के इक अंग के, सु अंगहि को पावत ।
राखत हैं करि कष्ट, दिवस निशि चहूँ दिशि धावत ॥
अपनी और की होत यह, यातें पचि-पचि रचि रहे ।
पच्छितैवौ तजि, जग-विषय सों, जड़ उल्टे सुख गनि रहे ॥२५॥

25. Why should kings feel so much pride in the ownership of the earth, which has successively been owned by hundreds of kings without the break of even a second. It is a pity that petty kings who possess even a very small portion of it, foolishly find pleasure in the possession of their estates while really they ought to grieve over it as their power is not going to endure for ever.

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणु-
रंगीकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गणैर्भुज्यते ।
तद्दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणं वाञ्छन्ति तेभ्योऽपिये॥२६॥

भूपति = राजा लोग। महीप = राजा। कुलटा = व्यभिचारिणी स्त्री। दिवस निशि = रात-दिन। चहुँदिशि = चारों दिशाओं में। धावत = दौड़ते हैं। पच्छितैवो तजि = पछताना छोड़कर। जड़ = मूर्ख। सुख गनि रहे = सुख मान रहे हैं।

अव्वल तो यह पृथ्वी स्वयं ही बड़ी नहीं है। मिट्टी का सा लौंदा है, जो चारों ओर से पानी से घिरा हुआ है। दूसरे; सैकड़ों-हज़ारों राजाओं ने आपस में अनेक लड़ाइयाँ लड़-लड़ कर, इसके भागों पर अपना-अपना क़ब्ज़ा कर रक्खा है। ऐसे क्षुद्र और संकीर्ण-हृदय-राजाओं को जो दानी समझते हैं और उनके मुँह की ओर ताकते हैं कि वे कुछ देंगे, ऐसे नीच लोगों को धिक्कार है! ऐसे तुच्छ और दरिद्रियों से धन पाने की आशा करना व्यर्थ है ॥२६॥

अव्वल तो पृथ्वी कोई चीज़ ही नहीं है। फिर, यह ज़रा सा मिट्टी का लौंदा है, जो चारों ओर से सीमा-बद्ध है, चारों ओर इसके समुद्र है। फिर; इस क्षुद्र पृथ्वी को भी अनेक राजाओं ने आपस में युद्ध कर-कर के अपने-अपने अधिकार में कर रक्खा है। ज़रा सी चीज़ के हज़ारों टुकड़े हो गये हैं। इन टुकड़ों के मालिकों को जो लोग बड़े आदमी और दानी समझते हैं और उनसे कुछ पाने की आशा करते हैं, उनको बारम्बार धिक्कार है! क्योंकि उन नाम के भूपतियों के पास रक्खा ही क्या है? वे स्वयं दरिद्र हैं। जब वे स्वयं दरिद्र और मुहताज हैं, तब वे किस की आशा पूरी कर सकते हैं? इसलिये, ऐसे क्षुद्रों का मुँह ताकना नीचों का काम है। मुँह उसका ताकना चाहिये, जो किसी लायक़ हो। मनुष्य को जो माँगना हो, सर्वशक्तिमान् भगवान् से माँगना चाहिये; वही सब की इच्छा पूरी कर सकता है।

क्षुद्र धनिकों की ख़ुशामद में समय गँवाना, वृथा जन्म खोना है, वे आप दीन हैं। उनकी इच्छायें क्या पूरी हो गई हैं? अमीर-ग़रीब सभी ज़रूरतें रखते हैं। इसलिये दोनों ही दीन हैं। अमीरों की ज़रूरतें ग़रीबों से ज़ियादा हैं, इसलिये वे दीनाति-दीन हैं। ऐसे दीनों से भी जो माँगते हैं, वे बड़े ही निर्बुद्धि हैं। अगर माँगना ही है, तो बादशाहों-के-बादशाह से माँगो। महात्मा कबीरदास कहते हैं—

कबिरा जग की कहा कहूँ, जो भल बूड़े दास।
पारब्रह्म पति छाँडि के, करै मनुष्य की आस॥

रामहिं थोरा जानि के, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, माया के आधीन॥

राम धनी सिर पर खड़ा, कहा कमी तोहि दास!।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छाँड़े पास॥

दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अन्त तिहुँकाल।
पलक एक में परगटे, पल में करे निहाल॥

जाकी गाँठी राम है, ताके हैं सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबैं, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥

कबीरदास कहते हैं कि, मैं जगत् के विषय में क्या कहूँ? वे लोग बुरी तरह डूब रहे हैं, जो परमब्रह्म परमात्मा को छोड़कर क्षुद्र मनुष्यों की आशा करते हैं।

लोग राम को तो कम समझते हैं और दुनिया के आगे दीनता करते हैं तथा माया के वश होकर जीवों को राजा कहते हैं।

हे दास ! राम जैसा मालिक तेरे सिर पर खड़ा है, फिर तुझे क्या अभाव है ? उसकी कृपा से ऋद्धि-सिद्धि तेरी सेवा करेंगी और मुक्ति तेरे पीछे फिरेगी।

अगर सेवक दुःखी रहता है, तो परमात्मा भी तीनों कालों में दुःखी रहता है। वह दास को कष्ट में देख कर, क्षणभर में प्रकट होता और उसे निहाल कर देता है।

जिसकी गाँठ में राम है, उसके पास सब सिद्धियाँ हैं। उसके आगे अष्ट सिद्धि और नौ निधि हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है:—

गरल सुधा, रिपु करै मिताई; गोपद सिन्धु, अनल सितलाई।
गरुअ सुमेरु रेणु-सम ताही, राम कृपा करि चितवहिं जाही॥

भगवान् जिसकी ओर कृपा से देखते हैं, उसके लिये ज़हर अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समुद्र में गौ के चरण डूबें उतना जल हो जाता है, आग शीतल हो जाती है, और भारी सुमेरु-पर्वत रेणु के समान हो जाता है।

बहुत से मूर्ख इन धनमत्तों से यहाँ तक कह बैठते हैं— "हुजूर ! हम बड़े सङ्कट में हैं, हमारी नाव मँझधार में है, उसे पार लगाइये।" यह बड़ी भद्दी भूल की बात है। नाव का पार

लगाना, मनुष्य के हाथ नहीं; डूबती हुई नाव को वह सर्व-शक्तिमान् ही पार लगा सकता है; अतः बुद्धिमान् लोग उसी के भरोसे रहते हैं, वे तुच्छ मनुष्यों के ऐहसान सिर पर नहीं लेते।

उस्ताद ज़ौक़ ने क्या .खूब कहा है:—

अहसान नाखुदा के, उठाये मेरी बला।
किश्ती खुदा पै छोड़ दूँ, लंगर को तोड़ दूँ॥

माँझी के अहसान मेरी बला उठाये, मैं तो अपनी नाव को ईश्वर का नाम लेकर छोड़ दूँगा और उसका लंगर तोड़ दूँगा।

छप्पय।

इक मृतिका को पिण्ड, रहत जलमाँहि निरन्तर।
सोऊ सब ही नाहिं, तनक सौ, ताहू में डर॥
करत हजारन अंग, भूप तब भोग करत पित।
मिटत आपनी प्यास, दान को होत कहा चित?॥
ऐसे दरिद्र दुख सों भरे, तिनहूँ सों जो चहत धन।
धिक्कार जन्म वा अधम को, सदा सर्वदा लीन मन!॥२६॥

26. In the first place this earth, which is surrounded on all sides by a line of water, is not large enough itself. Secondly, it is divided and owned by multitudes of kings after fighting hundreds

मृत्तिका = मिट्टी। पिण्ड = गोला। निरन्तर = सदा। तनकसो = छोटा सा। हजारन अंग = हज़ारों भाग या टुकड़े। अधम = नीच।

of battles. These small and narrow-minded kings are waited upon by needy whose mind are always in suspense whether they will be given something or not. Fie on the mean persons who hope to get a little bounty from such givers who are so small and poor in heart themselves.

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः ।
नृपसद्मनि नाम के वयं कुचभारानमिता न योषितः॥२७

न तो हम नट या बाज़ीगर हैं, न हम नचैये-गवैये हैं, न हमको चुगलख़ोरी आती है, न हमें दूसरों की बर्बादी की बन्दिशें बाँधनी आती हैं और न हम स्तनभारावनत स्त्रियाँ ही हैं; फिर हमारी पूछ राजाओं के यहाँ क्यों होने लगी ? ॥२७॥

राजाओं के दरबारों में नटों, बाज़ीगरों, नाचने-गाने वालों तथा पराये नाश की तदबीरें करने वालों, चुग़लख़ोरी करने वालों इधर-की-उधर लगाने वालों अथवा ऐसी सुन्दरियों की पूछ होती है, जो रूपवती हैं और जिनकी कमर उनके स्तनों के भार से लची जाती है—हम में इनमें से एक भी बात नहीं, फिर हमारा प्रवेश राजसभा में कैसे हो सकता है ? वहाँ तो उन्हीं की पूछ है—उन्हीं का आदर है—जो उनकी विषय-वासनाएँ पूरी करते हैं।

दोहा ।

नट भट विट गायन नहीं, नहिं बादिन के माहिं ।
कौन भाँति भूपति मिलन, तरुणी भी हम नाहिं ? ॥२७॥

नट = कलाबाज़, नाचने वाला। भट = योद्धा। विट = कुटना, राँड

27. We are neither jugglers nor dancers or musicians, nor are our minds well-versed in scheming other people's fall. We are not even women walking low with the burden of their breasts. Then what should be our business in the palaces of kings who welcome only such persons as are ready to help them in gratifying their desires ?

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धयै विषयिणाम् ।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा-
नहो कष्टं साऽपि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥२८॥

पहले समयों में, विद्या केवल उन लोगों के लिये थी, जो मानसिक क्लेशों से छुटकारा पाकर चित्त की शान्ति चाहते थे। इसके बाद विषय-सुख चाहने वालों के काम की हुई। अब तो राजा लोग शास्त्रों को सुनना ही नहीं चाहते; वे उससे पराङ्मुख हो गये हैं; इसलिये वह दिन-ब-दिन रसातल को चली जाती है। यह बड़े ही दुःख की बात है ! ॥२८॥

पहले ज़माने में, जो विद्या शान्तिकामी लोगों के अशान्त चित्तों को शान्त करने, उनकी मनोवेदनाओं को दूर करने और उन को शोक-ताप की आग में जलने से बचाने के काम आती थी,

---

मिलाने वाला। गायन = गवैया। बादी = चुग़लख़ोर। भूपति = राजा। तरुणी = जवान औरत।

होते-होते वही विद्या विषय-सुख भोगने का ज़रिया हो गई। लोग भाँति-भाँति की विद्यायें सीख कर राजाओं और धनियों को ख़ुश करते और उन से धन पाकर स्वयं विषय-सुख भोगते थे। यहाँ तक तो ख़ैर थी; किन्तु अब राजा लोग ऐसे हो गये हैं कि, वह विद्या और विद्वानों की ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखते, पण्डितों से धर्मशास्त्र नहीं सुनते; इसलिये अब कोई विद्या नहीं पढ़ता। क़दर न होने से, विद्या अब अधोगति को प्राप्त होती जाती है। क्या यह दुःख का विषय नहीं है ?

दोहा।

विद्या दुखनाशक हती, फेरि विषय-सुख दीन।
जात रसातल को चली, देखि नृपन्ह मतिहीन ॥२८॥

28. Formerly learning was only meant for the pacification of the mental troubles of those who longed for peace of mind alone. Later on, it became an instrument for pleasure-seeking persons to gain the objects of their pleasure. Now-a-days the kings having become unmindful of listening to the holy books which were expounded to them by learned men it is painful to think that the same learning is daily sinking down and down into oblivion.

हती = थी। फेरि = फिर। दीन = दिये। रसातल = पाताल। नृपन्ह = राजाओं को। मतिहीन = निर्बुद्धि।

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविधये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥२९॥

प्राचीन काल में ऐसे पुरुष हुए हैं, जिनकी खोपड़ियों की माला बनाकर स्वयं शिव ने शृंगार के लिये अपने गले में पहनी। अब ऐसे लोग हैं, जो अपनी जीविका-निर्वाह के लिये सलाम करने वालों से ही प्रतिष्ठा पाकर, अभिमान के ज्वर (मद) से गरम हो रहे हैं ॥२९॥

दोहा ।

ऐसेहू जग में भये, मुण्डमाल शिव कीन ।
धन लोभी नर नवत लखि, तुमको मदज्वर दीन ॥२९॥

29. There have been even such great men before, that their skulls were made into a wreath and worn round his neck for the sake of adornment by the great Shiva Himself. What should we think of the boundless vanity of people who become so proud of their position now-a-days even if they are greeted respectfully by a few persons desirous of conducting their living somehow or other?

मुण्डमाल = मुण्डों की माला; खोपड़ियों की माला। नवत लखि = झुकते हुए या सलाम करते हुए देख कर।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्ते त्वां धनान्धा मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा
मय्यप्यास्था न चेत्त्वयि मम सुतरामेव राजन्गतोऽस्मि ३०

यदि तुम धन के स्वामी हो, तो हम वाणी के स्वामी हैं। यदि तुम युद्ध करने में वीर हो, तो हम अपने प्रति पक्षियों से शास्त्रार्थ करके उनका मद-ज्वर तोड़ने में कुशल हैं। यदि तुम्हारी सेवा धन-कामी या धनान्ध करते हैं, तो हमारी सेवा अज्ञान-अन्धकार का नाश चाहने वाले, शास्त्र सुनने के लिए करते हैं। यदि तुम्हें हमारी ज़रा भी ग़रज़ नहीं है, तो हमें भी तुम्हारी बिल्कुल ग़रज़ नहीं है। लो, हम भी चलते हैं ॥३०॥

छप्पय ।

तुम अवनी के ईश, ईश हमहूँ वाणी के।
तुम हौ रण में धीर, वीर गाढ़े अति जी के ॥
त्योंही विद्यावाद करत, हमहूँ नहिं हारे।
प्रतिपक्षी के मान मार, अपने विस्तारे ॥
धन-लोभी नर सेवत तुम्हें, हमको शिव श्रोता भले।
तुमको न हमारी चाह तो, हमहूँ ह्याँसे उठ चले ॥३०॥

अवनी = पृथ्वी। ईश = स्वामी। विद्यावाद = शास्त्रार्थ। प्रतिपक्षी = विपक्षी = मुख़ालिफ़। श्रोता = सुनने वाले। ह्यांसे = इस जगह से।

30. O king, if thou art the lord of the wealth, we too are the lord of speech. If thou art brave in fight, our pluck too is unanswerable in breaking down the vanity of our adversary in literary discussions. If thou art served by men hankering after wealth, we too are waited upon by people who are desirous of listening to our learned discourses for the sake of dispelling the ignorance from their minds. If thou dost not care for us, we too cherish no regard for thee. Look, we are off ?

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥३१॥

जब मैं बहुत थोड़ा सा जानता था, तब हाथी के समान मद से अन्धा हो रहा था; मैं समझता था, कि मैं सर्व्वज्ञ हूँ। जब मुझे बुद्धिमानों की सुहबत से कुछ मालूम हुआ; तब मैंने समझा, कि मैं तो कुछ भी नहीं जानता। मेरा झूठा मद ज्वर की तरह उतर गया ॥३१॥

जो लोग बहुत थोड़ा ज्ञान रखते हैं, समझते हैं कि, हम सब जानते हैं—दुनिया की सारी अक्ल हम में ही है, हमारे सिवा और सब पशु हैं। अल्पज्ञता के कारण उन्हें बड़ा घमण्ड रहता है; किन्तु जब वे बुद्धिमान् और विद्वानों की सुहबत में

आते हैं और कुछ सीख जाते है। तब वे समझते हैं, कि हम तो कुछ भी नहीं जानते थे, हमारा अभिमान मिथ्या था। उस समय उनका अभिमान हवा हो जाता है।

उस्ताद ज़ौक़ ने भी ठीक ऐसी ही बात कही है:—

हम जानते थे, इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी॥

वाल्टेयर नामक पाश्चात्य विद्वान् ने भी ऐसी ही बात कही है—"The more we have read, the more we have learned, the more we have meditated, the better conditioned we are to affirm that we know nothing." अधिकाधिक पढ़ने, सीखने और विचारने से हमें कहना पड़ता है कि, हम तो कुछ भी नहीं जानते! किसी ने ठीक ही कहा है—"अल्प विद्यो महागर्वी" थोड़ी विद्या वाला बहुत घमण्डी होता है। पर जब वह विद्वानों की संगति से और सीखता समझता है, तब उसका नशा किरकिरा हो जाता है। उसे मानना पड़ता है कि, मैं तो एकदम मूर्ख हूँ—मैं तो अभी कुछ भी नहीं जानता।

छप्पय।

जब हों समझौ नेक, तबहि सर्वज्ञ भयो हौ।
जैसे गज मदमत्त, अंधता छाय गयो हौ॥

हों = मैं। नेक = थोड़ा सा। सर्वज्ञ = सब जानने वाला। गज = हाथी। मदमत्त = मतवाला।

जब सतसंगति पाय, कछुक हों समझन लाग्यौं।
तबहिं भयो अति गूढ़, गर्व गुण को सब भाग्यौं॥
ज्वर चढ़त-चढ़त अति ताप ज्यों; उतरत, सीतल होत तन।
त्योंही मन कौ मद उतरिगौ, लियौ शील-सन्तोष-मन ॥३१॥

31. As long as I knew only very little I was blind with madness like an elephant and my mind was filled with the idea that I knew all. But when I came to learn a little by intercourse with wise men, my false conceit vanished away with the realisation that I knew nothing.

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो
भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ।
इदानीं स्वःसिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः
सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः ॥३२॥

ज़ेवरों से सजी हुई स्त्रियों के भोगने-योग्य जवानी चली गई; और हम चिरकाल तक विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते थक भी गये। अब हम पवित्र जाह्नवी-तट पर, (ललचाने वाली) स्त्रियों की निन्दा करते हुए, शिव-शिव जपेंगे ॥३२॥

जिस पुरुष को, स्त्रियों की असलियत मालूम हो जाने से, विरक्ति हो गयी है; वह कहता है—अब हमारी स्त्रियों के भोगने-

---

कछुक = कुछ। हों = मैं। तबहिं = तभी। सीतल = शीतल = ठण्डा। तन = शरीर। गर्वगुणको = विद्या या गुण का घमण्ड।

योग्य अवस्था—जवानी चली गई। अब वह लौटकर आयेगी नहीं, और यह बुढ़ापा जायगा नहीं। यह बला जवानी में ही अच्छी लगती है—यह बीमारी जवानी में ही ज़ोर करती है। किसी ने ठीक ही कहा है:—

इश्क़ का जोश है जब तक, कि जवानी के हैं दिन ।
यह मर्ज़ करता है शिद्दत, इन्हीं अय्याम में ख़ास ॥

अब तो बुढ़ापे का दौरदौरा है, इस उम्र में हम नाज़नियों के साथ ऐश कर भी नहीं सकते। इसके सिवा, अब हम सावधान भी हो गये हैं। हमने बेवक़ूफ़ी छोड़ दी है। हम बहुत दिनों तक विषयों में लीन रहे, हमने बहुत कुछ विषय-भोग भोगे; अब हम उनसे थक गये, उनसे हमारा जी ऊब गया। उनसे हमें कुछ भी सुख नहीं मिला। इसलिये अब हम गंगाजी के किनारे बैठकर, संसार-बन्धन की मूल और नरक की नसैनी सुन्दरियों की ममता छोड़, शिव से प्रीति करेंगे और दिन-रात उन्हीं का पवित्र एवं कल्याणकारी नाम जपेंगे, जिससे हमारा अन्तकाल तो सुधर जाय।

दोहा ।

रमणकाल यौवन गयो, थक्यो भ्रमत संसार ।
देहुँ गंगतट शेष वय, शिव-शिव जपत विसार ॥३२॥

इश्क़ = प्रेम । मर्ज़ = रोग । शिद्दत = ज़ोर । अय्याम = दिन । रमणकाल = स्त्री-भोग करने का समय । यौवन = जवानी । भ्रमत = भटकते-भटकते । गंगतट = गंगा के किनारे । शेष वय = बाक़ी उम्र ।

32. The time of our youth, when we were fit for enjoying the company of jewel-bedecked women, has gone. We are tired of hankering after the pleasures of the world for a long time. Now we will pass our days on the holy banks of the heavenly Ganges cursing the misleading guiles of women and repeating the name of the Great Shiva in prayer.

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः-
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥३३

जब लोगों में इज़्ज़त-आबरू न रहे, धन नाश हो जाय; याचक लौट-लौट कर जाने लगें; भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र और नाते-रिश्तेदार मर जायँ; तब बुद्धिमान् को चाहिए, कि किसी ऐसे पर्वत की गुहा के कोने में जा बसे, जिसके पत्थर गंगाजी के जल से पवित्र हो रहे हों ॥३३॥

जब लोगों में अपना मान रहे, लोग नफ़रत की नज़र से देखने लगें, अपनी धन-दौलत जाती रहे; जो याचक पहले कुछ पाते थे, वे अब निर्धनता के कारण विमुख हो-होकर लौट जाते हों; भाई-बन्धु और स्त्री-पुत्र प्रभृति नातेदार दूसरी दुनिया को चले गये हों, तब तो बुद्धिमान् को चाहिये कि संसार को त्याग दे; इसमें मोह न रक्खे और किसी ऐसे पहाड़ की गुफ़ा में जा

रहे, जिसके पत्थरों को पवित्र गंगाजल पखार-पखारकर पवित्र करता हो। ऐसी हालत में, संसार में रहना—वृथा समय खोना है। कम-से-कम उस समय तो बुद्धिमान् एकान्त में बैठकर, सब तरह की आशा-तृष्णा छोड़कर, भगवान् के चरण कमलों में मन लगावे।

दोहा।

गयो मान यौवन सुधन, भिक्षुक जात निराश।
अब तो मोकों उचित यह, श्रीगंगा तट बास ॥३३॥

33. When all our respect has gone, our riches have flown away, when the poor and the needy who came to us for help before and were given what they wanted have begun to be sent away with refusal, when all our relations and dear ones have left this world, it is but desirable for a wise man to take up his abode somewhere in the corner of some mountain-cave whose stones are washed by the holy waters of the Ganges.

परेशां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलिलम्।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणि गुणे
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥३४॥

हे मलिन मन! तू पराये दिल को प्रसन्न करने में किस लिए लगा रहता है? यदि तू तृष्णा को छोड़कर सन्तोष कर

ले, अपने में ही सन्तुष्ट रहे, तो तू स्वयं चिन्तामणि-स्वरूप हो जाय। फिर तेरी कौन सी इच्छा पूरी न हो? ॥३४॥

मन ही सब कामों का कर्त्ता है। सभी इन्द्रियाँ मन के ही अधीन और मन की ही अनुगामिनी हैं। मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मनुष्य मन से ही पाप-पुण्य और दुःख-सुख प्रभृति का भागी होता है। मन ही मनुष्य को बुरा-भला, साधु-असाधु सब कुछ बना देता है। मन की वृत्ति सुधरने से ही; मन के वासना-हीन होने से ही, सब कुछ त्यागने से ही, वह आत्म साक्षात्कार के योग्य हो जाता है; इसीलिये कोई ज्ञानी पुरुष मन को सम्बोधन करके कहता है:—

"अरे मन! तू स्वयं तो मलिन और दुःख के भार से दवा हुआ है; फिर तू औरों के दिल ख़ुश करने की इतनी कोशिशें क्यों करता है, क्यों आफ़तें उठाता है, क्यों मान खोता है और क्यों अपमान सहता है? इससे तुझे क्या लाभ होगा? मेरी बात माने तो तू इच्छा को त्याग दे, किसी भी चीज़ की इच्छा मत रख; तब तुझे शान्ति मिलेगी—परमानन्द की प्राप्ति होगी। जब तू चिन्तामणि की भाँति स्वच्छ हो जायगा, जब तू अपने स्वरूप को पहचान जायगा; तब तुझे आत्म-साक्षात्कार हो जायगा, तुझे ब्रह्मज्ञान हो जायगा, तू ब्रह्म के प्रेम में लीन हो जायगा, हर्ष-विषाद और शोक-मोह तेरे पास न आवेंगे, अष्ट-सिद्धि और नवनिद्धि तेरे सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी। उस समय तेरी कोई अभिलाषा पूरी हुए विना बाक़ी न रहेगी।

इसीलिये कहता हूँ, कि तू दूसरों को राज़ी करने की अपेक्षा अपने तईं ही राज़ी कर, इससे तुझे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होगी, जिसके समान त्रिलोकी में और कोई नहीं है। जिस समय उसकी अनुपम छवि तेरी आँखों में समा जायगी, उस समय तुझे और कुछ अच्छा न लगेगा; केवल वहीं अच्छा लगेगा। महाकवि रहीम ने कहा है—

प्रीतम-छवि नयनन बसी, पर-छवि कहाँ समाय।
भरी सराय "रहीम" लखि, आप पथिक फिर जाय॥

जब आँखों में प्यारे कृष्ण की सुन्दर मनमोहिनी छवि समा जाती है, तब उन में और किसी की छवि समा नहीं सकती। जब तक नयनों में मुरली मनोहर की छवि नहीं समाती, नयन उसकी छवि से ख़ाली रहते हैं, तभी तक मामूली छवि उन में समाती रहती हैं। जिस तरह सराय को भरी हुई देख कर, उस में कोठरियाँ ख़ाली न पाकर, मुसाफ़िर लौट जाते हैं; उसी तरह नयनों में मनमोहन की बाँकी छवि देखकर और संसारी मिथ्या ख़ूबसूरतियाँ नयनों के पास भी नहीं फटकतीं। जब दिल में परम प्यारे कृष्ण का डेरा लग जाता है, तब उसमें सुन्दरी कामिनियों और लक्ष्मी प्रभृति किसी को भी स्थान नहीं मिलता; अर्थात् दिल को उसके मुक़ाबले में संसार के अच्छे-से-अच्छे पदार्थ—स्त्री-पुत्र और धन-दौलत प्रभृति—तुच्छातितुच्छ जँचते हैं।

मतलब यह है कि, मनुष्य अज्ञता से भटकता है, अलीक सुख पाने के लिये वृथा नीचों की ख़ुशामद करता है। जिस सुख के लिये वह इतनी आफ़तें उठाता है, उस सुख का सच्चा सोता स्वयं उसके दिल में मौजूद है। किसी पाश्चात्य विद्वान् ने खूब कहा है—"The source of true happiness is inherent in the heart; he is a fool who seeks it elsewhere" सच्चे सुख का सोता दिल के अन्दर मौजूद है। जो उसे अन्यत्र खोजता-फिरता है, वह मूर्ख है। निश्चय ही सुख मन में है और मन के निरोध से वह मिलता है। जिसका चित्त स्थिर है, उसे सदा सुख है; जिसका चित्त स्थिर नहीं, उसे सुख नहीं; अतः मनुष्यो! भटकना छोड़कर सन्तोष की शरण गहो; निश्चय ही आपको अपने भीतर ही परम सुख-शान्ति मिलेगी।

दोहा।

तू ही रीझत क्यों नहीं, कहा रिझावत और?।
तेरे ही आनन्द से, चिन्तामणि सब ठौर ॥३४॥

34. O my unhappy mind, why dost thou try to enter into the hearts of others by doing thy utmost to please them while thou art thyself heavy with the burden of afflictions. If thou becomest contented by giving up thy desires, wilt not thou gain all thou wantest, when all the good qualities of a pure mind are produced within thyself like a Chintamani which has the power of giving everything that a man desires?

भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतांताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥३५

विषयों के भोगने में रोगों का डर है, कुल में दोष होने का भय है, धन में राज का भय है, चुप रहने में दीनता का भय है, बल में शत्रुओं का भय है, सौन्दर्य्य में बुढ़ापे का भय है, शास्त्रों में विपक्षियों के वाद का भय है, गुणों में दुष्टों का भय है, शरीर में मौत का भय है; संसार की सभी चीज़ों में मनुष्यों का भय है। केवल "वैराग्य" में किसी प्रकार का भय नहीं है ॥३५॥

यदि मनुष्य विषय-सुखों को भोगता है, तो उसे रोगों का भय रहता है। यदि चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेपन किया जाता है, तो बादी हो जाती है। यदि स्त्री से मैथुन किया जाता है, तो बल घटता है और बहुत करने से क्षय रोग हो जाता है। यदि उच्च कुल में जन्म होता है, तो सदा उस के पतन या उस में कोई दोष होने का डर लगा रहता है, क्योंकि कुल में किसी के भी दुराचारी होने से कुल का नाम बदनाम हो जाता है अथवा प्लेग वगैरः के होने से कुल का नाम डूब ही जाता है। इसी तरह अधिक धन होने से राजा का डर लगा रहता है, कि कहीं राजा सारा धन न छीन ले। चुप रहने में अप्रतिष्ठा और दीनता का भय रहता है, क्योंकि चुप

रहने वाले को सभी दीन-हीन समझ लेते हैं। संग्राम में शत्रुओं का भय रहता है। यदि सूरत सुन्दर होती है, तो सूरत के बिगड़ जाने का भय रहता है; बुढ़ापे में रूप-रङ्ग नष्ट हो ही जाता है। शास्त्रों के जानने वाले को प्रतिपक्षियों का भय रहता है, क्योंकि प्रतिपक्षी सदा उसे नीचा दिखाना और उसका अपमान करना चाहते हैं। पुण्य या सद्गुणों में दुष्टों का भय रहता है; दुष्ट लोग अच्छे-से-अच्छे कामों में दोष निकाल कर, उनका उल्टा अर्थ लगाने लगते हैं; वे निन्दा या अपवाद कर के गुणी के गुणों का मूल्य घटाने की भरपूर चेष्टा किया करते हैं। शरीर को मृत्यु का भय रहता है, क्योंकि काया का नाश अवश्यम्भावी है। जो शरीर में आया है, जिस ने यह शरीर रूपी वस्त्र पहना है, उसे अपना शरीर छोड़ना ही होगा—यह चोला बदलना और नया पहनना ही होगा।

इस तरह विचार करने से यही सिद्ध होता है, कि मनुष्य को सांसारिक सभी पदार्थों में भय-ही-भय है। फिर भय किस में नहीं है ? केवल "वैराग्य या त्याग अथवा संन्यास" ही ऐसा है, जिसमें किसी भी बात का भय नहीं है।

यों तो संसार में ज़रा भी सुख नहीं—सर्वत्र भय-ही-भय है; पर दुष्ट और नीचों का भय सब से भारी है। दुष्टों से तंग हो कर ही, महाकवि ग़ालिब आदमियों की वस्ती में भी बसना पसन्द नहीं करते और कहते हैं:—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो, और हमज़बाँ कोई न हो ॥१॥
बे दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो ॥२॥
पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए, तो नोहाख़्वाँ कोई न हो ॥३॥

संसार में ज़रा भी सुख नहीं है, सर्वत्र भय-ही-भय है। एक को एक खाने को दौड़ता है। जिसे देखो वही जला मरता है। यहाँ ईर्षा-द्वेष का बाज़ार ज़ोरों से गर्म रहता है, इस वास्ते ऐसी जगह में चल कर रहना चाहिये, जहाँ कोई न हो; हमारी बात कोई न समझे और हम किसी की न समझें। मकान भी ऐसा ही हो, जिस में दरवाज़े और दीवार न हों; अर्थात् साफ़ जङ्गल हो। न हमारा कोई साथी हो, न पड़ोसी; अगर बीमार हो जायँ, तो कोई ख़बर लेने वाला और तीमारदारी या सेवा-शुश्रूषा करने वाला न हो। अगर सौभाग्य से मर जायँ, तो कोई शोक करने वाला भी न हो।

हमसखुन = हम-जैसा कलाम कहने वाला। हमज़बां = हमारी भाषा बोलने वाला। दर = द्वार; दरवाज़ा। दरो = दर + ओ = दरवाज़ा और। दीवार = भीत। हमसाया = पड़ौसी। पासबाँ = साथ रहने वाला। गर = अगर। तीमारदार = सेवा-टहल करने वाला। नोहाख़्वाँ = शोक करने वाला, रोने वाला।

महात्मा सुन्दर दास ने भी कहा है:—

सर्प डसै, सु नहीं कछु तालक;
बीछु लगै, सु भलो करि मानौ ॥
सिंह हु खाय, तु नाहिं कछू डर;
जो गज मारत, तो नहिं हानौ ॥
आगि जरौ, जल बूड़ि मरौ, गिरि
जाइ गिरौ; कछु भै मत आनौ ॥
"सुन्दर" और भले सब ही यह;
दुर्जन-संग भलौ जनि जानौ ॥

सुन्दर दास जी कहते हैं, अगर आप को साँप डसे, बिच्छू काटे और हाथी मारे तो कुछ हर्ज मत समझो। आग में जलने, जल में डूबने और पहाड़ से गिरने में भी कोई हानि न समझो, ये सब भले हैं—इन से हानि नहीं; हानि और ख़तरा है दुष्ट की संगति में, इसलिये दुर्जन की सुहबत मत करो। उस की संगति अच्छी नहीं; पर आज कल दुष्टों की बहुतायत है; क़दम-क़दम पर दुर्जनों के दर्शन होते हैं। इसलिये संसार से दुःखित और उदासीन

सर्प डसे = साँप काटे। कछु तालक = कुछ चिन्ता। बीछु = बिच्छू। लगे = काटे। भलौ करि मानौ = अच्छा समझो। सिंह हु = सिंह भी; शेर भी। तु = तो। गज = हाथी। हानौ = हानि; नुक़सान। आगि = आग। जरौ = जलो। बूड़ि मरो = डूबमरो। गिरि = पर्वत। भै = भय, डर। आनौ = समझो। जनि = मत।

मनुष्य के लिए वन में जाकर रहने में ही शान्ति है। इन पंक्तियों के लेखक को भी, जो अनेक बार ऐसा ही चाहने लगता है, इस संसार से दिल लगाना—इस में रहना, अच्छा नहीं मालूम होता; पर, बक़ौल उस्ताद ज़ौक़, कुछ मजबूरी ऐसी आ पड़ती है, कि सरता नहीं। आपने फरमाया है:—

बेहतर तो है यही, कि न दुनिया से दिल लगे।
पर क्या करें, जो काम न बे-दिल्लगी चले॥

संसार से दिल लगाना अच्छा नहीं; पर क्या करें, बिना दिल लगाये काम चलता भी तो नहीं।

सारांश यह है कि, यदि सच्ची सुख-शान्ति चाहते हो; तो स्त्री-पुत्र, धन-दौलत और ज़मीन-जायदाद की ममता छोड़ कर वैराग्य ले लो; यानी इन सब को छोड़ कर वन में जा बसो और एक मात्र परमात्मा में मन लगाओ। संसार को त्यागने के सिवा, सुख की और राह नहीं। हमने अनेक बार संसार त्यागने का इरादा किया, पर हमारे अज्ञानी मन ने हमें ऐसा करने से बारम्बार रोका। हम मन की बातों को विचार के काँटे पर तोलते रहे। अब हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि, मन की सलाह ठीक नहीं। हमारा गन्दा मन हमें शैतान की तरह गुमराह कर रहा है। जिस सुख की खोज में हमने ५१ वर्ष

बेहतर = भला। न दुनिया से दिल लगे = जगज्जाल में मन न फँसे, दुनियादारी में न फँसे। बे-दिल्लगी = बिना दिल लगाये।

यों ही गँवा दिये, उस सुख का लेश भी हमें न मिला। इस जगत् में, हमें सदा शोक-तापों से जलना पड़ा। हमारी सुबुद्धि हम से कह रही है कि, शैतान के भरमाने में मत आओ। जो जरूरी काम करने हैं, उन्हें जल्दी-से-जल्दी निपटा कर, सब को त्याग वन को चले जाओ और मन को शुद्ध कर के परमात्मा में लगाओ। देर न करो; कहीं ऐसा न हो कि, तुम अपने काम ही निपटाते रहो और काल आ पहुँचे; और तुम्हारे मन की मन में रह जाय। मन की राह पर न चलो, बल्कि मन को अपनी राह पर चलाओ। "सच्चा सुख वैराग्य में ही है" इस महावाक्य को क्षणभर भी न भूलो।

छप्पय।

बहुत भोग को संग, तहाँ इन रोगन को डर।
धनहूँ को डर भूप, अग्नि अरु त्योंहीं तस्कर।
सेवा में भय स्वामि, समर में शत्रुन को भय।
कुलहू में भय नारि, देह को काल करत क्षय।
अभिमान डरत अपमान सों, गुन डरपत सुन खल-शबद।
सब गिरत परत भय सों भरे, अभय एक "वैराग्यपद" ॥३५॥

35. In the enjoyment of pleasure there is always the fear of disease. Membership in a high family is accompanied by thy fear of the latter's downfall. Wealth is ever haunted by the fear of kings. Silence

---

भूप = राजा। तस्कर = चोर। स्वामि = मालिक। समर = लड़ाई। नारी = स्त्री। करत क्षय = नाश करता है। अभय = निर्भयता।

is associated with the fear of neglect and dishonour. In strength there is the fear of enemies. A handsome appearance is always in fear of being disfigured in old age. Learning and science have the fear of antagonistic discussions. Good qualities suffer from the fear of evil-minded persons, who will do their best to lower the value of a man possessed of them by slander etc. The body is beset with the fear of death. Thus everything in this world pertaining to man is associated with fear. Renunciation alone is free from such associations.

अमीषां प्राणानां तुलितविसिनीपत्रपयसां
कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ॥
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःशंकमनसां
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥३६॥

कमल-पत्र पर जल की बूँदों के समान चंचल प्राणों के लिए, हम ने बुरे और भले का विचार न कर के, क्या-क्या काम नहीं किये ? हम ने धन-मद से मतवाले लोगों के सामने निर्लज्ज होकर अपने गुणों के कीर्त्तन करने का पाप तक किया ॥३६॥

अथवा—

कमल के पत्ते पर ठहरी हुई जल की बूँद के समान क्षण-भङ्गुर प्राणों के लिये; मूर्खतावश, धनमद से निःशंक धनी मनुष्यों के सामने, बेहया होकर, अपनी तारीफ़ आप करने का घोर पाप करने वाले हम लोगों ने कौनसा पाप नहीं किया ?

कहने वाला कहता है कि इस जीवन के लिए, जो नितान्त क्षण-भंगुर है, जिसकी स्थिरता कुछ भी नहीं है, मैंने कोई उपाय—कोई उद्यम उठा न रक्खा। और तो और; इस क्षुद्र जीवन के लिए, अपनी तारीफ़ आप करने का महापातक भी मैंने किया; और वह भी ऐसे लोगों के सामने, जो धन के मद से मतवाले हो रहे थे और जो किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखते थे। हाय! ये सब अकर्म करने पर भी मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ!

संसार में अपने गुणों का आप बखान करना—बड़ा भारी पाप समझा जाता है। आत्मश्लाघा या आत्मप्रशंसा वास्तव में बहुत ही बुरी है। जिसने आत्मश्लाघा की, उसने कौनसा पाप नहीं किया? इसीसे कोई भी बुद्धिमान ऐसा नहीं करता; परन्तु ज़रूरत इस पाप को भी करा लेती है। जब किसी तरह कोई काम नहीं होता, कोई और तारीफ़ करने वाला नहीं मिलता; तब मनुष्य, क्षणस्थायी जीवन के लिए, इस निन्द्य-कर्म को भी करता है।

जीवन क्षणभंगुर है।

यह प्राण उसी तरह चञ्चल है, जिस तरह कमल के पत्ते पर पानी की बूँद। यह जीवन बादल की छाया, बिजली की चमक और पानी के बबूले की तरह है। जीवन की चञ्चलता पर महात्मा कबीर कहते हैं:—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात॥
"कबिरा" पानी हौज़ का, देखत गया बिलाय।
ऐसे जियरा जायगा, दिन दश ढीली लाय॥

मनुष्य पानी के बुलबुले की तरह है। जिस तरह पानी का बुलबुला उठता और क्षण-भर में नष्ट हो जाता है; उसी तरह आदमी पैदा होता और क्षण-भर में ही नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य उसी तरह अदृश्य हो जायगा, जिस तरह सवेरे का तारा देखते-देखते ग़ायब हो जाता है।

कबीरदास कहते हैं, जिस तरह देखते-देखते हौज़ का पानी, मोरी की राह से निकल कर, बिलाय जाता है; उसी तरह यह जीवात्मा देह से निकल जायगा; दस-पाँच दिन की देर समझिये।

महात्मा शङ्कराचार्यजी ने भी कहा है:—

"नलिनीदलगत जलमतितरलम्।
तद्वज्जीवनमतिशय चपलम्॥"

"यह जीवन कमल-पत्र पर पड़े हुए जल की तरह चञ्चल है।"

ऐसे चञ्चल जीवन के लिये अज्ञानी मनुष्य नीच-से-नीच कर्म करने में संकोच नहीं करता,—यह बड़ी ही लज्जा की बात

बुदबुदा = बबूला। मानुस = आदमी। परभात = सवेरा। जियरा = जीव।

है। अगर मनुष्य को हज़ारों-लाखों बरस की उम्र मिलती अथवा सभी काकभुशण्ड होते; तो न जाने मनुष्य क्या-क्या पाप कर्म न करता ? बड़े ही नीच हैं, जो इस चन्दरोज़ा ज़िन्दगी के लिए, तरह-तरह के पापों की गठरी बाँध कर, अपना लोक-परलोक बिगाड़ते हैं। मनुष्यो ! आँखें खोल कर देखो और कान देकर सुनो ! मिट्टी और पत्थर अथवा लकड़ी वग़ैरः की बनी चीज़ों की कुछ उम्र है; पर तुम्हारी उम्र कुछ भी नहीं। अतः इस क्षणस्थायी जीवन में पाप-कर्म न करो।

कुण्डलिया ।

जैसे पंकज पत्र पर, जल चंचल ढरि जात।
त्योंही चंचल प्राणहू, ताजि जैहें निज गात।
ताजि जैहें निज गात, बात यह नीके जानत।
तो हू छाँडि विवेक, नृपन की सेवा ठानत।
निज गुन करत बखान, निलजता उघरी ऐसे।
भूल गयो सतज्ञान, मूढ़ अज्ञानी जैसे ॥३६॥

36. For the sake of prolonging our life-breath which is as restless as the drops of water lying on a

पंकज पत्र = कमल का पत्ता। ढरि जात = ढलक जाता है। त्योंही = उसी तरह। तजि जहें = छोड़ जायँगे। निज गात = अपना शरीर। नीके = अच्छी तरह। विवेक = विचार। सेवा ठानत = चाकरी करता है। निज गुन करत बखान = अपने गुण आंप गाता है। सतज्ञान = असल ज्ञान; सच्चा ज्ञान।
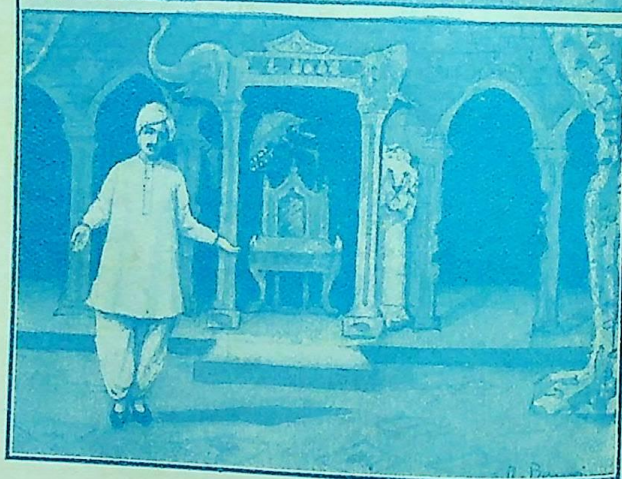
हे भाई ! कैसे कष्ट की बात है ! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसे-कैसे शूर सामन्त और सेना एवं चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, पर आज सब सूना है। सबको काल खा गया !!

पृष्ठ ११५

lotus-leaf, what measures were left undone by us even discarding all discrimination between right and wrong ? So much so that we had to indulge in the sin of shameless self-praise in the presence of wealthy men whose mind is filled with extreme vanity and unscrupulousness.

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च साऽपि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ॥
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः ॥३७॥

ऐ भाई ! कैसे कष्ट की बात है ! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी सेना कैसी थी, उसके राज-पुत्रों का समूह कैसा था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसी-कैसी चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, कैसे अच्छे-अच्छे चारण-भाट और कहानी कहने वाले उसके यहाँ थे ! वे सब जिस काल के वश हो गये, उसी काल को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३७॥

कोई शख़्स किसी प्रतापी राजा की राजनगरी को ऊजड़ देख कर शोक करता और कहता है कि, यहाँ का राजा बड़ा ज़बर्दस्त था। उसके पास अनगिन्ती सेना थी, उसके पास अच्छे-अच्छे शूर-सामन्त थे, उसके बड़े-बड़े शूरवीर राजपुत्र थे, उसके यहाँ चन्द्रमा को भी लजाने वाली स्त्रियाँ थीं, उसकी राज सभा इन्द्र की सभा को भी मात करती थी, उसकी सभा में

एक-से-एक बुद्धिमान मन्त्री, चारण, भाट और विदूषक प्रभृति थे। एक दिन ये सब थे; पर आज न वह राजा है, न राजनगरी है, न राजसभा है, न वह चतुरङ्गिणी सेना है, न वे शूरसामन्त हैं और न वे विधुवदनी मोहिनी स्त्रियाँ ही हैं! वे सब कहाँ गये? उन सब को काल खा गया! आज उनका नाम-निशान भी संसार में नहीं है! ओह! जो काल ऐसा बली है, जिसने उन सब को स्वप्नवत् कर दिया, मैं उस बली काल को ही नमस्कार करता हूँ। महात्मा कबीरदास कहते हैं:—

सातों शब्दज बाजते, घर घर-होंते राग।
ते मन्दिर ख़ाली परे, बैठन लागे काग॥
परदा रहतीं पदमिनी, करती कुल की कान।
छड़ी जु पहुँची काल की, डेरा हुआ मैदान॥

जिन मकानों में पहले तरह-तरह के बाजे बजते और गाने गाये जाते थे, वे आज ख़ाली पड़े हैं। अब उन पर कव्वे बैठते हैं।

जो पद्मिनी पहले परदे में रहती थी और कुल की कान के मारे बाहर न निकलती थी, उसीका आज काल के आने से मैदान में डेरा हो गया है; यानी सब के सामने मरघट में पड़ी है।

निश्चय ही संसार अनित्य और नाशवान् है। इस जगत् की कोई भी चीज़ सदा न रहेगी। एक दिन अपनी-अपनी बारी

आने से सभी का नाश होगा। इसी विषय में महाकवि दाग़ कहते हैं:—

है ज़वाल आमदा अजज़ा, आफ़रीनश के तमाम।
महर गर्दू है, चिराग़े रहगुज़ारे बाद याँ॥

संसार के सभी पदार्थ अनित्य हैं, सभी नाशवान् हैं। जिसे सूर्य्य कहते हैं, वह भी एक ऐसा चिराग़—दीपक है, जो हवा के सामने रक्खा हुआ है और "अब बुझा-अब-बुझा" हो रहा है; तब औरों की तो बात ही क्या? इस संसार की यही दशा है।

ये अनन्त जल-राशिपूर्ण महासागर और सुमेरु तथा हिमालय प्रभृति पर्वत भी एक दिन काल के कराल-गाल में समा जायँगे। देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, जल और पवन इन सब को भी काल खा जायगा। यम, कुबेर, वरुण और इन्द्रादिक महातेजस्वी देव भी एक दिन गिर पड़ेंगे। स्थिर ध्रुव भी अस्थिर हो जायगा। अमृत मय चन्द्रमा और महाप्रकाशवान् सूर्य ये दोनों भी नष्ट हो जायँगे। जगत् के अधिष्ठाता ईश्वर, परमेष्ठी ब्रह्मा और महाभैरव-रूप इन्द्र का भी अभाव हो जायगा; तब संसार के साधारण प्राणियों की कौन गिन्ती है? एक दिन इस जगत् का ही अस्तित्व नहीं रहेगा, तब और किस की आस्था को जाय? यह जगत् ही भ्रममात्र है। इस में अज्ञानी को ही आस्था होती है। वही भोगों को सुख-रूप समझ कर

उन की तृष्णा करता और अपने तईं बन्धन में फँसाता है। ज्ञानी पुरुष इस संसार को मिथ्या और सार-हीन तथा नाशवान् समझता है। वह तो केवल ब्रह्म को नित्य और अविनाशी समझ कर उस में मग्न रहता है।

दोहा।

नृपति सैन जम्माति सचिव, सुत कलत्र परिवार।
करत सबन को स्वप्न-सम, नमो काल करतार ॥३७॥

37. How painful, alas! O brother, is the fate of that great king, who was surrounded on all sides by his dependent chieftains who had such a brilliant court, such handsome women, such a host of haughty princes and such bards and story-tellers! Let us bow before the all-powerful Time through whose influence all those have now passed into oblivion.

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलुते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः ॥
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्-
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥३८॥

जिनसे हमने जन्म लिया था, उन्हें इस दुनिया से गये बहुत दिन हो गये; जिनके साथ हम बड़े हुए थे, वे भी इस

नृपति = राजा। सचिव = मंत्री। सुत = बेटा। कलत्र = स्त्री। स्वप्न-सम = सुपने के समान। नमो = नमस्कार करता हूँ। काल-करतार = विधाता-काल।

दुनिया को छोड़कर चले गये। अब हमारी दशा भी रेतीले नदी-किनारे के वृक्षों की सी हो रही है, जो दिन-दिन जड़ छोड़ते हुए गिराऊ होते चले जाते हैं ॥३८॥

जिन से हम पैदा हुए थे, उन्हें इस दुनिया से गये ज़माना गुज़र गया और जिन लोगों के साथ हम जन्मे थे अथवा जो लोग हमारे समवयस्क थे, वे भी चल बसे; जिन लोगों के साथ हम पले, जिन के साथ हम खेले-कूदे, जिन के साथ हमने कारोबार किया, वे सब भी काल के गाल में समा गये। अब हमारा नम्बर भी आया ही समझिये—अब हम भी चलने ही वाले हैं। दिन-दिन हमारा शरीर क्षीण हुआ जाता है। हमारी दशा अब नदी-तट के बालू में लगे हुए वृक्षों की सी है, जिन के गिरने की संभावना हर घड़ी रहती है। हमारी ऐसी हालत है, फिर भी आश्चर्य है, कि हमारा माया-मोह नहीं छूटता! अब भी हमारा मन नहीं समझता और वह संसारी जञ्जालों से अलग होना नहीं चाहता! महात्मा कबीर भी यही कहते हैं। उनकी भी सुन लीजिये:—

बारी बारी आपनी, चले पियारे मिंत।
तेरी वारी जीवरा, नियरे आवे निंत॥

मिंत=मित्र। जीवरा=हे जीव! नियरे=नज़दीक। निंत=नित्य; रोज़।

माली आवत देखिकै, कलियाँ करी पुकार।
फूली-फूली चुनि लई, कल्ह हमारी बार॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, तातें लागी बार॥

बारी-बारी से सभी प्यारे और मित्र चल बसे। अरे जीव! अब तेरा नम्बर भी नित्य निकट आता-जाता है। माली को आते देख कर, कलियों ने कहा—फूली-फूली तो आज चुन ली गईं, कल हमारी भी बारी है। हमारे साथी चले गये अब हम भी चलने वाले हैं। काग़ज़ में यानी खाते में कुछ साँस बाक़ी रह गये हैं, इस से देर हो रही है; यानी अपने शेष साँसों को पूरा करने के लिए हम ठहरे हुए हैं।

संसार का यही हाल है, रोज़ ही यह तमाशा देखते हैं; पर फिर भी हमें होश नहीं होता!

छप्पय।

जो जन्मे हम संग, उतौ सब स्वर्ग सिधारे।
जो खेले हम संग, काल तिनहूँ कहँ मारे।

बार=बारी। चालनहार=चलने वाले, मरने वाले। बार=देर।
उतौ=वे तो। तिनहूँ कहँ=उनको भी।

हमहूँ जरजर देह; निकट ही दीसत मरिबो ।
जैसे सरिता-तीर-वृच्छ को, तुच्छ उखारिबो ।
अजहुँ नहिं छाँड़त मोह मन, उमग-उमग उरझो रहत ।
ऐसे अचेत के संग सों, न्याय जगत को दुख सहत ॥३८॥

38. Those with whom we were born have long ere this passed away from this world. Those with whom we grew up have also shared the similar fate. Our condition now is like that of the trees growing on a sandy river-bank which are gradually crumbling away from day to day.

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः ॥
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्द्वाविवाक्षौ
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणिशारैः ॥३९॥

जिस घर में पहले अनेक लोग थे, उसमें अब एक ही रह गया है। जिस घर में एक था, उसमें अनेक हो गये, पर अन्त में एक भी न रहा। इससे मालूम होता है, कि काल देवता, अपनी पत्नी काली के साथ, संसार-रूपी चौपड़ में, दिन-रात-रूपी पासों को लुढ़का-लुढ़का कर और इस जगत् के प्राणियों की गोटी बना-बना कर, खेल रहा है ॥३९॥

दीसत = दीखता है। मरिबो = मरना; मौत। सरिता = नदी। तीर = किनारा। अजहुँ = अब तक। उरझो = फँसा।

जिस घर में पहले पुत्र, पौत्र, पुत्र-बधू, पौत्र-बधू, पुत्री, दोहिते और दोहिती प्रभृति अनेक लोग थे, आज वह सूना सा हो गया है; उसमें आज एक ही आदमी नज़र आता है। जिस घर में पहले एक आदमी था, उसका कुटुम्ब इतना बढ़ा कि सैकड़ों हो गये; पर आज देखते हैं, उसमें एक भी नहीं है। घर का ताला लगा है, भीतर लम्बी-लम्बी घास उग आई है, दीवार गिर रही हैं, छतें चू रही हैं और ईंटें दाँत दिखा रही हैं। अब उस घर में चमगीदड़, उल्लू, साँप और बिच्छू प्रभृति रहते हैं। महात्मा कबीर कहते हैं:—

दोहा।

ऊँचा महल चिनाइया, सुबरन कली बुलाय।
ते मन्दिर ख़ाली परे, रहे मसाना जाय॥
मलमल खासा पहरते, खाते नागर पान।
टेढ़े होकर चालते, करते बहुत गुमान॥
महलन माँही पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सुपने दीसे नहीं, देखत गये बिलाय॥

जिन्होंने ऊँचे-ऊँचे महल चिनवाये थे और उनमें सुनहरी काम कराये थे, वे आज श्मशान में चले गये हैं और उनके

सुबरनकली = सुनहरी कली-चना। बुलाय = मँगा कर। ते = वे। मन्दिर = महल। मसाना = श्मशान। गुमान = घमण्ड। पौढ़ते = सोते। परिमल = ख़ुशबू। दीसे = दीखे।

बनवाये हुए महल सूने पड़े हैं। जो मलमल और ख़ासा पहनते थे, नागर-पान चबाते थे, अकड़-अकड़ कर टेढ़े-टेढ़े चलते थे, अभिमान के नशे में चूर हुए जाते थे और बदन में इत्र, फुलेल और सैण्ट प्रभृति लगाकर महलों में सोते थे, वे स्वप्न में भी नहीं दीखते। देखते-देखते न जाने कहाँ ग़ायब हो गये!

छप्पय।

बहुत रहत जिहिं धाम, तहाँ एकहि को राखत।
एक रहत जिहिं ठौर, तहाँ बहुताहि अभिलाषत।
फेर एकहू नाहिं, करी तहँ राज दुराजी।
काली के संग काल, रची चौपड़ की बाजी।
दिनरात उभय पासा लिये, इहि विधि सौं क्रीड़ा करत।
सब प्राणी सोवत सार ज्यों, मिलत चलत बिछुरत मरत ॥३९॥

39. In homes where there were many members before, there is only a single one left now i. e., out of innumerable members only one is survived. In families, which consisted of a single person at first but had multiplied afterwards, not a soul has been left in the end. Thus the changeable god of Time is playing at dice with his wife Kali, the goddess of destruction, using Day and Night as a pair of dice

---

जिहिं = जिस। धाम = घर। तहाँ = उसमें। ठौर = जगह। उभय = दोनों। क्रीड़ा करत = खेलते हैं।

for casting and laying poor mortals at stake on each turn.

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदारान्दारानुत परिचयामः सविनयम् ॥
पिबामः शास्त्रौघानुतविविधकाव्यामृतरसान्न
विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥४०॥

हमारी समझ में नहीं आता, कि हम इस अल्प जीवन में, इस छोटी सी ज़िन्दगी में क्या-क्या करें—अर्थात् हम गंगा-तट पर बस कर तप करें अथवा गुणवती स्त्रियों की प्रेम-सहित यथायोग्य सेवा करें अथवा वेदान्त शास्त्र का अमृत पियें या काव्य-रस पान करें ॥४४॥

कहने वाला कहता है और ठीक ही कहता है—यह जीवन क्षणभर का है। इस चन्दरोज़ा ज़िन्दगी में हम क्या-क्या करें। काम तो अनेक हैं, पर समय थोड़ा है। गंगातट पर जाकर शिव-शिव की रट लगाना भी अच्छा है; गुणवती सुन्दरियों के साथ मीठी-मीठी बातें बनाना, उनके संग रहना और उनके साथ रमण करना भी भला है। वेदान्त शास्त्र के मर्म को समझना और उसका अमृत-रस पीना या काव्य-रस पीना भी अच्छा है। अच्छे सब हैं और सभी करने योग्य हैं; पर हमारी समझ में नहीं आता, कि एक क्षणभर की ज़िन्दगी में हम क्या-क्या करें? मतलब यह है, कि मनुष्य-जीवन बहुत ही थोड़ा है। इसलिये मनुष्य को, जब तक दम रहे, सब तज कर

एकमात्र परमात्मा का भजन करना चाहिये । कबीरदास कहते हैं—

यह तन काँचा कुम्भ है, माँहि किया रहवास ।
"कबिरा" नैन निहारिया, नहीं पलक की आस ॥
"कबिरा" जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल ।
चेत सके तो चेतिये, मीच परी है ख्याल ॥
"कबिरा" सुपने रैन के, उघरि आये नैन ।
जीव परा बहु लूट में, जागूँ तो लैन न दैन ॥
आजकाल कि पाँच दिन, जंगल होयगा बास ।
ऊपर-ऊपर हल फिरे, ढोर चरेंगे घास ॥

तुलसीदास जी कहते हैं—

"तुलसी" जग में आइके, कर लजि दो काम ।
देवे को टुकड़ा भला, लेवे को हरि-नाम ॥
"तुलसी" राम-सनेह करु, त्यागु सकल उपचार ।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार ॥

तन = शरीर । काँचा कुम्भ = कच्चा घड़ा । माँहि किया रहबास = भीतर जीव रहता है । नैन निहारिया = आँखों से देखा । मीच = मौत । सुपने रैन के = रात के सुपने । उघरि आये = खुल गये । आजकल कि पाँच दिन = आज, कल अथवा पाँच दिन बाद । ढोर = गाय भैंस प्रभृति मवेशी ।

टुकड़ा = रोटी का टुकड़ा । रामसनेह करु = राम से प्रेम कर । त्यागु सकल उपचार = सारे झंझट छोड़ । घटत न अंक नौ = नौ का अंक नहीं घटता—बना रहता है । नौ के लिखत पहार = नौ का पहाड़ा लिखने से ।

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम-चरन छत्तीन।
"तुलसी" देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन॥

यह मनुष्य-शरीर मिट्टी के कच्चे घड़े के जैसा है। इसी के अन्दर जीवात्मा रहता है। कबीरदासजी कहते हैं, आँखों से देखा है, एक क्षण की भी आशा नहीं। खुलासा यह कि, जिस शरीर में जीवात्मा रहता है, वह कच्चे घड़े के समान क्षणभंगुर है। जिस तरह कच्चे घड़े को फूटते देर नहीं; उसी तरह इस कच्चे घड़े-जैसे शरीर को नाश होते देर नहीं। कौन जाने किस क्षण यह शरीर-रूपी कच्चा घड़ा फूट जाय और इसमें से जीवात्मा निकल जाय? इसकी आशा उतनी देर की भी नहीं, जितनी देर कि पलक के झपने में लगती है!

कबीरदास कहते हैं, जो दिन आज है, वह कल न होगा। जीव! चेत सके तो चेत! मौत सिर पर सवार है।

जो अज्ञानी बरसों का प्रबन्ध करते हैं, बरसों जीने की आशा करते हैं, वे इस वचन से शिक्षा ग्रहण करें। कबीरदास बरसों छोड़—दो चार दिन भी जीवन रहने की आशा नहीं करते। वे कहते हैं, आज हो, कल रहो या न रहो। आज तुम हँस-खेल रहे हो, आज तुम्हारा शरीर आरोग्य है; आश्चर्य नहीं, कल तुम बीमार होकर मरण-शय्या पर पड़े हो

जगते रहु छत्तीस ह्वै = जगत् को पीठ दो; संसार को त्याग दो। रामचरन छत्तीन = राम के चरणों के सन्मुख ६ और ३ की तरह रहो—राम से प्रेम करो।

अथवा मर ही जाओ। इसलिये चेत करो, होश सँभालो और आगे के सफ़र का बन्दोबस्त करो। अगर संसार के जञ्जाल में फँसे हुए, जीवन की लम्बी आशा रक्खे हुए, शीघ्र ही, आज ही, अभी, इसी क्षण से अगली यात्रा का प्रबन्ध न करोगे; वहाँ मिलने के लिये—यहाँ के ईश्वरीय बैंक द्वारा—रुपये-पैसे, धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, महल-मकान, और बाग़-बग़ीचों का बन्दोबस्त न करोगे—इस दुनिया में पराया दुःख दूर न करोगे और मालिक का नाम न जपोगे; तो तुम्हें उस लम्बी सफ़र में बड़ी-बड़ी तक़लीफों का सामना करना पड़ेगा। यहाँ बोओगे, तो वहाँ काटोगे। यहाँ अच्छा करोगे, तो वहाँ अच्छा पाओगे। यहाँ ग़रीब और मुहताजों को दोगे, तो वहाँ आपको मिलेगा।

कबीरदास कहते हैं, यह जीवन सुपने के समान है। रात को सुपने में देखा कि जीव लूट में पड़ा है, तरह-तरह के ऐश-आराम कर रहा है, सुख-भोग भोग रहा है; लेकिन ज्यों ही आँख खुली तो क्या देखता हूँ, कि कुछ भी नहीं है। जिस तरह सुपने में आदमी दिल को फ़रहत देने वाले बाग़-बग़ीचों की सैर करता है, माशूक़ा के गले में हाथ डाले घूमता है, उस से सम्भोग करता है; अथवा राजा हो जाता है, हुकूमत करता है, चन्द्रबदनियों का नाच-गान देखता है और मन-ही-मन बड़ा ख़ुश होता है; पर ज्यों ही आँख खुलती है, तो न बाग़-बग़ीचे दीखते हैं और न माशूक़ा और न राज-पाट। बस, ठीक यही हाल जाग्रत अवस्था का है। जिस तरह रात के सुपने को मिथ्या समझते

हो, उसी तरह दिन के दृश्यों को भी मिथ्या समझो। वह सपना सोई हुई हालत में दीखता है और यह जागते हुए। देखते हैं, आज एक आदमी राजा है, हज़ारों तरह के भोग भोग रहा है; पर कल ही वह राह का भिखारी बन जाता है। आज किसी के घर में सुन्दरी पतिव्रता नारी है, आज्ञाकारी पुत्र-पौत्र हैं; सुशीला पुत्रबधुएँ और कन्यायें हैं, सैकड़ों दास-दासी हैं, द्वार पर हाथी झूमता है, मोटर हर समय दरवाज़े पर खड़ी रहती है; चन्द रोज़ बाद देखते हैं, कि वही आदमी गुदड़ी ओढ़े हुए सड़क पर भीख माँग रहा है। पूछते हैं, क्योंजी तुम्हारा यह क्या हाल ? तुम्हारे कुटुम्बी और धन-दौलत का क्या हुआ ? जवाब देता है—भाई ! प्लेग में सारे घर के लोग मर गये। कोई पानी देने और नाम लेनेवाला भी न रहा। धन-दौलत में से कुछ को चोर और शेष को डाकू डाका डाल कर ले गये। जब खाने का भी ठिकाना न रहा, तब प्राणरक्षार्थ भीख माँगना आरम्भ किया है। कहिये, ऐसे जीवन और सुख-भोगों को सुपने की माया न कहें तो क्या कहें ?

अभी कल की बात है, हमारी एक आँखों की पुतली के समान प्यारी पुत्री हमें छोड़ कर चली गयी। वह ऐसी रूपवती थी, कि हम उसे देख कर कहा करते थे,—विधाता ने ख़ूब फ़ुर्सत में गढ़ी है। उस के देखने से हमारी शोकसन्तप्त आत्मा को शान्ति मिलती थी। घोर शोक में ग़र्क होने पर भी उसे देख कर हम खिल पड़ते थे। हमारे दिन भर के रंजोग़म काफ़ूर हो जाते

थे। उस के दर्शनों से हमारे हृदय में सुख होता था, इसी से हम उसे 'दिलाराम' भी कहा करते थे। नाम उसका दिलाराम नहीं—सूर्य्यकान्ता था। जब हम घर में बैठे हुए प्रूफ़ देखा करते थे, वह भोली सूरत घुटुअन चल कर हमारे पास आ जाती। कभी हमारी दावात उलट देती, कभी क़लम उठा लेती और कभी प्रूफ़ के काग़ज़ों को मुँह में देने लगती। जब हम आनन्द में मग्न हो जाते, क़लम पटक कर उसे उठा लेते। उस को चूमते, प्यार करते और हृदय को शीतल करते थे। आज तीन दिन से वह नहीं है। कहीं नज़र नहीं आती। ऐसा जान पड़ता है, गोया हमने उसे सुपने में देखा था। सुपने में ही वह हमारे पास आयी थी। सुपने में ही अपने बचपन के खेलों से उसने हमें ख़ुश किया था और सुपने में ही हमने उसे प्यार-दुलार किया था। पाठक! आप ही विचारिये। क्या यह सब सुपना नहीं था? क्या अब जो हमारे प्यारे हमारे साथ हैं, हमारे सामने फिरते-डोलते और काम-धन्धा करते हैं, उनको भी हम सुपने की माया न समझें? उस डेढ़ साल की बच्ची की तरह ही, हम भी एक दिन सब को छोड़ कर यमसदन के राही न होंगे? हमारे पीछे जो रह जायँगे, उन्हें हम सुपने में मिले हुए के समान न दीखेंगे? यद्यपि हमने अभी तक घर-गृहस्थी नहीं त्यागी है। अभी हम संसारी जंजालों में फँसे हुए हैं; तो भी हम अपने प्यारे-से-प्यारे के मरने पर भी आँखों से आँसू नहीं डालते। बहुत लोग हमारे इस हाल को देख कर अचम्भा करते हैं। कोई कुछ और कोई

कुछ कहता है। पर हमारे न रोने-कूकने का कारण यह है कि, हमने इस संसार में ऐसे-ऐसे बहुत से दुःख देखे हैं। हम कई प्राण-प्यारों की वियोगाग्नि में जले हैं। इसी से अब हम समझ गये हैं कि, यह सब सुपना है। एक दिन न एक दिन हम भी सब को छोड़ कर चल देंगे अथवा और सब जो हमारी आँखों के सामने मौजूद हैं—हमारे देखते-देखते, सुपने में देखे हुओं की तरह, ग़ायब हो जायँगे।

कबीरदास कहते हैं,—अरे भाई ! आज अथवा कल अथवा पाँच दिन बाद तुम्हारा बसेरा जंगल में होगा। तुम्हारे ऊपर हल चलेंगे अथवा तुम्हारे ऊपर उगी हुई घास को गाय भेंस आदि पशु चरेंगे। खुलासा यह है, कि तुम कदाचित आज ही मर जाओ; अगर आज बच गये तो कल ख़ैर नहीं। अगर साँस पूरे न हुए होंगे—चित्रगुप्त के खाते में तुम्हारे कुछ साँस बाक़ी होंगे, तो उन के पूरे होने पर पाँच या दस दिन बाद तुम अवश्य मरोगे। तुम इस शरीर में सदा न रहोगे। तुम्हारे देह छोड़ते ही, लोग तुम से घृणा करेंगे। ख़ास तुम्हारी हृदयेश्वरी ही तुम्हारी सूरत देख कर डरेगी। तुम्हारे बदन पर अगर एक चाँदी का छल्ला भी होगा, तो उसे उतार लेगी। लोग तुम्हें ले जाकर जला या गाढ़ आवेंगे। जिस जगह तुम जलाये या दफ़नायेजाओगे—जहाँ तुम्हारे शरीर की ख़ाक पड़ी होगी, उसी जगह किसान हल चलावेंगे। यदि तुम्हारी मिट्टी पर घास उग आयेगी, तो ढोर चौपे उसे चरेंगे। अतः होशियार हो जाओ ! ग़फ़लत

नींद त्यागो और अपनी अवश्यम्भावी यात्रा का प्रबन्ध करो, जिससे राह में तुम्हें किसी वस्तु का अभाव और किसी तरह की तक़लीफ़ न हो।

इस दुनिया में काम बहुत हैं और उम्र का यह हाल है कि, पलक मारने भर का भरोसा नहीं। इस क्षण-भर की ज़िन्दगी में कौनसा काम करना चाहिये, जिससे आगे की यात्रा में सुख-ही-सुख मिले ?—यही सवाल ऊपर उठाया गया है। इस सवाल को ईश्वर तक पहुँचे हुए, ईश्वर के सच्चे और प्रथम श्रेणी के भक्तवर गोस्वामि तुलसीदासजी ने बहुत ही ख़ूबसूरती से हल कर दिया है। उन्होंने मनुष्य के लिए दो ही काम चुन दिये हैं—"देवे को टुकड़ा भला और लेवे को हरनाम।" उनकी इन दो बातों पर जो अमल करेंगे, निश्चय ही उनको सुख-ही-सुख है। उन्हें नरकों की भीषण यन्त्रणायें न सहनी होंगी। वे स्वर्ग में नाना प्रकार के सुख भोगेंगे और अमृतपान करेंगे, कल्पतरु उनकी इच्छाओं को पूरी करेगा। अगर वे पराया भला करके, दुखियाओं के दुःख दूर करके, बदला या मुआविज़ा पाने की इच्छा न करेंगे; निष्काम कर्म करेंगे और कृष्ण के प्रेम में ग़र्क़ हो जायँगे, उसके सिवा किसी भी संसारी पदार्थ को न चाहेंगे; तो उन्हें वह चीज़ मिलेगी, जो हज़ारों-लाखों स्वर्गों से भी बढ़-चढ़कर होगी; फिर उन्हें कभी दुःख का नाम भी न सुनना पड़ेगा। यही बात महात्मा तुलसीदासजी ने अपने दोहों में कही है; उन्हें ख़ाली पढ़िये ही नहीं, उन पर ग़ौर भी कीजिये। विचारने से

उनकी बातें आपके दुःख और क्लेश नाश करने वाली अव्यर्थ महौषधियाँ जान पड़ेंगी। अगर आप उनकी बताई हुई दवा पीयेंगे, तो आप-अजर अमर हो जायँगे।

तुलसीदास जी कहते हैं:—संसार में आकर दो काम कर लो:—(१) भूखों को भोजन दो, और (२) भगवान् का नाम लो।

तुलसीदासजी कहते हैं:—कर्म्म, ज्ञान और उपासना प्रभृति उपचारों को त्याग कर भगवान् की भक्ति करो; क्योंकि भक्ति से विषयी लोगों को भी मुक्ति मिल सकती है; किन्तु कर्म, ज्ञान और उपासना आदि से नहीं। जैसे नौ का पहाड़ा लिखने से ९ का अङ्क नहीं मिटता; वैसे ही कर्म-ज्ञान आदि से वासना नहीं मिटती और जब तक वासना बनी रहती है तब तक मुक्ति हो नहीं सकती। वासना ही तो जन्म-मरण की जड़ है, वासना से ही जन्म लेना पड़ता है; वासना मिटी और मुक्ति हुई; पर विषयी लोगों की वासना नहीं मिटती। जिस तरह नौ का पहाड़ा लिखने से नौ का अङ्क बना ही रहता है; उसी तरह उनके कर्म-ज्ञान और उपासनादि उपचार करने पर भी वासना बनी ही रहती है। नौ का पहाड़ा लिखने पर नौ का अङ्क कैसे बना रहता है, नीचे देखिये:—

९	९=९
१८	१+८=९
२७	२+७=९

३६	३+६=९
४५	४+५=९
५४	५+४=९
६३	६+३=९
७२	७+२=९
८१	८+१=९
९०	९+०=९

इस दोहे का अर्थ हमने साधारणतया समझा दिया है। अगर हम और भी खुलासा समझावें, तो ३।४ पेज ख़र्च होंगे। मतलब यह, मुक्ति-लाभ करने के लिये "भक्ति" सीधा और सरल उपाय है। नारद, वाल्मीकि और शबरी प्रभृति भक्ति के प्रभाव से ही ऊँचे चढ़े हैं—कर्म, ज्ञान और उपासनादि से नहीं।

जगत् से ३६ की तरह और भगवान् के चरणों में—छः तीन या तिरेसठ की तरह रहो। तुलसीदासजी कहते हैं, मन में विचार कर देख लो, यह मता अत्युत्तम है।

६ जगत् है और ३ मनुष्य है। ३६ के अङ्कमें ३ ने ६ को पीठ दे रखी है। बस, इसी तरह तुम जगत् को पीठ दे कर रहो; यानी संसार की ओर मत देखो, संसार में ममता मत रखो। दूसरी ओर भगवान् के पक्ष में ६३ की तरह रहो। इसमें ६ भगवान् की शरण है और ३ मनुष्य है। जिस तरह ३ का अङ्क ६ की ओर टकटकी लगाये देख रहा है; उसी तरह मनुष्य को हर दम जगदीश की शरण में टकटकी लगाये हुए रहना चाहिए।

दोहा ।

तप तीरथ तरुणी-रमण, विद्या बहुत प्रसंग ।
कहा-कहा मन रुचि करै, पायौ तन क्षणभंग ॥४०॥

40. Should we sojourn by the banks of the heavenly river Ganges practising penances, or should we enjoy the company of women possessing the high qualities of beauty etc, always addressing them in a befitting manner, or should we drink in the ambrossial essence of the religious books or literary treaties? We are quite at a loss to know which course we should have recourse to in so short a life.

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रांगतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
संप्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः श्रृङ्गकंडूविनोदम्॥४१॥

अहा ! वे सुख के दिन कब आवेंगे, जब हम गंगा-किनारे, हिमालय की शिलाओं पर, पद्मासन लगाकर, विधान-अनुसार आँख मूँद कर, ब्रह्म का ध्यान करते हुए, योग-निद्रा

तप = तपस्या । तीरथ = तीर्थ, पवित्र धाम । तरुणी-रमण = युवतियों को भोगना । रुचि करैं = चाहता है । तन = शरीर । क्षणभंग = पल में नाश होने वाला ।
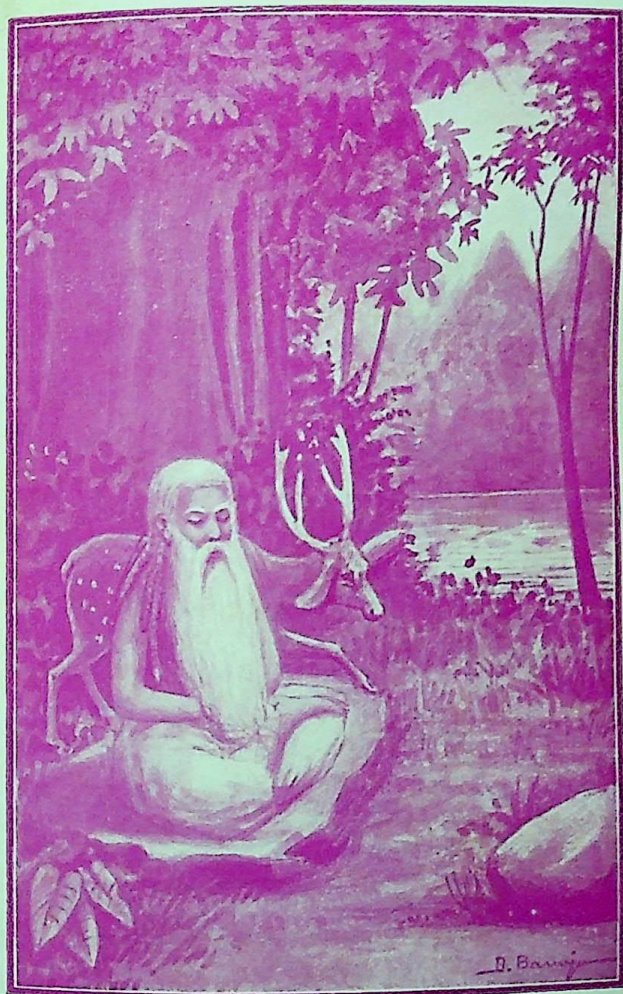
वे सुख के दिन कब आवेंगे, जब हम (इन योगीराज की तरह) गंगातट पर पद्मासन लगा, योगनिद्रा में मग्न होंगे और बूढ़े-बूढ़े हिरन हमारे शरीर की रगड़ से अपनी खुजली मिटाते होंगे ?

पृष्ठ १४०

में मग्न होंगे और बूढ़े-बूढ़े हिरन निर्भय हो, हमारे शरीर की रगड़ से, अपने शरीर की खुजली मिटाते होंगे ? ॥४१॥

संसारी माया-जाल में सुख नहीं है। संसार में जो सुखी दीखते हैं, वे भी वास्तव में दुखी हैं। उनका सुख दिखावटी सुख है, सच्चा सुख नहीं। हम उन्हें गाड़ी और मोटरों में चढ़ते देख, बढ़िया-बढ़िया महलों में आनन्द करते देख, उनके यहाँ द्रव्य की बहुलता देख, सुखी समझते हैं; पर वास्तव में वे सुखी नहीं हैं। असल बात यह है कि संसार में सुख है ही नहीं। सुख केवल संसार-त्याग या "वैराग्य" में है। इसीलिए कहने वाला कहता है, कि वे दिन कब आवेंगे, जब हम गङ्गा-किनारे, हिमालय की शिला पर बैठ, पद्मासन लगाकर, ब्रह्मके ध्यान में लीन होंगे ? उस ध्यान में जब हमारी सुध-बुध जाती रहेगी, उस समय बूढ़े हिरन हमें जीता-जागता मनुष्य न समझ, कोई निर्जीव पदार्थ समझ, निःशङ्क होकर, हमारे शरीर से अपना शरीर रगड़-रगड़कर, अपने शरीर की खुजली मिटायेंगे। जिन पुरुषों को यह सुख प्राप्त है, वही सच्चे सुखिया हैं—उन्हीं का जीवन धन्य है !

प्रेमिक के प्रेम में तन्मय हो जाने में ही मज़ा है। जब पूरी-तरह से ध्यान लग जाता है, तब शरीर पर पक्षी बैठें या जानवर, खुजली मिटावें या चाहे जो करें, कोई ख़बर नहीं रहती। ऐसे ध्यानियों को ही सिद्धि मिलती है। महाकवि दाग़ कहते हैं:—

कमाल इश्क़ है ऐ दाग़, महव हो जाना।
मुझे ख़बर नहीं, नफ़ा क्या ज़रर कैसा ? ॥

प्रेम में जो लोग तन्मय हो जाते हैं, उन्हींका प्रेम—प्रेम है। विना तन्मयता के प्रेम थोथा है। मैं तन्मय हूँ, इसलिए मुझे घाटे और लाभ की फ़िक्र तो क्या, ख़बर ही नहीं।

कबीर कहते हैं—

प्रेम-प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय॥
लौ लागी जब जानिये, छूटि न कबहूँ जाय।
जीवन लौ लागी रहे, मूआ माँहि समाय॥

कबीर साहब कहते हैं,—प्रेम-प्रेम सब कहते हैं, पर प्रेमको कोई नहीं जानता। जिसमें आठ पहर डूबा रहे, वही प्रेम है। लौ लगी तभी समझो, जब कि लौ छूट न जाय। ज़िन्दगी-भर लौ लगी रहे और मरने पर प्यारे में समा जाय।

चित्त का स्वभाव है, कि वह अगली-पिछली बातों को याद करता है। इन्द्रियों का स्वभाव है कि, वे अपने-अपने विषयों की ओर झुकती हैं। कान आवाज़ सुनना चाहता है। नेत्र नई वस्तु देखना चाहते हैं ; पर इस तरह ईश्वर-उपासना

इश्क़ = प्रेम। महव हो जाना = तन्मय हो जाना ; ग़र्क़ हो जाना। नफ़ा = लाभ। ज़रर = हानि; नुक़सान।

करने से कोई लाभ नहीं। वृथा अमूल्य समय नष्ट करना है। ईश्वर-उपासना करने वाले को, सब से पहले, अपने चित्त और इन्द्रियों को, उनके कामों से हटा कर, अपने अधीन कर लेना चाहिये। विना चित्त के एक तरफ हुए और विना इन्द्रियों को उनके कामों से रोके—ध्यान लग ही नहीं सकता। ध्यान करने वाला न शरीर को हिलावे और न किसी तरफ देखे। अगर किसी तरफ भयानक शब्द हो या कोई जीव काटे, तो भी ध्यानी का ध्यान न टूटना चाहिये। आजकल अधिकांश कर्मकाण्डी गोमुखी में हाथ चलाते जाते हैं और मन में अनेक गढ़न्त गढ़ते जाते हैं। कोई कुछ कहता है, तो उसकी भी सुन लेते हैं। ऐसी ईश्वरोपासना से क्या लाभ ?

एक गोपी का कृष्ण में आदर्श प्रेम।

एक बार एक गोपी यशोदा के घर दीपक जलाने आई। वहाँ कृष्ण खेल रहे थे। वह कृष्ण के प्रेम में ऐसी पगी कि, उसने बत्ती के बजाय अपनी उँगली दीपक पर लगा दी। यहाँ तक कि सारी उँगली जल गई, पर उसे ख़बर न हुई; किसी दूसरे ने उसे चेत कराया तो चेत हुआ।

एक नमाज़ी मियाँ को एक कुलटा का उपदेश।

इसी तरह, एक मियाँ जी भी जाँनमाज़ बिछा कर नमाज़ पढ़ने लगे। उधर से एक व्यभिचारिणी स्त्री अपने यार के प्रेम में

डूबी हुई उससे मिलने चली। वह प्रेम में ऐसी डूबी हुई थी कि, मियाँजी की जाँनमाज़ पर होकर निकल गई। मियाँजी को क्रोध आ गया; आपने उसे दो चार गालियाँ सुनाईं। स्त्री ने कहा—"लानत है आपके ईश्वर-प्रेम पर, जो आपने मुझे देख लिया! प्रेम तो मेरा जैसा होना चाहिये, जो मुझे अपने यार के प्रेम में न आप दीखे और न आपकी जाँनमाज़ ही।"

सच है, दिखाऊ प्रेम से कोई लाभ नहीं; प्रेम हो तो ऐसा हो, कि अष्ट पहर चौंसठ घड़ी अपने प्रेमी का ही ध्यान रहे और उसमें मनुष्य ऐसा डूबा रहे कि, तनोबदन की भी सुध न रहे। वैसे प्रेम से ही जगदीश मिलते हैं।

दोहा।

ब्रह्मध्यान धर गंगतट, बैठूँगो तज संग।
कबधौं वह दिन होयगो, हिरन खुजावत अंग? ॥४१॥

41. When are those happy days to come when I shall be sitting in the padma posture on a rock of the Himalaya mountain, absorbed in meditation of Brahma in strict compliance with the principles of Yoga, when the oldest deer of the forest will make themselves happy by scratching my body with the tips of their horns fearlessly.

तज संग = स्त्री पुत्र प्रभृति का साथ छोड़ कर। कबधौं—होयगो= वह समय कब आवेगा?

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ॥
भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्यार्तवचसः।
कदा स्यामानन्दोद्गमबहुलवाष्पाकुलदृशः ॥४२॥

वह समय कब आवेगा, जब हम पवित्र गंगा के ऐसे स्थान पर जो चन्द्रमा की चाँदनी से चमक रहा होगा, सुख से बैठे होंगे और रात के समय, जब सब तरह का शोर गुल बन्द होगा, आनन्दाश्रु-पूर्ण-नेत्रों से, संसार के विषय-दुःखों से थककर, सर्वशक्तिमान् शिव की रटना लगा रहे होंगे ? ॥४२॥

धन्य हैं वे लोग जिन्हें संसारी झूठे विषय-सुखों से नफ़रत हो गई है, जो यहाँ के जञ्जालों से थक गये हैं, जिन्होंने मोह-जाल तोड़कर गङ्गा के पवित्र किनारे पर वास कर लिया है और निस्तब्ध चाँदनी रात में, गद्गद् होकर, शिव-शिव रटते हैं !! और लोग जो संसार के मोहपाश में फँसे हुए हैं, अपना जीवन वृथा खोते हैं।

दोहा।

ज्योत्स्ना सों सित थल तहाँ, मुदित आँसुयुत नैन ।
कब रटिहौं तट गंग के, शिव-शिव आरत बैन ॥४२॥

ज्योत्स्ना = चन्द्रमा की चाँदनी। सों = से। सित = सफ़ेद। थल = स्थान। तहाँ = वहाँ। मुदित = प्रसन्न। आँसुयुत = आँसुओं से भरे हुए। नैन = नेत्र। तट = किनारा। आरत = गद्गद्। बैन = वाणी।

42. When is the time to come when, sitting peacefully on a lonely spot by the side of the holy Ganges where the surface of the ground has been made luminous by the spreading, shining moon-light and the nights are free from all sorts of disquieting sounds, we shall shed tears of joy from eyes filled with them spontaneously, our minds tired of the pleasures of life and our speech deep in humble prayer to the Almighty Shiva.

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्-
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥४३॥

महादेव ही हमारा एक देव हो, जाह्नवी ही हमारी नदी हो, एक गुफा ही हमारा घर हो, दिशा ही हमारे वस्त्र हों, समय ही हमारा मित्र हो, किसी के सामने दीन न होना ही हमारा मित्र हो, अधिक क्या कहें वटवृक्ष ही हमारी अर्द्धांगिनी हो ॥४३॥

जो हज़ारों-लाखों देवताओं को छोड़कर एक परमात्मा को ही अपना देव समझता है, रात-दिन उसी के ध्यान में मग्न रहता है; जो गङ्गा तट पर बसता है, गङ्गा में स्नान करता है, गङ्गा-जल ही पीता है; जो कपड़ों की भी ज़रूरत नहीं रखता, दिशाओं को ही अपने वस्त्र समझता है, काल को ही अपना मित्र मानता

है; किसी के सामने दीनता नहीं करता, किसी से कुछ नहीं माँगता; वटवृक्ष के आश्रय में रह कर भगवान् का भजन करता है और वटवृक्ष को ही अपने दुःख-सुख की संगिनी प्राणवल्लभा समझता है, वही पुरुष धन्य है ! उसका ही जगत् में आना सफल है। परमात्मा की दया या पूर्वजन्म के पुण्यों से ही ऐसी बुद्धि होती है। ऐसी बुद्धि के प्रभाव से ही वह दुःखों से छूट कर नित्यानन्द में मग्न रहता है।

दोहा ।

देव ईश सुरसरि सरित, दिशा वसन गिरि गेह ।
सुहृत्काल वट कामिनी, व्रत अदैन्य सुख एह ॥४३॥

43. Let the Great God be the only god for us, the heavenly Ganges the only river, a cave the only house, the direction of the open space the only clothing, time the only friend and the vow of non-supplication the only vow. What more should he say then that a banyan tree in the forest may be our only better half?

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥

देव = देवता। ईश = महादेव। सुरसरि = देवनदी; गङ्गा। दिशा = दशों दिशाएँ। वसन = कपड़ा। गिरि = पहाड़। गेह = घर। दिशा वसन = दिशाओं को ही कपड़े मान कर नङ्गा रहना। सुहृद् = मित्र। काल = मृत्यु। वट = बड़ का पेड़। कामिनी = स्त्री। अदैन्य = न माँगना; हाथ न पसारना।

अधो गंगा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥४४॥

देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरी, उनके सिर से हिमालय पर्वत पर; हिमालय पर्वत से पृथ्वी पर; और पृथ्वी से समुद्र में गिरी। इससे मालूम होता है, कि विवेक-हीनों का पद-पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है ॥४४॥

जो विचारपूर्वक काम नहीं करते, जो अक़्ल से काम नहीं लेते, उनको तरह-तरह से नीचा देखना पड़ता है। कविने यहाँ गङ्गा का दृष्टान्त दिया है और ख़ूब दिया है।

शिक्षा—जो विवेकहीन हैं, जो अहंकारी हैं, वे सदा नीचा देखते और बार-बार नीचे गिरते हैं; अतः मनुष्य को भूल कर भी घमण्ड न करना चाहिये और ख़ूब विचार कर काम करना चाहिये। गंगा को बड़ा घमण्ड हुआ, तब उसका गर्व्व खर्व्व करने के लिए ब्रह्मा ने उसे अपने कमण्डल में भर लिया। गङ्गा का मस्तक नीचा हो गया। फिर भी; उसने घमण्ड न छोड़ा, तब शिवजी ने उसे अपनी जटाओं में रोक लिया। फिर महाराज भगीरथ ने घोर तप किया, तो शिवजी ने उसे छोड़ा। शिव के सिर से वह हिमालय पर गिरी और वहाँ से बहती-बहती समुद्र में जा गिरी। जो गर्व करते हैं, जगदीश उनके दुश्मन हो जाते हैं। जगदीश उन्हीं को मिलते हैं, जो गर्व से दूर भागते हैं और विवेक भ्रष्ट नहीं होते।

शेख़ सादी ने कहा है:—

हर्के बेहूदा गर्दन अफ़राज़द।
ख़ेश्तन रा बगर्दन अन्दाज़द॥

देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरीं, उनके सिर से हिमालय पर्वत पर, हिमालय से पृथिवी पर, पृथिवी से समुद्र में गिरीं। इससे मालूम होता है, कि विवेक-भ्रष्टों का पद-पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है। पृष्ठ १४८
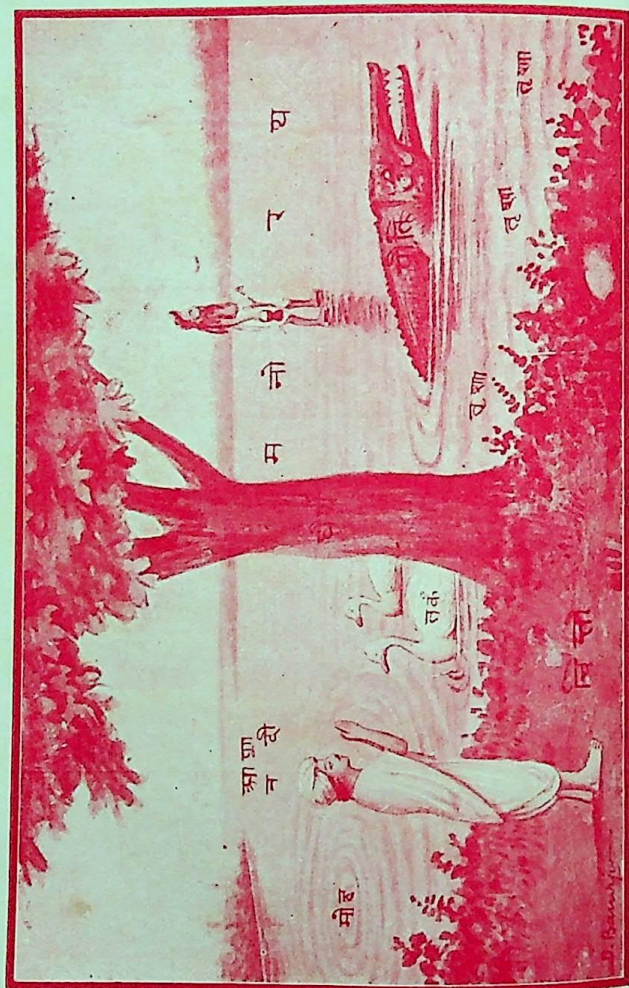
शुद्धचित्त योगीश्वर ही इस भयंकर आशानदी के पार जा सकते हैं ।

पृष्ठ १४९

जो कोई अपनी गर्दन ऊँची करता है, वह मुँह के बल गिरता है।

44. Look how the great Ganges has fallen lower and lower from her abode of stupendous elevation! from the Swarga down on to the head of the God Shiva, from thence to the summit of the mountain, from the mountain to the plain earth and from thence down to the sea. Similar is the fate of men devoid of discriminating reason who undergo a downfall in hundreds of ways.

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥
मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसोनंदन्ति योगीश्वराः॥४५॥

आशा एक नदी है, उसमें इच्छा रूपी जल है; तृष्णा उस नदी की तरंगें हैं, प्रीति उसके मगर हैं, तर्कवितर्क या दलीलें उसके पक्षी हैं, मोह उसके भँवर हैं; चिन्ता ही उसके किनारे हैं; वह आशा नदी धैर्य्यरूपी वृक्ष को गिरानेवाली है; इस कारण उसके पार होना बड़ा कठिन है। जो शुद्धचित्त योगीश्वर उसके पार चले जाते हैं; वे बड़ा आनन्द उपभोग करते हैं ॥४५॥

नदी का नाम क्या है? आशा-नदी। उसमें जल काहे का है? इच्छा का। उसमें मगर कैसे हैं? प्रीतिरूपी मगर हैं।

उसमें जलचर पत्ती कैसे हैं ? नाना प्रकार के तर्क वितर्क उसके पत्ती हैं। वह किनारे के किन दरख्तों को गिराती है ? धैर्यरूपी दरख्तों को गिराती है। उसमें भँवर कैसे हैं ? मोहरूपी भँवर हैं। उसके किनारे काहे के है ? चिन्ता के। उसको कौन पार कर सकते हैं ? उसको वही पार कर सकते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जिनके चित्त से ये सब बलायें हट गयी हैं और जिनका चित्त केवल ब्रह्म में लीन हैं।

सारांश,—यदि आनन्द चाहो; तो आशा, इच्छा, प्रीति, तर्क-वितर्क, मोह और चिन्ता प्रभृति को एकदम छोड़ कर, शुद्धचित्त हो जाओ और अपने आत्मा या ब्रह्म के ध्यान में तन्मय हो जाओ।

छप्पय ।

नदीरूप यह आश, मनोरथ पूर रह्यौ जल।
तृष्णा तरल तरंग, राग है ग्राह महाबल।
नाना तर्क विहंग, संग धीरज-तरु तोरत।
भ्रमर भयानक मोह, सबद को गहि-गाहि बोरत।
नित बहत रहत चित-भूमि में, चिन्तातट अति ही बिकट।
काढ़ि गये पार योगी पुरुष, उन पायौ सुख तेहि निकट ॥४५॥

पूर रह्यो = भर रहा। तृष्णा = इच्छा। तरल = चंचल। तरंग = लहर। राग = प्रेम। ग्राह = मगर, घड़ियाल। महाबल = अत्यन्त बलवान। नाना = तरह तरह के। तर्क = दलीलें। बिहंग = पत्ती। भ्रमर = भँरा।

45. Hope is just like a river with water in the shape of desires, agitated by currents in the shape of avarice, with alligators in the shape of attachments, with watery birds in the shape of motely designs, with the power of destroying one's perseverance in place of uprooting trees, difficult to cross owing to the presence of whirl-pools in the shape of worldy love, exceedingly deep and possessing banks in the shape of very great cares. Happy are the great yogis, who pure in mind, have succeeded in stepping over it.

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ॥
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढ़गूढ़ाभिमान-
क्षीबस्यान्तः करणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥४६॥

ओ भाई ! मैं सारे संसार में घूमा और तीनों भुवनों में मैंने खोज की; पर ऐसा मनुष्य न मैंने देखा न सुना, जो अपनी कामेच्छा पूर्ण करने के लिये हथिनी के पीछे दौड़ते हुए मदोन्मत्त हाथी के समान मन को वश में रख सकता हो ॥४६॥

भाई ! मैंने त्रिलोकी खोज डाली, पर मुझे एक भी आदमी ऐसा न दीखा, जो विषयरूपी हथिनी के पीछे लगे हुए मनरूपी गज को रोक सकता हो । इसका खुलासा यह है,—विषयों में

फँसे हुए मन को क़ाबू में रखना अथवा उसे विषयों से हटाना असम्भव है।

मन बड़ा ज़बरदस्त है। इसके पङ्ख नहीं, पर पत्ती की तरह उड़ने वाला है; कभी यह आकाश में जाता है और कभी पाताल में जाता है। मन शरीर को जिधर घुमाता है, शरीर उधर ही घूमता है। मन ही मनुष्य को परमात्मा से अलग रखता और मन ही उसे उससे मिला देता है। मन की चञ्चलता अच्छी नहीं। उसकी चञ्चलता ही साधना में बाधक है। महात्मा कबीर कहते हैं:—

मन-पत्ती तब लगि उड़ै, विषय-वासना माँहि।
ज्ञान-बाज़ की झपट में, जब लगि आया नाँहि॥
मन के बहुतै रंग हैं, छिन-छिन मध्ये होय।
एक रंग में जो रहे, ऐसा बिरला कोय॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा ऊपजै, जो मन आवे ठौर॥
मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार हैं, ते साधू कोई एक॥

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं:—

दुनिया से मैं अगर, दिले मुज़्तर को तोड़ दूँ।
सारे तिलिस्म, वहम मुक़द्दर को तोड़ दूँ॥

संसार में लगे हुए मन को यदि मैं तोड़ दूँ, तो धोखे और बुराई में डालने वाले इस प्रपंच को ही तोड़ डालूँ। संसार-पाश में बँधे हुए मन को तोड़ना मुशिकल है।

मन-पक्षी विषय-वासनाओं में उस वक्त तक उड़ता है, जब तक वह ज्ञान-बाज़ की झपट में नहीं आता। मतलब यह है कि, मन विषयों में उसी समय तक फँसा रहता है, जब तक कि उसे ज्ञान नहीं होता। ज्ञान होते ही मन विषयों के फन्दे से निकल जाता है।

मन के अनेक रंग हैं, जो छिन-छिन में बदलते रहते हैं। जो एक ही रंग मे रंगा रहता है, वह कोई विरला ही होता है।

समुद्र की जितनी लहर हैं, मन की उतनी ही दौड़ हैं। अगर मन एक ही ठिकाने ठहर जावे, तो सहज में हीरा पैदा हो जावे। मतलब यह है कि, मन के एक जगह ठहरने या स्थिर हो जाने से सिद्धि मिल जा सकती है, जगदीश्वर के दर्शन हो सकते हैं। चञ्चल मन से सिद्धि दूर भागती है। जगदीश-मिलन के लिए स्थिर चित्त की दरकार है।

मन के मते पर न चलना चाहिये, क्योंकि मन के अनेक मते हैं। मन पर सवार रहने वाले, मन को अपने वश में रखने वाले महात्मा कोई विरले ही होते हैं। सारांश यह है कि, मन की चाल पर न चलना चाहिये, उसकी सलाह के माफ़िक़ काम न करने चाहिएँ। मन को अपने क़ाबू में रखना चाहिये और उसे अपनी इच्छानुसार चलाना चाहिये। जो मन की राह पर नहीं चलते,

मन के अधीन नहीं होते, मन को स्थिर रखते हैं, उसे चञ्चल नहीं होने देते, उसकी लगाम अपने हाथों में रखते और उसे अपनी मरज़ी माफ़िक़ चलाते हैं—स्वयं उसकी मरज़ी पर नहीं चलते, वे जगत् को विजय कर सकते हैं। वे नाना प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर सकते हैं और जगदीश से मिल कर अक्षय सुख के अधिकारी हो सकते हैं। जिन्हें संसारी जञ्जालों से छूटना हो, जन्म-मरण के कष्ट न भोगने हों, नित्य और अविनाशी सुख भोगना हो, परमपद लाभ करना हो; वे मन को अपने वशमें करें, उसे उधर-इधर जाने से रोकें और उसे करतार के ध्यान में लगावें।

उस्ताद जौक़ एक जगह फिर कहते हैं—

बड़े मूज़ी को मारा, नफ़्से अम्मारे को गर मारा।
नहंगो अज़दहाओ, शेर नर मारा तो क्या मारा॥

अपने दिल को मार, अभिमान को मार; इसमें तेरी बड़ाई है। बड़े-बड़े ख़ूँख़्वार जानवरों के मारने में वीरता नहीं है।

पर अभिमान-शून्य होना, है बड़ा कठिन। जिस बासन में लहसन या प्याज़ रक्खे जाते हैं, उसमें से उनकी गन्ध बड़ी कठिनाई से जाती है; इसी तरह अभिमान भी बड़ी कठिनाई से जाता है।

इसके नाश का उपाय विवेक या ज्ञान है। जब ज्ञान का उदय हो जाता है, तब जिस तरह पका हुआ आम आप-से-आप गिर पड़ता है; उसी तरह अभिमान भी आप-से-आप दूर हो

जाता है। अभिमान के नाश होते ही चित्त शुद्ध हो जाता है। चित्त के शुद्ध होने से परमात्मा के दर्शन होने की राह साफ़ हो जाती है।

मनुष्यो! अभ्यास करो; अभ्यास से सब कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। जैसे भी हो, मन को वासना-हीन बनाओ। वासना-हीन, निर्मल चित्त वाले व्यक्ति पर उपदेश जल्दी असर करता है और उस में ईश्वरानुराग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

दोहा।

ऐसो मैं संसार में, सुन्यो न देख्यो धीर।
विषया-हथिनी संग लग्यो, मनगज बाँधे बीर ॥४६॥

46. O brother, wandering all the world over and seeking throughout the three Regions, we have neither seen nor heard of a man who has been successful in curbing the wild restlessness of his mind which is like a male-elephant turned mad through cupidity and pursuing his female for the gratification of his sensual desires.

ये वर्द्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो
ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः।
तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं
ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥४७॥

धीर = धीरजवान। विषय-हथिनी = विषयरूपी हथिनी। मन-गज = मनरूपी हाथी। संग लग्यो = पीछे पड़ा हुआ। बीर = बहादुर।

वे दिन जो धन के लिये धनवानों की .खुशामद करने के दुःख से बड़े मालूम होते थे और वे दिन जो विषयासक्ति में छोटे लगते थे; उन दोनों प्रकार के दिनों को हम पर्वत की एकान्त गुहा में, पत्थर की शिलापर बैठे हुए, आत्मध्यान में मग्न होकर, अन्तःकरण में हँसते हुए याद करेंगे ॥४७॥

जिन लोगों को अनेक प्रकार के ऐशोइशरत और भोग-विलास के सामान मयस्सर हैं, जिनके यहाँ किसी भी संसारी भोग-विलास की सामग्री का अभाव नहीं है, जिनके सुन्दरी मृगनयनी कामिनी सेवा करने को हैं, जिनके दास-दासी हैं, जिनके बाग़-बग़ीचे हैं, जिनके गाड़ी-घोड़े और मोटर हैं, जिनके पीछे अनेक तरह के .खुशामदी लगे रहते हैं, जिनके हाथ में द्रव्य है अथवा जिनपर राज-कृपा है—ऐसे लोगों के दिन बड़ी जल्दी कटते हैं। उन्हें दिन-रात बीतते हुए मालूम ही नहीं होते, लम्बे-लम्बे दिन भी छोटे प्रतीत होते हैं; किन्तु जिन लोगों को सब तरह का अभाव है, जो हर बात के लिए तंग हैं, जो अपनी इच्छा पूरी करने के लिये धनियों से धन माँगते हैं, उनकी .खुशामद करते हैं, उनकी दुत्कार-फटकार सहते हैं, अपमानित होते हैं, उनके लिये वे ही दिन बड़े भारी मालूम होते हैं —काटे भी नहीं कटते। किन्तु जो लोग विषयों का सामान होते हुए भी विषय-सुख नहीं भोगते, और अभाव होने पर भी इच्छा नहीं रखते, इसलिये धनियों के देहरे नहीं ढोकते, उनकी .खुशामद

नहीं करते, अपने आत्माराम में ही मस्त रहते हैं,—वे सुखी हैं; उन्हें दिन बड़े और छोटे नहीं लगते।

जिसने दोनों प्रकार के दिन देखे हैं, पर शेष में उसे ऐसे झगड़ों से विरक्ति हो गयी है, वह कहता है,—मैं एकान्त गुफा-में पवित्र शिलापर बैठा हुआ, आत्मा का ध्यान करूँगा और उन दिनों की याद कर के उन पर घृणा से हँसूँगा।

कुण्डलिया।

छोटे दिन लागत तिन्हें, जिनके बहुविधि भोग।
बीत जात बिलसत हँसत, करत सुरत संयोग।
करत सुरत संयोग, तनकसे लागत तिनको।
जे हैं सेवक दीन, निपट दीरघ हैं विनको।
हम बैठे गिरि-शृंग, अंग याही ते मोटे।
सदा एक रस द्योस, लगत हैं बड़े न छोटे ॥४७॥

47. We shall now, seated in self-contemplation on a stone in some lonely cave of a mountain, remember with a smile the past days which appeared to us to have become intolerably long when we suffered from the hardship of appealing to rich men for help and which became quite short when our mind was lost in the enjoyment of worldly pleasures.

तिन्हें = उन्हें। बहुविधि = तरह-तरह के। सुरत = भोग-विलास। तनकसे = छोटे। निपट = बहुत ही। दीरघ = बड़े। विनको = उनको। गिरिश्रृङ्ग = पर्वत की चोटी।

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता।
अलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिंगिता
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥४८॥

न तो हमने निष्कलंक विद्या पढ़ी और न धन कमाया; न हमने शान्त चित्त से माता-पिता की सेवा ही की और न स्वप्न में भी दीर्घनयनी कामिनियों को गले से ही लगाया। हमने इस जगत् में आकर, कव्वे की तरह पराये टुकड़ों की ओर ताक लगाने के सिवा, क्या किया ? ॥४८॥

जिस मनुष्य ने औरों की .खुशामद-बरामद या लल्लो-पत्तो करके अपना पेट भरा, टुकड़ों के लिये सदा पराये मुँह की ओर देखता रहा, वही शख़्स शेष में दुःखित हो कर कहता है,—हाय, मैंने बे-ऐब इल्म भी न पढ़ा, धन भी उपार्जन नहीं किया, मृगनयनी कामिनियों का आलिङ्गन भी न किया और माता-पिता की सेवा भी न की—मैंने वृथा जन्म लिया और अपना जीवन वृथा गँवाया।

जो संसार में आकर न हरि-भजन करते हैं, न विद्याध्ययन करते हैं, न धनोपार्ज्जन करके सुख भोगते हैं और न संसार के दुःखियों के दुःख ही दूर करते हैं, उनका इस दुनिया में आना वृथा है। किसी ने कहा है—

न इधर के रहे, न उधर के रहे।
न .खुदा ही मिला, न विसाले सनम ॥

और भी किसी ने कहा है—

कहा कियो हम आयके, कहा करेंगे जाय ?
इतके भये न उतके, चाले मूल गँवाय ॥

मतलब यह है, कि विद्या पढ़ना, विद्या-बुद्धि से धन-उपार्जन करना, सुख भोगना और माँ-बाप की सेवा करना अच्छा; पर खाली पेट भरने के लिये, कव्वे की तरह पराया मुँह ताकना अच्छा नहीं। मुँह ही ताकना है, तो उस परमात्मा का ताको, जो अभाव-शून्य है और सब का दाता है। उससे ही आपकी इच्छा पूरी होगी। अगर आप उसी का भरोसा करेंगे, तो वह आपके सब अभाव दूर करेगा, आपके दुःखों में दुःखी और आपके सुखों में सुखी होगा। उसके विना आपकी भूख न मिटेगी। रहीम कहते हैं और सच कहते हैं—

रामचरण-पहिचान बिन, मिटी न मन की दौर।
जनम गँवाये बादिही, रटत पराये पौर ॥

भगवान् के चरण-कमलोंसे परिचय हुए बिना, उनके पद-पङ्कजों से प्रेम हुए विना, मनुष्य के मन की दौड़ नहीं मिटती—मन की चंचलता नहीं जाती और स्थिरता नहीं होती। मन के स्थिर हुए बिना भगवान् के भजन में मन लग नहीं सकता। जो लोग गेरुआ बाना धारण करके साधु हो जाते हैं और भगवान् में मन नहीं लगाते—वे लोग पेट के लिए दर-दर चीख-चिल्लाकर अपना दुर्लभ मनुष्य-जन्म वृथा ही गँवाते हैं। वे मूर्ख इस बात को नहीं

समझते, कि यह मनुष्य-जन्म बड़ी कठिनाई से मिला है। ऐसा मौक़ा फिर जल्दी नहीं मिलने का। अगर यह जन्म पेट की चिन्ता में गँवाया जायगा; तो फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद कहीं मनुष्य जन्म मिलेगा। इससे तो यही अच्छा होता, कि वे संसारत्यागी बनने का ढोंग न रच कर, संसारी या गृहस्थ ही बने रहते। संसारी बने रहने से वे इस दुनिया के मिथ्या सुख-भोग तो भोग लेते। ऐसे ढोंगी दोनों तरफ़ से जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लागि मन में खान।
का परिडत का मूरखै, दोनों एक समान॥
इत कुलकी करनी तजे, उत न भजे भगवान्।
"तुलसी" अधवर के भये, ज्यों बघूर के पान॥
"तुलसी" पाति दरबार में, कमी वस्तु कछु नाहिं।
कर्महीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माहिं॥
राम ग़रीबनिवाज हैं, राम देत जन जानि।
"तुलसी" मन परिहरत नहिं, धुरुविनिया की बानि॥

काम, क्रोध, मद और लोभ—जब तक मन में रहते हैं, तब तक परिडत और मूर्ख में कोई फ़र्क़ नहीं—दोनों ही समान हैं।

जो लोग केवल पुजने के लिए घर गृहस्थी को त्यागकर साधु बन जाते हैं, वे अगर घर में रहें तो माता-पिता की सेवा, आतिथ्य-

सत्कार, पिण्डदान, ब्राह्मण-भोजन, सन्तानोत्पत्ति और कन्या-दान आदि गृहस्थ के कर्म कर सकते हैं; पर साधुवेष धारण करने से इन कामों को नहीं कर सकते। दूसरी ओर, साधु होकर ईश्वर-भजन करना चाहिये, पर चूंकि वे सच्चे साधु नहीं—काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ उन से अलग नहीं—इसलिये उनका चित्त स्थिर नहीं होता। चित्त के स्थिर न होने से, ईश्वर में भी उनका मन नहीं लगता। पेट भरने के लिये वे घर-घर मारे-मारे फिरते हैं। इस तरह वे न तो घर के रहते हैं न घाट के। तुलसीदासजी कहते हैं, उनकी गति बवण्डर या बगूले के पत्ते की सी होती है, जो न तो आकाश में ही जाता है और न ज़मीन पर ही रहता है—अधपर में उड़ता-फिरता है। इस तरह जन्म गँवाना—मूर्खता नहीं तो क्या है ? जो लोग मिहनत-मज़दूरी कर के कमा नहीं सकते और बैठे-बैठे मिलता नहीं, वे कुटुम्ब का पालन न कर सकने की वजह से साधु बन जाते हैं। फिर वे दरदर टुकड़े माँगते और ठोकरें खाते हैं। ईश्वर पर भी उनका भरोसा नहीं। अगर परमात्मा पर भरोसा होता, तो वे ध्यानस्थ होकर उसी का जप करते और वह भी उनकी फिक्र करता। जो उसके भरोसे निर्जन और बयावाँ जंगलों में भी जाकर बैठ जाते हैं, उनको वह वहीं पहुँचाता है, इस में सन्देह नहीं। वह उसका नाम न जपने वालों को ही पहुँचाता है; तब उसके ही भरोसे रहने वालों और उसी की माला जपने वालों को वह कैसे भूल सकता है ?

वह सवेरे से शाम तक विश्व के प्राणियों को खाना पहुँचाता है, विश्व का पालन करता है, इसी से उसे विश्वम्भर कहते हैं। वह हाथी को मन और कीड़ी को कन पहुँचाता है, इसमें सन्देह नहीं। एक बार शाहन्शाह अकबरे आज़म को उस के विश्वम्भर होने में सन्देह हुआ। उन्होंने एक काँच के बक्स में एक चींटी बन्द करवा दी। चींटी के उस में बन्द किये जाने से पहले, उन्होंने स्वयं अपने हाथों से बक्स का कोना-कोना देख लिया। फिर उस में चींटी बन्द करा कर ताला लगा दिया और चाभी अपने पास रख ली। बक्स भी दिन-रात अपने सामने ही रखा। २४ घण्टे बाद जब बक्स खोला गया, तो चींटी के मुँह में एक चाँवल का दाना पाया गया। बादशाह का शक रफ़ा हो गया। उन्होंने भी उसे विश्वम्भर मान लिया।

तुलसीदासजी कहते हैं, स्वामी के दरबार में किसी चीज़ का अभाव नहीं है। उनके दरबार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ मौजूद हैं। उनके भक्त जो चाहते हैं, उन्हें वही मिल जाता है। उनके भक्तों की इच्छा होते ही ऋद्धि सिद्धि उनके क़दमों में हाज़िर हो जाती हैं, पर शर्त यह है कि, उनके भक्तों का मन चलायमान न हो, उनका मन किसी दूसरी ओर न जाय। जो लोग ईश्वर की चाकरी में चूकते हैं, स्थिर चित्त होकर उसकी पूजा-उपासना नहीं करते, मन को जगह-जगह भटकाते हैं, वे कर्महीन दुःख पाते हैं, उनको मनवांछित पदार्थ नहीं मिलते। सुखदाता को भूलने से सुख कैसे हो सकता है?

भगवान् दीनबन्धु, दीनदयाल और ग़रीब-परवर हैं। वे दीनों के दुःख दूर करने वाले और ग़रीबों की ग़रीबी या मुहताजी मिटाने वाले हैं। वे अपनों को अपना समझ कर, इस लोक और परलोक के पूर्ण सुखैश्वर्य देते हैं। इस दुनिया में अर्थ, धर्म और काम देते हैं और मरने पर, उस दुनिया में, स्वर्ग या मोक्ष देते हैं। मतलब यह है, जो ईश्वर की शरण में चले जाते हैं, ईश्वर अपने उन शरणागतों की इच्छाओं को, उनके मन में इच्छा होते ही, पूरी कर देता है। पर अफसोस तो यही है कि, मन अपनी घुरुबिनिया की आदत नहीं छोड़ता अर्थात् मन संसारी पदार्थों में जाये बिना नहीं रहता। अगर मन संसारी पदार्थों में जाना छोड़ दे, तो दरिद्रता रहे ही क्यों ? सारे अभाव दूर हो जायँ।

छप्पय ।

विद्या रहित-कलंक, ताहि चित में नहिं धारी ।
धन उपजायो नाहिं, सदा-संगी सुखकारी ।
मात-पिता की सेव-सुश्रूषा, नेक न कीन्हीं ।
मृगनयनी नवनारि, अंक भर कबहुँ न लीन्ही ।

रहित-कलंक = कलंक रहित = निर्दोष। ताहि = उसे, निर्दोष विद्याको। धारी = धारण की। उपजायो = पैदा किया। सदा-संगी = सदा-सर्वदा साथ रहने वाला। सेव-सुश्रूषा = सेवा टहल; ख़िदमत। नेक = ज़रा भी। मृग-नयनी = हिरन के से नेत्रों वाली। नवनारि = नवीना स्त्री, सोलह सालकी बाला। अंक भर···लीन्ही = छाती से न लगायी।

योंही व्यतीत कीन्हौ समय, ताकत डोल्यौ काक ज्यों।
ले भज्यौ टूक पर-हाथ तें, चंचल चोर चलाक ज्यों ॥४८॥

48. We did not acquire knowledge pure of all blemishes, not did we hoard wealth. We did not even serve our parents with a patient mind, or embrace youthful women with large and restless eyes even in our dreams. What did we do in this world except passing our days like a crow expecting to be given a morsel by others ?

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामा विधिगतीः ॥
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै-
स्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥४६॥

सर्व्वस्व त्यागकर (अथवा सर्व्वस्व नष्ट हो जाने पर) करुणापूर्ण हृदय से, संसार और संसार के पदार्थों को सारहीन समझ कर, केवल शिव-चरणों को अपना रक्षक समझते हुए, हम शरद् की चाँदनी में, किसी पवित्र बन में बैठे हुए, कब रातें बितायेंगे ? ॥४६॥

योंही = वृथा ही। व्यतीत कीन्हों = बिताया। ताकत डोल्यो = देखता फिरा। काक ज्यों = कव्वे की तरह। ले भज्यो = ले भागा। टूक = टुकड़ा, रोटी का टुकड़ा। पर हाथ ते = पराये हाथ से। चंचल⋯ज्यों = चंचल और चालाक चोर की तरह।

वह दिन कब आवेंगे, जब हम सर्वस्व त्याग कर, संसार को असार समझ कर, संसार के सुखों को अनित्य समझ कर, संसार के भोग-विलासों को दुःख-मूल समझ कर, विषयों को विष समझ कर, किसी पवित्र वन में बैठे हुए, शरद् ऋतु की चाँदनी रात को शिव-शिव की रटना लगाते हुए व्यतीत करेंगे ? अर्थात् हमारे ये दिन जो संसारी जञ्जालों में बीते जा रहे हैं, वृथा नष्ट हो रहे हैं। जब हम सब को त्याग कर भगवान का भजन करेंगे, तभी हमारे दिन ठीक तरह से कटेंगे। हम उन्हीं दिनों को सार्थक हुए समझेंगे। संसारी सुखों से तो हम अघा गये।

तुलसीदास जी कहते हैं—

दुखदायक जाने भले, सुखदायक भज राम।
अब हमको संसार को, सब बिधि पूरन काम॥

हे मन ! अब परमात्मा में मन लगा, संसारी सुखों में अब हमारी इच्छा नहीं; इनकी पोल हमने देख ली।

49. Now having renounced everything with our hearts full of deep emotions and looking back on the downfall brought about by evil actions done in the world, we will end our life passing our nights in a sacred forest where the rays of the winter moon are spreading, our hearts taking shelter only in the feet of the Great Shiva.

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषावशेषः॥

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ? ॥५०॥

हम वृक्षों की छाल पहन कर सन्तुष्ट हैं; आप लक्ष्मी से सन्तुष्ट हो। हमारा तुम्हारा दोनों का सन्तोष समान है, कोई भेद नहीं। वही दरिद्री है, जिसके दिल में तृष्णा है। मन में सन्तोष आने पर, कौन धनी और कौन निर्धन है ? अर्थात् सन्तोषी के लिये धनी और निर्धन दोनों बराबर हैं ॥५०॥

जिसे सन्तोष है, वह सदा सुखी है। उसे कोई सुख नहीं, जिसकी इच्छायें बड़ी-बड़ी हैं। जिसे सन्तोष नहीं है; वह सदा दुःखी है। सन्तोष बड़ी-से-बड़ी दौलत से भी अच्छा है। जो सुखी होना चाहे, वह तृष्णा को त्यागे और परमात्मा जो दे उसी में सन्तोष करे। सन्तोषी के लिये कोई व्याधि नहीं है। सन्तोषी के चित्त, मन और काया सदा सुखी रहते हैं। सन्तोषी किसी की खुशामद नहीं करता।

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं:—

जो कुञ्जे क़नाअत में हैं, तक़दीर पर शाकिर।
है ज़ौक़ बराबर, उन्हें कम और ज़ियादा॥

जो सन्तोषी हैं, तक़दीर पर भरोसा रखते हैं, उन्हें कम और ज़ियादा सभी बराबर हैं। उन्हें जो मिल जाय, उसी पर सब्र है।

शेख़ सादीने "गुलिस्ता" में लिखा है:—

ऐ क़नाअत तवन्गरम गरदाँ ।
के बराये ती हेच नेमत नेस्त ॥

हे सन्तोष ! मुझे धनी बना दे—क्योंकि संसार की कोई दौलत तुझसे बढ़ कर नहीं है ।

मनुष्य को चाहिये, कि सूखी रोटी और चिथड़ों से बनी गुदड़ी में सुखी रहे । मनुष्यों के ऐहसानों का भार उठाने से अपने दुःखों का भार हलका न समझे । जो तंगनज़र हैं, जो लोभी हैं, उनको या तो सन्तोष से सुख मिलता है अथवा मर जाने से । सन्तोष की तारीफ़ में महात्मा कबीर की भी सुनिये—

गो-धन गज-धन बाजि-धन, और रतन-धन-खान ।
जब आवे सन्तोष-धन, सब धन धूरि-समान ॥

संसार में गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन् धन आदि अनेक तरह के धन हैं । कोई गायों को धन मानता है, कोई हाथियों को धन मानता है, कोई घोड़ों को और कोई हीरे पन्ने नीलम पुखराज प्रभृति को धन मानता है । संसारी लोग इन सब को ही धन समझते हैं, पर इन धनों से किसी की भी तृष्णा नहीं बुझती, सन्तोष नहीं आता—शान्ति नहीं मिलती । जब सन्तोष रूपी धन मनुष्य के हाथ आता है; तब वह गाय, बैल, घोड़े, हाथी, मुहर-अशरफी और हीरे पन्ने प्रभृति धनों को मिट्टी के

समान समझता और सन्तोष-धन से सुखी हो जाता है। सारांश यह है कि, गाय, घोड़े, हाथी और हीरों पन्नों प्रभृति से किसी को सुख-शान्ति नहीं मिलती। सुख-शान्ति मिलती है—केवल सन्तोष से; अतः सन्तोष-धन सब धनों से बड़ा धन है। और धन देखने में अच्छे मालूम होते हैं, पर उनमें वास्तविक सुख नहीं—वास्तविक सुख "सन्तोष" में ही है।

तुलसीदास जी की भी सुनिये:—

जहाँ तोष तहाँ राम है, राम तोष नहीं भेद।
"तुलसी" देखी गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद ॥

मनुष्य जब दुनयवी आदमियों का आसरा-भरोसा छोड़ कर भगवान् की शरण में जाता है, तब उसे सन्तोष होता है। भगवान् में और सन्तोष में फ़र्क़ नहीं है। जहाँ सन्तोष है, वहाँ भगवान् हैं और जहाँ भगवान् हैं, वहाँ सन्तोष है। तुलसीदास जी कहते हैं—हमने आँखों से देखा है, जिन्होंने भी भगवान् की शरण गही और सन्तोष किया, वे निश्चय ही सुखी हुए। इसके बिपरीत; जो लोग दुनयवी मनुष्यों और धन प्रभृति से सुख की आशा करते हैं, भगवान से विमुख रहते हैं, उन पर भरोसा नहीं करते, एक मात्र उन्हीं की शरण में नहीं जाते, वे नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। बचपन में माँ के मर जाने से अथवा परतन्त्र रहने से दुख पाते हैं। जवानी में, अपनी स्त्री को परपुरुषरता देखकर जलते-कुढ़ते हैं अथवा पराई सुन्दरी स्त्री को

देखकर और उसे न पाकर कामाग्नि में भस्म होते हैं; अथवा पुत्र-कन्या और स्त्री प्रभृति प्यारों के मरने से उनकी वियोगाग्नि में जल-जल कर दुखी होते हैं; अथवा धन के नाश हो जाने से कलपते हैं। बुढ़ापे में आँख, कान आदि इन्द्रियों के बेकाम हो जाने और शरीर में शक्ति न रहने एवं जने-जने से अपमानित होने से घोर दुःसह दुःख सहन करते हैं। जब तरह-तरह के रोग आकर घेर लेते हैं, तब जीवन भार-स्वरूप मालूम होता है। जब ऐसे-ऐसे झंझटों में, तृष्णा को साथ लेकर मर जाते हैं, तब फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म लेते और मरते हैं। इस तरह हज़ारों-लाखों बरस बाद—न जाने कब ?—फिर मनुष्य-जन्म मिलता है। मनुष्य-देह पाकर ही, मनुष्य अपने उद्धार का उपाय कर सकता है; क्योंकि इसी जन्म में भले-बुरे के विचार की शक्ति होती है; और योनियों में तो पाप-ही-पाप होते हैं; अतः मनुष्य-जन्म को, मामूली बात समझ कर, योंही दुनियबी सुख-भोगों में न गँवाना चाहिये। संसारी सुख-भोगों से न तो इस दुनिया में सुख-शान्ति मिलती है और न इसके बाद की दुनिया में। इस लोक में सुख भोगने वालों को लाखों बरसों तक घोर दुःख भोगने होते हैं। हाँ, जो जोग इस मनुष्य-देह की क़ीमत समझ कर, सब संसारी सुखों को लात मारकर, भगवान् की शरण में चले जाते हैं और सन्तोष-वृत्ति रखते हैं, वे इस लोक और परलोक में सदा सुख भोग करते और अन्त में ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

छप्पय।

तुम धन सों सन्तुष्ट, हमहुँ हैं वृक्षबकल तें।
दोऊ भये समान, नैन सुख अंग सकल तें।
जाने जात दरिद्र, बहुत तृष्णा है जिनके।
जिनके तृष्णा नाहिं, बहुत सम्पत है तिनके।
तुमहीं बिचार देखो द्दगन, को निर्धन ? धनवन्त को ?
जुत पाप कौन ? निष्पाप को ? को असन्त अरु सन्त को ? ॥५०॥

50. We are contented here only with the possession of the bark of trees, whilst thou art content with the possession of wealth. Contentment being the same, the difference between us is equalised. He is always poor whose desires are predominant in his mind while to a contented-man the rich and the poor are all alike.

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहायैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥

हमहुँ हैं = हम भी हैं। वृक्षबकल तें = पेड़ों की छालों से। दोऊ भये... सकल तें = दोनों ही आँख और मुँह वग़ैरः सभी अँगों से बराबर हैं। तृष्णा = इच्छा। सम्पत = दौलत। द्दगन = आँखों से। को = कौन। जुतपाप = पापयुक्त; पापी। निष्पाप = पाप-रहित। असन्त = दुष्ट; दुर्जन। सन्त = सज्जन। को निर्धन...सन्त को ? = कौन निर्धन और कौन धनवान है ? कौन पापी और कौन पाप रहित है ? कौन दुर्जन और कौन सज्जन है ?

मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश-
न्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥५१॥

स्वाधीनता पूर्वक जीवन अतिवाहित करना, बिना माँगे खाना, विपद् में साहस रखने वाले मित्रों की संगति करना, मन को वश में करने की तरकीबें बताने वाले शास्त्रों का पढ़ना-सुनना और चञ्चल चित्त को स्थिर करना—हम नहीं जानते, ये किस पूर्व-तपस्या के फल से प्राप्त होते हैं ?

पराधीन मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, उसे पैंड-पैंड पर अपमानित, लाञ्छित और दुःखित होना पड़ता है। जो स्वाधीन हैं, किसी के अधीन नहीं हैं, वे ही सच्चे सुखिया हैं। जिनको अपने पेट के लिये किसी के सामने गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता—किसी के सामने दीन बचन कहने नहीं पड़ते, जिनके दुःसमय में सहायता देने वाले, बिना कहे कष्ट निवारण करने वाले मित्र हैं; जो मन को शान्त करने वाले और उसकी चंचलता दूर करने वाले शास्त्रों को पढ़ते हैं—वे भाग्यवान् हैं। कह नहीं सकते, उन्होंने यह उत्तम फल पूर्वजन्म के किस कठोर तप से पाये हैं।

दोहा।

सत्संगति स्वच्छन्दता, बिना कृपणता भक्ष।
जान्यौ नहिं किहि तप किए, यह फल होत प्रत्यक्ष ॥५१॥

सत्सङ्गति = सज्जनों की संगति, शरीफ़ों की सुहबत। स्वच्छन्दता = स्वतन्त्रता, आज़ादी। भक्ष = खाना, भोजन। जान्यो नहिं = नहीं जानता किहि तप किए = कौनसा तप करने से। होत प्रत्यक्ष = मिलते हैं।

51. I do not know which austere Tapa practised in the previous existence gives rise to the following fruits:—Living an independent life, dining without begging for food, company of friends ready to help in difficulty, listening to Shastras in such a way as will enable one to prepare for the vow of self-control, the slackening of mental restlessness and even when the mind grows restless, trying to restrain it by thoughtful consideration.

**पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्यमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी॥
येषां निःसंगतांगीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते
धन्याःसंन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति॥५२॥**

वे ही प्रशंसा-भाजन हैं, वे ही धन्य हैं, उन्होंने ही कर्म की जड़ काट दी है—जो अपने हाथों के सिवा और किसी बासन की ज़रूरत नहीं समझते, जो घूम-घूम कर भिक्षा का अन्न खाते हैं, जो दशों-दिशाओं को ही अपना विस्तृत वस्त्र समझते हैं, जो सारी पृथ्वी को ही अपनी निर्मल शय्या समझते हैं, जो अकेले रहना पसन्द करते हैं, जो दीनता से घृणा करते हैं और जिन्होंने आत्मा में ही सन्तोष कर लिया है ॥५२॥

जिन्होंने सब से मन हटा कर, सब तरह के विषयों को त्याग कर, संसारी माया-जाल काट कर, अपने आत्मा में ही सन्तोष

कर लिया है; जो किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं रखते, यहाँ तक कि जल पीने को भी कोई बर्तन पास नहीं रखते; अपने हाथों से ही बर्तन का काम ले लेते हैं; खाने के लिये घर में सामान नहीं रखते, कल के भोजन की फिक्र नहीं करते, आज इस गाँव में मांग कर पेट भर लेते हैं तो कल दूसरे गाँव में जा माँगते हैं, एक गाँव में दो रात नहीं बिताते; जो शरीर ढकने के लिये कपड़ों की भी ज़रूरत नहीं रखते, दशों दिशाओं को ही अपना वस्त्र समझते हैं; जो पलँग-तोषक और गद्दे तकियों की आवश्यकता नहीं समझते, ज़रा सी ज़मीन को ही निर्मल पलँग समझते हैं; जब नींद आती है, अपने हाथ का तकिया लगा कर सो जाते हैं, जो किसी का संग नहीं करते, अकेले रहते हैं, वैराग्य में ही परमानन्द समझते हैं; जो किसी के सामने दीनता नहीं करते—अथवा दैन्यरूपी व्यसनों से घृणा करते और अपने स्वरूप में ही मगन रहते हैं, वे पुरुष सचमुच ही महापुरुष हैं। ऐसे पुरुषरत्न धन्य हैं! उन्होंने सचमुच ही कर्म-बन्धन काट दिया है। वे ही सच्चे त्यागी और संन्यासी हैं। ऐसे ही महापुरुषों के सम्बन्ध में महात्मा सुन्दरदासजी ने कहा है:—

काम ही न क्रोध जाके, लोभ ही न मोह ताके।
मद ही न मत्सर, न कोऊ न विकारौ है॥
दुःख ही न सुख माने, पाप ही न पुण्य जाने।
हरष न शोक आनै, देह ही तें न्यारौ है॥

निन्दा न प्रशंसा करै, राग ही न द्वेष धरै।
लेन ही न देन जाकें, कुछ न पसारो है॥
सुन्दर कहत, ताकी अगम अगाध गति।
ऐसो कोउ साधु, सो तौ रामजी कूँ प्यारौ है॥

जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर प्रभृति विकार नहीं हैं; जो दुःख-सुख और पाप-पुण्य को नहीं जानता; जिसे न खुशी होती है और न रञ्ज; जो अपने शरीर से अलग है; जो न किसी की तारीफ करता है और न किसी की बुराई करता है; जिसे न किसी से प्रेम है और न किसी से बैर है; जिसका न किसी से लेना है और न किसी को देना है; न और ही किसी तरह का व्यवहार है। सुन्दरदास कहते हैं, ऐसे मनुष्य की गति अगम्य और अगाध है। उस की गहराई का पता नहीं। ऐसा ही महापुरुष भगवान् को प्यारा लगता है।

छप्पय।

भोजन कों करि पट्ट, दशों दिशि बसन बनाये।
भखैं भीख कौ अन्न, पलँग पृथ्वी पर छाये।
छाँड़ि सबन कौ संग, अकेले रहत रैन-दिन।
निज आतम सों लीन, पौन संतोष छिनहिं छिन।

कर = हाथ। दशोंदिशि = पूरब पच्छिम आदि दश दिशाएँ। बसन = कपड़ा। भखैं = खावे, खाता है। छाँड़ि सबन को संग = स्त्री पुत्र आदि को छोड़कर। रैनदिन = रात-दिन। नित = नित्य। आतम = आत्मा।

मन को विकार, इन्द्रीन को डारै तोर मरोर जिन ।
वे धन्य २ संन्यास धन, कर्म किये निर्मूल तिन ॥५२॥

52. Praiseworthy are those and they alone who cut down the roots of Karma, who do not need any other vessel but their own hands for the purposes of drinking water etc., who eat only the food procured by leading the life of a wandering mendicant, who consider the endless space to be the only fit garments for them, who have the wide earth alone for their bed and whose mind has been trained into the habit of non-attachment by practising self-contentment.

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो
वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः ।
जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥५३॥

मालिक को राज़ी करना कठिन है । राजाओं के दिल घोड़ो के समान चञ्चल होते हैं । इधर हमारी इच्छाएँ बड़ी भारी हैं; उधर हम बड़े भारी पद—मोक्ष के अभिलाषी हैं । बुढ़ापा शरीर को निकम्मा करता है और मृत्यु जीवन को नाश करती है । इसलिये हे मित्र ! बुद्धिमान् के लिये, इस जगत् में, तप से बढ़ कर और कल्याण का मार्ग नहीं है ॥५३॥

निर्मूल = जड़ रहित । तिन = उन्होंने ।

सेवा-धर्म बड़ा कठिन है। हज़ारों प्रकार की सेवायें करने, अनेक प्रकार की हाँ-में-हाँ मिलाने, दिनको रात और रातको दिन कहने, तरह-तरह की ख़ुशामदें करने से भी मालिक कभी सन्तुष्ट नहीं होता। राजाओं के दिल अशिक्षित घोड़ों की तरह चंचल होते हैं। उनके चित्त स्थिर नहीं रहते, ज़रासी देर में वे प्रसन्न होते और ज़रासी देर में अप्रसन्न हो जाते हैं; क्षण भर में गाँव-के-गाँव बख़्शते और क्षण भर में शूली पर चढ़वाते हैं; इसलिये राजसेवा में बड़ा ख़तरा है। उसमें ज़रा भी सुख नहीं, यहाँ तक कि जानकी भी ख़ैर नहीं है। एक तरफ़ तो हमारी इच्छाओं और हमारे मनोरथों की सीमा नहीं है; दूसरी ओर हम परमपद के अभिलाषी हैं; इसलिये यहाँ भी मेल नहीं खाता। बुढ़ापा हमारे शरीर को निर्बल और रूप को कुरूप करता एवं सामर्थ्य और बल का नाश करता है तथा मृत्यु सिर पर मंडराती है। ऐसी दशा में मित्रवर! कहीं सुख नहीं है। अगर सुख—सच्चा सुख चाहते हो, तो परमात्मा का भजन करो। उससे आपके इहलोक और परलोक दोनों सुधरेंगे, आप जन्म-मरण के कष्ट से छुटकारा पाकर मोक्ष-पद पायेंगे। सारांश यह है, कि सच्चा और नित्य सुख केवल वैराग्य और ईश्वर-भक्ति में है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं।

"तुलसी" मिटै न कल्पना, गये कल्पतरु-छाँह।
जब लगि द्रवै न करि कृपा, जनक-सुता को नाह॥

हित सन हित—रति राम सन, रिपु सन वैर विहाय।
उदासीन संसार सन, "तुलसी" सहज सुभाय॥

मनुष्य चाहे कल्पवृक्ष के नीचे क्यों न चला जाय, जब तक सीतापति की कृपा न होगी तब तक उसके दुःखों का नाश नहीं हो सकता; इसलिये शत्रुता-मित्रता छोड़, संसार से उदासीन हो, भगवान् से प्रीति करो।

खुलासा—कहते हैं, इन्द्र के बग़ीचे में एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी छाया में जाकर मनुष्य या देवता जो चीज़ चाहते हैं, वही उनके पास आप-से-आप आजाती है। उसी वृक्ष को "कल्पवृक्ष" कहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, जब तक जानकीनाथ रामचन्द्रजी दया करके प्रसन्न न हों तब तक, मनुष्य की कल्पना, कल्पवृक्ष की छाया में जाने से भी, नहीं मिट सकती।

जप, तप, तीर्थ, व्रत, शम, दम, दया, सत्य, शौच और दान वगैरः काम अगर मन में वासना रखकर किये जाते हैं; यानी करने वाला यदि उनका फल या पुरस्कार चाहता है, तो उसे स्वर्गादि मिलते हैं। स्वर्ग में जाने से मनुष्य का आवागमन—इस दुनिया में आना और यहाँ से फिर जाना—पैदा होना और मरना—नहीं बन्द हो सकता। क्योंकि कहा है—"पुण्ये क्षीणे मृत्युलोके" अर्थात् पुण्यों के क्षीण होते ही फिर स्वर्ग से मृत्यु लोक में आना पड़ता है। उपरोक्त जप-तप आदि से स्वर्ग तो मिलता है, पर मनुष्य का असल

मक़सद पूरा नहीं होता; यानी उसे परमपद या मोक्ष नहीं मिलती। इसलिये मनुष्य को निष्काम कर्म करने चाहियें अथवा सारे कर्म भगवान् की प्रीति के लिए करने चाहियें। "गीता" में भी यही बात भगवान् कृष्ण ने कही है। बहुत लिखने से क्या— भगवान् की भक्ति सर्वोपरि है। भगवान् की भक्ति से जो काम हो सकता है, वह घोर-से-घोर तपस्याओं से भी नहीं हो सकता। किसी ने कहा है:—

पठित सकल वेदश्शास्त्रपारंगतो वा
यम नियम परो वा धर्मशास्त्रार्थकृद्वा।
अटित सकल तीर्थव्राजको वाहिताग्निर्नाहि
हृदि यदि रामः सर्वमेतत्वृथा स्यात्॥

चाहे सारे वेद-शास्त्रों को पढ़ लो, चाहे यम नियम आदि कर लो, चाहे धर्मशास्त्र को मनन करलो और चाहे सारे तीर्थ कर लो, अगर आपके दिल में राम नहीं है, तो ये सब वृथा हैं।

इसीलिये तुलसीदासजी कहते हैं, कि दोस्तों से दोस्ती और दुश्मनों से दुश्मनी छोड़कर एवं संसार से उदासीन होकर भगवान् से प्रीति करो। मतलब यह है, कि न किसी से राग करो और न किसी से द्वेष; सबको उदासीन होकर देखो। जब आपका दिल राग-द्वेष आदि से शुद्ध होगा—इस दुनिया में न कोई आपका प्यारा होगा और न कोई कुप्यारा; तभी आपका दिल एक भगवान् में लगेगा।

महात्मा सुन्दरदासजी कहते हैं:—

(१)

काहे कूँ फिरत नर ! दीन भयो घर-घर ? ।
देखियत, तेरो तो अहार इक सेर है ॥
जाको देह सागर में, सुन्यो शत योजन को ।
ताहू कूँ तो देत प्रभु, यामें नहिं फेर है ॥
भूखो कोउ रहत न, जानिये जगत माहिं ।
कीरी अरु कुञ्जर, सबन ही कूँ देत है ॥
"सुन्दर" कहत, विश्वास क्यूँ न राखै शठ ?।
बेर-बेर समझाय, कह्यौ केती बेर है ? ॥१॥

(२)

काहे कूँ दौरत है दशहुँ दिशि ?
तू नर ! देख कियो हरिजू को ।
बैठि रहै दुरि के मुख मुँदि,
उघारत दाँत खवाइहि टूको ।
गर्भ-थके प्रतिपाल करी जिन,
होइ रह्यो तबहीं जड़ मूको ।
"सुन्दर" क्यूँ बिल्लात फिरे अब ?
रांख हृदे विश्वास प्रभु को ॥२॥

(१)

हे पुरुष ! तू दीन होकर क्यों घर-घर मारा-मारा फिरता है ? देख, तेरा पेट तो एक सेर आटे में भर जाता है। सुनते

हैं, समुद्र में जिसका शरीर चार सौ कोस लम्बा-चाड़ा है, उसको भी प्रभु भोजन पहुँचाते हैं, इसमें ज़रा भी शक नहीं। संसार में कोई भी भूखा नहीं रहता। वह जगदीश चींटी और हाथी सबका पेट भरते हैं। अरे शठ! विश्वास क्यों नहीं रखता? सुन्दरदासजी कहते हैं, मैंने तुझे यह बात बारम्बार कितनी बार नहीं समझाई है?

(२)

अरे! तू दशों दिशाओं में क्यों भागा फिरता है? तू भगवान् के किये हुए कामों का ख़्याल कर। देख, जब तू मुँह बन्द किये हुए छिपा बैठा था, तब भी तुझे खाने को पहुँचाया और जब तेरे दाँत आ गये तब भी तुझे तेरे मुँह खोलते ही खाने को टुकड़ा दिया। जिस प्रभुने तेरी गर्भावस्था से ही—जबकि तू जड़ और मूक था—पालना की है, वही क्या अब तेरी ख़बर न लेगा? सुन्दरदासजी कहते हैं, तू क्यों चीख़ता फिरता है? भगवान् का भरोसा रख; वही प्रभु अब भी तेरी पालना करेंगे।

साराँश यह, कि बुद्धिमान को दुनिया के घमण्डी लोगों की खुशामद छोड़, केवल उसकी खुशामद और नौकरी करनी चाहिये, जिसके दिल में न घमण्ड है और न क्रूरता। जो उसकी शरण में जाता है, उसीकी वह अवश्य प्रतिपालना करता और उसके दुःख दूर करने को हाज़िर हुजूर खड़ा रहता है। मनुष्य! तेरी जिन्दगी अढ़ाई मिनट की है। इस अढ़ाई मिनट की

ज़िन्दगी को वृथा बरबाद न कर। इसे ख़तम होते देर न लगेगी, राजाओं और अमीरों की सेवा-टहल और लल्लो-चप्पो में यह शीघ्र ही पूरी हो जायगी और उनसे तेरी कामना भी सिद्ध न होगी। यदि तू सब का आसरा छोड़, जगदीश की ही चाकरी करेगा; तो निश्चय ही तेरा भला होगा—तेरे दुःखों का अवसान हो जायगा; तुझे फिर जन्म लेकर घोर कष्ट न सहने होंगे; तुझे नित्य और चिरस्थायी शान्ति मिलेगी। अरे! तू सारी चतुराई और चालाकियों को छोड़ कर, एक इस चतुराई को कर; क्योंकि यही चातुरी सच्ची चातुरी है। जो जगदीश को प्रसन्न कर लेता है वही सच्चा चतुर है। कहा है:—

या राका शशि-शोभना गतघना, सा यामिनी यामिनी।
या सौन्दर्य्य-गुणान्विता पतिरता, सा कामिनी कामिनी॥
या गोविन्द-रस-प्रमोद मधुरा, सा माधुरी माधुरी।
या लोकद्वय साधनी तनुभृता, सा चातुरी चातुरी॥

मेघावरणशून्य पूर्ण चन्द्रमा से शोभायमान जो रात्रि है, वही रात्रि है। जो सुन्दरी है, गुणवती है और पति में भक्ति रखने वाली है, वही कामिनी है। कृष्ण के प्रेम के आनन्द से मनोहर मधुरता ही मधुरता है। शरीर-धारियों की दोनों लोकों में उपकार करने वाली जो चतुराई है, वही चतुराई है।

दोहा ।

नृप-सेवा में तुच्छ फल, बुरी काल की व्याधि ।
अपनो हित चाहत कियो, तौ तू तप आराधि ॥५३॥

53. Masters are not easily pleased and kings are restless in mind like untrained horses. We have great desires while we still cherish in our mind the hope of reaching the great goal of salvation. The body is susceptible to old age and life itself is liable to be destroyed by Death. O friend, there is no better thing in this world for a wise man than practising Penance.

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥
लोला यौवनलालसा तनुभृतामित्याकलय्यद्रुतं
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः॥५४॥

देहधारियों के भोग—विषय-सुख—सघन बादलों में चमकने वाली बिजली की तरह चञ्चल हैं; मनुष्यों की आयु या उम्र हवा से छिन्न-भिन्न हुए बादलों के जल के समान क्षणस्थायी या नाशमान् है और जवानी की उमंग भी स्थिर नहीं है । इसलिये बुद्धिमानो ! धैर्य्य से चित्त को एकाग्र करके, उसे योगसाधन में लगाओ ॥५४॥

नृप-सेवा = राज-सेवा, राजाओं की चाकरी । काल = मृत्यु = मौत । हित = भलाई । तप आराधि = तपस्या कर ।

संसार और संसार के सारे पदार्थ नाशमान् और असार हैं। यहाँ जो दिखाई देता है वह स्थिर न रहेगा। यह जो अथाह जल से भरा हुआ समन्दर दिखाई देता है, किसी दिन मरुस्थल में परिणत हो जायगा; पानी की एक बूँद भी नहीं मिलेगी। यह बग़ीचा, जो आज इन्द्र के बग़ीचे की बराबरी कर रहा है, जिसमें हज़ारों तरह के फूलों के वृक्ष लग रहे हैं, हौज़ बने हुये हैं, छोटी छोटी नहरें कटी हुई हैं, संगमरमर और संगेमूसा के चबूतरे बने हुए हैं, बीच में इन्द्र-भवन के जैसा महल खड़ा है, किसी दिन उजाड़ हो जायगा; इसमें स्यार, लोमड़ी और ज़रख प्रभृति पशु बसेरा लेंगे। यह जो सामने महलों की नगरी (City of Palaces) दीखती है, जिसमें हज़ारों दुमंज़िले, तिमंज़िले, चौमंज़िले और सतमंज़िले आलीशान मकान खड़े हुए आकाश को चूम रहे हैं, जहाँ लाखों मनुष्यों के आने-जाने और काम-धन्धा करने के कारण पीठ-से-पीठ छिलती है, किसी दिन यहाँ घोर भयानक बन हो जायगा। मनुष्यों के स्थान में सिंह, बाघ, हाथी, गैंडे, हिरन और स्यार प्रभृति पशु आ बसेंगे। और तो क्या—यह सूर्य, जो अपने तेज से तीनों लोक में प्रकाश फैलाता है, अन्धकार-रूप हो जायगा। यह अमृत से पूर्ण सुधा-कर—चन्द्रमा भी शून्य हो जायगा। इसकी शीतल चाँदनी न जाने कहाँ विलीन हो जायगी ? हिमालय और सुमेरु जैसे पर्वत एक दिन मिट्टी में मिल जायँगे। यह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी शून्य हो जायँगे। सारा जगत् नाश हो जायगा। ये स्त्री

पुत्र और नाते-रिश्तेदार न जाने कहाँ छिप जायँगे ? युगों की सहस्र चौकड़ियों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। उस दिन के पूरे होते ही प्रलय होती है। तब इस जगत् की रचना करने वाला ब्रह्मा भी नाश हो जाता है। आज तक अनगिन्ती ब्रह्मा हुए। उन्होंने जगत् की रचना की और अन्त में स्वयं नष्ट हो गये। जब हमारे पैदा करने वाले का यह हाल है,तब हमारी क्या गिन्ती?

यह काया,—जिसे मनुष्य अपना सर्व्वस्व समझता है, जिसे मल-मल कर धोता, इत्र-फुलेलों से सुवासित करता, नाना प्रकार के रत्नजटित मनोहर गहने पहनता, कष्ट से बचने और सुखी होने के लिए नरम-नरम मखमली गद्दों पर सोता, पैरों को तक़लीफ से बचाने के लिये जोड़ी-गाड़ी या मोटर में चढ़ता है— एक दिन नाश हो जायगी; पाँच तत्त्वों से बनी हुई काया पाँच तत्त्वों में ही लीन हो जायगी। जिस तरह पत्ते पर पड़ी हुई बूँद क्षणस्थायी होती है; उसी तरह यह काया क्षणभंगुर है। दीपक और बिजली का प्रकाश आता-जाता दीखता है पर इस काया का आदि-अन्त नहीं दीखता। यह काया कहाँ से आती और कहाँ जाती है ? जिस तरह समुद्र में बुदबुदे उठते और मिट जाते हैं, उसी तरह शरीर बनते और क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। सच तो यह है कि, यह शरीर बिजली की चमक और बादल की छाया की तरह चंचल और अस्थिर है। जिस दिन जन्म लिया, उसी दिन मौत पीछे पड़ गई; अब वह अपना समय देखती है और समय पूर्ण होते ही प्राणी को नष्ट कर देती है।

जिस तरह जल की तरंगें उठ-उठकर नष्ट हो जाती हैं; उसी तरह लक्ष्मी आकर क्षण में विलीन हो जाती है। जिस तरह बिजली चमक कर ग़ायब हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मी दर्शन देकर ग़ायब हो जाती है। हवा और चपला को रोकना अत्यन्त कठिन है, पर शायद कोई उन्हें रोक सके; आकाश का चूर्ण करना अतीव कठिन है, पर शायद कोई आकाश को भी चूर्ण करने में समर्थ हो जाय; समुद्र को भुजाओं से तैरना बहुत कठिन है, पर शायद कोई तैर कर उसे भी पार कर सके, इतने असम्भव काम शायद कोई सामर्थ्यवान् करले, पर चंचला लक्ष्मी को कोई भी स्थिर नहीं कर सकता। जिस तरह अंजलि में जल नहीं ठहरता, उसी तरह लक्ष्मी भी किसी के पास नहीं ठहरती। जिस तरह वेश्या एक पुरुष से राज़ी नहीं रहती, नित-नये पुरुषों को चाहती है; उसी तरह लक्ष्मी भी किसी एक के पास नहीं रहती, नित-नये पुरुषों को भजती है। इसीसे लक्ष्मी और वेश्या दोनों को ही चपला कहते हैं।

जिस तरह साँसारिक पदार्थ लक्ष्मी और विषय-भोग तथा आयु चंचल और क्षणस्थायी हैं; उसी तरह यौवन या जवानी भी क्षणस्थायी है। जवानी आते दीखती है, पर जाते मालूम नहीं होती। हवा की अपेक्षा भी तेज़ चाल से दिन-रात होते हैं और उसी तेज़ी से जवानी झट ख़तम हो जाती और बुढ़ापा आ जाता है। उस समय विस्मय-सा होने लगता है। यह

शरीर तभी तक सुन्दर और मनोहर लगता है, जब तक बुढ़ापा नहीं आता। बुढ़ापा आते ही वह उछल-कूद, वह अकड़-तकड़, वह चमक-दमक, वह सुर्खी, वह छातियों का उभार, वह नयनों का रसीलापन न जाने कहाँ ग़ायब हो जाता है। असल में यौवन के लिये बुढ़ापा राहु है। जिस तरह चन्द्रमा को जब तक राहु नहीं ग्रसता, तभी तक प्रकाश रहता है; उसी तरह जब तक बुढ़ापा नहीं आता, तभी तक शरीर का सौन्दर्य्य और रूप-लावण्य बना रहता है। प्राणियों को बाल्यावस्था के बाद युवावस्था और युवावस्था के बाद वृद्धावस्था अवश्य आती है। युवावस्था सदा नहीं रहती; अच्छी तरह गहरा विचार करने से जवानी क्षण-भरकी मालूम होती है।

संसार में जो नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे मनभावन पदार्थ दिखाई देते हैं, ये सभी नाशमान् हैं। ये सब वास्तव में कुछ भी नहीं; केवल मनकी कल्पना से इनकी सृष्टि की गई है। मूर्ख ही इनमें आस्था रखते हैं, ज्ञानी नहीं।

इस जगत् में ज्ञानी का जीवन सार्थक और अज्ञानी का निरर्थक है। अज्ञानी के जीने से कोई लाभ नहीं। उसके जीने से अर्थ-सिद्धि नहीं होती। वह वृथा सुअवसर गँवाता है। मूर्ख मोह के मारे नहीं समझता, कि ऐसा मौका बड़ी मुश्किल से मिला है। इस बार चूके तो ख़ैर नहीं। अज्ञानी अपनी अज्ञानता या मोह के कारण ही नाशमान् और दुःखों के मूल विषयों की ओर दौड़ता है; पर आयु, यौवन और विषयों

की क्षणभंगुरता पर ध्यान नहीं देता। यह माया मोह नहीं तो क्या है ? "सुभाषितावलि" में लिखा है:—

चला विभूतिः क्षणभंगी यौवन
कृतान्तदन्तान्तर्वर्त्ति जीवितम् ।
तथाप्यवज्ञा परलोकसाधने
नृणामहो विस्मयकारि चेष्टितम् ! ॥

विभूति चंचल है, यौवन क्षणभंगुर है, जीवन काल के दाँतों में है; तो भी लोग परलोक-साधन की परवा नहीं करते। मनुष्यों की यह चेष्टा विस्मयकारक है !

फ़िरदौसीने "शाहनामे" में कहा है:—"मनुष्य इस नापायेदार दुनिया से क्यों दिल लगाते हैं; जबकि मौत का नक़ारा दरवाज़े पर बज रहा है ?"

मनुष्यो ! होश करो, ग़फ़लत की नींद छोड़ो। वह देखो ! मौत आपका द्वार खट-खटा रही है। अब तो मिथ्या संसार का मोह त्यागो। ये जो स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन, माता-पिता आदिक प्यारे और सम्बन्धी दिखाई देते हैं, ये उसी वक्त तक हैं, जब तक कि शरीर नाश नहीं हुआ है। शरीर के नाश होते ही ये नज़र भी न आयेंगे। यह भी समझ में न आवेगा कि, कहाँ गये और कहाँ से आये थे। यह बन्धु-बान्धवों का मिलना, उन यात्रियों या मुसाफिरों की तरह है, जो भिन्न-भिन्न स्थानों से सफ़र करते हुए एक वृक्ष के नीचे आकर ठहर जाते हैं और

क्षण-भर विश्राम लेकर, फिर अपनी-अपनी राह पर चल देते हैं या उन मुसाफिरों की तरह है, जो अनेक स्थानों से आकर एक सराय या धर्म्मशाला में ठहरते हैं; और फिर कोई दो दिन और कोई चार दिन रहकर, अपनी-अपनी जगह को चल देते हैं। वृक्षों के नीचे चन्द मिनट ठहरने वालों अथवा सराय के मुसाफ़िरों का आपस में प्रीति करना क्या अक्लमन्दी है? जिनका क्षण-भर का साथ है, उनमें दिल फँसाना दुःख मोल लेना है। उनके अलग होते ही मन में भयानक वेदना होगी, अतः उनके साथ कोई सरोकार न रखना चाहिये। यह संसार दो स्थानों के बीच का स्थान है। यात्री यहाँ आकर क्षण-भर के लिए आराम करते और फिर आगे चले जाते हैं। ऐसे यात्रियों का आपस में मेल बढ़ाना, एक दूसरे की मुहब्बत के फन्दे में फँसना, सचमुच ही दुःखोत्पादक है। समझदार लोग मुसाफिरों से दिल नहीं लगाते—उनसे प्रेम नहीं करते—उन्हें अपना-पराया नहीं समझते। न उन्हें किसी से राग है न द्वेष। वे सबको समदृष्टि या एक नज़र से देखते हुए साहाय्य करते और उनका कष्ट निवारण करते हैं, पर उनसे प्रीति नहीं करते; लेकिन मूर्ख लोग स्त्री-पुत्र, और माता-पिता प्रभृति को अपना प्यारा समझते और दूसरों को पराया समझते हैं। इस जगत् में न कोई अपना है न पराया। यह जगत् एक वृक्ष है। इस पर हज़ारों-लाखों पक्षी भिन्न-भिन्न स्थानों से आकर रात को बसेरा लेते और सवेरे ही अपने-अपने स्थानों को उड़

जाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से आये हुए पक्षियों को, क्या रात-भर के साथ के लिये, आपस में नाता जोड़ना चाहिये ? हर्गिज़ नहीं, दूसरों से सम्बन्ध जोड़ना, किसी को अपना पुत्र और किसी को अपनी स्त्री एवं किसी को माँ या बहन समझ कर स्नेह करना तो मूर्खता है ही। स्नेह तो अपनी काया से भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह भी क्षणभंगुर है,—सदा साथ न रहेगी।

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं:—

बालू के मन्दिर माँहिं, बैठि रह्यो स्थिर होइ।
राखत है जीवन की आश, केऊ दिन की॥
पल-पल छीजत, घटत जात घरी-घरी।
विनशत बेर कहा ? खबर न छिन की॥
करत उपाय, झूठे लेन देन खान-पान।
मूसा इत-उत फिरे, ताकि रही मिनकी॥१॥

देह-सनेह न छाँड़त है नर।
जानत है थिर है यह देहा॥
छीजत जात घटै दिन-ही-दिन।
दीसत है घट को नित छेहा॥
काल अचानक आय गहे कर।
ढाँह गिराइ करे तन खेहा॥
"सुन्दर" जानि यह निहचै धर।
एक निरंजनसूँ कर नेहा॥२॥

अरे मूर्ख ! तू इस शरीर की मुहब्बत नहीं छोड़ता, यह तेरी बड़ी भूल है। तू इस बालू के घर को स्थिर या चिरस्थायी समझता है; पर यह दिन-पर-दिन छीजता और घटता जाता है। हमें तो इस घट का नित्य क्षय ही दीखता है। देख, किसी दिन काल अचानक आकर तेरे हाथ पकड़ लेगा और तुझे गिरा कर तेरे शरीर को ख़ाक़ कर देगा। सुन्दरदास जी कहते हैं,—अरे मूर्ख ! तू मेरी बात को—मेरी सलाह को ठीक समझ, इसमें मीन-मेख न लगा। यह अटल बात है। और बातों में चाहे फ़र्क़ पड़ जाय, पर इसमें फ़र्क़ नहीं पड़ने का। इसलिए तू अपने इस शरीर से, अपने स्त्री-पुत्रों से और अपनी दौलत से मुहब्बत छोड़ कर, एक मात्र जगदीश से प्रेम कर। उनसे स्नेह करेगा, तो सदा सुख पायगा और इनसे मुहब्बत रक्खेगा, तो घोरातिघोर दुःख भोगेगा।

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं—अरे अज्ञानी मनुष्य! मुझे तेरी इस बात पर बड़ा ही अचम्भा आता है कि, तू इस बालू के मकान में निःशङ्क और मस्त होकर बैठा हुआ है और कितने ही दिनों तक जीने की उम्मेद रखता है। यह तेरा बालू का घर हर क्षण छीजता और हर मिनट घटता जाता है। इसको नाश होते कितनी देर लगेगी ? मुझे तो एक सेकिण्ड का भी भरोसा नहीं। तू इस बालू के क्षणभंगुर घर में बेखटके बैठा हुआ अनेक तरह के झूठे उपाय-उद्योग, लेन-देन और खान-पान करता है। तू चूहे की तरह इधर-उधर उछलता-कूदता

फिरता है ! क्या तुझे ख़बर नहीं है कि, जिस तरह बिल्ली चूहे की ताक में बैठी रहती है, उसी तरह तेरी घात में मौत बैठी है ?

खुलासा—ज़रा भी समझ रखने वाले समझ सकते हैं, कि प्राणियों के शरीरों के भीतर कोई ऐसी चीज़ है, जिसके रहने से प्राणी चलते-फिरते, काम-धन्धा करते और ज़िन्दा समझे जाते हैं। जिस वक्त वह चीज़ शरीर से निकल जाती है, उस वक्त मनुष्य मुर्दा हो जाता है, उस समय वह न तो चल फिर सकता है, न देख-सुन या और कोई काम कर सकता है। जिस चीज़ के प्रकाश से इस शरीर में प्रकाश रहता है, जिसके बल से यह काम धन्धे करता और बोलता-चालता है, उसे जीव या आत्मा कहते हैं। हमारा शरीर हमारे आत्मा के रहने का घर है। जिस तरह मकान में मोरी, परनाले, खिड़की और जंगले होते हैं; उसी तरह आत्मा के रहने के इस शरीर रूपी घर में भी मोरी और परनाले वगैरः हैं। आँख, नाक, कान और मुँह प्रभृति इस शरीर रूपी घर के द्वार और गुदा-लिङ्ग या योनि वगैरः मोरी परनाले हैं। शरीर के करोड़ों छेद इस मकान के जंगले और खिड़कियाँ हैं। मतलब यह कि, यह शरीर आत्मा या जीव के बसने का घर है। यह घर मिट्टी और जल प्रभृति पंचतत्वों से बना हुआ है। इस घर के बनाने वाला कारीगर परमात्मा है।

जिस तरह परमात्मा ने आत्मा के रहने के लिये पाँच तत्वों से यह शरीर रूपी घर बना दिया है; उसी तरह हमने भी इस अपने आत्मा के शरीर की रक्षा के लिये—मेह पानी और धूप आदि से

बचने के लिये—मिट्टी या ईंट पत्थर प्रभृति के मकान बना लिये हैं। हमारे बनाये हुए ईंट पत्थरों के मकान सौ-सौ दो-दो सौ और पाँच-पाँच सौ बरसों तक रह सकते हैं। हज़ार-हज़ार बरस से ज़ियादा मुद्दत के बने हुये मकान आज तक खड़े हुए हैं। पर हमारे आत्मा के रहने का, पंच तत्व से बना हुआ, मकान इतना मज़बूत नहीं—वह क्षण-भर में ढह जाता है । इसलिये इस आत्मा के मकान—शरीर—को महात्मा सुन्दरदास जी बालू का मकान कहते हैं। क्योंकि बालू का मकान इधर बनता और उधर गिर पड़ता है। उसकी उम्र पल भर की भी नहीं।

मनुष्य अज्ञान और मोह से अन्धा रहने के कारण, इस बालू के मकान की क्षणभंगुरता का कभी ख़याल भी नहीं करता। वह इस बालू के मकान में ही सैकड़ों बरसों तक रहने की आशा करता है! मनुष्य की इस ग़फ़लत और बेहोशी पर पूर्ण ज्ञानी महात्मा सुन्दरदास जी को दुःख और आश्चर्य होता है। महापुरुष सदा पराया भला चाहा करते हैं; वे दूसरों को दुःख और क्लेशों से बचाना अपना कर्तव्य और फ़र्ज़ समझते हैं, इसलिए वे अज्ञानान्धकार में डूबे हुए मनुष्यों को सावधान करने के लिए कहते हैं—अरे मूर्ख! तू इस बालू के घर में रह कर भी बरसों जीने की—इस घर में रहने की—आशा करता है? अरे नादान! होश कर! जाग! तेरा यह बालू का घर पलक मारते गिर जायगा! जब से तू इस बालू के घर में आया है, तभी से इसकी नींव हिलने लग गई है। एक मिनट या एक सेकण्ड में यह

गिराही चाहता है ! ऐसे क्षणभंगुर घर में रहकर तू मकान बनवाता है; बाग़-बग़ीचे लगवाता है; किसी को अपनी स्त्री, किसी को अपना पुत्र और किसी को अपना बाप, भाई या मित्र समझता है; इनके मोह-जाल में फँसता है; बेहोशी में, लोगों पर अत्याचार और ज़ुल्म करता एवं पराया धन हड़पता है ! मुझे तेरी इन करतूतों को देखकर निहायत आश्चर्य्य भी होता और दुःख भी होता है ! सच तो यह है कि, मुझे तेरी नादानी पर तरस आता है। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब भी चेत जा !! धन-दौलत, स्त्री-पुत्र, राज-पाट और ज़मींदारी का मोह त्यागकर अपने बनाने वाले की शरण में जा। वही तेरे इस बालू के घर में बारम्बार आने और फिर क्षणभरमें इसे छोड़ भागने के घोर कष्ट को दूर कर सकता है। अगर तू इस जगज्जाल में फँसा रहेगा, मेरी बात पर ध्यान न देगा, तो पीछे बहुत पछतावेगा। जिस समय तेरा यह घर गिरने पर आवेगा, तू इसे छोड़ने के लिए मजबूर होगा; उस समय तू हज़ार चाहने और हज़ार रोने-कलपने पर भी इस में क्षणभर भी न रह सकेगा। जब तक तू इस बालू के घर में है, तभी तक तेरी स्त्री और तभी तक तेरा पुत्र और धन-दौलत आदि हैं। जहाँ तैंने यह घर छोड़ा या तेरा यह घर गिरा; फिर न तुझे स्त्री दीखेगी, न पुत्र दीखेगा और न धन-दौलत ही। यह बालू का घर तुझे, एक क्षणभर के लिये, इस ग़रज़ से मिला है कि, तू इसमें जितनी देर रहे उतनी देर

जगदीशकी भक्ति करके, अपने कर्मबन्धन काटले और जन्म-मरण के झंझटों से बचकर, अपने मालिक में मिल जावे; ताकि फिर तुझे कभी दुःख न भोगने पड़ें—तू सदा-सर्वदा—अनन्त काल तक नित्य और अविनाशी सुख भोगता रहे।

लक्ष्मी क्षणभंगुर है। समुद्र में जिस तरह तरंगें उठती और विलीन हो जाती हैं; उसी तरह लक्ष्मी से विषय-भोग उपजते और नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह चपला की चमक स्थिर नहीं रहती; उसी तरह भोग भी स्थिर नहीं रहते। विषयों के भोगने से तृष्णा घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है। तृष्णा के उदय होने से पुरुष के सब गुण नष्ट हो जाते हैं। दूध में मधुरता उसी समय तक रहती है, जब तक कि उसे सर्प नहीं छूता; पुरुष में गुण भी उसी समय तक रहते हैं, जब तक कि तृष्णा का स्पर्श नहीं होता। अतः बुद्धिमानो ! अनित्य, नाशमान् एवं दुःखों की खान विष-समान विषयों से दूर रहो; क्योंकि इनमें ज़रा भी सुख नहीं। जब तक विषय-भोग रहेंगे तभी तक आप सुखी रहेंगे; पर एक-न-एक दिन उनसे आप का वियोग अवश्य होगा। उस समय आप तृष्णा की आग में जलोगे, बारम्बार जन्म लोगे और मरोगे; अतः इन्द्रियों को वश में करो और एकाग्र चित्त से परमात्मा का भजन करो; क्योंकि विषयों के भोगने से नरकाग्नि में जलोगे और जन्म-मरण के घोर संकट सहोगे; पर परमात्मा के भजन या योगसाधन से नित्य सुख भोगते हुए परमानन्द में लीन हो जाओगे।

बहुत से मनुष्य मन को तो एकाग्र नहीं करते, पर दिखौवा माला जपते हैं, गोमुखी में सड़ा-सड़ हाथ चलाते हैं, "गीता" और "विष्णु सहस्र नाम" प्रभृति का पाठ करते हैं और बीच-बीच में कारोबार की बातें भी करते रहते हैं अथवा स्त्री-बच्चों के झगड़े निपटाया करते हैं। ऐसे भजन करने और माला फेरने से कोई लाभ नहीं। इस तरह समय वृथा नष्ट होता है। मन के एक ठौर हुए बिना, शान्त और स्थिर हुए बिना, सब वृथा है। महात्मा कबीर ने ठीक ही कहा है:—

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौरि।
सहजै हीरा ऊपजे, जो मन आवै ठौरि॥
माला फेरत युग गया, पाया न मनका फेर।
करका मनका छाँड़िके, मन का मन का फेर॥
मूँड मुड़ावत दिन गये, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहो क्या करै, मन के औरै काम॥
तन को योगी सब करें, मन को विरला कोय।
सहजै सब बिधि पाइये, जो मन योगी होय॥

जितनी समुद्र की लहरें हैं; उतनी ही मन की दौड़ है। अगर मन ठिकाने आजाय, उसमें समुद्र की सी तरंगें न उठें, तो सहज में हीरा पैदा हो जाय; यानी परमात्मा मिल जाय।

माला फेरते-फेरते युग बीत गया, पर मनका फेर न मिला; अतः हाथ का मनिया छोड़कर, मन का मनिया फेर। हाथ

की माला फेरने से कोई लाभ नहीं; लाभ है मन की माला फेरने में। मन लगाकर एक बार भी ईश्वर को याद करने से बड़ा फल मिलता है; पर चंचल चित्त से दिन-रात माला फेरने से भी कुछ नहीं मिलता।

मूँड-मुँडाते अनेक दिन हो गये, पर आज तक भगवान् न मिले। मिलें कैसे ? मन राम में लगे, तब तो राम मिलें। मन तो विषय-भोगों में लगा रहता है, फिर राम कैसे मिलें ? जिस तरह रवि और रजनी—दिन और रात—एकत्र नहीं होते, उसी तरह राम और काम एकत्र नहीं मिलते। जहाँ काम है, वहाँ राम नहीं और जहाँ राम है, वहाँ काम नहीं।

तन को सब योगी करते हैं, पर मन को कोई ही योगी करता है। अगर मन योगी हो जाय, तो सहज में सिद्धि मिल जाय। लोग गेरुवे कपड़े पहन लेते हैं, जटा रखा लेते हैं, हाथ में कमण्डल और बग़ल में मृगछाला ले लेते हैं—इस तरह योगी बन जाते हैं, पर मन उनका संसारी भोगों में ही लगा रहता है; इसलिये उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—ईश्वर-दर्शन नहीं होते। अगर वे लोग कपड़े चाहें गृहस्थों के से ही पहनें, गृहस्थों की तरह ही खायँ-पीवें; पर मन को एक परमात्मा में रक्खें, तो निश्चय ही उन्हें भगवान् मिल जायँ। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहता है, पर उसमें आसक्ति नहीं रखता, यानी जल में कमल की तरह रहता है, उसकी मुक्ति निश्चय ही हो जाती है; पर जो संन्यासी होकर विषयों में आसक्ति रखता है, उसकी

मोक्ष नहीं होती। राजा जनक गृहस्थी में रहते थे; सब तरह के राज-भोग भोगते थे; पर भोगों में उनकी आसक्ति नहीं थी, इसी से उनकी मुक्ति हो गई।

सारांश—विषय-भोग, आयु और यौवन को अनित्य और क्षणभंगुर समझ कर इनमें आसक्ति न रक्खो और मन को एकाग्र करके हरक्षण परमात्मा का भजन करो—तो जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाय और परमानन्द की प्राप्ति हो जाय। कबीरदासजी कहते हैं:—

कहा भरोसो देह को, विनासि जाय छिन माँहि।
श्वाँस-श्वाँस सुमिरन करो, और जतन कछु नाहिं॥

इस शरीर का क्या भरोसा? यह क्षण-भर में नष्ट हो जाय। इस दशा में, सर्वोत्तम उपाय यही है कि, हर साँस पर परमात्मा का नाम लो। बिना उसके नाम के कोई साँस न जाने पावे। बस, इससे बढ़ कर उद्धार का और उपाय नहीं है।

कुण्डलिया।

जैसे चंचल चंचला, त्योंहीं चंचल भोग।
तैसे ही यह आयु है, ज्यों घट पवन प्रयोग।

चञ्चल = अस्थिर, तरल, चपल। चञ्चला = बिजली, चपला। त्योंहीं = उसी तरह। भोग = स्त्री आदि का उपभोग। आयु = उम्र। घट = घड़ा, कलशी, गगरी। पवन = हवा।

ज्यों घट पवन प्रयोग, तरल त्योंही यौवन तन।
विनसत लगत न वार, गहत ह्वै जात ओस-कन।
देख्यौ दुःसह दुःख, देहधारिन को ऐसे।
साधत सन्त समाधि, व्याधि सों छूटत जैसे ॥५४॥

54. Enjoyments are short-lived like the flash of lightning in the midst of thick clouds. Life is transitory like the water vapors present in the clouds which are scattered away by the blowing of a heavy gale. Men's attempts to preserve their youth for a long time are also futile. Considering all these things, O wise men ! It is only proper that you direct your attention at once to Yoga which is easy to practise provided you are possessed of the virtues of perseverance and meditation.

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपाली-
मादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ॥
द्वारंद्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो
मानी प्राणी स धन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषुदीनः॥५५

तरल = अस्थिर, चञ्चल। यौवन = जवानी। तन = शरीर। विनसत = नाश होते। वार = देर। गहत = पकड़ते हो ; ओसकन = ओस के कण, शबनम के क़तरे। दुःसह = जो सहा न जावे, असह्य। देहधारी = शरीरधारीं, मनुष्य और पशुपक्षी आदि। सन्त = साधु, उत्तम मनुष्य। समाधि = ध्यान, योग की क्रियाविशेष। व्याधि = रोग, दुःख, क्लेश।

वह क्षुधार्त्त, किन्तु मानी पुरुष, जो अपने पेट रूपी खड्डे के भरने के लिए, हाथ में पवित्र साफ़ कपड़े से ढका हुआ ठिकरा लेकर, वन-वन और गाँव-गाँव घूमता है और उनके दरवाज़े पर जाता है, जिनकी चौखट् न्यायतः विद्वान ब्राह्मणों द्वारा कराये हुए हवन के धूएँ से मालिन हो रही है, अच्छा है; किन्तु वह अच्छा नहीं, जो समान कुल वालों के यहाँ माँगता है ॥५५॥

तुलसीदासजी ने भी कहा है—

घर में भूखा पड़ रहे, दस फ़ाक़े हो जायँ।
तुलसी भैया-बन्धु के, कबहुँ न माँगन जायँ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, अगर मनुष्य के पास खाने को न हो, उसे उपवास करते-करते दस दिन बीत जायँ, अन्न बिना प्राण नाश होने की भी संभावना हो; तोभी उसे अपनी या अपने परिवार की जीवन-रक्षा के लिए, कुछ मिलने की आशा से, भाई-बन्धुओं के पास हरगिज़ न जाना चाहिये। क्योंकि ऐसे मौक़े पर वे लोग उसका अपमान करते हैं। उस अपमान का दुःख भोजन बिना प्राण नाश होने के दुःख से अधिक दुःखदायी होता है। मृत्यु की यंत्रणाओं का सहना आसान है, पर उस अपमान को सहना कठिन है। और भी किसी ने कहा है—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम् ।
द्रुमालयः पक्कफलाम्बु भोजनम् ॥

तृणानि शय्या परिधान बल्कलम् ।
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥

व्याघ्र और हाथियों से भरे हुए जङ्गल में रहना भला, वृक्षों के नीचे बसना भला, पके-पके फल खाना और जल पीना भला, घास पर सो रहना और छालों के कपड़े पहन लेना भला; पर भाइयों के बीच में धनहीन होकर रहना भला नहीं ।

सोरठा ।

बिप्रन के घर जाय, भीख माँगिबौ है भलो ।
बन्धुन कों सिरनाय, भोजनहु करिबौ बुरो ॥५५॥

55. Worthy of all praise is the hungry but proud man who for the sake of filling the empty pit of his stomach wanders from village to village or from forest to forest holding in his hand a broken earthen vessel covered with a clean piece of cloth, begging at doors the frames of which have been blackened by the smoke rising from the oblation-fires of learned Brahmans, but it is not proper to demean himself by asking people of equal birth for charity.

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः
किं वा तत्त्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥

विप्रन = ब्राह्मणों । बन्धुन = भाइयों । सिर नाय = सिर नवा कर । माँगिबो = माँगना । करिबो = करना ।

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनैर्न
क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥५६॥

यह चाण्डाल है या ब्राह्मण है? यह शूद्र है या तपस्वी है? क्या यह तत्वविद् योगीश्वर है?—लोगों द्वारा ऐसी अनेक प्रकार की संशय और तर्कयुक्त बातें सुनकर भी, योगी लोग न नाराज़ होते हैं न खुश; वे तो सावधान चित्त से अपनी राह-राह चले जाते हैं ॥५६॥

योगिजन लोगों की बुरी-भली बातों का ख़याल नहीं करते; कोई कुछ भी क्यों न कहा करे। चाहे उन्हें कोई शूद्र कहे चाहे ब्राह्मण, चाहे भङ्गी और चाहे तपस्वी; चाहे कोई निन्दा करे, चाहे स्तुति, वे अच्छी बात से प्रसन्न और बुरी बात से अप्रसन्न नहीं होते। सच्चे महात्मा हर्ष-शोक, दुःख-सुख और मान-अपमान सब को समान समझते हैं।

योगेश्वर कृष्ण ने "गीता" के दूसरे अध्याय में कहा है:—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जो दुखः के समय दुःखी नहीं होता; जो राग, भय और क्रोध से रहित है, वह "स्थितप्रज्ञ" मुनि है।

बुद्धिमान को किसी भी बात की परवा न करनी चाहिये। हाथी की तरह रहना चाहिये। हाथी के पीछे हज़ारों कुत्ते भूँकते हैं, पर वह उनकी तरफ देखता भी नहीं। महात्मा कबीरदास कहते हैं:—

हस्ती चढ़िये ज्ञान के, सहज दुलीचा डारि ।
श्वान-रूप संसार है, भूसन दे झकमारि ॥
"कबिरा" काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार ?।
हस्ती चढ़ डुरिये नहीं, कूकर भूसे हज़ार ॥

महाकवि रहीम कहते हैं:—

जो बड़ेन कों लघु कहौ, नहिं "रहीम" घट जाहिं ।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥
सज्जन चित्त कबहुँ न धरत, दुर्जन जन के बोल ।
पाहन मारे आम को, तउ फल देत अमोल ॥

आप ज्ञान-रूपी हाथी पर चढ़ कर मस्त हो जाओ; किसी की परवा मत करो; बकने वालों को बकने दो। यह संसार कुत्ते की तरह है। इसे भौंकने दो। झकमार कर आप ही रह जायगा। देखते हो, जब हाथी निकलता है, सैकड़ों कुत्ते उसके पीछे-पीछे भूँकते हैं; पर वह अपनी स्वाभाविक चाल से, मस्त हुआ, शान के साथ चला जाता है—कुत्तों की तरफ नज़र उठा कर भी नहीं देखता। वह तो चला ही जाता है और कुत्ते भी झकमार के चुप हो जाते हैं। मतलब यह है, कि तुम अच्छी राह पर चलो, संसार की बुरी-भली बातों पर कान मत दो। हाथी का अनुकरण करो।

कबीरदास कहते हैं, अरे मनुष्य! तू क्यों डरता है, जब कि तेरे सिर पर तेरा बनाने वाला मौजूद है ? हाथी पर चढ़ कर

भागना उचित नहीं, चाहे हज़ारों कुत्ते क्यों न भूँकें। मतलब यह कि, तुमने जो उत्तम पन्थ अख़्त्यार किया है, लोगों के बुरा-भला कहने से उसे मत त्यागो। संसारी कुत्तों से न डरो, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा।

रहीम कवि कहते हैं, बड़ों को छोटा कहने से बड़े छोटे नहीं हो जाते—वे तो बड़े ही रहते हैं। गिरिराज या गोवर्द्धन पर्वत को अपनी छोटी उँगली पर उठाने वाले—अतुल पराक्रम दिखाने वाले, कृष्ण को लोग गिरिधर की जगह मुरली या बाँस की बाँसुरी धारण करने वाले मुरलीधर कहते हैं, लेकिन वे बुरा नहीं मानते।

सज्जन लोग दुष्टों की कड़वी बातों या बोली-ठोलियों का ख़याल ही नहीं करते। लोग आम के वृक्ष के पत्थर मारते हैं, तो भी वह अनमोल फल ही देता है।

दोहा।

विप्र शूद्र योगी तपी, सुपच कहत कर ठोक।
सबकी बातें सुनत हों, मोकों हर्ष न शोक ॥५६॥

विप्र = ब्राह्मण। शूद्र = हिन्दुओं का चौथा वर्ण; ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की चाकरी करने वाली जाति। योगी = जोगी। तपी = तपस्वी। सुपच = श्वपच = चाण्डाल। कहत = कहते हैं। कर ठोक = तालीबजा कर। मोकों = मुझे। हर्ष न शोक = खुशी होती है न रञ्ज; विप्र कहने से खुशी नहीं होती और शूद्र कहने से रञ्ज नहीं होता।

56. Yogis or ascetics are neither angry nor pleased with the men who, when they are going on their way, accost them with various epithets such as "Is he a low-born fellow ?" or "Is he one of a twice-born caste ?" or "Is he a Shudra ?" or "Is he one engaged in the practice of Tapa ?" or "Is he a great Yogi, wise in the realisation of Truth ?"

सखे धन्याः केचित्त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा
बनान्ते चिन्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगना भोगसुभगां
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥५७॥

हे मित्र ! वे पुरुष धन्य हैं, जो शरद् के चन्द्रमा की चाँदनी से सफ़ेद हुए आकाशमण्डल से सुन्दर और मनोहर रात को वन में बिताते हैं, जिन्होंने संसार-बन्धन को काट दिया है, जिनके अन्तःकरण से भयानक सर्परूपी विषय निकल गये हैं और जो सुकर्मों को ही अपना रक्षक समझते हैं ॥५७॥

वे ही लोग सुखी हैं, वे ही धन्य हैं, जो शरद् की चाँदनी की मनोहर रात में वन में बैठे हुए परमात्मा का भजन करते हैं, जिन्होंने संसार के जञ्जालों को काट दिया है, जिन्होंने आशा-तृष्णा और राग-द्वेष प्रभृति को त्याग दिया है, जिनके भीतरी दिल से विषय रूपी विषैले सर्प भाग गये हैं, यानी जिन्होंने

विषयों को विष की तरह दूर कर दिया है, जिनका चित्त केवल पुण्य और परोपकार में ही लगा रहता है ।

हमें संसार की प्रत्येक चीज़ से परोपकार की शिक्षा मिलती है । वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, नदियाँ आप जल नहीं पीतीं, सूरज और चाँद अपने लिये नहीं घूमते, बादल अपने लिये मेंह नहीं बरसाते,—ये सब पराये लिए कष्ट सहते हैं। हातिम और विक्रम ने पराये लिये नाना प्रकार के कष्ट उठाये, दधीचि और शिवि ने परोपकार के लिये अपने-अपने शरीर भी दे दिये, हरिश्चन्द्र ने पराये लिये घोर दुःसह विपत्ति भोगी। जिनका जीवन परोपकर में बीतता है, उन्हीं का जीवन धन्य है। शेख़ सादी ने "गुलिस्ताँ" में कहा है—

चूँ इन्साँरा न बाशद फ़ज़लो ऐंहसाँ ।
चे फ़र्क़ेज़ आदमी ता नक़श् दीवार ॥

यदि मनुष्य में परोपकार करने की इच्छा नहीं है, तो उसमें और दीवार पर लिखे हुए चित्र में क्या फ़र्क़ है ?

जिससे प्राणी मात्र का भला हो, वही मनुष्य धन्य है। उसी की माँ का पुत्र जनना सार्थक है। "रहीम" कवि कहते हैं:—

बड़े दीन को दुख सुनें, देत दया उर आनि ।
हरि हाथी सों कब हती, कहु "रहीम" पहिचानि ? ॥
धनि "रहीम" जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ? ॥

बड़े लोग दीन और दरिद्रों, निरन्न और दुखियों एवं म्लान और भीतों की यानी ख़ौफ़ज़दों की बातें सुनते हैं, उनकी दुःख-गाथाओं पर कान देते हैं; फिर हृदय में तरस खाकर—दया करके, उन्हें कुछ देते और उनका दुःख दूर करते हैं। वे इस बात को नहीं देखते कि, यह हमारी जान-पहचान का है या नहीं; यह हमारा अपना आदमी है या ग़ैर है। देखिये, हाथी और भगवान् की पहचान नहीं थी। फिर भी, ज्योंही भगवान् को खबर मिली कि, गजराज का पैर मगर ने पकड़ लिया है, अब गज का जीवन शेष होना चाहता है, उसने ख़ूब ज़ोर मार लिया है, उसे अपनी रक्षा की ज़रा भी आशा नहीं, इसलिये अब वह तुझे पुकार रहा है; त्योंही जान-पहचान न होने पर भी, भगवान् जल्दी के मारे नंगे पैरों भागे और हाथी की जान बचायी। गज और ग्राह की बात मशहूर है।

मतलब यह है, कि जिससे दूसरों की भलाई हो, दूसरों का दुःख दूर हो वही बड़ा है। वह बड़ा—बड़ा नहीं, जिससे दूसरों का उपकार न हो। जो दीनों पर दया करते हैं, दीनों के दुःख दूर करते हैं, दीनों की पालना और रक्षा करते हैं, वे ही बड़े कहलाने योग्य हैं। भगवान् में ये गुण पूर्ण रूप से हैं; इसी से उन्हें दीनदयालु, दीनबन्धु, दीनानाथ, दीनवत्सल, दीनपालक और दीनरक्षक आदि कहते हैं। मनुष्य को भगवान् ने अपने ही जैसा बनाया है। वे चाहते हैं, कि मनुष्य मेरा अनुकरण करे; दीन दुखियों के दुःख दूर करे, संकट में उनकी

सहायता करे, मुसीबत में उन्हें मदद दे। जो मनुष्य ऐसा करते हैं, उन्हें भी संसार दीनबन्धु आदि पदवियाँ देता और सब से बड़े दीनबन्धु उस से प्रसन्न होकर, उसकी सारी कल्पनाओं को मिटा देते हैं।

रहीम कवि कहते हैं,—कीचड़ का पानी धन्य है, जिसे छोटे-छोटे जीव—कीड़े-मकोड़े धाप कर पीते हैं। समुद्र चाहे जितना बड़ा है, पर उस में तारीफ़ की कोई बात नहीं, क्योंकि उस के पास जाकर किसी की प्यास नहीं बुझती; जो भी जाता है, उस के पास से प्यासा ही लौटता है।

दोहा।

ते नर जग में धन्य हैं, शरदशुभ्र निशि माहिं।
तोड़े बन्धन जगत के, मनते विषयन काहि ॥५७॥

सोरठा।

विषय-सर्प कों मारि; चित्त लगाय शुभ कर्म में।
पुण्यकर्म शुभधारि, त्यागे सब मन-वासना ॥५७॥

ते = बे। नर = पुरुष। धन्य = भाग्यवान् = पुण्यवान्। शरद = शरद ऋतु—क्वार और कातिक। शुभ्र = सफेद। निशि = रात। शुभ्र निशि = चाँदनी रात। माँहि = में। बन्धन = क़ैद, गाँठ, गिरह, बेड़ी। मनते = मन से। विषयन = विषयों को। काहि = काढ़ि, निकालकर। शुभ = मंगल, कल्याण, भला। पुण्यकर्म = पवित्र कर्म। धारि = धारण करके। वासना = इच्छा, अभिलाष; मनोरथ।

57. O friend! happy are those who spent their nights made beautiful by the bright autumn moon-light spreading over the expanse of the heavens, seated in a corner of a forest, their tight worldly bonds broken asunder, the poison of their snake-like passion removed from inside their minds and their hearts resting under the shelter of a multitude of good actions done in the course of their life.

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थ गहनादायासदादाशु च
श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षंक्षणम् ॥
शान्तिं भावमुपैहिसंत्यज निजां कल्लोललोलां मतिं
भूयो मा भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना॥५८॥

हे चित्त! अब विश्राम ले, इन्द्रियों के सुख-सम्पादन के लिये विषयों की खोज में कठोर परिश्रम न कर; आन्तरिक शान्ति की चेष्टा कर, जिससे कल्याण हो और दुःखों का नाश हो; तरंग के समान चंचल चाल को छोड़ दे; संसारी पदार्थों में और सुख न मान; क्योंकि ये असार और नाशमान् हैं। बहुत कहना व्यर्थ है, अब तू अपने आत्मा में ही सुख मान ॥५८॥

अरे दिल! अब तू इन्द्रियों के लिए विषय-सुखों की खोज में मत भरम, उन के लिए तकलीफ़ न उठा, शान्त हो जा; उन में

कुछ भी सुख नहीं है, वे तो विष से भी बुरे और काले नाग से भी भयङ्कर हैं। अरे! अब तो मेरा कहना मान और अपनी चालों को छोड़। देख, तेरे सिर पर काल मँडरा रहा है। वह एक ही बार में तुझे निगल जायगा। अरे भैय्या, ये इन्द्रियाँ बड़ी ख़राब हैं, इनमें दया-मया नहीं, यह शैतान की तरह कुराह पर ले जाती हैं। तू इनसे सावधान रह और इनके भुलावे में न आ। अब शान्त हो और कष्ट सहना सीख। अपनी चंचल चाल छोड़, जगत् को असार और स्वप्नवत् समझ। इस जञ्जाल से अलग हो। बारम्बार इसी की इच्छा न कर। अपने आत्मा में ही मग्न हो। इस तरह अवश्य तेरा कल्याण होगा।

कल्याण कैसा ? जब तू ज्योतिःस्वरूप आत्मा को देख लेगा, तब तू उसी में सन्तुष्ट रहेगा, उससे कभी न डिगेगा, उसके आगे और सब लाभ तुझे हेच जचेंगे। योगेश्वर कृष्ण ने ऐसी ही बात गीता के छठे अध्याय में कही है। उस सुख को सब नहीं जान सकते, जो अनुभव करता है वही जानता है। उसे कोई कह कर बता नहीं सकता। कबीरदास कहते हैं:—

ज्यों नर-नारी के स्वाद को, खसी नहीं पहचान।
त्यों ज्ञानी के सुख को, अज्ञानी नहीं जान॥

स्त्री-पुरुष के सुख को जैसे हींजड़ा नहीं जान सकता, वैसे ही ज्ञानी के सुख को अज्ञानी नहीं जान सकता।

छप्पय ।

एरे चित ! कर कृपा, त्याग तू अपनी चालहि ।
शिर पर नाचत खड्यौ, जान तू ऐसे कालहि ॥
ये इन्द्रियगण निठुर, मान मत इनको कहिबौ ।
शान्तभाव कर ग्रहण, सीख कठिनाई सहिबौ ॥
निजमाति तरंग-सम चपल ताजि, नाशवान जग जानिये ।
जनि करहु तासु इच्छा कछु, शिव-स्वरूप उर आनिये ॥५८॥

58. O mind, do thou take rest now from thy laborious efforts in acquiring the object of sensual pleasures, have recourse to internal peace which is the only way to bliss and which removes all sorts of afflictions, give up thy current-like restlessness and never again take pleasure in worldly things which are liable to destruction. In short, do thou now be pleased with thy own self.

एरे = सम्बोधन । एरे चित्त = ए मन ! त्याग = छोड़ । चालहि = चालको, चलनगतिको । कालहि = मौत को । इन्द्रियगण = आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़ा ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं । निष्ठुर = निर्दयी, बेरहम । कहिबो = कहना, सलाह । शान्तभाव = अचञ्चलभाव, अक्षुब्धभाव । कठिनाई = तकलीफें । सहिबो = सहना, बर्दाश्त करना । निज गति = अपनी चाल । तरंग = लहर । सम = समान । तजि = छोड़ । नाशवान = नाश होने वाला । जग = जगत् । जनि करहु = मत करो । तासु = उसकी । शिव = महादेव, मङ्गल, शुभ, कल्याण । उर = हृदय, दिल । आनिये = लाइये ।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना
भूशय्या नववल्कलैरकरुणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा
चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥५६॥

ऐ प्यारी बुद्धि ! अब तू पवित्र फलमूलों से अपनी गुज़र कर; बनी-बनाई भूमि-शय्या और वृक्षों की छाल के वस्त्रों से अपना निर्वाह कर । उठ, हम तो वन को जाते हैं । वहाँ उन मूर्ख और तंग-दिल अमीरों का नाम भी नहीं सुनाई देता, जिनकी ज़बान, धन की बीमारी के कारण, उनके वश में नहीं है ॥५६॥

जिन धनवानों की ज़बान में लगाम नहीं है, जो अपनी धन की बीमारी के कारण मुँह से चाहे जो निकाल बैठते हैं, ऐसे मदान्ध और नीच धनी जंगलों में नहीं रहते, इसलिए बुद्धिमान को वहाँ चला जाना चाहिये। वहाँ काहे का अभाव है ? खाने को फल मूल हैं, पीने को शीतल जल है, रहने को वृक्षों की शीतल छाया है, पहनने को वृक्षों की छाल है और सोने को पृथ्वी है। वहाँ दुःख नहीं है, अशान्ति नहीं है; किन्तु और सभी जीवनधारणोपयोगी पदार्थ हैं ।

जो आशा को त्याग देंगे, वह तो धनियों के दास होंगे ही क्यों ? पर धनियों को भी इतराना न चाहिये। यह धन सदा उनके पास न रहेगा। इसे वे अपने साथ न ले जायँगे। सम्भव है,

यह उनके सामने ही विलाय जाय। फिर ऐसे चञ्चल धन पर अभिमान किस लिये ?

किसी ने कहा है:—

कितने मुफ़लिस हो गये, कितने तवंगर हो गये।
ख़ाक में जब मिल गये, दोनों बराबर हो गये॥

धनी और निर्धन का भेद तभी तक है, जब तक कि मनुष्य ज़िन्दा है; मरने पर सभी बराबर हो जाते हैं।

गिरिधर कवि कहते हैं:—

कुण्डलिया।

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारिकौ, ठाऊँ न रहत निदान॥
ठाऊँ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै॥
कह गिरधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥

धनवान होकर सुपने में भी घमण्ड न करना चाहिये। जिस तरह चञ्चल जल चार दिन ठहरता है, फिर अपने स्थान से चला जाता है; उसी तरह धन भी चार दिन का मिहमान होता है, सदा किसी के पास नहीं रहता। ऐसे चञ्चल, ऐसे अस्थिर और चन्दरोज़ा धन के नशे से मतवाले होकर, ज़बान को बेलगाम न रखना

चाहिये, सब से मीठा बोलना चाहिये और सभी के साथ शिष्टाचार दिखाना और नम्रता का बर्ताव करना चाहिये। जब तक देह में प्राण रहें, जब तक ज़िन्दगी रहे, यश कमाना चाहिये; बदनामी से बचना चाहिये। अपनी ज़ुबान से किसी को कड़वी और बुरी लगने वाली बात न कहनी चाहिये। ज़बान का ज़ख़्म तीर के ज़ख़्म से भी भारी होता है। तीर का ज़ख़्म मिट जाता है, पर ज़बान का ज़ख़्म नहीं मिटता। इस जगत् में जो जैसा करता है, वह वैसा ही पाता है। जो जौ बोता है वह जौ काटता है; और जो गेहूँ बोता है, वह गेहूँ कटता है; जो दूसरों का दिल दुखाता है, उसका दिल भी दुखाया जायगा; जो जैसी कहेगा, वह वैसी सुनेगा। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है—

बद न बोले ज़ेर गर्दूं, गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा, जैसी कहे वैसी सुने॥

आस्मान के नीचे किसी को बुरी बात ज़बान से न निकालनी चाहिये। यह तो मठ के अन्दर की आवाज़ है, जैसी कहोगे उसको प्रतिध्वनि-रूप में वैसी ही सुनोगे। और भी एक कवि ने कहा है—

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपौ शीतल होय॥

अभिमान त्यागकर ऐसी बात कहनी चाहिये, जिससे औरों के दिल ठण्डे हों और अपने दिल में भी ठण्डक हो।

तुलसीदासजी ने कहा है:—

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम बचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िये, शील सत्य सन्तोष॥

नित्य-अनित्य के विचार का ज्ञान, यौवन और धनादि के घमण्ड का त्याग, सतोगुण, प्रभु में निश्छल प्रीति का धर्म, मीठे और नर्म बचन, निराभिमानता, शील, सत्य और सन्तोष इनको कभी न छोड़ना चाहिये। अज्ञानता, घमण्ड, रजोगुण-तमोगुण, अधर्म, कड़वे बचन, मान, कुशीलता, झूठ और असन्तोष—इन को छोड़ देना चाहिये।

दोहा।

बकल वसन फल असन कर, करिहौं वन विश्राम।
जित अविवेकी नरन को, सुनियत नाहीं नाम॥५६॥

59. O thou my dear Reason, be now contented with the wholesome roots and fruits of the forest for food, with the bare earth for a bed and with the bark of trees for clothing. Rise and let us go to the forest where even the names of foolish and

---

बकल वसन=वृक्ष की छालों के कपड़े पहनकर। फल असन कर=वृक्षों के फल खाकर। करिहौं बन विश्राम=वन में आराम करूँगा। जिस.........नाम=जहाँ अविचारवान घमण्डी लोगों का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता।

narrow-minded wealthy men who have no control over their tongue on account of their diseased and ignorant minds, is not heard.

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासंगमंगीकुरु।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥६०॥

ऐ चित ! अब तू मोह छोड़ कर शिर पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाले भगवान् शिव से प्रीति कर और गंगा-किनारे के वृक्षों के नीचे विश्राम ले। देख ! पानी की लहर, पानी के बबूले, बिजली की चमक, आग की लौ, स्त्री, सर्प और नदी के प्रवाह की स्थिरता का कोई विश्वास नहीं; क्योंकि ये सातों चंचल हैं ॥६०॥

संसार का मोह त्यागो।

मनुष्यो ! आप लोग मोह-निद्रा में पड़े हुए क्यों अपनी दुर्लभ मनुष्य-देह को वृथा गँवा रहे हैं ? आपको यह देह इसलिये नहीं मिली है कि, आप इस झूठे संसार से मोह कर, स्त्री-पुत्र और धन-दौलत में भूले रहें; बल्कि इसलिए मिली है कि, आप इस देह से दुर्लभ मोक्ष-पद की प्राप्ति करें। पर संसार की गति ही ऐसी है कि, यह अच्छे कामों को त्याग कर बुरे

काम करता है। वजह यह है कि, मोहान्ध अज्ञानी पुरुष को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं।

जो नारी नरक-कूप के समान गन्दगी से भरी है, जो सब तरह से अपवित्र और घृणायोग्य है, जिसमें प्रीति का नामो-निशान भी नहीं है, जो केवल अपने स्वार्थ से पुरुष को प्यार करती है, पति के निर्धन या क़र्ज़दार होते ही उससे प्रीति कम कर देती या उसे त्याग देती है, जो क्षण-भर में परायी हो जाती है, उसी नारी को पुरुष अपनी प्राणवल्लभा कहता और उसके लिये अपनी सारी सुख-शान्ति को तिलाञ्जलि देकर मरने तक को तैयार हो जाता है। क्या यह अज्ञानता नहीं है ?

कवियों ने मोहवश स्त्री के अंगों की बड़ी लम्बी चौड़ी तारीफें की हैं। उसके दोनों स्तनों को किसी ने अनारों, किसी ने शन्तरों अथवा दो सोने के कलशों की उपमा दी है; पर वास्तव में वे मांस के लौंदे हैं। उसकी जाँघों की केले के खंभों से उपमा दी है, पर वे महागन्दी हैं; उन पर हर समय मूत्र या सफेदा बहता रहता है। उसकी आँखों की उपमा हिरनी के बच्चे की आँखों से दी है, पर वे सर्प से भी भयानक हैं; क्योंकि सर्प के काटने से मनुष्य बेहोश होता और मरता है, पर स्त्री के तो देखने मात्र से ही वह पागल सा होकर मर मिटता है। वास्तव में स्त्री सर्प से भी बुरी है। सर्प का काटा एक बार ही मर जाता है, पर स्त्री का काटा बारम्बार मरता और जन्म लेता है। जिस तरह कदली वन का हाथी काग़ज़ की हथनी को देख, उसकी

इच्छा करता और शिकारियों के जाल में फँस कर, बन्धनमें बँध, नाना प्रकार के दुःख झेलता है; उसी तरह जो पुरुष स्त्री की इच्छा करता है, वह बँधन में बँधता और नाश होता है। स्त्री संसार-वृक्ष का बीज है, अतः स्त्री-कामी पुरुष का इस संसार से पीछा नहीं छूटता। वह इस दुनियाँ में आकर, स्त्री के कारण, नाना प्रकार के दुःख भोगता, चिन्ताग्नि में दिन रात जलता और अन्त में मर कर ममता और वासना के कारण फिर जन्म लेता और दुःख भोगता है।

स्त्री कामी-पुरुष को ज़रा से लालच से अपना दास बना लेती है। कामी-पुरुष स्त्री के इशारे पर उसी तरह नाचता है, जिस तरह बन्दर मदारी के इशारे पर नाचता है। वह रात-दिन उसी के खुश करने की कोशिशों में लगा रहता है, घर-बाहर सोते-जागते उसीकी चिन्ता रखता है, उसी के लिये धन-गर्वित धनियों की खुशामदें करता, उनकी टेढ़ी-सूधीं सुनता और आत्मप्रतिष्ठा खोता है। इतने पर भी, स्त्री की फ़र्मायशें पूरी नहीं होतीं। आज वह गहना माँगती है, तो कल कपड़े माँगती है और परसों पुत्र या कन्या के विवाह की बात कहती है। कभी कहती है कि आज आटा नहीं है, कभी कहती है आज घर में तेल-नोन नहीं है, इसी तरह उसकी फ़रमायशों का अन्त नहीं आता, पर बिचारे पुरुष का अन्त आ जाता है। स्त्री की सेवा चाकरी से उसे इतनी फुरसत नहीं मिलती कि, वह क्षण भर भी अपने बनाने वाले स्वामी की पद-वन्दना कर सके।

अनेक प्रकार से सेवा-टहल करने पर भी, यदि पुरुष से कोई फ़रमायश पूरी नहीं होती, तो वह बाघिन की तरह घुर्राती है। दैवात्, यदि पुरुष निर्धन हो जाता है या उसके सिर पर ऋण-भार हो जाता है, तो वही सात फेरों की ब्याही स्त्री उसका अनादर और उसकी मरण-कामना करती है; क्योंकि इस जगत् में धन की ही क़ीमत है, मनुष्य की क़ीमत नहीं। कहते हैं, निर्धन पुरुष को वेश्या तज देती है। वेश्या का तो नाम प्रसिद्ध है ही; पर वेद-विधि से ब्याही हुई स्त्री भी अपने पति को तज देती है। धन-हीन को माता, पिता, भाई, बहिन, भौजाई, नौकर-चाकर एवं अन्य रिश्तेदार बुरी नज़र से देखते और उसे त्याग देते हैं। संसार अर्थ—धन के वश में है। जिसके पास धन नहीं, उसका कोई नहीं। कहा है—

माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न सम्भाषते
भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च नालिंगते।
अर्थप्रार्थनशंकया न कुरुतेऽप्यालापमात्रं सुहृत्
तस्मादर्थमुपार्जयस्व च सखे! ह्यर्थस्यसर्वेवशाः॥

माता निर्धन पुत्र की निन्दा करती है, बाप आदर नहीं करता, भाई बात नहीं करता, चाकर क्रोध करता है, पुत्र आज्ञा नहीं मानता, स्त्री आलिंगन नहीं करती और धन माँगने के डर से मित्र कोरी बात भी नहीं करता; इसलिये मित्र! धन कमाओ, क्योंकि सभी धन के वश में हैं।

"आत्मपुराण" में कहा है:—

दरिद्रं पुरुषं दृष्ट्वा नार्यः कामातुरा अपि ।
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपं यद्वच्चकृमिदूषितम् ॥

स्त्रियाँ काम से आतुर होने पर भी, दरिद्री पति को छूना नहीं चाहतीं—पसन्द नहीं करतीं; जिस तरह कीड़ों से दूषित मुर्दे को कोई छूना नहीं चाहता ।

स्पष्ट हो गया कि, स्त्री ऊपर से ही सुन्दर है; भीतर से वह महागन्दी और पाषाणवत् कठोरहृदय है; जिस समय इसमें निर्दयता आती है, उस समय यह अपने क्रीतदास की तरह सेवा करने वाले पति और अपने उदर से निकले हुए पुत्र के ऊपर भी दया नहीं करती । अपने स्वार्थ के लिये यह उनकी भी हत्या कर डालती और नरक की राह दिखाती है; अतः स्त्री के मोह में फँसना, अपने नाश का सामान करना है। जिस तरह पतंग दीपक के रूप पर मोहित हो कर अपना नाश करता है; उसी तरह कामी भी स्त्री के रूप पर मुग्ध होकर अपने लोक-परलोक गँवाता है—इस जन्म में घोर चिन्ताग्नि में जलता और मरने पर नरकाग्नि में भस्म होता और तड़पता है ।

वास्तव में स्त्री पुत्र आदि शत्रु हैं, पर पुरुष अज्ञानता से इन्हें अपना मित्र समझता है। महात्मा शङ्कराचार्य ने अपनी प्रश्नोत्तरीमाला में लिखा है—"स्त्री पुत्र देखने में मित्र मालूम होते हैं, पर असल में वे शत्रु हैं ।"

एक वैश्य और उसके पुत्र ।

एक वैश्य ने लाखों-करोड़ों रुपये कमाये और अपने धन में से चार-चार लाख रुपये अपने पुत्रों को दे कर, उनकी अलग-अलग दूकानें करवा दीं। शेष धन उसने दीवारों में चुनवा दिया। चन्द रोज़ के बाद वह सख़्त बीमार हो गया। उसे सन्निपात होगया और वह आन-तान बकने लगा। लोगों ने उसका अन्त समय समझ कर उससे कहा—"सेठ जी ! बहुत धन कमाया है, इस वक्त कुछ पुण्य कीजिये, क्योंकि इस समय धर्म ही साथ जायगा; स्त्री-पुत्र धन प्रभृति साथ न जायँगे।" वैश्य का गला बन्द हो गया था, अतः वह बोल न सकता था। उसने बारम्बार दीवारों की तरफ हाथ किये। इशारों से बताया कि, इन दीवारों में धन गड़ा है, उसे निकाल कर पुण्य कर दो। पुत्र पिता का मतलब समझ कर बोले—"पिताजी कहते हैं, जो धन था, सो तो इन दीवारों में लगा दिया, अब और धन कहाँ है ?" लोगों ने लड़कों की बात मान ली। वैश्य अपने पुत्रों की बेईमानी देख कर बहुत रोया, पर बोल न सकता था, इस लिए छटपटा-छटपटा कर मर गया। लड़कों ने उसे श्मशान पर ले जा कर जला दिया। वैश्य के मन की मन ही में रह गई। इससे बढ़ कर पुत्रों की शत्रुता क्या होगी ?

जो लोग सैकड़ों प्रकार के अनर्थ और बेईमानी से पराया धन हड़प कर अथवा और तरह से दुनियाँ का गला काट कर

लाखों-करोड़ों अपने पुत्र-पौत्रों को छोड़ जाते हैं, वे इस कहानी से शिक्षा ग्रहण करें और पुत्रों का झूठा मोह त्यागें। इस जगत् में न कोई किसी का पुत्र है न पिता। माता-पिता, भाई-बहिन और स्त्री-पुत्र सभी एक लम्बी यात्रा के यात्री हैं। यह मृत्युलोक उस यात्रा के बीच का मुक़ाम है। इस मुक़ाम पर आकर सब इकट्ठे हो गये हैं। कोई किसी से सच्ची प्रीति नहीं रखता। सभी स्वार्थ की रस्सी में एक दूसरे से बँधे हुए हैं। जब जिसके चलने का समय आ जाता है, तब वही निर्मोही की तरह सब को छोड़ कर चल देता है। जो लोग उस चले जाने वाले या मर जाने वाले के लिए प्राण न्यौछावर करते थे, उसके लिए मरने तक को तैयार रहते थे, उनमें से कोई उसके साथ पौली तक जाता है और कोई श्मशान-भूमि तक पहुँचा कर और जला-बला कर ख़ाक कर आता है। ऐसे नातेदारों से अनुराग करना—उनमें ममता रखना बड़ी ही ग़लती है। कहा है:—

"परलोक की राह में जीव अकेला जाता है; केवल धर्म उसके साथ जाता है। धन, धरती, पशु और स्त्री घर में ही रह जाते हैं। लोग श्मशान तक जाते हैं और देह चिता तक साथ रहती है।"

बहुत लोग यह समझते हैं कि, पुत्र बिना गति नहीं होती; पुत्र-हीन पुरुष नरक में जाता है और पुत्रवान् स्वर्ग में जाता

है। जो लोग ऐसा समझते हैं; वह बड़ी भूल करते हैं। पुत्रों से किसी की भी गति न तो हुई है और न होगी; सब की गति अपने ही पुरुषार्थ से होती है। अगर पुत्रों से स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति होती, तो कोई विरला ही नरक में जाता। जो जैसा काम करता है, उसे वैसा ही फल भोगना होता है। ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, भ्रूणहत्या, परस्त्रीगमन और परधन-हरण प्रभृति पापों का फल कर्ता को भोगना ही होता है। जो ऐसा समझते हैं कि, ऐसे पाप करने कर पर भी पुत्र-पौत्रों के होने से, हम दण्ड से बच जायँगे, वे बड़े ही मूर्ख हैं। ज्ञानी लोग तो संसार-बन्धन से छूटने के लिये अपने पुत्रों का भी त्याग कर देते हैं।

एक ब्राह्मण और उसका अन्धा पुत्र।

किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये उसने गङ्गा जी की उपासना की। अन्त में, बूढ़ी अवस्था में, उसके एक अन्धा पुत्र हुआ। ब्राह्मण उस अन्धे ही पुत्र को पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने खूब उत्सव और भोज प्रभृति किये। इसके बाद जब वह अन्धा पुत्र पाँच बरस का हुआ, ब्राह्मण ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराकर, उसे विद्या पढ़ाना आरम्भ किया। चन्द रोज़ में वह अन्धा पूर्ण पण्डित हो गया।

एक दिन पिता-पुत्र बैठे थे। पुत्र ने पिता से पूछा—"पिता जी! मनुष्य अन्धा किस पाप से होता है?" पिता ने

उत्तर दिया—"पुत्र ! जो पूर्व जन्म में रत्नों की चोरी करता है, वह अन्धा होता है।" पुत्र ने कहा—"पिता जी ! यह बात नहीं है। कारण के गुण कार्य में भी आ जाते हैं। आप अन्धे हैं, इसी से मैं भी अन्धा हुआ हूँ।" पिता ने क्रोध में भर कर कहा "नालायक ! मैं अन्धा कैसे ?" पुत्र ने कहा—"पिता जी ! गङ्गा माता साक्षात् मुक्ति देने वाली हैं। आपने उनकी उपासना पुत्र की कामना से की; इसी से मैं आपको अन्धा समझता हूँ। जो वेद-शास्त्र पढ़ कर भी पेशाब के कीड़े की इच्छा करता है, वह अन्धा नहीं तो क्या सूझता है ? पेशाब से जैसे और अनेक प्रकार के कीड़े पैदा होते हैं, वैसे ही पुत्र भी उसका एक कीड़ा ही है। आपने जिस पुत्र के लिये गङ्गा जी की इतनी तपस्या की, वह पुत्र तो कुत्ते-बिल्ली और सूअर प्रभृति पशुओं के अनायास ही हो जाते हैं। पुत्र-जैसे मूत्र के कीड़े से किसी को भी स्वर्ग या मोक्ष लाभ नहीं हो सकता; पिता जी ! न कोई किसी का पुत्र है न स्त्री प्रभृति; सब एक ही हैं, क्योंकि सब में एक ही आत्मा है। वही आत्मा पिता में है, वही पुत्र और स्त्री में। जिस तरह मरुभूमि में भ्रमसे जल दीखता है, पर वास्तव में वहाँ जल का नाम-निशान भी नहीं; उसी तरह भ्रम से यह जगत् सच्चा दीखता है, पर वास्तव में कुछ भी नहीं। यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन है, यह मेरा मकान है—ऐसा वासना से दीखता है। वासना से ही जीव संसार-बन्धन में बँधता है; यानी वासना से ही शरीर

धारण करता है। वासना से ही मनुष्य अज्ञानी बन रहा है। वासना का त्याग करते ही मनुष्य, ज्ञान-लाभ करके, परमानन्द की प्राप्ति करता है। ज्ञानी सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म को ज्ञान की आँखों से देखता है, पर अज्ञानी उसे नहीं देख सकता। जैसे अन्धे को सूर्य नहीं दीखता, उसी तरह अज्ञानी को ब्रह्म नहीं दीखता; इसी से अज्ञानी को, बाहर की आँखें होने पर भी, अन्धा कहते हैं। आप भेद-बुद्धि को त्याग कर, सबमें एक आत्मा को देखो। आत्मज्ञानी होने से ही आपको नित्य सुख मिलेगा।"

पिता-पुत्र के अगाध पाण्डित्य और ज्ञान को देख एक दम चकित हो गया और कहने लगा—"पुत्र ! मैंने चार वेद, छहों शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति और पुराण प्रभृति पढ़कर कुछ भी ज्ञान लाभ न किया; तेरी बातों से मेरी आँखें खुल गईं।"

संसार को मिथ्या समझकर ही कोई ज्ञानी कहता है:—

"हे मन ! तू स्त्री के प्रेम में मत भूल; यह बिजली की चमक, नदी के प्रवाह और नदी की तरङ्ग प्रभृति की तरह चञ्चल है। स्त्री के प्रेम का कोई ठिकाना नहीं; आज यह तेरी है, कल पराई है। एक करवट बदलने में स्त्री पराई हो जाती है। इसकी झूठी प्रीति में कोई लाभ नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं:—

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार ।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार ॥

सर्प, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीच पुरुष और हथियार—इनको सदा परखते रहना चाहिये, इनसे कभी ग़ाफ़िल न रहना चाहिये, क्योंकि इन्हें पलटते देर नहीं लगती।

हे मन ! यदि तुझे प्रीति ही करनी है, तो उठ, गङ्गा-किनारे के वृक्षों के नीचे चल बैठ और आशुतोष भगवान् चन्द्रशेखर—शिवजी से प्रीति कर। उनकी प्रीति सच्ची और कल्याणकारी है।

गोस्वामीजी ने और भी कहा है:—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल ।
"तुलसी" दो महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल ॥
सम्मुख ह्वै रघुनाथ के, देइ सकल जग पीठि ।
तजै केंचुरी उरग कहँ, होत अधिक अति दीठि ॥

या तो भगवान् के चरणों में ममता कर अथवा देह के सब नातों को त्यागकर उदासीन हो जा और कर्म ज्ञानादि साधन करके मन शुद्ध कर ले। जब तेरा मन शुद्ध हो जायगा, तब भगवान् के चरणों में आप ही स्नेह हो जायगा। इन दोनों बातों में से जो एक बात तुझे पसन्द हो, उसे छल छोड़कर दिल से कर; एक खेल-खेल। सारांश यह, कि भगवान् में सहज स्नेह कर। अगर तेरा मन प्रभु की भक्ति में नहीं जमता, तो स्त्री-पुत्र आदि संसारी भोगों से मन हटाकर, प्रभु की भक्ति की चेष्टा कर।

जब भगवान् में तेरा मन लग जाय, तब संसार की तरफ से मुँह फेर ले—संसार को पीठ दे-दे, जिससे तेरे मन में लोक-वासना न आने पावे; क्योंकि वासना से हृदय की दृष्टि मैली हो जाती है। साँप का भीतरी चमड़ा जब मोटा हो जाता है, तब उसे आँखों से साफ़ नहीं दीखता; लेकिन जब वह काँचली छोड़ देता है, तब उसकी आँखों का पटल उतर जाता है; आँखों के साफ़ हो जाने से साँप को खूब साफ़ दीखने लगता है। जिस तरह काँचली त्यागने से सर्प की दृष्टि साफ़ हो जाती है; उसी तरह वासना त्याग देने से ईश्वर के भक्तों की हृदय-दृष्टि साफ़ रहती और उन्हें भगवान् के दर्शन होते रहते हैं।

छप्पय।

मोह छाँड़ मन-मीत ! प्रीति सों चन्द्रचूड़ भज !
सुर-सरिता के तीर, धीर धर दृढ़ आसन सज !!
शम दम भोग-विराग, त्याग तप को—तू अनुसरि।
वृथा विषय-बकवाद, स्वाद सब ही—तू परिहरि॥

मन मीत = हे मन-मित्र ! प्रीतिते = प्रेम से। चन्द्रचूड़ = चन्द्रभाल, मन्द्रमौलि, चन्द्रसेखर, शिव, महादेव। भज = भजन कर। सुर-सरिता = देवताओं की नदी, गङ्गा। आसन = योगियों के बैठने का प्रकार; पद्मासन स्वतिकासन आदि। शम = इन्द्रिय-निग्रंह, इन्द्रिय वश करना। दम = बाहरी इन्द्रियों का निग्रह; तपस्या के क्लेश सहने की शक्ति। विराग = ममता-त्याग; विरक्ति; संसार में आसक्ति न रखना। भोग-विराग = स्त्री आदि में आसक्ति न रखना। त्याग = वैराग्य। अनुसरि = अनुवर्त्तन कर, पीछे चलो। वृथा विषय-बकवाद = फिज़ूल गपशप, व्यर्थकी बातें बनाना। स्वाद = ज़ायके। परिहरि = छोड़, त्याग।

थिर नहिं तरंग, बुद्बुद, ताडित आगिन-शिखा, पन्नग सरित ।
त्योंही तन जोवन धन अथिर, चल दलदल कैसे चरित ॥६०॥

60. O my mind, do thou give up all attachment now and cherish at heart a deep love for the Great Shiva, who bears the new moon in his forehead and take up thy sojourn on the land by the side of the heavenly river Ganges. Who ever trusts the currents of the ocean, the bubbles of water, the streaks of lightning, women, the flames of burning fires, serpents and the flow of rivers, all of which are uncertain in their conduct ?

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ।
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटस्त्वं नो
चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥६१॥

हे मन ! तेरे सामने चतुर गवैये गाते हों, दाहिने-बायें दक्खन देश के उत्तम कवि सरस काव्य सुनाते हों, तेरे पीछे चँवर ढोलने वाली सुन्दरी स्त्रियों के कंकनों की मधुर झनकार होती हो,—यदि ऐसे सामान तुझे मयस्सर हों, तो तू संसार-

---

थिर = स्थिर। तरंग = लहर। बुदबुद = बुलबुला। तड़ित = बिजली। अगिन-शिखा = आगकी लो। पन्नग = सर्प। सरित = नदी। त्योंही = उसी तरह। तन = शरीर। जोवन = यौवन, जवानी। अथिर = चंचल। चल = चंचल। दलदल = भसान।

रसास्वादन में मग्न हो; नहीं तो सब का ध्यान छोड़, निर्विकल्प समाधि में लीन हो ॥६१॥

61. If thou hast in thy front the singing of the musicians, on thy sides the reciting of elegant poetry by learned southerners, behind thee the tinkling sound of the anklets of maids waving chamars, then there may not be any objection to thy giving up thyself to the enjoyment of worldly pleasures. But if, O mind, thou hast not all these things, it behoves thee at once to enter into the Nirvikalpa Samadhi (meditation of God without thinking of anything else).

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभंगुरा-
त्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥६२॥

हे बुद्धिमानो ! स्त्रियों के संग से बचो, क्योंकि उनके संग से जो सुख मिलता है, वह क्षणिक है । आप मैत्री, करुणा और बुद्धिरूपी बधू के साथ संगम करो । जिस समय नरक में सज़ा मिलेगी, उस समय युवतियों के हारों से शोभित स्तनद्वय और उनकी घूँघरोंदार कर्धनियों से सुशोभित कमरें तुम्हारी सहायता न करेंगी ॥६२॥

मनुष्यो, स्त्रियों में मन मत लगाओ । उनके साथ रहने, उनके साथ संगम करने से सुख होता है; पर वह सुख नश्वर

और क्षणस्थायी है। वह ऐसा सुख नहीं, जो सदा रहे। परिणाम में, उससे अनेक प्रकार के दुःख होते हैं। जो सुख अनित्य है, शेष में दुःखों का मूल और रोगों की खान है, उस सुख को सुख समझना, बुद्धिमानों का काम नहीं। अगर आपको सङ्गम ही करना है, तो आप सहानुभूति, परोपकार-वृत्ति एवं प्रज्ञारूपी वहू के साथ सङ्गम कीजिये। इनके साथ सङ्गम और प्रीति करने से आप को नित्य सुख मिलेगा; ऐसा सुख मिलेगा, जो इस लोक और परलोक में सदा स्थिर रहेगा।

जिन लोगों ने पहले दूसरों के दुःख दूर किये हैं, जिन्होंने परोपकार के लिए जानें दी हैं, जिन्होंने ज्ञान से काम लिया है, उनका भला ही हुआ है। अगर आप स्त्री-सुख में भूले रहोगे, तो जब आपको नरक की भयङ्कर यातनायें भोगनी पड़ेंगी, जब आप पर यमदूतों के डण्डे पड़ेंगे, उस समय क्या स्त्रियों के हारों से सुशोभित स्तन-मण्डल और कर्धनियों से शोभायमान् पतली कमरें आपकी रक्षा कर सकेंगी? नहीं, इनसे कोई लाभ न होगा; उस समय ये आड़े न आयेंगे। उस मौक़े पर, परोपकार कर के जो पुण्य संचय किया होगा, वही आपकी रक्षा करेगा। बुद्धि से काम लोगे तो भला होगा; क्योंकि बुद्धि ही आपको नरक से बचने की राह बतावेगी; किन्तु स्त्री तो आपको सीधी नरक की राह दिखावेगी। आश्चर्य है, कि अज्ञानी लोग अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा समझते हैं। वे अपने सच्चे

मित्रों से प्रीति नहीं करते, किन्तु झूठे और कुराह में ले जाने वालों से प्रीति करते हैं। महात्मा सुन्दरदासजी ने कहा है:—

(१)

विष ही की भूमि माँहि, विष के अंकुर भये।
नारी-विषवेली बढ़ी, नख-शिख देखिये॥
विष ही के जर मूल, विष ही के डार पात।
विष ही के फूल फल, लागे जु विशेखिये॥
विष के तंतू पसार, उरझाई आँटी मार।
सब नर-वृक्ष पर, लपटोहि लेखिये॥
"सुन्दर" कहत, कोऊ सन्त-तरु बचि गये।
तिनके तौ कहूँ, लता लागि नाहिं पेखिये॥

(२)

कामिनी को अंग, अति मालिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मालिन, मालिन सब द्वार हैं॥
हाड़ माँस मज्जा मेद, चामसूँ लपेट राखे।
ठौर-ठौर रकत के, भरेई भंडार हैं॥
मूत्रहू-पुरीष-आँत, एकमेक मिल रहीं।
औरहू उदर माँहि, विविध विकार हैं॥
"सुन्दर" कहत, नारी नखशिख निंद्यरूप।
ताहि जो सरा है, सो तौ बड़ोई गँवार है॥

(३)

रसिकप्रिया रसमंजरी, और शृंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिन कूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचण्ड, सरा है नखशिख नारी॥
ज्यूँ रोगी मिष्टान्न खाइ, रोगहि बिस्तारै।
"सुन्दर" ये गति होइ, जोइ रसिक प्रिया धारै॥

विष की ज़मीन में विष के अंकुर जमे। फिर नारी रूपी विष-लता बढ़ी। उस लता में विष की जड़ें लगीं और विष की डालियाँ और पत्तियाँ आईं। फिर उस लता में विष के ही फल और फूल लगे। उस विषलता में से विष के तन्तु निकले। फिर उस लता ने अपने विष-तन्तु फैला-फैला कर नर-वृक्षों को इलझा लिया और खुद उनके लिपट गई। सुन्दरदासजी कहते हैं, उस विष-लता के फन्दे में अधिकांश नररूपी वृक्ष फँस गये—कोई विरले ही सन्तरूपी वृक्ष उससे अछूते बच सके। उनके ही शरीरों में यह विष-लता लगी हुई न दिखाई दी।

मतलब यह है, कि स्त्री विष की बेल है। उसकी जड़, उसकी डालियाँ, उसकी पत्तियाँ और उसके फल-फूल सभी विषपूर्ण हैं। सरांश यह कि, स्त्री का सर्वाङ्ग विष से भरा है। स्त्री का कोई भी अंग ऐसा नहीं जिसमें विष न हो। यह स्त्री रूपी विषबेल अज्ञानी विषयी लोगों को अपने फन्दे में फँसा कर नाश कर देती

है; क्योंकि विष स्वभाव से ही प्राणघाती होता है। सिर्फ वे लोग इस स्त्री-रूपी विष-बेल से बचते हैं, जो ज्ञानी हैं, जो इसकी असलियत को जानते हैं, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है, जिनकी इन्द्रियाँ विषयों की तरफ नहीं झुकतीं। और भी खुलासा यह है, कि स्त्री विष-लता के समान है, विष-लता जिस वृक्ष के लिपट जाती है, उसे सुखा-सुखा कर नष्ट कर देती है। इसी तरह स्त्री जिस विषयी पुरुष के पीछे लग जाती है अथवा जो पुरुष स्त्री के फन्दे में फँस जाता है, वह भी सब तरह से नष्ट हो जाता है। इसके सभी अंगों में विष भरा है। जिस तरह विष खाने से ज़हर चढ़ता है; उसी तरह इसकी आँख, इसके गाल, इसकी भौं, इसकी छातियाँ और जाँघें प्रभृति किसी भी अंग के देखने और छूने से विष चढ़ जाता है। विष के चढ़ जाने से पुरुष मतवाला हो जाता है; उसके होश-हवास ख़ता हो जाते और बुद्धि मारी जाती है। बुद्धि के मारे जाने से पुरुष बिना पत-वार की नाव की तरह नष्ट हो जाता है। इस लोक में नाना प्रकार के रोग और दुःख भोग कर मर जाता और परलोक में भी दुःख ही पाता है। संखिया प्रभृति विषों का मारा हुआ इसी लोक में दुःख पाता है। पर इस स्त्री-विषका मारा हुआ अनेक जन्मों में दुःख पाता है। और ज़हर खाने वाला एक ही बार मरता है: पर स्त्री-विष सेवन करने वाला बारम्बार मरता है। अतः बुद्धिमानों को इस स्त्री-रूपी विष लता से सदा दूर रहना चाहिये, ताकि इसका विष शरीर में पेवस्त न होने पावे।

(२)

स्त्री का शरीर अत्यन्त मैला और अतीव अशुद्ध या गन्दा है। इसका प्रत्येक रोम मैला और सारे ही दरवाज़े गन्दे हैं। इसका शरीर हाड़, मांस, मज्जा, मेद और चमड़े से लिपटा हुआ है। इसके अन्दर जगह-जगह खून के हौज़ भरे हुए हैं। पेशाब और पाखाने की आतें आपस में सट रही हैं। इन सब के अलावा, पेट में और भी अनेक तरह के मैले भरे हुए हैं। सुन्दरदासजी कहते हैं, नारी एड़ी से चोटी तक निन्द्य है—नख से शिख तक निन्दा करने योग्य है, ऐसी निन्दा की पात्री नारी की जो सराहना करते हैं, वे तो निश्चय ही बड़े गँवार और भौंदू हैं।

खुलासा यह है कि, स्त्री ऊपर से अच्छी मालूम होती है, पर वास्तव में गन्दगी का पिटारा है। इसकी नाक में रहँट भरा हुआ है। इसकी आँखों में गीड़ें भरी हुई हैं। इसके मुँह में कफ़ और खखार भरे हुए हैं। इसकी मूत्रेन्द्रिय से हर समय सफेद-सफेद या लाल-लाल गन्दा पदार्थ बहा करता है। पेशाब से जाँघें भीगी रहती हैं। इसकी मल और मूत्र त्यागने की इन्द्रियों में दो अंगुल से ज़ियादा दूर का फ़र्क़ नहीं है। जिन छातियों पर विषयी मरे मिटते हैं, जिन्हें वे सुन्दर सोने के कलशे, कामदेव के नगाड़े अथवा शन्तरे और अनार कहते हैं, वे दो माँस के लौंदे हैं। उनके ऊपर चमड़ा चढ़ा हुआ है, इसीसे उनके भीतर की गन्दगी छिपी रहती है। ऐसी गन्दगी की पिटारी की

तारीफ़ों में जो लोग कविताएँ करते हैं, वे सचमुच ही बेअक्ल और गँवार हैं।

(३)

अनेक तरह की इन्द्रिय-भोग-सम्बन्धी वस्तुओं से बनी हुई और सजी हुई स्त्री विषयी लोगों को बहुत ही प्यारी लगती है। जब बलवान काम जागता है, तब वे इसका नखशिख वर्णन करने में अपनी सारी विद्वत्ता ख़र्च कर देते हैं। चोटी से एड़ी तक एक-एक अङ्ग की दिल खोल कर तारीफें करते हैं। जिस तरह रोगी मिठाई खाकर अपने रोग को बढ़ाता है; उसी तरह जो लोग स्त्री या प्रिया को धारण करते हैं—अपनाते हैं, अनेक तरह के रोगों और दुःखों को जान-बूझ कर आप बुलाते हैं। उनकी हर तरह से दुर्गति होती है। तरह-तरह के रोग होते हैं, बल घटता है, आयु क्षीण होती है, हर क्षण चिन्तित रहना पड़ता है, शान्ति पास नहीं आती और ईश्वर-भजन में मन नहीं लगता। हर समय उसी को सन्तुष्ट करने की फ़िक्र रहती है। मरते समय भी उसी में मन अटका रहता है, जीवात्मा उसे छोड़ कर जाना नहीं चाहता, उसके संग ही रहना चाहता है, पर समय आ जाने पर कोई भी इस काया में क्षण भर भी रह नहीं सकता; अतः देह त्यागनी ही पड़ती है; पर चूंकि स्त्री में मन लगा रह जाता है, उसकी वासना मन में रह जाती है, इसलिए वासना के कारण फिर जन्म लेना पड़ता है। जो जन्म लेता है, उसे मरना भी पड़ता है। इस तरह स्त्री-लोलुप को बारम्बार जन्म

लेने और मरने का घोर क्लेश सहना होता है। उसे कभी सुख नहीं मिलता; उसकी मोक्ष नहीं होती। इसीलिये कहा है कि, जो लोग स्त्री को रखते हैं, उनकी बड़ी बुरी गति होती है।

सोरठा।

ताजि तरुणी सों नेह, बुद्धिबधू सों नेह कर।
नरक निवारत येह, वहै नरक लै जात है ॥६२॥

62. O wise men, restain yourselves from the company of women which gives only transitory pleasure, and associate with the virtues of sympathy, benevolence and wisdom. In hell, their fat breasts adorned with necklaces or beautiful waists ornamented with tinkling waist-chains will not help you in any way.

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
कालेशक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्त्रोतोविभंगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पंथाः६३

किसी भी जीव की हिंसा न करना, पराया माल न चुराना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियों की

तजि = छोड़ो। तरुणी = युवती, जवान औरत। सों = से। नेह = स्नेह, प्रेम। बुद्धिबधू = बुद्धिरूपी बहू। यहै = बुद्धिरूपी बहू। वहै = तरुणी, युवती। नरक निवारत...लै जात है = बुद्धि-बहू नरक से बचाती है और युवती स्त्री नरक में ले जाती है।

चर्चा में चुप रहना, गुरुजनों के सामने नम्र रहना, सब प्राणियों पर दया करना और भिन्न-भिन्न शास्त्रों में समान विश्वास रखना,— ये सब नित्य सुख प्राप्त करने के अचूक रास्ते हैं ॥६२॥

यदि आप मोक्ष की अचूक राह चाहते हो, यदि आप नित्य सुख-शान्ति चाहते हो, यदि आप चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, तो आप किसी भी प्राणी का विनाश मत करो; अपने पेट के लिये किसी की जान मत मारो। जब मौक़ा आवे, अपनी शक्ति-अनुसार ग़रीबों और मुहताजों को दान दो, उनके दुःख-दूर करो; उनके दुःखों को अपना दुःख समझकर उनका कष्ट निवारण करो। जहाँ पराई स्त्रियों का ज़िक्र होता हो, वहाँ मत बैठो; यदि बैठना ही पड़े, तो तुम अपनी ज़बान से कुछ मत कहो। माता-पिता और गुरु के सामने सदा नम्र रहो, उनकी आज्ञा-पालन करो, उनका मान-सम्मान करो; भूल कर भी उनका अपमान मत करो। छोटे-बड़े सभी प्राणियों पर दया करो। सभी शास्त्रों को समान समझो; किसी में विश्वास और किसी में अविश्वास न करो, क्योंकि सभी का ध्येय एक ही है, सभी वहीं पहुँचते हैं। जिस तरह नदियाँ टेढ़ी-सूधी बहती हुई समुद्र में ही जा मिलती हैं; उसी तरह सभी शास्त्र अपनी-अपनी राहों से मोक्ष या परमात्मा की ही राह बताते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं रखते, तर्क-वितर्क के झमेले में पड़ते हैं, वे वृथा भटकते और अपनी मंजिल मक़सद—परमपद तक—नहीं पहुँचते।

महात्मा तुलसीदासजी ने ये सब विषय कैसी खूबी से संक्षेप में ही कह दिये हैं:—

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान।
सुखद सुनै रत सत्यव्रत, स्वर्ग-सप्त सोपान ॥१॥
वञ्चक विधिरत नर अनय, विधि हिंसा अतिलीन।
तुलसी जग महँ विदित वर, नरक निसैनी तीन ॥२॥

ईश्वर-भजन; गुरु, साधु-महात्मा और ब्राह्मणों की सेवा करना; जीवों पर दया करना; लोक में समदृष्टि रखना—सबको एक नज़र से देखना; सबको सुख देना; सुनीति पर चलना और सत्यव्रत धारण करना—ये सातों स्वर्ग में जाने की सात सीढ़ियाँ हैं। जो इन कामों को वासना के साथ करते हैं—इन कामों का पुरस्कार चाहते हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं और जो इन कामों को बिना वासना के करते हैं, वे भगवान् में मिल जाते हैं।

खुलासा यह है कि, जो लोग परमात्मा का भजन करते हैं, गुरु, महात्मा और ब्राह्मणों की सेवा करते और उनसे उपदेश लेते हैं, जीवों पर दया करते हैं, अपनी भरसक किसी भी जीव को दुःख नहीं होने देते, सबको एक नज़र से देखते हैं, किसी से दोस्ती और किसी से दुश्मनी नहीं रखते; सभी को सुख देते हैं किसी को भी नहीं सताते; न्याय और नीति के मार्ग पर चलते हैं—अनीति से बचते और अत्याचार नहीं करते और सदा सत्य बोलते हैं—सुपने में भी झूठ नहीं बोलते—वे स्वर्ग में जाते हैं, क्योंकि ये सात स्वर्ग की सीढ़ियाँ हैं।

गोस्वामीजी ने ऊपर स्वर्ग में चढ़ने की सात सीढ़ियाँ बताई हैं, अब वह नरक की तीन नसैनी बताते हैं:—जो लोग चोरी, ज़ोरी और ठगी अथवा और तरह से धोखा देकर पराया धन हड़पते हैं, जो लोग अनीति और अन्याय करते हैं—पराई स्त्रियों को भोगते हैं, पराई निन्दा या बदनामी करते हैं, पराया काम बिगाड़ते हैं, जूआ खेलते हैं, वेश्यागमन या रण्डीबाज़ी करते हैं, जो लोग अपने सुख के लिए जीवों को मारते हैं अथवा मोह के वश में होकर जीवहत्या करते हैं; यानी छल, अनीति और हिंसा का आश्रय लेते हैं, वे निश्चय ही नरकों में जाते हैं; क्योंकि ये तीनों काम नरक की नसैनी हैं।

63. Refraining from killing all sorts of living beings and from stealing other people's property, speaking the truth, giving alms according to one's means when an occasion for charity arrives, remaining silent in a place where men are talking about other people's wives, demolishing springs of all the desires, behaving humbly before teachers and elders, kindness to all living beings and having equal faith in the teachings of different Shastras are the infallible paths which lead to the acquirement of everlasting bliss.

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणी मा स्म भू-
र्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं का निस्पृहाणामसि।

सद्यःस्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥६४॥

हे मा लक्ष्मी ! अब किसी और को खोज, मेरी इच्छा न कर; अब मुझे विषय-भोगों की चाहना नहीं है; मेरे जैसे निस्पृह—इच्छा-रहितों के सामने तू तुच्छ है। क्योंकि अब मैंने हरे ढाक के पत्तों के दोनों में भिक्षा के सत्तू से गुज़ारा करने का संकल्प कर लिया है ॥६४॥

जो अपनी इच्छा का नाश कर देता है, जो किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रखता, वह लक्ष्मी क्या—संसार के बड़े-से-बड़े सुख-भोग और धन-दौलत को तुच्छ समझता है; वह बादशाहों को भी माल नहीं समझता। जो जङ्गल के फलमूलों पर गुज़र कर लेता है या भिक्षा के सत्तू को ढाक के पात में पानी से घोलकर पी जाता है, वस्त्र की भी ज़रूरत नहीं रखता, उसे किसकी परवा ? उसे दुःख कहाँ ? यदि मनुष्य सच्चा सुख चाहे, परमपद या परमात्मा को चाहे तो "इच्छा" को त्याग दे। सब आफ़तों की जड़ "इच्छा" ही है।

दोहा।

मोकों ताजि भाजि और कों, ऐरी लक्ष्मी मात !।
हौं पलाश के पात में, माँग्यो सतुआ खात ॥६४॥

मोकों तजि = मुझे छोड़। भजि और को = और किसी को पकड़। एरी लक्ष्मी मात = ए लक्ष्मी माँ। पलाश = ढाक। पात = पत्तों। माँग्यो = माँगा हुआ। सतुआ = सत्तू। खात = खाता हूँ।

64. O mother Lakshmi (Goddess of wealth) seek some other man and do not desire to make me thy companion. I no longer have a desire for pleasures. What art thou to such desireless persons as I? I have now made up my mind to carry on my living by eating fried grain-flour soaked with water, obtained by begging, out of a receptacle made of a green Palash-tree-leaf.

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ।
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ॥६५॥

पहले हमारा आपका इतना गाढ़ा सम्बन्ध था कि, आप थे सो मैं था, और मैं था सो आप थे। अब क्या फ़र्क हो गया है, कि मैं—मैं ही हूँ और आप—आप ही हैं ॥६५॥

पहले आप में और मुझ में भेद नहीं था। जो आप थे सो मैं था और मैं था सो आप थे। मैं और आप दोनों ही एक-से थे—आप और मैं दोनों ही पहले विषयासक्त थे; किन्तु अब बड़ा भेद हो गया है; यानी आप अब तक विषयासक्त ही हैं, पर मैं विषयों से विरक्त हो गया हूँ। आपने अब तक संसार के झूठे सुखों—विषयवासनाओं का परित्याग नहीं किया है; पर मित्र, मैं तो अब इन से घबरा गया—थक गया; मुझे इन में कुछ भी सार या तत्व न दीखा; इसलिये मैंने अब सबसे किनारा कर के वैराग्य ले लिया है। आप अभी

हे स्त्री ! अब तू अपनी काममद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले, हम पर कटाक्षवाण न चला। तेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा। क्योंकि अब हमने विषयों को तृणवत् त्याग दिया है।

पृष्ठ २४१

तक नरक में ही हैं; पर मैं विवेक-बुद्धि से काम लेकर, नरक से निकल कर स्वर्ग में आ गया हूँ। आप अभी तक दुःख के बीज ही बो रहे हैं; पर मैं अब सुख के बीज बो रहा हूँ। मित्र! तुम भी मेरी तरह उन भयङ्कर जञ्जालों को छोड़ कर, मेरी जैसी सुख की राह पर क्यों नहीं आ जाते? मित्रवर! इसी राह में सुख है; उस राह में घोर दुःख और नरकयातनायें हैं। संसार को छोड़ने और भगवत् से प्रीति करने में बड़ा आनन्द है।

उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है:—

दुनिया से "ज़ौक़", रिश्तये उल्फ़त को तोड़ दे।
जिस सरका है यह वाल, उसी सर में जोड़ दे॥

दोहा।

तुम-हम हम-तुम एक हैं, सब विधि रह्यो अभेद।
अब तुम-तुम हम-हमहिं हैं, भयो कठिन यह भेद॥

65. I had such a staunch connection with you before that it seemed as if you were I and I was you. What has happened now that you have become yourself and I myself again?

बाले लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टिपाताः
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते॥
संप्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः॥६६॥

ऐ बाला ! अब तू लीला से, अपनी आधी खुली आँखों से, मुझ पर क्यों कटाक्ष-बाण चलाती है ? अब तू कामसद पैदा करने वाली दृष्टि को रोक ले; तेरे इस परिश्रम से तुझे कोई लाभ न होगा। अब हम पहले जैसे नहीं रहे हैं। हमारी जवानी चली गई है। अब हम ने वन में रहने का निश्चय कर लिया है और मोह त्याग दिया है; अब हम विषय-सुखों को तृण से भी निकम्मा समझते हैं ॥६६॥

महाकवि दाग़ कहते हैं:—

तोबा जो मैं ने की, निकल आया ज़रा सा मुँह ।
वह रंग रूप ही नहीं, सुबहे बहार का ॥

बसन्त को अपने सौन्दर्य का बड़ा अभिमान था। जब से मैं ने शराब पीने से तोबा कर ली है, तब से बसन्त-लक्ष्मी का मुँह फीका पड़ गया है। जब तक मैं शराबी था, तभी तक उस की शोभा का क़ायल था। अब तो मुझे उस में कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती।

66. O young lady, why art thou playfully peeping at us out of half-closed eyes ? Stop thy love-inspiring glances as all thy labour will be fruitless. Now we are different from what we were before. Our youth has gone. We are now bent on living in the forest. Our attachments have been given up and we look at the enjoyments of the world like a worthless straw.

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ॥
गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमबाणव्यतिकर-
ज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति॥६७॥

यह बाला स्त्री मुझ पर बार-बार नील कमल की शोभा से भी सुन्दर नेत्रों के कटाक्ष क्यों मारती है? मैं नहीं समझता, इसका क्या मतलब है? अब तो मेरा मोह जाता रहा है— काम के पुष्प-बाणों से निकली हुई आग की ज्वाला शान्त हो गई है। आश्चर्य है, कि अब तक भी यह मूर्खा बाला अपनी कोशिशों से बाज़ नहीं आती! ॥६७॥

जिन का मोह-जाल कट जाता है, जिन की विषय-वासना बुझ जाती है, जो स्त्रियों की असलियत को समझ जाते हैं, जो उन को नरक की नसैनी समझ लेते हैं, उन पर स्त्रियों के कटाक्ष-बाण असर नहीं करते। हाँ, वे अपने स्वभावानुसार अपने तीखे-तीखे बाण चलाया ही करती हैं—अपने जाल बिछाया ही करती हैं; पर तत्त्ववित् लोग उनके जाल में नहीं फँसते। उन पर उन के अचूक बाण फेल हो जाते हैं।

दोहा।

केहि कारण डारत बयन, कमलनयन यह नार?।
मोह काम मेरे नहीं, तऊ न तिय-चित हार ॥६७॥

67. Why does this young woman continuously throw at me glances out of eyes which are beautiful like a lotus-leaf ? It wonders what is her object in doing so ! My passions have now gone and the fire lit up within my heart by concussion produced by the striking of Cupid's arrows of flowers has been extinguished. It is strange that the foolish damsel does not quit her efforts even now !

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥
किन्तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपाङ्कुर-
च्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः॥६८

क्या सन्तों के रहने के लिये उत्तमोत्तम महल न थे, क्या सुनने के लिये उत्तमोत्तम गान न थे, क्या प्यारी-प्यारी स्त्रियों के संगम का सुख न था, जो वे लोग वनों में रहने को गये? हाँ, सब कुछ था; पर उन्हों ने इस जगत् को गिरनें वाले पतङ्ग के पङ्खों से उत्पन्न हवा से हिलते हुए दीपक की छाया के समान चञ्चल समझ कर छोड़ दिया; अथवा उन्हों ने, मूर्ख पतङ्ग की भाँति, जो हवा से हिलते हुए दीपक की छाया में घूम-घूम कर अपने तईं जलाकर भस्म कर देता है, संसार को अपना नाश कराते देखकर, संसार को छोड़ दिया ॥६८॥

यह संसार दीपक की लौ के समान है और इस में बसने वाले जीव पतङ्गों के समान हैं। जिस तरह मूर्ख पतङ्ग दीपक

अज्ञानी मनुष्य पतंग और मछलियों की तरह संसारी माया-मोह में फँसकर अपना नाश करते हैं। पृष्ठ २४४

से मोह करके और उस पर गिर-गिर भस्म होते हैं; उसी तरह मनुष्य इस संसार के असल तत्त्व को न समझ कर, इस के मोह में फँस कर, इस में नाश होते हैं। जिस तरह पतङ्ग नहीं समझता, कि दीपक से प्रेम करने में मेरे हाथ कुछ न आवेगा, बल्कि मेरी जान ही जायगी ; उसी तरह संसारी आदमी नहीं समझते, कि इन संसारी विषय-वासनाओं में फँस कर, इनसे प्रेम करके, हम अपना नाश करा बैठेंगे। जो बुद्धिमान् और विचारवान् हैं, वे इस बात को समझते हैं। अतः संसारी पदार्थों से मोह नहीं करते और अपने नाश से बचते हैं। वे संसार को अनित्य और नाश की निशानी समझ कर, इस से मन हटाकर परमात्मा में मन लगाते हैं। वे अपने तईं दुनिया का मुसाफिर मात्र समझ कर, मौत का हरदम ख़याल रखते हैं। महात्मा कबीर ने कहा है:—

तन सराय मन पाहरु, मनसा उतरी आय।
को काहू को है नहीं, सब देखा ठोक बजाय॥
"कबिरा" रसरी पाँव में, कहँ सोवे सुख चैन।
श्वास-नकारा कूच का, बाजत है दिन रैन॥
इस औसर चेता नहीं, पशु-ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अन्त परी मुख खेह॥

यह शरीर सराय है, मन चौकीदार है और मनसा—इच्छा इस शरीर रूपी सराय में उतरा हुआ मुसाफिर है; इस जगत् में

कोई किसी का नहीं है। अच्छी तरह ठोक बजा या जाँच-पड़-ताल कर देख लिया।

हे कबीर! पैरों में रस्सी पड़ी हुई है। फिर भी तू सुख-चैन में कैसे सो रहा है? देख, इस दुनिया से कूच करने का श्वास-रूपी नगाड़ा दिन-रात बज रहा है!

अगर तू इस चौपड़ के खेल में न चेतेगा, इस जन्म में भी होश न करेगा, पशु की तरह शरीर को पालेगा और राम को नहीं जानेगा; तो अन्त में तेरे मुँह में धूल पड़ेगी।

छप्पय।

महल महारमणीक, कहा बसिबे नहिं लायक?
नाहिंन सुनबे जोग, कहा जो गावत गायक?
नवतरणी के संग, कहा सुखहू नहिं लागत?
तो काहे को छाँड़-छाँड़, ये बन को भागत?
इन जान लियो या जगत को, जैसे दीपक पवन में।
बुझिजात छिनक में छवि भर्यो, होत अँधेरो भवन में॥६८॥

अतीव सुन्दर और रमणीक महल क्या बसने योग्य नहीं हैं? गवैये जो मनोहर गाना गाते हैं, क्या वह सुनने योग्य नहीं है? नवीना बाला स्त्रियों के साथ रमण करने में क्या आनन्द नहीं आता? अगर इन सब में आनन्द और सुख है, तो फिर लोग इन सब को छोड़-छोड़ कर वन में क्यों भागे जाते हैं? इसलिए भागे जाते हैं, कि उन्हों ने इस जगत् को उस दीपक के समान समझ लिया है, जो हवा में रखा हुआ है और क्षण भर में बुझ जाता है।

68. Were there no comfortable mansions for the holy men to live in or musicians' songs to hear or the pleasure of the company of dearly loved women to enjoy, that these holy men went to live in the forests? Finding all the mankind bent upon self-destruction like the foolish moth, which flies here and there in the shade of a lamp seeking to throw itself on its flame which is continually being flattered by the wind, they went to the forests.

किं कन्दाःकन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यःसरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां
दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयवशपवनानर्तितभ्रूलतानि ॥६९

क्या पहाड़ों की गुफाओं में कन्दमूल और उनकी चट्टानों में पानी के झरने नहीं रहे, क्या छाल वाले वृक्षों में रसीली फलवती शाखायें नहीं रहीं, जो लोग उन अभिमानी और नीचों के सामने दीनता करते हैं, जिनकी भौंहें मारे अभिमान के चढ़ी रहती हैं और जिन्होंने बड़े कष्ट से थोड़ा सा धन जमा कर लिया है ? ॥६९॥

पहाड़ों में रहने को गुफायें, खाने को कन्दमूल, पीने को उनके झरनों का जल और वृक्षों में मीठे-मीठे रसीले फल मौजूद हैं; फिर भी लोग उन धनियों की टेढ़ी भ्रकुटियों को क्यों देखते हैं, उनकी टेढ़ी-सूधी क्यों सहते हैं, जिन की आँखें

उस थोड़े से धन के मद से नहीं खुलतीं, जो उन्होंने बड़े-बड़े कष्टों से येन केन प्रकारेण जमा कर लिया है ! ऐसे नीच अभिमानियों से अपमानित होने की अपेक्षा पहाड़ों में रहना और फलमूल तथा शीतल जल पर गुज़ारा करना भला। इस से उनकी आत्मा ख़ूब सुखी होगी; अभिमानी नीच धनियों की बुरी बातों से आत्मा जल-जल कर ख़ाक होती है।

अगर कुछ भी समझ हो; ज़रा भी आत्मप्रतिष्ठा का ख़याल हो, तो मनुष्य को अपनी "इच्छा" का नाश करना चाहिये। इच्छा-रहित मनुष्य सात विलायतों के बादशाह को भी तुच्छ समझता है। धनियों से दीनता करना और माँगना बड़ी बुरी बात है। देखिये, गोस्वामी तुलसीदासजी प्रभृति महापुरुषों ने कहा है:—

"तुलसी" कर पर कर * *करो, कर तर कर न करो।*
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन करो॥
माँगन मरण समान है, मत कोई माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

तुलसीदासजी कहते हैं—हे प्रभु ! हाथ पर हाथ करो, हाथ के नीचे हाथ न करो। जिस दिन हाथ के नीचे हाथ करो, उस दिन हमारी मौत हो जाय। मतलब यह है कि, जब तक हम

* कर पर कर करो = पराये हाथ के ऊपर हमारा हाथ रहे—हम देते रहें। देने वाले का हाथ लेने वाले के हाथ के ऊपर रहता है और लेने वाले का हाथ दाता के हाथ के नीचे रहता है।

दूसरों को देते रहें, तब तक हम जीवित रहें; जिस दिन हमारी माँगने की नौबत आ जाय, उस दिन हम मर जायँ।

माँगना मरने के बराबर है। इसलिये कोई भी भीख न माँगो। सतगुरु की शिक्षा है कि, माँगने से मर जाना भला।

अगर दीनता ही करनी हो तो परमात्मा से करो। उसके आगे दीनता करने से सभी इच्छायें पूरी हो सकती हैं। कहा है:—

तेरी बन्दानवाज़ी, हफ़्त किशवर बख़्शा देती है।
जो तू मेरा—जहाँ मेरा, अरब मेरा, अजम मेरा ॥—दाग़

तेरी सेवा करने से सातों विलायतों का राज मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है; तब सभी अपने हो जाते हैं। कबीर ने कहा है:—

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत लगै न बिनावनी, सहजै तन सुख होय ॥
साईं सुमिर मत ढील कर, जो सुमरे ते लाह।
इहाँ ख़लक ख़िदमत करे, वहाँ अमरपुर जाह ॥

भगवान् की थोड़ी सी याद करने से ही बहुत सुख होता है, बशर्त्ते कि कोई याद करना जाने। इस में न तो सूत लगता है और न बिनवाई देनी पड़ती है; सहज में आनन्द होता है।

हे मनुष्य! स्वामी को सुमरण करने में देर न कर। उसके सुमरण में बहुत लाभ हैं। जो स्वामी को याद करता है, इस दुनिया में संसारी लोग उसकी सेवा करते हैं और जब मर कर दूसरी दुनिया में जाता है, तब स्वर्गपुरी में बसता है।

छप्पय ।

कहा कन्दराहीन भये, पर्वत भूतल में ?
झरना निर्जल भये कहा, जे पूरित जल से ?
कहा रहे सब वृक्ष, फूल-फल-बिन मुरझाये ?
सहे खलन के बैन, अन्धता जो मद छाये ।
कर संचित धन जे स्वल्प हू, इत उत फेरें भ्रू विकट ।
रे मन ! तू भूल न जाहु कहूँ, इन खल पुरुषन के निकट ॥६६॥

69. Have the wild roots in the caves of mountains and the springs of water flowing out of rocks disappeared or the branches of trees bearing juicy fruits been destroyed, that people look supplicatingly towards the faces of proud and evil-minded persons, whose brows often contract with vanity owing to the little wealth, which they possess after having laboured hard for it ?

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥

कन्दराहीन = बिना गुफाओं के। भूतल = पृथ्वी। निर्जल = बिना जल के। पूरित = भरे हुए। खलन = दुष्टों। बैन = बातें। कर संचित = इकट्ठा करके। जे = जो। स्वल्प हूँ = थोड़ासा भी। इत उत = इधर उधर। भ्रू = भौं। भूल न जाहु = भूल कर भी न जा। क्या पर्वतों में गुफायें नहीं रहीं, क्या झरनोंका जल सूख गया, क्या वृक्षोंमें फल-फूल नहीं रहे, जो तू मदान्ध दुष्टोंकी तानेज़नी सहता है ? जो थोड़ासा भी धन सञ्चय करके भौंओं को टेढ़ी करते हैं, उन दुष्टोंके पास हे मन ! तू भूलकर भी मत जा ।

स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सापमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥७०॥

हिमालय पर्वत की वे चट्टानें जो गंगा जल की लहरों से उठे हुए छींटों से शीतल हो रही हैं और जहाँ जगह-जगह विद्याधर बैठे हैं, क्या अब नहीं रही हैं, जो लोग अपमान से मिले हुए पराये टुकड़ों पर गुज़र करते हैं ? ॥७०॥

पराये टुकड़ों पर गुज़र करने की अपेक्षा मर जाना भला है। अगर माँगना ही हो, तों माँगने की विधि चातक से सीखनी चाहिये । वह एक से ही माँगता है, दूसरे से हरगिज़ नहीं माँगता, चाहे मर क्यों न जाय; और माँगने में भी यह ख़ूबी, कि वह कभी आधीन होकर नहीं माँगता, सिर नवाकर नहीं लेता । वह छोटों से नहीं माँगता; एक घनश्याम (बादल) से ही माँगता है। चातक के समान याचक और वारिद (बादल) के समान दानी जगत् में कौन है ? जो ओछों से माँगते हैं, जने-जने के पैर पकड़ते हैं, उन को धिक्कार है ! इसलिये मनुष्यो ! पपहिये की तरह एकमात्र घनश्याम से ही माँगो ।-महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है:—

"तुलसी" तीनों लोक महँ, चातक ही को माथ ।
सुनियत जासु न दीनता, किये दूसरो नाथ ॥
ऊँची जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर ।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ॥

ह्वै अधीन चातक नहीं, शीश नाय नहिं लेय।
ऐसे मानी मंगनहिं, को वारिद बिन देय?॥

तुलसीदासजी कहते हैं—तीनों लोकों में सिर्फ एक पपहिये का ही सिर ऊँचा है, क्योंकि उसने अपने स्वामी स्वाति के सिवा और किसीसे कभी दीनता नहीं की।

पपहिये की जाति ऊँची है; क्योंकि वह नदियों और तलाबों वग़ैरः जलाशयोंका पानी नहीं पीता। वह या तो घनश्याम से यानी स्वाति नक्षत्र में बादल से ही माँगता है अथवा दुःख भोगता है।

पपहिया, और मँगतों की तरह आधीन होकर और सिर नवाकर नहीं लेता। वह तो मान के साथ ही लेता है। ऐसे मानी मँगते को बादलों के सिवा और कौन दे सकता है?

जिनको परमात्मा ने देने-लायक़ बनाया है, उन्हें दिल खोल कर ग़रीब और मुहताजों को देना चाहिये। जो देते हैं, वे फिर पाते हैं और जो देते हैं, उन्हीं का जीवन सफल है। रहीम कवि कहते हैं:—

दोहा।

दीन हि सब को लखत है, दीनाहिं लखे न कोय।
जो "रहीम" दीनहिं लखत, दीनबन्धु-सम सोय॥
"रहिमन" वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

तबही लग जीवो भलो, दीबो परे न धीम।
बिन दीबो जीवो जगत, हमें न रुचे "रहीम" ॥

दीन या मुहताज सब की तरफ देखता है, पर दीन की तरफ कोई नहीं देखता। रहीम कहते हैं; जो दीन की तरफ देखता है, वह दीनबन्धु भगवान् के समान होता है।

रहीम कहते हैं, वे मनुष्य मर गये जो कहीं माँगने जाते हैं। उनसे पहले वे मरे, जिनके मुँह से 'नाहीं' निकलती है। मतलब यह है, मँगता तो मरा हुआ है ही, पर जो माँगने वाले को नहीं देता, वह उससे भी पहले मरा हुआ है।

जीना तभी तक अच्छा है, जब तक देना मन्दा न हो। बिना दान किये जीना, रहीम कहते हैं, हमें अच्छा नहीं लगता।

दोहा।

गंगातट गिरिवर-गुफा, उहाँ कहा नहिं ठौर ?।
क्यों एते अपमान सों, खात पराये कौर ? ॥७०॥

70. Have the ground in the Himalaya mountains the stones of which are washed by the cold spray arising from water of the river Ganges and which are the favourite resort of Vidyadharas been destroyed, that men like to depend upon other people's charity, even when it is disrespectfully given ?

गिरिवर गुफा = पहाड़ों की गुफा। उहाँ = वहाँ। कहा = क्या। ठौर = जगह। एते = इतने। खात = खाता है। पराये कौर = पराये टुकड़े। क्या गंगा किनारे के पहाड़ों की गुफाओं में जगह नहीं रही, जो इतना अपमान सह कर पराये टुकड़े तोड़ता है ?

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनिलयाः ॥
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥७१॥

जब प्रलयकाल की अग्नि के मारे श्रीमान् सुमेरु पर्वत गिर पड़ता है; मगर-मच्छों के रहने के स्थान समुद्र भी सूख जाते हैं; पर्वतों के पैरों से दबी हुई पृथ्वी भी नाश हो जाती है; तब हाथी के कान की कोर के समान चञ्चल मनुष्य की क्या गिनती ? ॥७१॥

जब काल सुमेरु जैसे पर्वतों को जला कर गिरा देता है, महासागरों को सुखा देता है, पृथ्वी को नाश कर देता है, तब इस छोटे से चञ्चल मनुष्य की क्या गिनती ? इस के नाश होने में कौनसा आश्चर्य ?

दोहा ।

मेरु गिरत सूखत जलधि, धरनि प्रलय ह्वै जात !
गजसुत के श्रुति चपल त्यौं, कहा देह की बात ? ॥७१॥

मेरु = सुमेरु पर्वत । जलधि = समुद्र । धरनि = पृथ्वी । प्रलय = नाश । गजसुत = हाथी का बच्चा । श्रुति = कान । चपल = चंचल । सुमेरु गिर पड़ता है, समुद्र सूख जाता है और पृथ्वी नाश हो जाती है, तब हाथी के बच्चे के कान की तरह चञ्चल देह किस गिनती में है ?

71. When even the great Meru collapses, burnt away by the Mahapralaya fire,* when even the oceans which are the home of huge crocodiles and sharks are at last dried up and when the earth itself is destroyed although it is held fast by the feet of great mountains, what should we say of the human body which is as shaky as the tip of the ear of an infant elephant ?

एकाकी निःस्पृहः शान्तः, पाणिपात्रो दिगम्बरः ॥
कदा शम्भो भविष्यामि, कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥७२॥

हे शिव ! मैं कब अकेला, इच्छा-रहित और शान्त हूँगा ! कब हाथ ही मेरा पात्र होगा और कब दिशायें मेरे वस्त्र होंगे ! मैं कब कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ हूँगा ॥७२॥

एकान्त वास करना, इच्छाओं को त्याग देना, शान्त रहना, हाथ से ही पानी वगैरः पीने के वर्त्तन का काम लेना, दिशाओं को ही वस्त्र समझना; यानी नग्न रहना और कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ होना—ये ही कल्याण के मार्ग हैं। जिन में ये गुण हैं, वे धन्य हैं और वे ही सच्चे सुखिया हैं।

दोहा।

एकाकी इच्छा-रहित, पाणिपात्र दिगवस्त्र ।
शिव शिव ! हौं कब होऊँगा, कर्म-शत्रु को शस्त्र ? ॥७२॥

---

* The fire at the time of universal destruction,

एकाकी = अकेला। इच्छारहित = बिना इच्छाओं के। पाणिपात्र = हाथ का बर्तन। दिग् = दिशाएँ। वस्त्र = कपड़े। हौं = मैं। कर्म-शत्रु = कर्म रूपी शत्रु का। शस्त्र = काटने वाला हथियार।

72. O Shiva, when shall I be alone, desireless, peaceful, with hands only to be used as receptacles for water etc. with space only in place of garments and fit for exterminating the roots of Karma (actions)?

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
संमानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥७३॥

जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम् ॥
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं
व्यक्तज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ७४

अगर मनुष्यों को सब इच्छाओं के पूर्ण करने वाली लक्ष्मी मिली तो क्या हुआ ? अगर शत्रुओं को पदानत किया तो क्या ? अगर धन से मित्रों की ख़ातिर की तो क्या ? अगर इसी देह से इस जगत में एक कल्प तक भी रहे तो क्या ? ॥७३॥

अगर चिथड़ों की बनी हुई गुदड़ी पहनी तो क्या ? अगर निर्मल सफ़ेद वस्त्र पहने या पीताम्बर पहने तो क्या ? अगर एक ही स्त्री रही तो क्या ? अगर अनेक हाथी-घोड़ों

साहित अनेकों स्त्रियाँ हरीं तो क्या ? अगर नाना प्रकार के व्यञ्जन भोजन किये अथवा शाम को मामूली खाना खाया तो क्या ? चाहे जितना विभव पाया, पर यदि संसार-बन्धन को मुक्त करने वाली आत्मज्ञान की ज्योति न जानी, तो कुछ भी न पाया और कुछ भी न किया ॥७४॥

मतलब यह है, कि सारे संसार के राज्य-वैभव अथवा त्रिभुवन के अधिपति होने में भी जो आनन्द नहीं है, वह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान में है। आत्मज्ञान होने से ही मनुष्य, जीवन-मरण के कष्ट से छुटकारा पाकर, परम शान्ति-लाभ करता है।

अर्ब खर्ब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज।
जो "तुलसी" निज मरन है, तौ आवे केहि काज ? ॥

अगर अरब-खरब तक धन हो और उदयाचल से अस्ताचल तक राज हो, तोभी अगर अपना मरण हो, तो ये सब किस काम के ? धन-दौलत और राजपाट सब जीते रहने पर काम आते हैं, मरने पर इन से कोई लाभ नहीं।

दोहा।

इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के साल।
कल्प जिए तौऊ गये, अन्त काल के गाल ॥७४॥

इन्द्र = देवताओं का राजा। धनपति = धनेश, कुबेर। कल्प = ब्रह्मा का एक दिन, जो हमारे ४३२०००००० बरसों के बराबर होता है। अगर हम इन्द्र हो जायँ, कुबेर हो जायँ और ४३२०००००० बरसों तक की उम्र भी भोग लें, तो भी क्या ? अन्त में तो काल के गाल में समायेंगे ही यानी मरेंगे ही।

73. If wealth, which fulfils all men's desires is obtained, what then? If the heads of enemies are trodden under foot, what then? If respect is shown by friendly men of power, what then? If a man lives in this world with this very body for the duration of a whole Kalpa, * what then?

74. What matters it if a man wears a worn out sheet of cloth made of differently coloured rags of bright and clean clothes or fine silken garments? What matters it if he possesses a wife only or is surrounded by large numbers of elephants and horses? What matters it if sumptuous feasts are enjoyed or poor food only is eaten once in the evening? What matters it if one enjoys all sorts of eminence, if he has not seen within himself the eternal Light of self-realisation which destroys the fear of recurring births and deaths?

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमतः परमार्थनीयम्[1] ॥७५॥

अगर हम में नीचे लिखे हुए गुण हों, तब और कौनसा वैराग्य ईश्वर से माँगें?—सदा शिव की भक्ति हो, दिल में

---

* A day of Brahma, the creator being 4320000000 (solar) years of mortals.

१ परमर्थनीयमिति पाठान्तरम्।

जन्म-मरण का भय हो, कुटुम्बियों में स्नेह न हो, मन से काम-विचार दूर हों और संसर्ग-दोष से रहित होकर जंगल में रहते हों ॥७५॥

परमात्मा में प्रेम होना, मन में जन्म-मरण का भय होना, रिश्तेदारों से प्रेम न होना, मन में स्त्री की इच्छा का न उठना, एकान्त स्थान में अकेले वन में निवास करना—ये ही तो वैराग्य के पूरे लक्षण हैं। इन से अधिक वैराग्य के और लक्षण नहीं।

दोहा।

मन विरक्त हरि-भक्ति-युत, संगी बन-तृणडाभ।
याहूते कछु और है, परम अर्थ को लाभ? ॥७५॥

75. What greater renunciation should we wish for, if we have the following virtues,—Love of God, the fear of birth and death in our mind, no attachment with our relatives, no disturbance of Cupid's doing and residence in the lonely forest, free from the evils of society.

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि
तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः॥
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥७६॥

मन विरक्त हो—संसारी विषय-भोगों में आसक्ति न हो, मन में हरि की भक्ति हो और वन के घास-पात हमारे साथी-संगी हों—इस से उत्तम परमार्थ का लाभ और क्या होगा?

इसवास्ते मनुष्यो! अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी और शान्तिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान करो। मिथ्या जञ्जालों में क्या रक्खा है? जो ब्रह्म का ज़रा सा भी आनन्द पा जाते हैं, उनकी नज़रों में संसारी राजाओं का आनन्द तुच्छ जँचता है ॥७६॥

मतलब यह है कि लोगों को अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शोक-रहित, शान्तिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। उसी के ध्यान में पूर्णानन्द है; संसार के भोग-विलासों में जरा भी आनन्द नहीं। वह आनन्द सदा है; यह आनन्द क्षणिक है। उस में सदा सुख है; इस में सदा दुःख है। जिन को ब्रह्मानन्द का जरा सा भी मज़ा आ जाता है, वे त्रिलोकी के अधिपति के आनन्द को भी तुच्छ समझते हैं। राज, धन-दौलत और स्त्री-पुत्र प्रभृति सब उस परमात्मा के पीछे हैं; इसलिए इन को छोड़ कर उस से ही प्रीति करने में चतुराई है।

दोहा।

ब्रह्म अखण्डानन्द पद, सुमिरत क्यों न निशंक?।
जाके छिन-संसर्ग सों, लगत लोकपति रंक ॥७६॥

76. Therefore O men, meditate upon BRAHMA, the Endless, the Indestructible and the Blissfull.

हे मनुष्य! उस अखण्ड—पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को निःशङ्क होकर क्यों नहीं भजता, जिसके क्षण-भर के संसर्ग से बड़े-बड़े राजा-बादशाह भी तुच्छ भिखारी से मालूम होते हैं?

What is the use of other false considerations? In the eyes of men who think of this BRAHMA, the enjoyments obtainable by the worldly monarchs appear only to be but very poor acquisitions.

पातालमाविशसि यासि नभो विलंङ्घ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ॥
भ्रान्त्याऽपि जातु विमलं कथमात्मनीनं
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥७७॥

हे चित्त ! तू अपनी चञ्चलता के कारण पाताल में प्रवेश करता है, आकाश से भी परे जाता है, दशों दिशाओं में घूमता है; पर भूल से भी तू उस विमल परम ब्रह्म की याद नहीं करता, जो तेरे हृदय में ही मौजूद है, जिस के याद करने से ही तुझे परमानन्द रूपी मोक्ष मिल सकती है ! ॥७७॥

इस चञ्चल मन की अद्भुत लीला है। यह कभी आकाश में जाता है, कभी पाताल में जाता है और कभी दशों दिशाओं में फिरता है। इधर-उधर तो इतना भटकता है; पर, भूल कर भी, जहाँ जाना चाहिए, वहाँ नहीं जाता। उस के पास ही अमृत का सरोवर है, उसे छोड़ कर सड़ी-गली नालियों में फिरता है। उसे सब जगह छोड़ कर अपने हृदय में ही बैठे हुए ब्रह्म के पास जाना चाहिये और हर समय उस की ही चिन्तना करनी चाहिये; इस से उस के पापों का नाश हो जायगा,

आवागमन से छुटकारा मिल जायगा एवं परम शान्ति की प्राप्ति होगी। और चिन्ताओं से कोई लाभ नहीं; उन से तो जञ्जालों में ही फँसना होता है।

मूर्ख लोग अव्वल तो परमात्मा में दिल ही नहीं लगाते। यदि भूल से लगाते भी हैं, तो परमात्मा की खोज में जहाँ-तहाँ मारे-मारे फिरते हैं; पर अपने हृदय में ही उसे नहीं खोजते ! यह उन का महा अज्ञान है। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है:—

वह पहलू में बैठे हैं और बदगुमानी।
लिये फिरती मुझ को, कहीं का कहीं है॥

वह (ईश्वर) बग़ल में ही बैठा है; पर मैं भ्रम में फँस कर, उसे ढूँढ़ने के लिये, कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरता हूँ !

महात्मा कबीर कहते हैं:—

ज्यों नयनन में पूतली, त्यों ख़ालिक घट माँहिं।
मूरख नर जाने नहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिं॥
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़े बन माँहिं।
ऐसे घट-घट ब्रह्म है, दुनिया जाने नाँहिं॥
समझा तो घर में रहे, परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुझहि में, अन्त कहूँ मत जाय॥

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं:—

कोउक जात प्रयाग बनारस।
कोउ गया जगन्नाथहि धावै॥
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु।
कोउ गंगा कुरुक्षेत्र नहावै॥
कोउक पुष्कर ह्वै पँच तीरथ।
दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवै॥
"सुन्दर" वित्त गढ्यौ घरमाँहि सु।
बाहिर ढूँढ़त क्यूँकरि पावै?॥

जिस तरह आँखों में पुतली है, उसी तरह घट में (हृदय-कमल में) पैदा करने वाला परमात्मा है; पर मूर्ख इस बात को नहीं जानता और उसे बाहर खोजने जाता है।

कस्तूरी हिरन की अपनी नाभि में है, पर मृग उसे वन में खोजता है; उसी तरह ब्रह्म घट-घट में है, पर दुनिया इस भेद को नहीं जानती।

अगर समझता है तो घर में रह और पलकों का पर्दा लगा कर देख, तेरा मालिक तेरे ही अन्दर है; अन्यत्र जाने की ज़रूरत नहीं।

कोई परमेश्वर की खोज में प्रयाग, काशी, गया, पुरी, मथुरा, कुरुक्षेत्र और पुष्कर जाता है और कोई द्वारका जाता है। "सुन्दरदासजी" कहते हैं, जो धन घर में गढ़ा है, वह बाहर कैसे मिलेगा?

सारांश यह है, कि संसार अज्ञानान्धकार के कारण "छोरा बग़ल में ढिंढोरा शहर में" वाली कहावत चरितार्थ करता है। ईश्वर इसी शरीर के भीतर हृदय-कमल में मौजूद है, पर अज्ञानी लोग उसे पाने के लिए तीर्थों में भटकते फिरते हैं। इस तरह वह मिलता भी नहीं और वृथा हैरानी होती है। जो उस के दर्शन करना चाहें, वे नेत्र बन्द करके अपने हृदय में ही उसे देखें।

कुण्डलिया।

फाँद्यौ तें आकाश को, पठयौ तें पाताल।
दशों दिशा में तू फिऱ्यो, ऐसी चंचल चाल॥
ऐसी चंचल चाल, इतै कबहूँ नहिं आयौ।
बुद्धि सदन को पाय, पाय छिनहूँ न छुवायौ॥
देख्यो नाहिं निज रूप, कूप अमृत को छँाड्यौ।
एरे मन मतिमूढ़! क्यों न भव-वारिधि फाँद्यौ?॥७७॥

77. O mind, thou enterest into the lover world, soarest even higher than the heavens and wanderest all through the infinite space, never through mistake dost thou think of the pure BRAHMA, who rests within thy own self and who will bring the salvation from all sins.

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्त्वाऽबुधा जन्तवो धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारंब्धतत्तत्क्रियाः॥

व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनाऽमुना
संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥७८॥

प्राणियों में बुद्धिमान यद्यपि जानते हैं कि दिन और रात ठीक पहले की तरह ही होते हैं; तो भी वे उन्हीं काम-धन्धों के पीछे दौड़ते हैं, जिन के पीछे वे पहले दौड़ते थे। वे लोग उन्हीं-उन्हीं कामों में लगे रहते हैं, जिन से क्षणिक और बारम्बार वही लाभ होते हैं, जिन को वे बारम्बार कह और भोग चुके हैं। आश्चर्य का विषय है, कि मनुष्यों को लज्जा नहीं आती! ॥७८॥

देखते हैं, कि पहले की तरह ही दिन, रात, तिथि, वार, नक्षत्र और मास तथा वर्ष आते हैं और जाते हैं; उसी तरह हम खाते-पीते, सोते-जागते और काम-धन्धे करते हैं; कोई नई बात नहीं देखते। जिन कामों को पहले करते थे, उन्हें ही बारम्बार करते हैं। उन में कितना सा लाभ और सुख है, इसे भी देखते-सुनते और समझते हैं। फिर भी; आश्चर्य है कि, हम इस मिथ्या संसार से मोह नहीं तोड़ते!

कुण्डलिया।

वेही निसि वेही दिवस, वेही तिथि वेही बार।
वे उद्यम वेही क्रिया, वेही विषय-विकार॥
वेही विषय-विकार, सुनत देखत अरु सूँघत।
वेही भोजन भोग, जागि सोवत अरु ऊँघत॥

महा निलज यह जीव, भोग म भयो विदेही।
अजहूँ पलटत नाहिं, कढ़त गुण वे के वेही ॥७८॥

78. Even the wise among human beings, although knowing that the days and nights now present are exactly similar to those that have passed away, run busily after the same business transactions in which they had engaged themselves before. It is a wonder why we are not ashamed of sticking to the same worldly enterprises, availing of petty advantages as have been already spoken and reaped the benefit by us over and over again !

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ॥
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥७९॥

मुनि लोग राजा-महाराजाओं की तरह सुख से ज़मीन को ही अपनी सुखदायिनी शय्या मान कर सोते हैं। उन की भुजा ही उन का गुदगुदा तकिया है, आकाश ही उन की चादर है, अनुकूल हवा ही उन का पंखा है, चन्द्रमा ही उन का चिराग़ है, विरक्ति ही उन की स्त्री है; अर्थात् विरक्ति-रूपी स्त्री को लेकर, वे, उपरोक्त सामानों के साथ, राजाओं की तरह सुख से आराम करते हैं ॥७९॥

मुनि लोगों के पास न राजाओं की तरह महल हैं, न बढ़िया-बढ़िया पलँग और मख़मली गद्दे तकिये हैं, न ओढ़ने

के लिये शाल-दुशाले हैं, न बिजली के पंखे हैं, न झाड़-फानूस या बिजली की रोशनी है और न मृगनयनी, मोहिनी कामिनी ही हैं; तो भी वे ज़मीन को ही अपना पलँग, हाथ को ही तकिया, शीतल हवा को ही पंखा, चन्द्रमा को ही दीपक और संसारी विषय-भोगों से विरक्ति को ही अपनी स्त्री मान कर सुख से सोते हैं। राजा-महाराजा और अमीर-उमरा बढ़िया-बढ़िया पलँग, क़न्दहारी क़ालीन, मख़मली गद्दे-तकिये, बिजली के पंखे और रोशनी तथा सुन्दरी स्त्रियों के साथ जो मिथ्या सुख उपभोग करते हैं, उस से लाख दर्जे उत्तम और सच्चा सुख मुनि लोग ज़मीन और अपनी भुजा, अनुकूल हवा, चन्द्रमा तथा अपनी विरक्ति रूपिणी स्त्री के साथ उपभोग करते हैं। अब बुद्धिमानों को विचार करना चाहिये, कि उन दोनों में बुद्धिमान् कौन है और वास्तविक सुख किसे मिलता है। अमीरों को सुख के लिये कितने झञ्झट करने पड़ते हैं और कितनी आफ़तें उठानी पड़ती हैं; तथापि उन्हें सच्चा सुख नहीं मिलता और मुनि लोग बिना झञ्झट, बिना आफ़त और बिना प्रयास के सच्चा सुख भोगते और शान्ति की नींद सोते हैं।

छप्पय।

पृथ्वी परम पुनीत, पलँग ताकौ मन-मान्यौ।
तकिया अपनो हाथ, गगन को तम्बू तान्यो॥

पुनीत = पवित्र। गगन = आस्मान।

सोहत चन्द्र-चिराग, बीजना करत दशों दिसि।
बनिता अपनी वृत्ति, संग ही रहत दिवस-निसि॥
अतुल अपार सम्पति सहित, सोहत है सुख में मगन।
मुनिराज महानृपराज-ज्यों, पौढ़े देखे हम दृगन॥७६॥

79. A sage sleeps in comfort and peace like a great king on the most comfortable sofa of the earth with the soft pillow made of his own arm under his head, with the open sky above as his bed-cover, the congenial breeze serving him as a fan, the moon giving him the light of a lamp, enjoying the conjugal association of non-attachment with pleasures of life.

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः।
भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः॥

हे आत्मा ! अगर तुझे उस ब्रह्म का ज्ञान हो गया है, जिसके सामने तीन लोक का राज्य तुच्छ मालूम होता है, तो तू भोजन, वस्त्र और मान के लिए भोगों की चाहना मत कर; क्योंकि वह भोग सर्वश्रेष्ठ और नित्य है; उस के मुकाबले में त्रिलोकी के राज्य प्रभृति सुख कुछ भी नहीं हैं॥८०॥

चन्द-चिराग़ = चन्द्रमा-चिराग़ है। बीजना = पंखा। बनिता = स्त्री पौढ़े देखे = सोते हुए देखे। दृगन = आँखों से।

जब तक मनुष्य को ब्रह्मज्ञान नहीं होता, जब तक उसे आत्मज्ञान नहीं होता, जब तक उसे उस सुख का स्वाद नहीं मिलता, तभी तक मनुष्य संसारी-विषय-भोगों में सुख समझता है। जब मनुष्य को उस सर्वोत्तम—सदा स्थिर रहने वाले सुख का स्वाद मिल जाता है, तब वह संसारी आनन्द या दुनियवी मज़े तो क्या—त्रिभुवन के राजसुख को भी कोई चीज़ नहीं समझता। मतलब यह है कि, सच्चा और वास्तविक सुख ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान में है। उस के बराबर आनन्द त्रिलोकी के और किसी भी पदार्थ में नहीं है। जो संसारी पदार्थों में सुख मानते हैं, वे अज्ञानी और नासमझ हैं। उन में अच्छे और बुरे, असल और नक़ल के पहचानने की तमीज़ नहीं। वे रस्सी को साँप और मृग-मरीचिका को जल समझने वालों की तरह भ्रम में डूबे या बहँके हुए हैं।

सोरठा।

कहा विषय को भोग, परम भोग इक और है।
जाके होत सँयोग, नीरस लागत इन्द्रपद ॥८०॥

80. If you have realised the great One in whose presence the kingdom of the three worlds appears to give no pleasure, you should not cherish any longing for the acquirement of enjoyments such as those of good seats, clothes and honour. There is an Enjoyment somewhere, Great and Eternal, by tasting which all pleasures like that of the kingdom of the three worlds become tasteless or lose fascination.

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥८१॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रों के पढ़ने तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मकाण्ड करने से स्वर्ग में एक कुटिया की जगह प्राप्त करने के सिवा और क्या लाभ है ? ब्रह्मानन्द रूपी गढ़ी में प्रवेश करने की चेष्टा के सिवा, जो संसार-बन्धनों के काटने में प्रलयाग्नि के समान है, और सब काम व्यापारियों के से काम हैं ॥८१॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रों के पढ़ने-सुनने और उन के अनुसार कर्म करने से मनुष्य को कोई बड़ा लाभ नहीं है। अगर ये कर्मकाण्ड ठीक तरह से पार पड़ जाते हैं, तो इनसे इतना ही होता है, कि स्वर्ग में एक कुटी के लायक स्थान मिल जाता है, पर वह स्थान भी सदा क़ब्ज़े में नहीं रहता; जिस दिन पुण्य-कर्मों का ओर आ जाता है, उसी दिन वह स्वर्गीय स्थान फिर छिन जाता है; इस से प्राणी को फिर दुःख होता है। मतलब यह हुआ, कि कर्मकाण्डों से जो सुख मिलता है, वह सुख नित्य—सर्वदा रहने वाला नहीं; उस सुख के अन्त में फिर दुःख होता है—फिर स्वर्ग

छोड़ कर मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ता है—वही जन्म-मरण के दुःख झेलने पड़ते हैं। इसलिये मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानी होने की चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि प्रलयाग्नि के समान है। वह अग्नि संसार-बन्धनों को जड़ से जला देती है; अतः फिर सदा सुख रहता है—दुःख का नाम भी सुनने को नहीं मिलता। इसलिये ज्ञानियों ने ब्रह्मज्ञान—आत्मज्ञान को सर्वोपरि सुख दिलाने वाला माना है। मतलब यह है कि विना ब्रह्मज्ञान या रामभक्ति के सब जप-तप आदि वृथा हैं। सारे वेद शास्त्रों और पुराणों का यही निचोड़ है कि ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्मरूप है। जो इस तत्त्व को जानता है वही सच्चा पण्डित है। जो ब्रह्म या आत्मा को नहीं जानता, वह अज्ञानी और मूर्ख है। उस का पढ़ना-लिखना वृथा समय नष्ट करना है।

तुलसीदासजी ने कहा है:—

चतुराई चूल्हे परौ, यम गाहि ज्ञानाहि खाय।
"तुलसी" प्रेम न रामपद, सब जरमूल नशाय॥

महादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं:—

ये नराधमा लोकेषु, रामभक्तिपराङ्मुखाः॥
जपं तपो दया शौचं, शास्त्राणामवगाहनम्॥
सर्वं वृथा विना येन, शृणु त्वं पार्वति प्रिये!॥

हे प्रिये! जो नराधम इस लोक में राम की भक्ति से विमुख हैं, उन के जप, तप, दया, शौच, शास्त्रों का पठन-पाठन—ये सब

वृथा हैं। असल तत्त्व भगवान् की निष्काम भक्ति या ब्रह्म में लीन होना है।

छप्पय ।

श्रुति अरु स्मृति, पुरान पढ़े बिस्तार सहित जिन।
साधे सब शुभ कर्म, स्वर्ग को थान लह्यो तिन॥
कहत तहाँ हूँ चाल, काल को ख्याल भयंकर।
ब्रह्मा और सुरेश, सबन को जन्म-मरण डर॥
ये बाणिकवृत्ति देखी सकल, अन्त नहीं कछु काम की।
अद्वैत ब्रह्म को ज्ञान, यह एक ठौर आराम की ॥८१॥

81. What is the use of reading the Vedas, the Smritis, the Purans and the voluminous Shastras or of practising the various Karamkanda actions which are fruitful only in procuring an abode in a cottage in Swarga ? All other pursuits are mercenary save that of trying to enter the citadel of self-realisation which is like the Pralaya fire in putting an end to the misery of the bondages of this world.

श्रुति = वेद। स्मृति = धर्म-शास्त्र, मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति वगैरः। पुरान = पुराण, पुरातन इतिहास; जिसमें प्राचीन इतिहास के मिस से धर्म के तत्त्व निरूपण किये गये हों; जैसे भागवत, विष्णु पुराण और शिवपुराण आदि। सुरेश = इन्द्र। अद्वैत = द्वैत रहित, एक, भेद रहित, जिस के समान दूसरा नहीं। शंकराचार्य का मत अद्वैत है। उन्हों ने जीव और ईश्वर को एक माना है।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री-
रर्थाः संकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः॥
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम्
॥८२॥

आयु—उम्र—पानी की लहरों के समान चञ्चल है, जवानी थोड़े दिनों की है, धन मन के संकल्पों से भी कम देर ठहरने वाला है, भोग वर्षाकाल में चमकने वाली बिजली की चमक से भी अधिक चञ्चल हैं, प्यारी स्त्री का गले से लगाना भी चिरस्थायी नहीं है। इसलिए मनुष्यो! भवसागर से पार होने के लिए ब्रह्म में लीन होओ ॥८२॥

आयु की चञ्चलता।

प्राणी की आयु का कोई ठिकाना नहीं। यह जल की तरङ्गों के समान चञ्चल और पानी के बुलबुले के समान क्षणस्थायी है। यह अभी है और अगले क्षण न रहे। जो सांस बाहर जाता है, वह वापस आवे और न आवे। इधर प्राणी जन्म लेता है और उधर मौत उस के पीछे लगती है। ऐसे क्षण-भङ्गुर जीवन पर क्या खुशी मनायी जाय? "मोहमुद्गर" में कहा है:—

नलिनीदलगतजलमतितरलं,
तद्वज्जीवितमातिशयचपलम्।

विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तं,
लोकं शोकहतञ्च समस्तम् ॥

पद्मपत्र पर पड़ा हुआ जल अतीव चञ्चल होता है; मनुष्य का जीवन भी उसी तरह अतीव चञ्चल है। यह सारा संसार रोग-रूपी सर्पों से ग्रसित हो रहा है। इस में दुःख-ही-दुःख है।

जवानी।

जिस तरह मनुष्य की आयु पानी की लहरों के समान चञ्चल और सदा-सर्वदा रहने वाली नहीं है; उसी तरह जवानी भी चन्दरोज़ा या अल्पकाल-स्थायी है। सदा कोई जवान नहीं रहा। अवस्थायें बदलती ही रहती हैं। बचपन के बाद जवानी और जवानी के बाद बुढ़ापा आता है और अवश्य आता है। चार दिन की चाँदनी, फेर अँधेरी रात वाली बात है। किसी ने कहा है:—

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय।
सदा न जोवन थिर रहे, सदा न जीवे कोय॥

सदा तोरई नहीं फूलती, सदा सावन नहीं रहता, सदा जवानी नहीं रहती और सदा कोई जीता भी नहीं रहता। और भी कहा है:—

रहती है कब, बहारे जवानी तमाम उम्र ।
मानिन्द बूये गुल, इधर आई उधर गई ॥

यौवन अवस्था की बहार उम्र-भर थोड़े ही रहती है। यह तो फूल की सुगन्ध की तरह इधर आई, उधर गई।

जो आज जवानी के नशे में मतवाले हो रहे हैं, जो मल-मल कर और साबुन लगा-लगा कर अपनी मिट्टी की काया को धोते और उसे चन्दन कपूर एवं इत्र-फुलेलों से सुगन्धित करते एवं भाँति-भाँति के गहने पहने रहते हैं, स्त्रियाँ जो अपनी दोनों छातियों को ऊँची उठा कर चलती हैं और पुरुष जो मूछों पर बल और ताव देते हैं, वे होश करें और मन में निश्चय समझ लें कि, उन का यह शरीर सदा उन के साथ न रहेगा; एक दिन यहाँ-का-यहाँ ही पड़ा रह जायगा और मिट्टी में मिल जायगा। काया के नाश होने के पहले ही वृद्धावस्था युवावस्था को निगल जायगी। जो दाँत आज मोतियों की तरह चमकते हैं, वे कल हिल-हिल कर आप का दम नाक में कर देंगे और एक-एक कर के आप का साथ छोड़ देंगे। उस समय आप का मुख पोपला और भद्दा हो जायगा। जिन बालों को आप रोज़ धोते और साफ़ रखते हैं तथा जिन की सजावट आप तरह-तरह से करते हैं, वे एक दिन सफ़ेद या सन की तरह हो जायेंगे। वे फूले हुए गाल पिचक जायेंगे। आँखों में यह रसीलापन न रहेगा। इन में पीलापन और धुन्ध

छा जायगा। आज की सी अकड़-तकड़ न रहेगी, लाठी के सहारे चलोगे और वह भी काँपने लगेगी। जो लोग आज आप को देख कर खुश होते हैं, आप का आदर करते हैं, वे ही आप का अनादर करेंगे, आप की बात भी न पूछेंगे, यह तो आप की काया और जवानी का हाल है, अब अपने धन-दौलत की चञ्चलता की बातें भी सुनिये।

लक्ष्मी चञ्चल है।

लक्ष्मी को चञ्चला और चपला भी कहते हैं। लक्ष्मी ठीक उस चपला की तरह है, क्षण में चमकती और क्षण-भर में ही बादलों में बिलाय जाती है। अनेकों ने इस धन को मन के विचारों की तरह क्षणस्थायी और बेजड़ कहा है। यह धन किसी के पास सदा नहीं रहा। तीन पीढ़ी से अधिक तो एक परिवार में धन रहते किसी ने देखा ही नहीं। आज जो धनी है, कल वही निर्धन हो जाता है। आज जो हज़ारों को भोजन देता है, कल वही अपने भोजन के लिये औरों के द्वार पर भटकता फिरता है। आज जो राजा है, कल वही रङ्क हो जाता है। आज जो विना मोटर और जोड़ी के एक क़दम चल नहीं सकता, कल वही पैदल दौड़ा फिरता है। आज जिस की आज्ञा-पालन के लिये हज़ारों दास-दासी खड़े रहते हैं, कल वही दूसरों की आज्ञा पालन के लिये खड़ा देखा जाता है। सारांश यह है कि, धन-वैभव न तो सदा

किसी के पास रहा ही और न आगे ही रहेगा। इसीलिये धन को भी चञ्चल कहा है। नीति में लिखा है:—

यौवनं जीवितं चित्तं, छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
चञ्चलानि षडेतानि, ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत्॥

यौवन, जीवन, मन, शरीर की छाया, धन और स्वामिता—ये छहों चञ्चल हैं, यानी ये स्थिर होकर नहीं रहते।

मूर्ख हैं वे, जो इस झूठे और सदा न रहने वाले धन पर फूलते और घमण्ड करते हैं। वे समझते हैं कि, यह हमारे पास सदा रहेगा, पर यह उन की भारी भूल है। धन को सदा बिजली की चमक और बादल की छाया की तरह क्षणस्थायी और चञ्चल समझ कर अभिमान न करना चाहिये। "मोहमुद्गर" में कहा है:—

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं,
हरति निमेषात् कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा,
ब्रह्मपदं प्रविशाशु विदित्वा॥

इस धन-यौवन का गर्व न कर, काल इस को पलक मारते हर लेता है। इस मायामय संसारको त्याग कर, शीघ्र ही ब्रह्मपद में प्रविष्ट हो।

स्त्री का आलिङ्गन भी चिरस्थायी नहीं है।

जिस तरह आयु, यौवन और धन चञ्चल हैं, उसी तरह नारी भी चञ्चल है। आज जो अपनी है, उसे कल परायी होते देर नहीं लगती। आज जो रमणियों के साथ आनन्द करते हैं, कल वे ही उन के वियोग में तड़पते देखे जाते हैं। कहते हैं कि स्त्री करवट बदलते पराई हो जाती है। कहा है:—

शास्त्रं सुचिन्तितमथो परिचिन्तनीयम्,
आराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।
अङ्कस्थितापि युवतिः परिरक्षणीयः,
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्?॥

खूब याद किये हुए शास्त्र को भी बार-बार फेरना चाहिये, खूब सेवा किये हुए राजा से भी डरना चाहिये, गोद में पड़ी स्त्री की सावधानी से रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शास्त्र, राजा और युवती इन का विश्वास नहीं।

"स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः"

स्त्रियों का विश्वास नहीं करना चाहिये, ऐसे ऐसे वाक्य जगह-जगह मिलते हैं। महाराजा भर्तृहरि को ही लीजिये। महाराजा में क्या त्रुटि थीं? क्या उन में बल, वीर्य्य, रूप, विद्या, चातुरी प्रभृति किसी भी गुण की कमी थी? क्या उन के यहाँ

सुख-भोग के सामानों की कमी थी ? नहीं, कुछ भी नहीं। सब कुछ था, पर पिङ्गला ने महाराजा को छोड़, घोड़ों के दारोग़ा से दिल लगाया । फिर, स्त्रियों की प्रीति को सदा रहने वाली कैसे कह सकते हैं ?

एक स्त्री की दग़ाबाज़ी।

एक साहूकार ने अपने लड़के को, नाराज़ हो कर घर, से निकाल दिया । चलते समय उस ने अपनी स्त्री से कहा—"तुझे मैं तेरे पीहर पहुँचाता जाऊँ, क्योंकि वनमें बड़े कष्ट हैं और अभी रोज़गार का ठिकाना नहीं । ईश्वर जानें, क्या-क्या कष्ट उठाने होंगे।" स्त्री ने कहा—"स्वामिन् ! मैं आप के बिना क्षण-भर भी नहीं रह सकती । आप के वियोग के मुक़ाबले में राह-बाट और वन के कष्ट तुच्छ हैं । मैं आप के साथ चलूँगी और आप की पदसेवा कर अपने तईं धन्य समझूँगी ।" साहूकार के लड़के के बहुत समझाने पर भी जब स्त्री न मानी, तो उस ने उसे अपने साथ ले लिया।

वे दोनों स्त्री-पुरुष घर से कुछ द्रव्य लेकर चल दिये । रोज़ मंज़िलों-पर-मंज़िलें तय करते हुए, एक दिन, दोनों, दोपहर के समय, एक फ़क़ीर के तकिये पर पहुँचे । वहाँ वृक्षों की सघन छाया थी, सामने ही थोड़े फासिले पर एक कुआ था। साहूकार का लड़का लोटा-डोर ले जल लाने गया और स्त्री

वहीं बैठी रही। फ़क़ीर ने देखा कि, स्त्री तो परम सुन्दरी और नवयौवना है, अतः उस से कहा—"तू मेरे साथ रहे, तो दुनियाँ के मज़े देखे। जा उसे कुए में धकेल आ। फिर अपन दोनों पास के शहर में चल कर रहेंगे।" साहूकार की स्त्री, जो पति के लिये प्राण देती थी, जो पति के समझाने पर भी पीहर न गई थी, क्षणभर में पराई हो गई। फ़क़ीर की बातों में आ कर, वह कुए पर गई। ज्योंही उस का पति लोटा खींचने को झुका, उस ने धक्का देकर उसे कुए में गिरा दिया। उसे ज़रासी दया भी न आई। पीछे आ कर वह फ़क़ीर के साथ हो ली। फ़क़ीर उसे नगर में ले आया और उस के धन से मौज करने लगा। साथ ही गाने-बजाने वाले उस्तादों को बुला कर, उसे गाने-बजाने की तालीम दिलाने लगा। उस की चढ़ती जवानी थी, रूप-लावण्य था, अतः गाने में भी वह पक्की हो गई। सारे शहर में उस के नाचने-गाने की शोहरत हो गई।

उधर वह लड़का कुए में पड़ा हुआ अपनी मुसीबत पर रोता था। कहीं से एक बनजारा आया। उस के साथ सौ दो सौ आदमी और बैल थे। वहीं पड़ाव पड़ा। लोग रोटी बनाने का उद्योग करने लगे। कोई कुए पर पानी भरने गया। उस ने ज्यों ही डोल फाँसा कि, साहूकार के लड़के ने डोल पकड़ लिया। लोगों ने पूछा—"तू कौन है?" उत्तर दिया—"मैं आफ़त का मारा मनुष्य हूँ। कृपा कर मुझे निकाल लो।" लोगों ने मिल कर उसे बाहर खींच लिया। देखा तो वह पीला पड़ गया था।

बनजारे ने, उस की चिकित्सा करा कर, उसे गरम कपड़ों में सुला दिया। चन्द रोज़ में वह बनजारा भी उसी नगर में पहुँचा। साहूकार का लड़का रोज़गार की तलाश में घूमता रहा। ईश्वर-कृपा से एक बड़े सेठ ने उसे अपने यहाँ रख लिया। लड़का बड़ा ही चलता-पुरज़ा निकला, इसलिये उस सेठ ने उसे अपना प्रधान मुनीम बना लिया।

उन्हीं दिनों उस वेश्या की बड़ी तारीफ सुन, राजा ने अपने यहाँ उस के नाच का हुक्म दिया। महफिल सजाई गई, चारों ओर नगर के सेठ-साहूकार, रईस-अमीर बैठे। राजा सिंहासन पर बैठा। वेश्या नाचने लगी। उस के रूप और नाच-गान पर महफिल-की-महफिल मुग्ध हो गई। इतने में उस वेश्या की नज़र उस साहूकार के लड़के या अपने पति पर पड़ गई। राजा ने प्रसन्न हो कर कहा, "बीबी! तुम माँगो, वही इनाम मिलेगा।" वेश्या ने कहा—"महाराज! यदि आप मुझे इनाम देने का वचन देते हैं, तो यह वचन दीजिये, कि मैं जो माँगू वही मिले।" जब राजा वचन-बद्ध हो गया, तब वेश्या ने कहा—"राजन्! वह सामने बैठा हुआ पुरुष मेरा चोर है, उसे मरवा दीजिये।" जब राजा ने उस के मारे जाने की आज्ञा दे दी, तब साहूकार के लड़के ने कहा—"इस के पास मेरी कुछ धरोहर है; इस से कहिये कि, यह हाथ में जल ले मुझे उसे संकल्प कर के दे दे।" वेश्या ने कहा—"मुए! तेरा मुझे क्या देना है? ख़ैर, ले; मैं जल लेकर संकल्प करके कहती हूँ, कि जो कुछ

तेरा मेरे पास हो तू ले।" वेश्या के संकल्प छोड़ते ही वह ज़मीन पर गिर पड़ी और मर गई। राजा को बड़ा विस्मय हुआ। उस ने उस लड़के से इस घटना का असली तत्त्व पूछा। लड़के ने कहा—"राजन्! यह मेरी व्याहता स्त्री है। मैं और यह घर से निकल आये। राह में इसे साँप ने काटा, और यह मर गई, मैं भी इसी के साथ जलने को तैयार हुआ। इतने में महादेव-पार्वती उधर आ निकले। पहले तो उन्होंने कहा—"अरे पागल! स्त्री के लिये जान देता है! तू है तो और बहुत स्त्रियाँ मिल जायेंगी।" पर मैं उन की बात पर राज़ी न हुआ, तब उन्होंने कहा—"तू हाथ में जल लेकर अपनी आधी आयु इसे दे, तो यह जी सकती है। फिर भी, जब-कभी तू अपनी शेष बची आयु इस से माँगेगा और यह संकल्प छोड़ देगी, तब यह मर जायगी।" महाराज! मुझे यह प्राणों से भी प्यारी थी; अतः मैं ने अपनी आधी आयु इसे दे दी। इस के बाद यह मुझे कुए में धकेल फ़क़ीर के साथ चली आई और वेश्या हो गई। आज यह मुझे जान से मरवाने पर ही तुल गई। स्त्री-जाति की प्रीति का ज़रा भी विश्वास नहीं।" राजा उस से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रधान मन्त्री बना लिया।

इस कहानी से हम ने स्त्रियों की प्रीति का नमूना दिखाया है। निश्चय ही सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होतीं; पर इस में शक़ नहीं कि, अधिकांश ऐसी ही होती हैं; अतः स्त्री की

प्रीति का आनन्द सदा नहीं मिल सकता। मान लो, स्त्री पतिव्रता भी हो, तो सम्भव है कि, वह पहले ही मर जाय। इस तरह भी वियोग हो सकता है।

सारांश यह कि, आयु, यौवन, धन और नारी—ये सभी चञ्चल, अनित्य और क्षणभङ्गुर हैं। इसीलिये परिणाम में दुःखों के भाण्डार हैं। अतएव बुद्धिमानों को चाहिये, कि ब्रह्म में चित्त लगायें, रात-दिन उसी का ध्यान—उसी की चिन्तना करें। उस से वे भवसागर के पार हो जायेंगे। उन्हें बारम्बार जन्म-मरण का कष्ट न होगा, नित्य—स्थायी सुख मिलेगा। स्त्री, पुत्र, धन प्रभृति में मन लगाने से सदा दुःख-सागर में ग़ोते लगाने पड़ते हैं। मर कर फिर जन्म लेना पड़ता है और फिर मरना पड़ता है। अब बुद्धिमान् ही विचार करें, कि दोनों में कौनसा मार्ग सुखदाई है।

छप्पय।

जल की तरल तरंग जात, ज्यों जात आयु यह।
यौवन हूँ दिन चार, चटक की चोंप चाह चह॥
ज्यों दामिनी-प्रकाश, भोग सब जानहु तैसे।
तैसे ही यह देह अथिर, थिर ह्वै है कैसे?॥
सुनि ए मेरे चित्त! तू, होहु ब्रह्म में लीन गति।
संसार अपार समुद्र तर, करि नौका निज ज्ञान रति॥८२॥

82. Life is transient like the water-currents, youth is short-lived, riches are foundationless like

the flights of the human mind, the objects of pleasure are transitory like the flashes of lightning in the rainy season and the embracing of beloved women also does not last for a long time. O men, it is better for you to fix your heart on Brahma in order to swim across the ocean of worldly fears.

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं, लोभाय मनस्विनः।
शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥८३॥

जो विचारवान् है, जो ब्रह्मज्ञानी है, उसे संसार लुभा नहीं सकता। मछली के उछलने से समुद्र नहीं उमड़ता ॥८३॥

जिस तरह सफरी मछली के उछल-कूद मचाने से समुद्र अपनी गम्भीरता को नहीं छोड़ता, ज़रा भी नहीं उमगता, जसा-का-तैसा बना रहता है; उसी तरह विचारवान् ब्रह्मज्ञानी संसारी पदार्थों पर लट्टू नहीं होता, वह समुद्र की तरह गम्भीर ही बना रहता है; अपनी गम्भीरता नहीं छोड़ता। समुद्र जिस तरह मछली की उछल-कूद को कुछ नहीं समझता, उसी तरह वह त्रिलोकी की सुख-सम्पत्ति को तुच्छ समझता है। मतलब यह है, कि संसारी विषय-भोग उन्हीं को लुभाते हैं, जो विचारवान् नहीं हैं, जिन में विचार-शक्ति नहीं है, जिन्हें ब्रह्मज्ञान का आनन्द नहीं मालूम है। उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं:—

दुनिया है वह सय्याद, कि सब दाम में इस के।
आ जाते हैं, लेकिन कोई दाना नहीं आता॥

दुनिया एक ऐसा जाल है, जिस में प्रायः सभी फँसे हुए हैं। कोई दाना अर्थात् विचारशील पुरुष ही इस जाल से बचा हुआ है।

संसार अन्तःसार-शून्य है, इस में कुछ नहीं है। यह ठीक आँवले के समान है, जो ऊपर से खूब सुन्दर और चिकना-चुपड़ा दीखता है; मगर भीतर कुछ नहीं। किसी ने संसार को स्वप्नवत् और किसी ने इसे कोरा ख़याल ही कहा है। महा कवि ग़ालिब कहते हैं:—

हस्ती के मत फ़रेब में आजाइयो असद।
आलम तमाम हलक़ ये दामे ख़याल है॥

ग़ालिब ! सृष्टि के चक्र में मत आ जाना। यह सब प्रपञ्च तुम्हारे ख़याल के सिवा और कोई चीज़ नहीं है।

इस के जाल में समझदार नहीं फँसते, किन्तु नासमझ लोग, जाल के किनारों पर लगी सीपियों की चमक-दमक देख कर जाल में आ फँसने वाली मछलियों की तरह, इस के माया-मोह में फँस कर अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हैं; किन्तु ज्ञानी, इस की अनित्यता, इस की असारता को देख कर, इस से किनारा कर लेते हैं।

दोहा।

ज्यों सफ़री को फिरत लख, सागर करत न छोभ।
अण्डा से ब्रह्माण्ड का, त्यों सन्तन को लोभ॥८३॥

83. What value has the whole world in the eyes of a man wise in the knowledge of self that he may be tempted by it ! The great Ocean is never disturbed by the jumping of a fish !

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं,
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥८४॥

जब तक हम में कामदेव से पैदा हुआ अज्ञान-अन्धकार था, तब तक हमें सारा जगत् "स्त्री-रूप ही" दीखता था। अब हम ने विवेक-रूपी अञ्जन आँज लिया है, इस से हमारी दृष्टि समान हो गई है । अब हमें तीनों भुवन ब्रह्मरूप दिखाई देते हैं ॥८४॥

जब हम काम-मद से अन्धे हो रहे थे, जब हमें अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं था, तब हमें "स्त्री-ही-स्त्री" दिखाई देती थी, विना स्त्री हमें क्षण भर भी कल नहीं थी; किन्तु अब हम में विवेक-बुद्धि आ गई है, अब हम अच्छे-बुरे को समझने लगे हैं, इसलिये अब हमें सारा संसार एकसा मालूम होता है । अब हमें कहीं स्त्री नहीं दीखती, सभी तो एक-से दीखते हैं । जहाँ नज़र दौड़ाते हैं, वहीं ब्रह्म-ही-ब्रह्म नज़र आता है। मतलब यह, कि न कोई स्त्री है न कोई पुरुष, सभी तो एक ही हैं। केवल चोले का भेद है। । आत्मा न स्त्री है न पुरुष, वह

सब में समान है। मगर अज्ञानियों को यह बात नहीं दीखती। उन्हें और-का-और दीखता है।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में लिखा है:—

नैव स्त्री न पुमानेष, न चैवायं नपुंसकः
यद्यच्छरीरमादत्ते, तेन तेन स युज्यते ॥

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष और न नपुंसक। यह जिस-जिस शरीर को धारण करता है, उसी-उसी के साथ जुड़ जाता है।

जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि, स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं, जो मैं हूँ वही स्त्री है—स्त्री ने और तरह का कपड़ा पहन रक्खा है और मैं ने और तरह का—तब उस का मन स्त्री पर नहीं भूलता। अपने ही स्वरूप को और समझ कर, उस से मैथुन करने की इच्छा नहीं होती। ज्ञानी को संसार में शत्रु, मित्र, स्त्री-पुत्र, स्वामी-सेवक नहीं दीखते। वह स्त्री-पुत्र और शत्रु-मित्र सब को समान समझता है, किसी से राग और किसी से द्वेष नहीं रखता। उसे कुत्ते में, आदमी में, तथा प्राणी मात्र में ही, एक "विष्णु" दीखता है। यह अवस्था परमपद की अवस्था है। स्वामी शंकराचार्य्य जी कहते हैं:—

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ,
मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।

भव समचित्तः सर्वत्र त्वं,
वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ॥

शत्रु, मित्र और पुत्र-बान्धवों में विरोध या मेल के लिये चेष्टा न कर। यदि शीघ्र ही मोक्ष-पद चाहता है, तो शत्रु-मित्र और पुत्र-कलत्र प्रभृति को एक नज़र से देख। सब को अपना समझ, किसी को ग़ैर न समझ, समान-चित्त हो जा। जैसा ही पुरुष, वैसी ही स्त्री; जैसा बेटा, वैसा दुश्मन और जैसा धन, वैसी मिट्टी।

एक सच्चा मित्र।

एक साधु सदा ज्ञानोन्मत्त अवस्था में रहता था। वह कभी किसी से फाल्तू बातचीत नहीं करता था। एक रोज़ वह गाँव में भिक्षा माँगने गया। एक घर से उसे जो रोटी मिली, उसे वह आप खाने लगा और साथ में कुत्ते को भी खिलाने लगा। यह देख, वहाँ अनेक लोग इकट्ठे हो गये और उन में से कोई-कोई उसे पगला कह कर उस की हँसी करने लगे। यह देख महात्मा ने उन से कहा—"तुम क्यों हँसते हो ?"

विष्णुः परीस्थितो विष्णुः,
विष्णुः खादति विष्णवे।

कथं हससि रे विष्णो ?
सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

विष्णु के पास विष्णु है। विष्णु विष्णु को खिलाता है। अरे विष्णु, तू क्यों हँसता है ? सारा जगत् विष्णुमय है; यानी सारा संसार उस पूर्णात्मा विष्णु से व्याप्त है।

सच्चे और पहुँचे हुए साधु-फ़कीर सारे संसार में एक परमात्मा को देखते हैं। उन्हें दूसरा कोई नज़र ही नहीं आता। अज्ञानी लोग जिन के ज्ञान-चक्षु बन्द हैं, जगत् में किसी को अपना और किसी को पराया समझते हैं। किसी ने क्या अच्छा उपदेश दिया है:—

एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयताम्,
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्व्यापितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलोप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरे श्लिष्यताम्,
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥

एकान्त-निर्जन स्थान में सुख से बैठना चाहिए। परमब्रह्म परमात्मा में मन लगाना चाहिये। पूर्णात्मा पूर्णब्रह्म से साक्षात् करना चाहिये और इस जगत् को उस पूर्णब्रह्म से व्याप्त समझना चाहिये। पूर्व जन्म के कर्मों का लोप करना चाहिये और ज्ञान के प्रभाव से अब के किये कर्मों के फल त्याग देने चाहियें; यानी निष्काम कर्म करने चाहियें, जिस से कर्म-बन्धन में बँध कर फिर जन्म न लेना पड़े। इस संसार में प्रारब्ध या पूर्व-

जन्म के कर्मों को भोगना चाहिये और इस के बाद परमेश्वर रूप से इस जगत् में ठहरना चाहिये; यानी अपने में और परमात्मा में भेद न समझना चाहिये।

दोहा।

काम-अन्ध जब ही भयौ, तिय देखी सब ठौर।
अब विवेक-अञ्जन कियौ, लख्यौ अलख सिरमौर॥८४॥

84. As long as we were in the darkness of ignorance produced by lustful passions, the whole universe seemed to us as if transformed into the shape of women. Now that we have applied to our eyes the collyrium of discrimination between right and wrong, our sight has become calm and the three Bhuvans (regions) appear to us to be the manifestation of Brahma.

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली,
रम्यः साधुसमागमः शमसुखं काव्येषु रम्याःकथाः।
कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं,
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः॥८५॥

चन्द्रमा की किरणें, हरी हरी घास के तख़्ते, साधुजनों या मित्रों का समागम, सन्तोष या शान्तिजनित सुख, शृङ्गार-

---

काम-अन्ध = कामान्ध; कामदेव के मद से अन्धा। तिय = स्त्री। ठौर = जगह। विवेक-अञ्जन = विबेक या विचार का अञ्जन। लख्यौ = देखा। अलख = अगोचर, अदेखा, जो इन्द्रियों द्वारा न जाना जा सके।

रस की कवितायें, क्रोधाश्रुओं से चञ्चल प्यारी का मुख— पहले ये सब हमारे मन को मोहित करते थे; किन्तु जब से संसार की अनित्यता हमारी समझ में आई, तब से हमें ये सब अच्छे नहीं लगते ॥८५॥

जबतक मनुष्य को संसार की असारता, उस की अनित्यता, उस का थोथापन, उस की पोल नहीं मालूम होती, तभी तक मनुष्य संसार और संसार के झगड़ों में फँसा रहता है और विषय-भोगों को अच्छा समझता है; किन्तु संसार की असलियत मालूम होते ही, उसे विषय-सुखों से घृणा हो जाती है। उस समय न उसे चन्द्रमा की शीतल चाँदनी प्यारी लगती है, न मित्र-मण्डली अच्छी मालूम होती है, न शान्ति-जनित सुख अच्छा लगता है, न शृङ्गार-रस की कवितायें अच्छी मालूम होतीं हैं और न उस का चित्त चन्द्रवदनी कामिनियों को ही देखकर मचलताहै।

छप्पय ।

चन्द-चाँदनी रम्य, रम्य वनभूमि पहुपयुत ।
यों ही अति रमणीक, मित्र-मिलवो है अद्भुत ।
वनिता के मृदु बोल, महारमणीक विराजत ।
मानिन मुख रमणीक, दृगन अँसुअन-झर साजत ।

चन्द-चाँदनी = चन्द्रमा की चाँदनी। रम्य = मनोहर। वनभूमि = जङ्गल की धरती। पहुपयुत = फूलों से छायी हुई। वनिता = स्त्री। मृदु = मधुर। बोल = बातें। मानिन = मानिनी स्त्री। दृगन = आँखों से। अँसुअन-झर = आँसुओं की झड़ी।

ए कहे परमरमणीक सब, सब कोऊ चित में चहत।
इनि विनाश जब देखिये, तब इन में कछुहु न रहत ॥८५॥

85. The rays of the moon, the forest glades covered with green grass, the society of friends, the works of literature possessing beauties of composition, the faces of the beloved ones made resplendent by the drops of tears caused by anger, all captivated our heart at first. But since we have realised the destructibility of the world, all these things have lost their attractiveness and our mind is now absolutely vacant.

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा,
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः।
रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखि-[१]
र्निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥८६॥

ऐसा तपस्वी कोई विरला ही होता है, जो भीख माँग कर खाता है, जो अपने लोगों में रह कर भी उन में मोह नहीं रखता, जो स्वाधीनता-पूर्व्वक अपना जीवन निर्व्वाह करता है, जिस ने लेने और देने का व्यवहार छोड़ दिया है, जो राह में पड़े हुए चिथड़ों की गुदड़ी ओढ़ता है, जिसे मान का ख़याल नहीं है, जिस में अभिमान नहीं है और जो ब्रह्मज्ञान के सुख को ही सुख मानता है ॥८६॥

१—"कन्थाधर" इति पाठान्तरम्।

ज्ञानी के लक्षण सुन्दरदासजी ने इस भाँति कहे हैं:—

कर्म न विकर्म करे, भाव न अभाव धरे।
शुभ न अशुभ परे, यातें निधरक है॥
बस तीन शून्य जाके, पापहु न पुण्य ताके।
अधिक न न्यून वाके, स्वर्ग न नरक है॥
सुख-दुःख सम दोऊ, नीचहुँ न ऊँच कोऊ।
ऐसी विधि रहे सोउ, मिल्यो न फरक है॥
एक ही न दोय जानै, बंध-मोक्ष भ्रम मानै।
"सुन्दर" कहत, ज्ञानी ज्ञान में गरक है॥

जो भीख माँग कर पेट की अग्नि को शान्त कर लेता है, पर किसी की खुशामद नहीं करता, किसी के अधीन नहीं होता, स्वाधीन रहता है, राह में पड़े हुए चिथड़े उठा कर उन की ही गुदड़ी बना कर ओढ़ लेता है; मान-अपमान और सुख-दुःख को समान समझता है; न किसी से कुछ लेता है और न किसी को कुछ देता है; गृहस्थी में या अपने बन्धु-बान्धवों में रह कर भी उन में ममता नहीं रखता; शुभाशुभ, पाप-पुण्य और स्वर्ग-नरक को कोई चीज़ नहीं समझता; किसी को नीच और किसी को ऊँच नहीं समझता, सभी में एक आत्मा देखता है; बन्धन और मोक्ष को भी मन का संकल्प या भ्रम समझता है तथा ब्रह्मज्ञान में ग़र्क रहता है और उस में हीं पूर्ण सुख समझता है,—उस से बढ़ कर ज्ञानी और कौन है? ऐसे ज्ञानी के जीवन्मुक्त होने में संशय नहीं। उसे जन्म-

मरण का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। वह सदा परमानन्द में मग्न रहता है, पर ऐसे महापुरुष कोई-कोई ही होते हैं।

सोरठा।

उञ्छवृत्ति गति मान, समदृष्टी इच्छा-राहित।
करत तपस्वी ध्यान, कन्था को आसन किये॥

86. Very rarely is a Tapaswi met with who procures his food by begging, who is free from all attachments in the midst of his fellow-men, who leads a life of freedom, who has given up all the transactions of giving and taking, who is content with wearing a sheet made of old, worn out and torn rags of cloth found by the roadside, who has no desire for honour, who is free from vanity and who only takes pleasure in the enjoyment of happiness produced by self-denial.

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल,
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामेषः प्रणामाञ्जलिः।
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्म्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि॥८७॥

हे माता पृथ्वी ! पिता वायु ! मित्र तेज ! बन्धु जल ! भाई आकाश ! अब मैं आप को अन्तिम विदाई का प्रणाम करता हूँ। आप की संगति से मैं ने पुण्य-कर्म किये और पुण्यों के फलस्वरूप मुझे आत्मज्ञान हुआ, जिस ने मेरे संसारी मोह का नाश कर दिया। अब मैं परमब्रह्म में लीन होता हूँ॥८७॥

मनुष्य-शरीर पृथ्वी, वायु, तेज, जल और आकाश—पाँच तत्त्वों से बनता है। जिसे आत्मज्ञान हो गया है, जिस ने ब्रह्म को पहचान लिया है, वह इन पाँचों तत्त्वों से विदा लेता है और प्रणाम करके कहता है, कि मैं आप पाँचों के सङ्ग रहने से —यह शरीर धारण करने से—इस योग्य हुआ कि, ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सका; अब मेरा आप का साथ न होगा, अब मैं चोले में न आऊँगा, अब मुझे जन्म लेना न पड़ेगा। मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ; क्योंकि आप की सुसंगति से ही मुझे यह फल मिला है। अब मैं आप से सदा को विदा होता हूँ। अब मैं ब्रह्म के आनन्द में मग्न हूँ। अब मुझे यहाँ आने की, आप लोगों की संगति करने की; यानी शरीर धारण करने की ज़रूरत नहीं। मतलब यह है, कि मनुष्य का चोला ब्रह्मज्ञान के लिए मिलता है; और चोलों में यह ज्ञान हो नहीं सकता। जो मनुष्य-चोले में आकर ब्रह्मज्ञान लाभ करते हैं और उस की बदौलत परम पद या मोक्ष प्राप्त करते हैं,—वे ही धन्य हैं, उन्हीं का मनुष्य-देह पाना सार्थक है।

छप्पय ।

अरी मेदिनी-मात, तात-मारुत सुन एरे।
तेज-सखा जल-भ्रात, व्योम-बन्धु सुन मेरे।
तुम को करत प्रणाम, हाथ तुम आगे जोरत।
तुम्हरे ही सत्संग, सुकृतकौ सिन्धु झकोरत!

अज्ञान-जनित यह मोह हू, मिट्यौ तिहारे संगसों।
आनँद अखण्डानन्द को, छाय रहो रसरंग सों ॥८७॥

87. O mother Earth, O father Air, O friend Light, O kinsman Water, O brother space, I bid you all my last farewell greeting ! In company with you, as the composite parts of my physical body, I did the good deeds which bore the fruit of endowing me with pure self-consciousness which again destroyed all my earthly attachments. I now go to be absorbed in the Supreme Eternal.

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा-
न्प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥८८

जब तक शरीर ठीक हालत में है, बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों की शक्ति बनी हुई है, आयु के दिन बाक़ी हैं, तभी तक बुद्धिमान् को अपने कल्याण की चेष्टा अच्छी तरह से कर लेनी चाहिये। घर जलने पर कुआ खोदने से क्या फ़ायदा ? ॥८८॥

जब तक आप का शरीर नीरोग और तन्दुरुस्त रहे, बुढ़ापा न आवे, आप की इन्द्रियों की शक्ति ठीक बनी रहे, आप का अन्त दूर हो, उम्र बाक़ी दीखे, तभी तक आप अपनी भलाई की चेष्टा कर लीजिये; यानी ऐसी हालत में ही भगवान् का भजन कर लीजिये। जब आप रोगों से जर्ज्जरित हो जायँगे,

कफ-खाँसी और दम घेर लेंगे, आँखों से न दीखेगा, कानों से न सुनाई देगा, गले में घर-घर कफ बोलने लगेगा, मौत अपना पञ्जा जमा देगी, तब आप क्या करेंगे ? अर्थात् कुछ नहीं। उस समय यदि आप कुछ करने की चेष्टा करेंगे भी, तो आप की दशा उस की सी होगी, जो घर में आग लगने पर कुआ खोदता है।

किसी ने कहा है:—

प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जितं पुण्यं, चतुर्थे किं करिष्यति ? ॥

बचपन में यदि विद्या नहीं सीखी, जवानी में यदि धन सञ्चय नहीं किया, बुढ़ापे में यदि पुण्य नहीं किया; तो चौथे पन में क्या करोगे ?

सब से अच्छी बात तो बचपन में ही परमात्मा की भक्ति करना है। ध्रुव और प्रह्लाद ने बचपन में ही भक्ति कर के परमात्मा के दर्शन किये थे। अगर इस उम्र में न हो सके, तो जवानी में; और जवानी में भी न हो सके तो बुढ़ापे में तो चूकना ही न चाहिये। स्त्री-पुत्र, धन-दौलत का मोह छोड़, परमात्मा में मन लगाओ; आज-कल पर मत टालो; क्योंकि मौत हर समय घात में है, न जाने कब तुम्हें ले जाय। जब वह आजायगी, तब तुम से कुछ करते-धरते न बनेगा, तुम घबरा जाओगे, मुँह से परमात्मा का नाम न निकलेगा और हाथों से दान या पराया उपकार न कर सकोगे। उस समय तुम्हारा परलोक बनाने की चेष्टा करना, आग लग जाने पर कुआ खोदने वाले

के समान मूर्खतापूर्ण काम होगा। अतः जो करना है, मरने के समय से पहले ही करो। किसी ने परलोक-साधन के लिये क्या अच्छी सलाह दी है:—

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां,
तेनेशस्य पिधीयतामपाचितिः कामे मतिस्त्यज्यताम्।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयताम्,
आत्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥

नित्य वेद पढ़ो और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करो। वेद-विधि से परमेश्वर की पूजा करो। विषय-भोगों को बुद्धि से हटाओ; यानी विषयों को त्यागो। पाप-समूह का निवारण करो। संसारी सुख इत्र-फुलेल—चन्दनादि के लगाने, स्त्री-भोगने और नाच-गाना देखने-सुनने प्रभृति का परिणाम विचारो; यानी इन के दोषों की भावना करो। परमेश्वर या आत्मा में अनुराग करो और गृहस्थी के अनेक दोषों को समझ कर, शीघ्र ही घर को त्याग कर वन को चले जाओ।

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

बेनिशाँ पहले फ़नासे हो, जो हो तुझको बक़ा।
वर्ना है किसका निशाँ, "ज़ौक़े" फ़नाने रक्खा॥

मरने से पहले सांसारिक बन्धनों से अपने चित्त को हटा ले—अमर होने की यही एक तरकीब है; वर्ना मौत किसी का निशान नहीं छोड़ती।

छप्पय ।

जौं लौं देह निरोग, और जौं लौं न जरा तन ।
अरु जौं लौं बलवान् आयु, अरु इन्द्रिन के गन ।
तौं लौं निज कल्याण करन को, यत्न विचारत ।
वह पण्डित वह धीर वीर, जो प्रथम सम्हारत ।
फिर होत कहा जर्जर भये, जप तप संयम नहिं बनत ।
भव काम उठ्यौ निज भवन जब, तब क्योंकर कूपहि खनत ॥८८॥

88. As long as the body is in good health and old age is still far off, as long as the faculties of senses are strong and the end of life has not come, a wise man should try his best for his spiritual weal. When the house has caught fire what is the use of attempting to dig a well.

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता,
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः ।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये,
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥८९॥

हम ने इस जगत् में नम्रों को सन्तुष्ट करने वाली और वादियों का मान भञ्जन करने वाली विद्या नहीं पढ़ी, तलवार की धार से हाथी के मस्तक का पिछला भाग काट कर अपना यश स्वर्ग तक नहीं पहुँचाया; चाँदनी रात में सुन्दरी के कोमल

अधर-पल्लव (निचले होठ) का रस भी नहीं पिया। हाय! हमारी जवानी सूने घर में जलने वाले और आप ही बुझ जाने वाले दीपक की तरह यों ही गई! ॥८६॥

दोहा।

विद्या पढ़ी न रिपु दले, रह्यौ न नारि-समीप।
यौवन यह योंही गयो, ज्यों सूने गृह दीप ॥८६॥

89. We did not attain in this world literary knowledge which pleases the meek and puts down the vanity of the crowds of critics. Nor did we extend our fame up to the gates of Swarga by cutting down the backs of elephants' heads with the edge of a sword. Nor did we drink in the moonlight the flowery juice of the soft lower lips of our beloved ones. Alas! that our youth has passed away uselessly like a burning lamp in an empty house, which spends itself away without being of any use to anybody.

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं,
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये,
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥९०॥

अच्छे मनुष्यों में तो ज्ञान उन के मान-मद आदि का नाश करता है; किन्तु दुष्टों में वही ज्ञान, मद प्रभृति औगुणों की वृद्धि करता है। एकान्त स्थान योगियों के लिये तो मुक्ति

दिलाने वाला होता है; किन्तु वही कामियों की कामज्वाला को बढ़ाने वाला होता है ॥९०॥

जिस तरह स्वाति-बूँद सीप में पड़ने से मोती और केले में कपूर हो जाती है, किन्तु सर्प के मुख में पड़ने से विष का रूप धारण करती है; उसी तरह एक ही चीज़ पुरुष-भेद से अलग-अलग गुण दिखाती है। ज्ञान से अच्छे लोगों का अभिमान नाश हो जाता है, वे सब किसी को अपने बराबर समझते हैं, सब के साथ सहानुभूति रखते हैं, किसी का दिल नहीं दुखाते; किन्तु उसी ज्ञान से दुष्ट लोगों की दुष्टता और भी बढ़ जाती है, वे अपने सामने जगत् को तुच्छ समझते हैं; विद्याभिमान के मारे किसी की ओर नज़र उठा कर भी नहीं देखते, अपने सिवा सब को पशु समझते हैं। एक ही ज्ञान दो स्थानों में स्थान-भेद से अपना अलग-अलग प्रभाव दिखाता है। जैसे; एकान्त स्थान योगियों के चित्त को ब्रह्म विचार में लीन करता है और इस से उन को परम पद—मुक्ति—मिल जाती है; किन्तु वही एकान्त स्थान कामियों के दिलों में मस्ती पैदा करता है।

दोहा ।

ज्ञान घटावै मान मद, ज्ञानहि देय बढ़ाय ।
रहसि मुक्ति पावै यती, कामी रति लपटाय ॥९०॥

90. Knowledge serves the good men as a destroyer of their vanity and false pride. In some, it enhances the same evils. A lonely place is for the

spiritual salvation of those who practise self-restraint, while it increases hundredfold the lust of sensual people.

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं,
हन्ताङ्गेषु गुणाश्च वन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना।
किं युक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान्कालः कृतान्तोऽक्षमी,
ह्याज्ञातंस्मरशासनांघ्रियुगलंमुक्त्वाऽस्तिनान्यागतिः॥

हमारी इच्छायें हमारे हृदय में ही जीर्ण हो गईं, जवानी भी चली गई, हमारे अच्छे-अच्छे गुण भी क़दरदानों के न होने से बेकार हो गये, सर्वशक्तिमान् सर्वनाशक काल (मृत्यु) शीघ्र-शीघ्र हमारे पास आ रहा है; इसलिये अब हमारी समझ में कामारि शिव के चरणों के सिवा और जगह हमारी रक्षा नहीं है ॥६१॥

मनुष्य दुःखित होकर कहता है,—हमारे मन की मन में ही रह गई, हमारे अर्मान न निकले, और जवानी कूँच कर गई; अब उस के आने की भी उम्मीद नहीं, क्योंकि जवानी किसी की भी लौट कर आती सुनी नहीं।

मनुष्य की तृष्णा कभी नहीं बुझती, एक-पर-एक इच्छा उठा ही करती है। इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मौत आ जाती है। महाकवि ग़ालिब भी पछता कर कहते हैं:—

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसीं, कि हर ख़्वाहिश पै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अर्मान, लेकिन फिर भी कम निकले॥

महाकवि दाग़ भी घबरा कर कहते हैं:—

भरे हुए हैं हज़ारों अर्मां,
फिर उस पै है हसरतों-की-हसरत।
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही,
मैं दिल की वसअत से तंग होकर?॥

मेरे मन में हज़ारों वासनायें हैं, पर वासनाओं के पूर्ण न होने का दुःख भी कुछ कम नहीं है। हे ईश्वर! मैं अपने मन की विशालता से तंग आ गया। अब मेरा जी यही चाहता है, कि इस विराट् दिल से तंग होकर कहीं चला जाऊँ।

इसी तरह महात्मा सुन्दरदास जी भी कहते हैं—

तीनिहिं लोक अहार कियो सब,
सात समुद्र पियो पुनि पानी।
और जहाँ - तहाँ ताकत डोलत,
काढ़त आँख डरावत प्रानी॥
दाँत दिखावत जीभ हिलावत,
या हित मैं यह डाकिनि जानी।
"सुन्दर" खात भये कितने दिन!
हे तृष्णा! अजहूँ न अघानी॥

इस तृष्णा से सभी समझदार अन्त में दुःखी हुए हैं और उन्होंने पछता-पछता कर ऐसी ही बातें कही हैं। इस तृष्णा के फेर में मनुष्य का बुढ़ापा आ जाता है, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं होती।

बुढ़ापे में उस का ज़ोर और भी बढ़ जाता है। यह तीनों लोकों को खाकर और सातों सागरों को पीकर भी नहीं धापती। इस लिये मनुष्य को आशा-तृष्णा त्याग कर, परमात्मा में लौ लगानी चाहिये। जो नहीं चेतते, उन का परिणाम बुरा होता है। जब एक-दम से बुढ़ापा छा जाता है, शरीर अशक्त हो जाता है, तब कुछ भी नहीं होता। उम्र ख़तम होने या मृत्यु आ जाने पर, मनुष्य पछताता हुआ सब को छोड़ चला जाता है। कहा है:—

ये मम देश, विलायत हैं गज,
ये मम मन्दिर, ये मम थाती।
ये मम मात-पिता, पुनि बान्धव,
ये मम पूत, सु ये मम नाती॥
ये मम कामिनि, केलि करै नित,
ये मम सेवक, हैं दिन राती।
"सुन्दर" ऐसेहि छाँड़ि गयो सब,
तेल जर्यो, सु बुझी जब बाती॥

यह मेरा देश है, ये मेरे हाथी-घोड़े महल-मकान हैं, ये मेरे मां-बाप और बन्धु-बान्धव तथा नाती-पोते हैं, यह मेरी स्त्री और ये मेरे सेवक हैं; ऐसे करता-करता ही मनुष्य सब को छोड़कर चला जाता है। जिस तरह तेल के जल जाने पर दीपक बुझ जाता है; उसी तरह उम्र पूरी होने पर मनुष्य मर जाता है। अतः जवानी में स्त्री-पुत्र प्रभृति सब का

मोह छोड़, एकान्त में जा, परमात्मा का भजन करना चाहिये; क्योंकि बुढ़ापे में कुछ नहीं हो सकता। 'शेख़ सादी' ने कहा है और ठीक कहा है:—

जवान गोशानशीं, शेर मर्दे राहे ख़ुदास्त।
कि पीर ख़ुद न तवानद, ज़े गोशये बरख़ास्त॥

जवानी में जिन्होंने एकान्त में ईश्वर-भजन किया है, सच्चे भक्त वे ही हैं। बूढ़ा आदमी यदि एकान्तवास पर गर्व करे तो झूठा है, क्योंकि वह तो जहाँ पड़ा है वहाँ से सरक ही नहीं सकता।

जो लोग सारी उम्र संसारी जञ्जालों में बिता देते हैं और परमात्मा का भजन नहीं करते, उनका नक़शा स्वामी 'सुन्दर दासजी' ने ख़ूब ही अच्छा खींचा है:—

ग्रीव त्वचा कटि है लटकी।
कचहुँ पलटे, अजहुँ रतिवामी॥
दन्त गये, मुख के उखरे।
नख़रे न गये सु खरो ख़र कामी॥
कम्पत देह, सनेह सु दम्पति।
सम्पति जम्पत है निशि-जामी॥
'सुन्दर' अन्तहु भौन तज्यो।
न भज्यो भगवन्त, सु लौनहरामी॥

२०

मनुष्य की गरदन हिलने लगती है, खाल लटकने लगती है, कमर झुक जाती है, बाल सफ़ेद हो जाते हैं, तोभी स्त्री के साथ भोग करता है। मुँह के दाँत उखड़ जाते हैं, फिर भी कामी गधे के नखरे नहीं जाते। देह काँपती है; पर स्त्री से प्रीति रखता है और रात-दिन धन का जाप करता है। अन्त में घर छोड़ता है, पर नमकहराम मालिक का भजन नहीं करता।

छप्पय।

मनके मनहीं माँहि, मनोरथ वृद्ध भये सब।
निज अंगन में नाश भयो, वह यौवनहू अब।
विद्या है गई बाँझ, बूझवारे नहिं दीसत।
दौन्यौ आवत काल, कोपकर दशनन पीसत।
कबहूँ नहिं पूजे प्रीति सों, चक्रपाणि प्रभु के चरण।
भवबन्धन काटे कौन अब ? अजहूँ गहु रे हरि-शरण ॥९१॥

91. All our desires have been stifled within us. Our youth has been changed into old age. All our good qualities have resulted in fruitlessness through the absence of those who would appreciate them. The all-powerful Death, the destroyer of everything, is fast approaching. Now we have realised that there is no shelter for us, save that of the feet of Shiva, the enemy of Cupid.

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादुसुरभि,
क्षुधार्तः सञ्छालीन्कवलयति शाकादिवलितान्।

प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥९२

जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता है, तब वह शीतल जल पीता है; जब उसे भूख लगती है, तब वह साग और कढ़ी प्रभृति के साथ चाँवल खाता है; जब उसकी कामाग्नि तेज़ होती है, तब वह स्त्री को ज़ोर से गले लगाता है; विचार कर देखने से मालूम होता है, कि ये सब बीमारियों की एक-एक दवा हैं; परन्तु लोग इन्हें भूल से सुख के सामान मानते हैं! ॥९२॥

प्यास रोगकी दवा शीतल जल है; यानी शीतल जलसे तृषा नाश होती है। क्षुधारोगकी दवा रोटी-भात और साग-दाल प्रभृति हैं; यानी दाल-भात प्रभृति से भूख-रोग नाश होता है। कामाग्नि भी एक रोग है, उस के शान्त करने का उपाय स्त्री को छाती से लगाना है, यानी स्त्री का आलिङ्गन करने या चिपटाने से काम की आग ठण्डी हो जाती है। (दाह-ज्वर में, षोड़शी कामिनी को उस के शरीर में चन्दन लगा कर चिपटाने से बहुत लाभ होता है।) इन बातों पर विचार करने से साफ़ मालूम होता है, कि शीतल जल-पान, भिन्न भिन्न-प्रकार के भोजन और स्त्रियों का आलिङ्गन प्रभृति तृषा, क्षुधा और कामाग्नि प्रभृति रोगों की औषधियाँ हैं। इन को सुख समझना भूल नहीं तो क्या है ?

छप्पय।

प्यास लगे जब पान करत, शीतल सुमिष्ट जल।
भूख लगे तब खात, भात-घृत दूध और फल।
बढ़त काम की आगि, तबहिं नववधू-संग रति।
ऐसे करत विलास, होत विपरीत दैव-गति।
सब जीव जगत के दिन भरत, खात पियत भोगहु करत।
ये महारोग तीनों प्रबल, बिना मिटाये नहिं मिटत ॥९२॥

92. When men's throats are overpowered by thirst, they drink clear and delicious water. When they are stricken with hunger, they eat rice together with curry made of vegetables etc. When the consuming fire of lust is kindled, they embrace closely their wives. Each of these actions is a remedy for a separate malady, but people take delight in them mistaking them for pleasures!

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो त्वां ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले। आत्मारामोऽफलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः॥९३॥

हे शिव! हे कामारि! गङ्गा-स्नान कर के तुझ पर पवित्र फल-फूल चढ़ाता हुआ, तेरी पूजा करता हुआ, पर्वत की गुफा में शिला पर बैठा हुआ, अपने ही आत्मा में मग्न होता हुआ,

वन-फल खाता हुआ, गुरु की आज्ञानुसार तेरे ही चरणों का ध्यान करता हुआ, कब मैं इन संसारी दुःखों से छुटकारा पाऊँगा ? ॥६३॥

दोहा ।

नर-सेवा तजि, ब्रह्म भजि, गुरुचरणन चित लाय ।
कब गंगातट ध्यान धर, पूजोंगो शिव-पाय ? ॥६३॥

93 O Shiva, ememy of Cupid, when shall I be saved by Thy grace from the miseries of the world, bathing in the Ganges water, worshipping Thee with purified flowers and fruits, meditating on Thee as my idol, seated on a stone in a mountain cave, content with my own self, eating only wild fruits, obeying the commands of my religious preceptor, devoted to Thy feet and resolved to sit in contemplation as the only path to salvation ?

**शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः,
सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ।
येषां नैर्झरमम्बुपानमुचितं रत्यै च विद्याङ्गना,
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धा न सेवाञ्जलिः ॥६४॥**

मैं उनको परमेश्वर समझता हूँ, जो किसी के सामने मस्तक नहीं नवाते, जो पर्वत की शिला को ही अपनी शय्या समझते हैं, जो गुफ़ा को ही अपना घर मानते हैं, जो वृक्षों की छालों को ही अपने वस्त्र और जंगली हिरणों को ही अपने मित्र समझते हैं, वृक्षों के कोमल फलों से ही उदर की

अग्नि को शान्त करते हैं, जो कुदरती झरनों का जल पीते हैं और जो विद्या को ही अपनी प्राणप्यारी समझते हैं ॥६४॥

जो किसी चीज़ की चाह नहीं रखते, वे किसी की परवा नहीं करते, वे किसी के सामने मस्तक नहीं नवाते; जिन की वासनाओं का अन्त नहीं होता, वे ही जने-जने के सामने सिर झुकाते हैं। जो संसार के दास नहीं, वे सचमुच ही देवता हैं। उस्ताद 'ज़ौक़' ने कहा है:—

जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया।
फ़रिश्ता उसका हमपाया न पाया॥

जो मनुष्य संसार का दास नहीं—संसार का कुत्ता नहीं—वह देवताओं से कहीं ऊँचा है। देवता उस की बराबरी नहीं कर सकते। जिस में सांसारिक वासनाओं का लेश न हो, उस मनुष्य और देवताओं में कोई भेद नहीं।

सच्चे महात्मा, बन और पर्वतों को छोड़ कर, दुनिया में कभी नहीं आते। वे माँग कर नहीं खाते। उन्हें बन में ही जो कुछ मिल जाता है, वही खा लेते हैं।

महाकवि 'ग़ालिब' कहते हैं:—

बे तलब दें, तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है।
वह गदा, जिसका न हो ख़ूये सवाल, अच्छा है॥

बिना माँगे मिल जाने में बड़ा आनन्द है। फ़क़ीर वही अच्छा जिस में माँगने की आदत न हो।

और भी कहा है:—

दस्ते सवाल, सैकड़ों ऐबों का ऐब है।
जिस दस्त में यह ऐब नहीं, वह दस्त ग़ैब है॥

'कबीर' साहब ने भी कहा है:—

अनमाँग्या उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय।
कहे 'कबीर' निकृष्ट सो, पर-घर धरना देय॥
उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन।
कहै 'कबीर' ताके गहे, महा परम सुख-चैन॥

महापुरुष भगवान् के भरोसे रहते हैं, इसलिये उन्हें उन की ज़रूरत की चीज़ें उन के स्थान पर हीं मिल जाती हैं। वे संसार-रूपी काजल की कोठरी में आकर कालिख लगाना पसन्द नहीं करते। संसारी लोगों के साथ मिलने-जुलने में भलाई नहीं। संसार से दूर रहना ही भला। क्योंकि, मनुष्य जैसे आदमियों को देखता और जैसों की संगति करता है, वैसा ही हो जाता है। रागियों की संगति से वैरागी भी रागी या विषय-भोगी हो जाता है। जल और वृक्षों के पत्ते खाने वाले ऋषि स्त्रियों के देखने-मात्र से अपने तप से हीन हो गये। इसीलिये शास्त्रों में लिखा है कि, सन्यासी संसारियों से दूर रहे। वास्तविक महापुरुष जो सच्चे ब्रह्मज्ञानी या रासायनिक हैं; किसी के भी द्वार पर नहीं जाते। जिसे कुछ कामना होती है, वही किसी के द्वार पर जाता है। कामना-हीन पुरुष कभी किसी

के पास नहीं जाता। सच्चे महात्मा संसारियों से अपनी जान छिपाते हैं।

दो महात्मा जो राजा से मिलना नहीं चाहते थे।
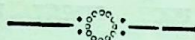
एक नगर के बाहर बन में दो बड़े ही त्यागी महात्मा रहते थे। राजा ने चाहा कि, मैं उन से मिलूँ। राजा अपने परिवार-सहित उन से मिलने गया। महात्माओं ने सोचा—यह तो बुरी बला लगी। इसे सदा को टालना चाहिये। आज यह आया है, कल नगर-भर आवेगा। फिर हम तो भजन ही न कर सकेंगे। जब राजा पास पहुँचा, तो वे आपस में लड़ने लगे। एक कहने लगा,—"तूने मेरी रोटी खाली।" दूसरे ने कहा—"तूने भी तो कल मेरी खा ली थी।" यह हाल देख कर राजा को घृणा हो गई और वह लौट आया। इस तरह महात्माओं के एकान्तवास में विघ्न न पड़ा।

संसारियों की संगति बुरी।

एक महात्मा कहीं से आकर काशी में रह गये। दस पाँच वर्ष बाद अनेक लोग उन्हें जान गये और उन्हें अपने-अपने घर

भोजन के लिये ले जाने लगे। महात्मा ने देखा कि, घरों में जाने से विक्षेप होता है, इसलिये उन्होंने अपनी लंगोटी ही उतार कर फेंक दी, कि नंगे रहने से लोग घरों पर न ले जायँगे। पर फल उल्टा हुआ, उन की महिमा और भी बढ़ गई। अब तो बड़े-बड़े राजा, रईस और ज़मीन्दार उन के दर्शनों को आने लगे। उन का सारा समय अमीरों से मिलने में ही बीतने लगा। इतने में एक और महात्मा आये और उन से एकान्त में पूछा—"क्या हाल है ?" महात्मा ने कहा—"बवासीर से मरते हैं।" आगन्तुक महात्मा ने कहा—"लोग तो आपको सिद्ध कहते हैं।" महात्मा ने कहा—"कहा करें, लोग मूर्ख हैं। हमारे चित्त में तो वासनायें भरी हैं, न जाने हमें किस योनि में जन्म लेना होगा ? हमारा तो सारा वैराग्य इन धनियों की संगति में ही नष्ट हो गया।" सच है, निवृत्ति-मार्ग वालों को प्रवृत्ति-मार्ग वालों की संगति करना अच्छा नहीं।

छप्पय।

बसैं गुहागिरि, शुचित शिला शय्या मनमानी।
वृक्षबकल के वसन, स्वच्छ सुरसरिको पानी।
बनमृग जिनके मित्र, वृक्षफल भोजन जिनके।
विद्या जिनकी नारि, नहीं सुरपति सम तिनके।
ते लगत ईश-सम मनुज मोहि, तनुशुचि ऐसे जग भये।
जे पर-सेवा के काज को, हाथ नाहिं जोरत नए ॥६४॥

94. I think such persons are only affluent who do not bow their heads to any one, who make a mountain stone their bed, a cave their home, the bark of trees their clothes, the wild deer their friends and the soft fruits of wild trees their food, who drink the water coming out of natural springs and who consider knowledge only to be their beloved wife.

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीविच्छटायां
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यां वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च।
कोऽयं विद्वान्विपत्तिज्वरजनितरुजाऽतीवदुःखासि-
कानां वक्त्रं वीक्ष्येत दुःस्थे यदि हि न बिभृयात्स्वे-
कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ॥६५॥

जबकि गङ्गा, जो शिवजी के मस्तक को चूमती हुई भली मालूम होती है, बड़ की डालियों की छालों और अपने तट पर लगे हुए फलों से आदमी का गुज़ारा करने को तैयार है, तब कौन विद्वान् या ज्ञानी, यदि दुःखित कुटुम्बियों पर दया न आती तो, कङ्गाली की मुसीबतों से आह भरती हुई—दुःखसे गहरे साँस लेती हुई—स्त्री का मुख देखना चाहता ? ॥६५॥

मतलब यह है कि, पुरुष को किसी प्रकार का भी दुःख उठाने की ज़रूरत नहीं, उसे गङ्गा ही सब कुछ देने को तैयार है। वह गङ्गाजल पीकर और उस के किनारे पर उगे हुए बनफल खाकर और वटवृक्ष की छालों के कपड़े पहन कर गुज़ारा कर सकता है, पर स्त्री के कारण वह ऐसा कर नहीं सकता। सारांश यह कि, सब दुःखों की मूल स्त्री है। यदि

कुटुम्ब-वृद्धि की ज़रूरत न हो, तो स्त्री की दरकार नहीं, और यदि स्त्री न हो तो फिर दुःख ही क्या ? लोगों की ख़ुशामद करने, जने-जने की लल्लोपत्तो करने, दुष्टों के कटुवचन सुनने कों स्त्री ही मजबूर करती है। दया के मारे, पुरुष से उसका और उस के बच्चों का कष्ट देखा नहीं जाता।

छप्पय।

सोहत जो शिव-सीस-जटा, सुरसरि की धारा।
बटतरु-बल्कल फूल, जासु सदवृत्ति अपारा॥
त्याग सुखद अस गंग, कौन ऐसो नर वो है।
परिजन करुणाहीन; नारिको आनन जोहै ?॥
दीर्घ श्वाससों विपत्ति-ज्वर, जीरण भारी गहतु हैं।
सब विधि यह दुखकी खान; अति निर्दय जेहि त्रिय कहतु हैं॥९५॥

95. When the Ganges which looks beautiful in her action of kissing the Shiva's head, is ready to supply a livelihood by offering the bark of banyan trees and good fruits growing on her banks, what wise man would care to look at the face of a wife heaving deep sighs of distress caused by extreme poverty, were it not for kindness towards the afflicted members of his family ?

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः,
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम्।
आसन्नं मरणं च मंगलसमं यस्यां समुत्पद्यते,
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥९६

आश्चर्य की बात है, कि लोग काशी छोड़कर और जगह क्यों बसते हैं, जहाँ उपवनों में नाना प्रकार के भोजन बनाकर खाना ही कठिन तप है, जहाँ लंगोटी पहनना ही बढ़िया कपड़ा है, जहाँ भीख माँगना ही प्रतिष्ठा है और जहाँ मौत का आना ही परम मंगल समझा जाता है ? ॥६६॥

लोगों का ख़याल है, कि जो काशी में मरता है, उस की मोक्ष हो जाती है; इसी से अनेक लोग वृद्धावस्था आते ही सब को छोड़ काशी में जा बसते हैं। वहाँ मौत से कोई नहीं डरता; वहाँ की मृत्यु को लोग परम शान्तिदायिनी समझते हैं*। वहाँ कोपीन लगाकर भीख माँगने वाले बुरी नज़र से नहीं देखे जाते, इसलिए लोगों को काशी-बास करना चाहिये।

कुण्डलिया।

काशी में जहँ शिव बसत, बैठ तासु उद्यान।
विविध अशन-सम तप नहीं, देख्यौ उग्र महान॥
देख्यौ उग्र महान, भीख जहँ सुन्दर भूषण।
खण्ड एक कोपीन, वसन बहुमूल्य अदूषण॥
मरणहि मंगलकरण, मिलै जहँ हर अविनाशी।
को ऐसो विद्वान्, तजै जो ऐसी काशी ? ॥६६॥

---

* आज-कल भी इस ख़याल के लोग बहुत हैं, पर पहले-जितनी महिमा अब नहीं। जो आत्मज्ञानी हैं, वे तीर्थों में नहीं जाते; क्योंकि स्वयं परमात्मा उनके हृदय-कमल में मौजूद है। हाँ, जो अज्ञानी हैं, वे ही तीर्थ बास करते और तीर्थों में शरीर त्यागना चाहते हैं।

अरे मूर्ख ! विश्वेश की शरण में क्यों नहीं जाता, जिनके द्वार पर रोकनेवाले दरवान नहीं हैं । जहाँ निर्दय और कठोर बचनों का नाम भी नहीं है ?

(पृष्ठ ३१७)

96. It is a wonder why wise men like to take up their abode in any other place than Kashi; where partaking of different kinds of eatables in gardens is the most auster penance, where the wearing of a narrow strip of loin-cloth is considered as respectable dress, where unrestricted wandering beggary is thought to be honourable and where the near approach of death is looked upon as bringing everlasting bliss!

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि,
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥९७॥

हे मन ! *जिन के द्वार पर,—"मालिक-मकान से मिलने का यह समय नहीं है, वे इस समय एकान्त में बैठे हैं, वे इस वक्त सो रहे हैं; अगर तुम्हें यहाँ खड़ा देखेंगे तो नाराज़ होंगे"—ऐसी बातें सुनाई देती हैं, उन को त्याग कर, विश्वेश की शरण में जा, जिन के द्वार पर रोकने वाला दरबान नहीं, जहाँ निर्दय और कठोर वचन कभी सुनने में नहीं आते, जो अनन्त और नित्य सुख के देने वाले हैं ॥९७॥*

मूर्ख मनुष्य, ना-समझी के कारण, वृथा अमीरों के दरवाज़े पर जाता है और अपमान-सूचक बातें सुनता है। जिन के यहाँ

जाता है उन से मिलने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करता है, दरबानों की तरह-तरह की बेढङ्गी बातें सुनता है। अगर वह कुछ भी अक़्ल से काम ले, तो उसे उस के द्वार पर जाना चाहिए, जहाँ कोई रोकने वाला नहीं है, जहाँ दिल दुखाने वाली बातों का नाम भी नहीं है; जो सारे संसार का स्वामी और नित्य सुख के देने वाला है। वह क्या उस की इच्छा पूरी न करेगा? अवश्य पूरी करेगा। जो बिना जड़ की अमरबेल को पोषता है, उसे छोड़ कर और को खोजना भूल की बात है। 'रहीम' कवि कहते हैं।

अमर-बेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
"रहिमन" ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि?॥

रहीम कवि कहते हैं, जो प्रभु बिना मूल की अमरबेल की प्रतिपालना करता है, ऐसे प्रभु को छोड़ कर किसे खोजते फिरें?

और भी—

(१)

जा दिन ते गर्भवास तज्यो नर।
आइ आहार लियो तब ही को॥
खातहि खात भये इतने दिन।
जानत नाहिंन भूख कहीं को॥

दौरत धावत पेट दिखावत ।
तू शठ कीट सदा अनही को ॥
"सुन्दर" क्यूँ विश्वसि न राखत ? ।
सो प्रभु विश्व भरै सब ही को ॥

(२)

खेचर भूचर जे जलके चर ।
देत आहार चराचर पोषे ॥
वे हरि जो सब कूँ प्रतिपालत ।
ज्यूँ जिहि भाँति तिसी विधि तोषे ॥
तू अब क्यूँ विश्वास न राखत ? ।
भूलत है कित धोखहि धोखै ॥
तोहि तहाँ पहुँचाय रहे प्रभु ।
"सुन्दर" बैठि रहे किन ओखै ? ॥

ईश्वर की शरण में जाने से अभाव नहीं रहता ।

——::o::——

एक राजा बड़ा आलसी और विषयी था। वह राज-काज को ज़रा भी न देखता था। सारा भार वज़ीर के सिर पर था। वज़ीर यदि किसी ज़रूरी काम की आज्ञा लेने को आता, तो राजा उसे घण्टों द्वार पर बिठाये रखता, पर अन्दर न बुलाता।

इस से मंत्री को घृणा हो गई; उस ने घर आकर पुत्रों से कहा कि चार घण्टों में जितना धन और सामान ले जा सकते हो, दूसरे राजा के राज्य में ले जाओ। मैं अब इस संसार को त्याग कर परमात्मा से लौ लगाऊँगा। लड़के जितना धन ले जा सके ले गये। शेष धन वज़ीर ने ग़रीबों को लुटा दिया और आप किसी और राजा के राज में झोंपड़ी बना कर तप करने लगा।

दो-तीन दिन बाद जब उस विषयी राजा के राज्य में गड़बड़ फैली, उसे अपने प्रधान मन्त्री की याद आई। बुलाने को आदमी भेजे, तो मालूम हुआ, कि वह तो संन्यासी हो गया है। राजा स्वयं उस के पास गया और बोला—"हे मन्त्रिवर! तुम इतने बड़े राज्य के प्रधान मन्त्री और कर्त्ता-धर्त्ता थे, तुमने वह सब सुखैश्वर्य छोड़ क्यों बन में डेरा लगाया है? तुम्हें इस में क्या मिला?"

मन्त्री ने कहा—"महाराज! ईश्वर की शरण में आने से इतना तो दो-चार दिन में ही मिल गया कि, घण्टों आपके द्वार पर आपकी प्रतीक्षा में पाँव पीटा करता था, पर आप दर्शन तक न देते थे; पर आज श्रीमान्, सपरिवार, मेरे स्थान पर, मुझे आदरणीय समझ कर, इस सघन बन में पधारे हैं। यह तो दो-तीन दिन की कमाई है। आगे की बात फिर पूछ सकते हैं।" इस में शक नहीं, जो सब की आशा तज कर एक परमात्मा की शरण में जाता है, उसे कोई अभाव नहीं रहता; पर पक्के और दृढ़ विश्वास की ज़रूरत है।

ईश्वर को जो जिसी कामना से भजता है, उस की वह कामना अवश्य पूरी होती है। पर जो कोई उसे निष्काम भक्ति से भजता है, उसे स्वयं ईश्वर मिलता है; और जब वह मिल जाता है, तब कुछ भी घाटा नहीं रहता; त्रिलोकी की सम्पदा उस के चरणों में ज़बर्दस्ती आना चाहती है। अतः बुद्धिमानों को परमात्मा को छोड़ और किसी के आगे दीनता न करनी चाहिये। मनुष्य के पास है ही क्या ? कोई छोटा भिखारी है और कोई बड़ा। जिसे किसी भी चीज़ की चाह नहीं, वही सच्चा धनी है। ऐसा धनी करोड़ों में एक भी नहीं; तब मँगते को मँगते से माँगना क्या उचित है ?

ईश्वर ही कामना पूरी कर सकता है।

एक राजा ने किसी राजा का राज्य छीन लिया। वह राजा तप करने लगा। कुछ दिन बाद उस की प्रशंसा सुन कर राजा उस तपस्वी-राजा के पास गया और बोला—"आप अपना राज्य वापस लीजिये; इस के सिवा आप जो और माँगें सो दूँ।" तपस्वी राजा ने कहा—"राजन्! आप को धन्यवाद है; पर यदि आप मृत्यु रहित जीवन, नित्य धन, वृद्धावस्था-रहित जवानी, बिना दुःख का सुख और बिना रंज की खुशी दे सकें तो दीजिये।" राजा ने कहा—"इन्हें तो मैं नहीं दे सकता। ये सब तो ईश्वर से ही मिल सकते हैं।" यह जवाब सुन तपस्वी-राजा ने कहा—

"इसी से मैं अब सब को छोड़ ईश्वर की शरण में आया हूँ कि मेरी इच्छा पूरी हो; क्योंकि मनुष्यों से यह काम हो न सकेगा।"

अनेक अज्ञानी जिन्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं, मन में समझते हैं कि, ईश्वर हमें खाने को देने थोड़े ही आवेगा। यह उन की ग़लती है । ईश्वर उन को भी खाना पहुँचाता है, जो उसे कभी याद भी नहीं करते। फिर; जो उसे याद करते हैं, उन्हें वह क्यों न खाना पहुँचावेगा ? अवश्य पहुँचावेगा, बशर्ते कि उसमें दृढ़ विश्वास हो। अपने भक्तों के लिये ईश्वर हरदम तैयार रहता है।

नापित-भक्ति के लिये ईश्वर नापित बना।

एक नाई दुर्योधन के पैर चापा करता था। एक दिन उस के चलने के समय दो महात्मा उसे उस के द्वार पर मिल गये। वह उन्हें ईश्वरभक्त समझ, उनकी सेवा में लग गया और राजा के यहाँ जाने की बात भूल गया। समय पर राजा ने नाई की याद की। भगवान् नाई का रूप धरकर दुर्योधन के पास पहुँचे और उस के पैर दाबने लगे। अन्त में अपने भक्त की नौकरी पूरी कर के, वह वहाँ से चले गये। इतने में नाई डरता काँपता हुआ पहुँचा और राजा से क्षमा-प्रार्थना करने लगा। दुर्योधन ने कहा—"अरे! पागल हो गया है क्या !अभी-अभी तो तू मेरे

पैर दाब ही रहा था।" इस बात को सुनकर नाई समझ गया कि, भगवान् ने स्वयं मेरे लिये नाई का काम किया है। इतनीसी भक्ति-उपासना का यह फल! अब मैं उनको छोड़ दूसरे की ख़ुशामद और सेवा क्यों करूं? ऐसा विचार कर वह घर छोड़ वन में चला गया।

भगवान् का दूसरा नाम विश्वम्भर है। जो विश्व—संसार का पालन करता है, उसे ही विश्वम्भर कहते हैं। भगवान् त्रिलोकी के जीवमात्र को उन का आहार पहुँचाते हैं, इस में शक़ नहीं। एक सच्ची घटना है, पाठक सुनें —

ईश्वर ही सब की पालना करता है।

एक बार महाराज शिवाजी एक बहुत बड़ा महल बनवा रहे थे। उस में हज़ारों मज़दूर और कारीगर लग रहे थे। जन्हें देखकर शिवाजी के मन में अहंकार हुआ कि, मैं ऐसा हूँ, जो इतने मनुष्यों को रोज़ रोटी देता हूँ। इतने में समर्थ स्वामी रामदास आ गये। वे महाराज के मन की ताड़ गये। बोले— " राजन्! सामने जो पत्थर पड़ा है उस के दो टुकड़े कराइये।" राजा के हुक्म से पत्थर के दो टुकड़े किये गये। उस शिला के भीतर एक मोटा-ताज़ा मेंड़क निकला। उसे देखते ही शिवाजी विस्मय में डूब गये। स्वामीजी ने कहा—"राजन्! इस पत्थर के भीतर इस मेंडक को खाना कौन पहुँचाता था?" मनुष्य कोई

चीज़ नहीं, उसे स्वयं तृष्णा है, अतः वह दरिद्री है। सब की पालना करने वाले और प्रेम के साथ पालना करने वाले वही भगवान् हैं!

नरसी मेहता की हुण्डी का भुगतान साहूकार का रूप धर कर स्वयं भगवान् ने किया। द्रौपदी और दुर्वासा के मामले में भगवान् वन में दौड़े आये और द्रौपदी की लाज रक्खी तथा राजा अम्बरीष की दुर्वासा से रक्षा की। ऐसे बहुत से दृष्टान्त हैं। मनुष्य को सदा परमात्मा से माँगना चाहिये। उस का भण्डार अक्षय है और वह परम दयालु है।

पिता पुत्र की इच्छा अवश्य पूरी करता है।

एक वैश्य निर्धनता से तंग आकर काशी चला गया और वहाँ रोज़गार करने लगा। कुछ समय बाद उस के पास लाखों-करोड़ों का धन हो गया। वह एक मन्दिर बनवाने लगा। घर से चलते समय वह एक छोटा-सा लड़का छोड़ गया था। लड़का जब १६-१७ वर्ष का हो गया, उस ने माँ से पिता का पता पूछा। माँ ने कहा—"मुझे तो पता नहीं।" यह सुनते ही पुत्र अपने पिता की तलाश में चल निकला। माँ को भी उस ने अपने साथ ले लिया कुछ दिनों बाद, बड़ी-बड़ी तक़लीफ़ें उठाकर, वह काशी पहुँचा और पेट पालने के लिये उसी मन्दिर में मज़दूरी करने लगा। सेठ ने उसे नया मज़दूर समझ, उस से उस का निवास-स्थान

और पिता का नाम पूछा। उस ने सब बता दिया और कहा कि माँ भी आई है। सेठ ने अपनी स्त्री को पहचान, पुत्र को छाती से लगा लिया और उसे सारा धन दे दिया। इस दृष्टान्त से यह समझना चाहिये कि, इसी तरह जो पुरुष तक़लीफ़ें उठा कर परमेश्वर की खोज करता है, परमेश्वर उसे अवश्य मिल जाता है और अपने पुत्र की इच्छा पूरी करता है।

अहंकार को त्याग कर, विशुद्ध मनसे, परमात्मा की खोज करो। वह दूर नहीं, तुम्हारे भीतर ही मौजूद है। खोज करने से तुम्हें अवश्य मिल जायगा। किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है:—

है तजस्सुस शर्त्त याँ, मिलने को क्या मिलता नहीं।
है ख़ुदी जब तक इन्साँ में, ख़ुदा मिलता नहीं॥

तलाश शर्त है; तलाश करने वालों को क्या नहीं मिलता? जब तक मनुष्य में खुदी या अहंकार है, तब तक उसे ईश्वर नहीं मिलता। अहंकार से हृदय शुद्ध हुआ और ईश्वर-दर्शन हुए। यदि ईश्वर मिल गया, तो जगत् का राज्य मिल गया। अतः मनुष्यो! मनुष्यों की खुशामद छोड़, केवल दयासिन्धु जगदीश की शरण में जाओ। वह बिना अपमान किये, प्रेम के साथ आप के अभावों को सुने और दूर करेगा तथा आप को नित्य-स्थायी सुख-शान्ति बख़्शेगा।

छप्पय ।

बैठ पौरिया द्वार, छड़ी कर पहरौ राखत ।
सोवत स्वामि हमार, जाहु तुम ऐसे भाषत ।
करि हैं क्रोध अपार, लखैं जो तुमको द्वारे ।
जाहु विश्वपति-द्वार, तहाँ नहिं रोकनहारे ।
जहँ निर्दय कटुवादी नहीं, अवाशि तहाँ चलि जाइये ।
वहँ निर्भय ब्रह्मानन्द-सुख, ब्रह्मानन्द तहँ पाइये ॥९७॥

97. O mind, leaving dependence on those at whose doors such answers are heard, as, "It is not the proper time for you to see the master of the house, as he likes to be alone now, or is asleep, and if he happens to find you standing here, he will be offended," etc. do thou take thy shelter in the mansion of the Lord of the universe at Whose doors there is no sentinel, where no unsympathetic and harsh words are heard and who is the Giver of eternal happiness.

**प्रियसखि विपद्दण्डव्रातप्रतापपरम्परा-
तिपरिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ॥
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्-
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥९८॥**

हे प्यारी सखी बुद्धि ! कुम्हार जिस तरह गीली मिट्टी के लौंदे को चाक पर चढ़ा कर डंडे से चाक को बारम्बार

घुमाता है और उस से इच्छानुसार बर्तन तैयार करता है; उसी तरह संसार को गढ़ने वाला ब्रह्मा हमारे चित्त को चिन्ता के चाक पर चढ़ा कर, विपत्तियों के डण्डे से चाक को लगातार घुमाता हुआ, हमारा क्या करना चाहता है, यह हमारी समझ में नहीं आता ? ॥६८॥

मनुष्य के पीछे भगवान् ने चिन्ता बुरी लगा दी है। बात यह है, कि मनुष्य के पूर्व जन्म के कर्मों के कारण या इस जन्म की भूलों के कारण, उसे विपत्तियाँ भोगनी ही पड़ती हैं। विपत्तियों से पार होने के लिये, मनुष्य रात-दिन चिन्तित रहता है। चिन्ता या फिक्र से मनुष्य का रूप-रङ्ग आदि सब नष्ट होकर शीघ्र ही बुढ़ापा आ जाता है। आज-कल ४० बरस की उम्र में ही लोग बूढ़े हो जाते हैं, इसका कारण चिन्ता ही है। अगर चिन्ता न होती, तो मनुष्य को कुछ दुःख न होता। जहाँ तक हो, मनुष्य को चिन्ता को पास न आने देना चाहिये; क्योंकि चिन्ता चिता से भी बुरी है। चिता मरे हुए को भस्म करती है, पर चिन्ता जीते हुए को ही जलाकर खाक कर देती है; अतः चिन्ता से दूर रहो। स्त्री पुत्र और धन की चिन्ता में अपनी अमूल्य दुर्लभ काया का नाश न करो; क्योंकि ये स्त्री पुत्र प्रभृति तुम्हारे कोई नहीं। अगर चिन्ता और विचार ही करना है, तो इस बात का करो कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो ? स्वामी शंकराचार्य ने "मोहमुद्गर" में कहा है:—

का तव कान्ता ? कस्ते पुत्रः ?
संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं वा ? कुत आयातः !
तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः॥

कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र है ? यह संसार अतीव विचित्र है। तू कौन है ? कहाँ से आया है ? हे भाई ! इस तत्त्व की चिन्ता कर; अर्थात् न कोई तेरी स्त्री है और न कोई तेरा पुत्र है, वृथा चिन्ता क्यों करता है ?

तू कौन है ? कहाँ से आया है ? क्यों आया है? तूने अपना कर्त्तव्य पालन किया है या नहीं ? तेरा अन्तिम परिणाम क्या है ? इत्यादि विचारों द्वारा अपने स्वरूप को पहचान जाने अथवा ईश्वर की शरण में चले जाने से ही चिन्ता से पीछा छूटेगा और शान्ति मिलेगी। निश्चय ही, चिन्ता और विपत्तियों से बचने के लिये, भगवान् का आश्रय लेना सर्वोपरि उपाय है। विपत्ति रूपी समुद्र में डूबते हुए के लिए भगवान् का नाम ही सच्चा सहारा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है:—

"तुलसी" साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम-भरोसो एक॥
"तुलसी" असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, रामशरण आधार॥

खेलत बालक व्याल सँग, पावक मेलत हाथ।
"तुलसी" शिशु पितु मातु इव, राखत सिय रघुनाथ॥
"तुलसी" केवल राम-पद, लागे सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ, कतहुँ रहै किन देह॥

सारांश यह, कि जो हमारे चित्त को चिन्ता के चाक पर चढ़ाकर विपत्तियों के डण्डे से घुमाता है, यदि हम उस की ही शरण में चले जाँय, उसीसे प्रेम करें, तो वह हमारे चित्त को चिन्ता के चाक पर न रक्खे, अर्थात् हमें चिन्ताग्नि में न जलना पड़े; सुख-शान्ति सदा हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े रहें। यह बला उन्हीं को खाती है, जो भगवान् से विमुख रहते हैं। इसलिए यदि इस चिन्ता-डायन से बचना चाहो, तो परमात्मा को भजो।

दोहा।

मन को चिन्ताचक्र धर, खल विधि रह्यौ घुमाय।
रचि है कहा कुलालसम, जान्यौ कछू न जाय॥६८॥

98. O friend, we do not know what the unfriendly Brahma, the creator of the world, will do to us, bent as he is on revolving our minds mercilessly fixing them on the wheel of cares, made unceasingly to turn round and round by the application of the stick of vicissitudes like a clever potter who puts a lump of wet clay on his wheel and by turning it round with a stick shapes it into any desired vessel.

**महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥६६॥**

यद्यपि मुझे विश्वेश्वर शिव और सर्वात्मन विष्णु में कोई भेद नहीं दीखता; तथापि मेरा मन उन्हीं की ओर झुकता है, जिन के मस्तक में तरुण चन्द्रमा विराजमान है; अर्थात् मैं शिव को ही चाहता हूँ ॥६६॥

विष्णु और शिव में कोई भेद नहीं, एक ही परमात्मा के अलग-अलग नाम हैं, वही कृष्ण हैं, वही रघुनाथ हैं, वही राम हैं और वही शिव हैं। पर फिर भी; जिस नाम का आश्रय ले लिया उसी का भरोसा करना ठीक है। मन भटकाना अच्छा नहीं।

एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी वृन्दावन गये। वहाँ उन्हें भगवान् कृष्ण के दर्शन हुए। भगवान् की बाँकी झाँकी देख कर गोस्वामी जी मुग्ध हो गये, पर उन्हों ने उन को सिर न नवाया; क्योंकि उन के इष्टदेव रामचन्द्र जी थे। उन्हों ने उस समय कहा:—

*कहा कहूँ छवि आज की, भले बने हो नाथ।
"तुलसी" मस्तक जब नवै, धनुष बाण लेओ हाथ॥*

आप की छवि आज बहुत ही मनोमुग्धकर है, पर मैं तो आप को तभी प्रणाम करूँगा, जब आप धनुषबाण हाथ में

ले कर रामचन्द्र बनोगे। भगवान् को तत्काल रामरूप धर, धनुषबाण हाथ में लेना पड़ा। यह काम भगवान् को भक्त की दृढ़ता देख कर करना पड़ा।

प्रीति, पपैहये की सच्ची और आदर्श है। वह चाहे प्यासा मर जाय, पर मेघ के सिवा किसी भी जलाशय का जल नहीं पीता। "उत्तर चातकाष्टक" में लिखा है:—

पयोद हे! वारि ददासि वा न वा,
त्वदेकचित्तः पुनरेष चातकः।
वरं महत्या म्रियते पिपासया,
तथापि नान्यस्य करोत्युपासनाम्॥

हे मेघ! तू जल दे चाहे न दे, चातक तो तेरा ही आश्रय रखता है। घोर प्यास से मर भले ही जाय, पर वह दूसरे की उपासना नहीं करता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है:—

चातक घन तजि दूसरे, जियत न नाई नारि।
मरत न माँगे अर्धजल, सुरसरिहू को वारि॥
व्याधा बधो पपीहरा, परो गंगजल जाय।
चोंच मूँदि पीवे नहीं, धिक पीवन प्रण जाय॥

चातक ने मेघ को छोड़ और किसी को अपनी ज़िन्दगी में सिर न नवाया। मरते समय गङ्गा का जल भी ग्रहण न किया। किसी शिकारी ने किसी चातक को मारा। वह गङ्गा जी में गिर

पड़ा, प्यास के मारे घबरा रहा था, पर गङ्गा जल नहीं पीता था। उस ने उल्टी चोंच बन्द कर ली; कि कहीं जल मुख में न चला जाय और मेरा प्रण टूट जाय। वाह वाह! प्रीति और भक्ति हो तो ऐसी ही हो।

सारांश यह है, कि भगवान् के भी जिस नाम से प्रेम हो, उसे छोड़ कर दूसरे से प्रेम न करना चाहिये। एक ही पति की स्त्री होने में भलाई है। जिस के अनेक पति होते हैं, उस का भला नहीं होता। अनेक देवी-देवताओं के उपासक चातक से शिक्षा ग्रहण करें। कहा है:—

पतिव्रता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन-मैली व्यभिचारिणी, जाके खसम अनेक॥
पतिव्रता पति को भजै, और न अन्य सुहाय।
सिंह-बचा जो लंघना, तो भी घास न खाय॥
"कबिरा" सीप समुद्र की, रटे पियास-पियास।
सकल बूँद को ना गिनै, स्वाति बूँद की आस॥
प्रीति रीति तुझ सों मेरे, बहु गुनियाला कन्त।
जो हँसि बोलूँ और सूँ, तो नील रँगाऊँ दन्त॥

पतिव्रता, जिस के एक पति होता है, सदा सुखी रहती है; किन्तु अनेक खसम वाली व्यभिचारिणी सदा दुःखी रहती है। पतिव्रता सदा अपने पति को ही चाहती है; उसे दूसरा अच्छा नहीं लगता। सिंह का बच्चा, लङ्घन-पर-लङ्घन करने पर भी,
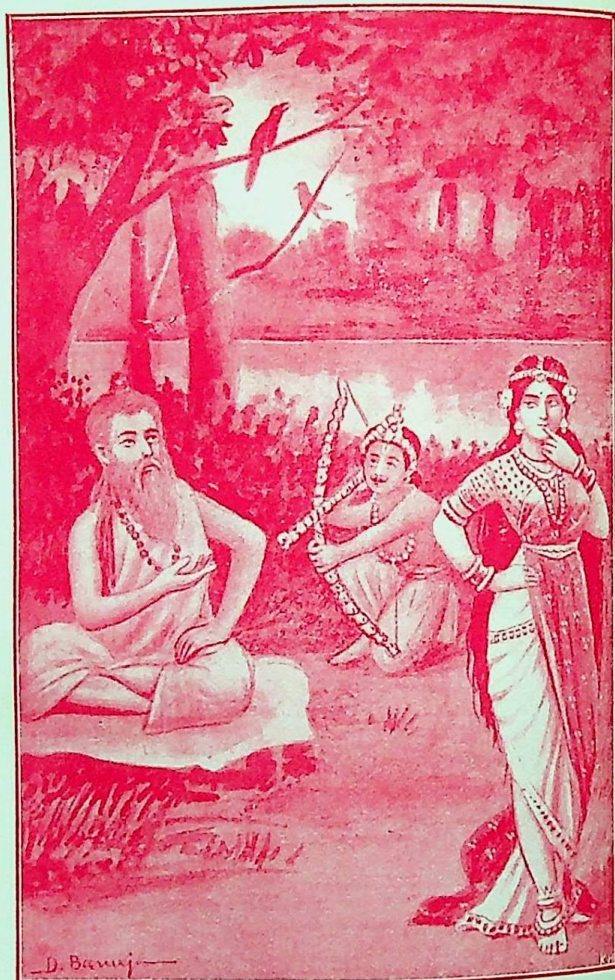
"हे कामदेव ! तू धनुष्टङ्कार के लिये क्यों बारम्बार हाथ उठाता है ? हे कोकिल ! तू क्यों कुहु-कुहु करती है ? हे स्त्री ! तू क्यों मधुर-मधुर कटाक्षवाण चलाती है ? अब तुम सब मेरा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि अब मेरे चित्त ने शिव के चरण चूम कर अमृत पी लिया है।" पृष्ठ ३३३

घास नहीं खाता। कबीरदास कहते हैं, समुद्र की सीप प्यास-प्यास रटा करती है; कितनी ही बूँदें क्यों न गिरें, उसे तो स्वाति की बूँद ही प्यारी लगती है। मेरे गुणनिधान कन्त! मेरी प्रीति तुझ से है। जो मैं दूसरे से हँस कर बोलूँ तो मेरा काला मुँह हो।

दोहा।

नाहिन शिव अरु विष्णु में, सूझै अन्तर मोय।
तदपि चन्द्रशेखर लखत, प्रीति अधिक कछु होय ॥९९॥

99. Although I see no difference between Shiva, the Lord of the universe, and Vishnu the Omnipresent, but my love flows towards the One who bears the new moon on his forehead, i. e., Shiva.

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितैः,
रे रे कोकिल कोमलैःकलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्त्तते ॥१००॥

हे कामदेव! तू धनुष्टङ्कार सुनाने के लिये क्यों बार-बार हाथ उठाता है? हे कोकिला! तू मीठी-मीठी सुहावनी आवाज़ में क्यों कुहु-कुहु करती है? ऐ मूर्खा स्त्री! तू अपने मनोमोहक मधुर कटाक्ष मुझ पर क्यों चलाती है? अब तुम

मेरा कुछ नहीं कर सकते; क्योंकि अब मेरे चित्त ने शिव के चरण चूम कर अमृत पी लिया है ॥१००॥

जब तक मनुष्य का मन ब्रह्मानन्द का मज़ा नहीं जानता, जब तक वह परमात्मा के चरणों में ध्यान लगा कर अमृत नहीं पीता, तभी तक कामदेव का ज़ोर चलता है, तभी तक कोकिला का पञ्चम स्वर उस के दिल में खलबली पैदा करता है, और तभी तक स्त्री के कटाक्ष-बाण उस पर असर करते हैं। कामारि शिव से प्रीति होने पर ये सब कुछ नहीं कर सकते। भगवान् शिव और कामदेव में बैर है; अतः शिवभक्तों पर कामदेव अपने अस्त्र नहीं चला सकता।

छप्पय।

अरे काम बेकाम, धनुष टंकारत तर्जत।
तू हू कोकिल व्यर्थ बोल, काहे को गरजत ॥
तैसे ही तू नारि, वृथा ही करत कटाच्छै।
मोहि न उपजै मोह, छोह सब रहिगे पाछै ॥
चित चन्द्रचूड़ के चरण को, ध्यान अमृत वरषत हिते।
आनन्द अखण्डानन्द को, ताहि अमृत सुख क्यों हिते॥१००॥

100. O Cupid, why dost thou raise thy hand repeatedly to make the sound of thy bow-string audible ? O cuckoo, why dost thou prattle in vain uttering forth thy soft and melodious strains ? O foolish woman, let alone thy loving and sweet

coquetries, as my mind has now drunk the nectar of kissing the feet of Shiva in prayer.

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी,
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने ।
मित्रामित्रसमानताऽतिविमला चिन्ताऽथशून्यालये,
ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥१०१

वही योगी सुखी है, जो एक दम से फटी-पुरानी सैकड़ों चिथड़ों से बनी कोपीन पहनता है और वैसी ही गुदड़ी ओढ़ता है, जिस के पास चिन्ता नहीं फटकती, जो सुख से मिला हुआ भिक्षान्न खाता है, जो श्मशान-भूमि या वन में सो रहता है, जो मित्र और शत्रुओं को समान समझता है, जो सूनी झोंपड़ी में ध्यान करता है और जिस के मद और प्रमाद सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गये हैं ॥१०१॥

फटी-पुरानी कोपीन पहनने, चिथड़ों की गुदड़ी ओढ़ने, निश्चिन्त रहने, सुख से मिले भिक्षान्न के खाने, मरघट या जंगल में सो रहने, दोस्त और दुश्मन को बराबर समझने और नितान्त सूने घर में पवित्र ध्यान करने से जिस के मद और प्रमाद नष्ट हो गये हैं, वही योगी संसार में सुखी है। ऐसे महापुरुषों को किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं होती । जिसे किसी चीज़ की इच्छा नहीं, उसे किस की ग़रज़ ? जो मित्र और शत्रु को एक नज़र से देखते हैं, जहाँ जगह पाते हैं वहीं

पड़ रहते हैं, जो मिल जाता है वही खा लेते हैं, उन्हें न चिन्ता राक्षसी सताती है, न उन्हें घमण्ड होता है और न उन्हें मस्ती आती है। वे तो ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहते हैं, इसलिये दुःख उन के पास नहीं आता; वे सदा सुख में दिन विताते हैं। जो लोग बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनते हैं, शाल-दुशाले ओढ़ते हैं, अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन करते हैं, मख़मली गद्दे तकियों पर सोते हैं, किसी को दोस्त और किसी को दुश्मन समझते हैं, ब्रह्म का ध्यान नहीं करते, उन को चिन्ता लगी ही रहती है। देखने में वे सुखी मालूम होते हैं, पर भीतर-ही-भीतर उन की आत्मा जला करती है। चिन्ता उन को खोखला कर डालती है। क्योंकि बढ़िया-बढ़िया भोजन और वस्त्रों के लिये उन्हें सदा उपाय करने पड़ते हैं, और उन की रक्षा की चिन्ता करनी पड़ती है। ऐसों के ही मित्र और शत्रु होते हैं। जिन का वे भला करते हैं, जिन्हें कुछ सहायता देते हैं अथवा जिन्हें उन से कुछ मिलने की आशा रहती है, वे मित्र बन जाते हैं; पर जिन का स्वार्थ-साधन नहीं होता, जो उन के ठाठ-बाठ और वैभव को फूटी आँख से नहीं देख सकते, वे उन के नाश की चेष्टा करते और उन के दुश्मन हो जाते हैं। इसलिये उन्हें रात-दिन शत्रुओं से बदला लेने और उन्हें पराजित करने की फिक्र के मारे क्षण-भर भी सुख की नींद नहीं आती। अपने वैभव और ऐश्वर्य को देख कर उन्हें स्वतः ही अभिमान हो आता है। अभिमान के नशे में वे अनर्थ करने लगते हैं; इस से उन्हें सदा भयभीत

रहना पड़ता है । बहुत क्या कहें; जिन को आप अमीर देखते हैं, जिनको आप स्त्री-पुत्र धन-रत्न गाड़ी-घोड़े मोटर प्रभृति से सुखी देखते हैं, वे वास्तव में ज़रा भी सुखी नहीं। सुखी वही है, जिसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, जिसे किसी से वैर या प्रीति नहीं, जिसे ज़रा भी अभिमान नहीं, जिस की इन्द्रियाँ वश में हैं, जो कभी चिन्ता को पास नहीं आने देता और जो ब्रह्मानन्द में ही मग्न रहता है। भला राजा महाराजा और धनी लोग इस सुख को कैसे पा सकते हैं ? अगर सुखी होना चाहो, तो संसार को त्याग कर, एक दम से निश्चिन्त हो कर, परमात्मा के सिवा किसी भी चीज़ की चिन्ता न करो ।

जो लोग संसार त्यागें, वह सच्चे मन से त्यागें; ढोंग करने से कोई लाभ नहीं। आज-कल ऐसे बनावटी महात्मा बहुत देखने में आते हैं, जो जटा-जूट बढ़ा लेते हैं, ख़ाक रमा लेते हैं, आँखें लाल कर लेते हैं, गङ्गा में पहरों खड़े रहते हैं, शूलों की शय्या पर सोते हैं, पर उनकी आशा और तृष्णा नहीं जाती। वे ज़ाहिरा कष्ट उठाते हैं, कर्मेन्द्रियों से उनका काम नहीं लेते; पर मन और ज्ञानेन्द्रियों को वश में नहीं करते, वासनाओं का त्याग नहीं करते, इस से उनका जीवन वृथा जाता है । ऐसे लोगों के सम्बन्ध में महात्मा कबीर कहते हैं:—

निरबन्धन बंधा रहे, बन्धा निरबन्ध होय ।
कर्म करे करता नहीं, दास कहावे सोय ॥

कृष्ण भगवान् "गीता" के तीसरे अध्याय के छठे श्लोक में कहते हैं:—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को वश में कर के कुछ काम तो नहीं करता; किन्तु मन में इन्द्रियों के विषयों का ध्यान किया करता है, वह मनुष्य झूठा और पाखण्डी है।

मतलब यह है, कि मनुष्य को हाथ, पाँव, मुँह, गुदा और लिङ्ग को वश में कर लेने और इन से कोई काम न लेने से कोई लाभ नहीं, इन से तो इन का काम लेना ही चाहिये; किन्तु आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा को वश में करना चाहिये। आँख कान आदि पाँचों ज्ञान-इन्द्रियों को वश में करना या अपने-अपने विषयों से रोकना ज़रूरी है। बहुत से लोग, ज़ाहिर में सिद्ध बनने के लिये, हाथ पाँव प्रभृति कर्मेन्द्रियों से काम नहीं लेते, किन्तु मन में भाँति-भाँति के इन्द्रिय-विषयों की इच्छा किया करते हैं। भगवान् कृष्ण ऐसों को पाखण्डी कहते हैं।

सब से अच्छा और सिद्ध पुरुष वही है, जो ज़ाहिरा तो काम करता है, किन्तु अन्दर से मन और ज्ञानेन्द्रियों को विषय-वासना से रोकता है। "गीता" में कहा है:—

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

हे अर्जुन ! जो मन से आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियों को वश में कर के और इन्द्रियों के विषयों में मन न लगा कर "कर्म-योग" करता है,—वही श्रेष्ठ है।

रहीम ने यही बात कैसी अच्छी तरह कही है:—

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में छाया जो परी, काया भीजत नाहिं॥
तन को योगी सब करें, मन को बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय॥

मतलब यह है, कि ढोंग करने से कोई लाभ नहीं। जिनका दिल साफ़ है, जिन के दिल से वासनायें निकल गई हैं, उन्हें नहाने-धोने प्रभृति दिखाऊ कामों या दूकानदारी की जरूरत नहीं है। रहीम कहते हैं, मन यदि हाथ में है तो मनसा कहीं क्यों न जाय, हानि नहीं; क्योंकि जल में शरीर की परछाँई पड़ने से शरीर नहीं भीजता। लोग शरीर को जोगी करते हैं,—तिलक छापे लगाते हैं, जटाजूट बढ़ाते हैं, नेत्रों को सुर्ख़ करते हैं, भभूत मलते हैं, कोपीन बाँधते हैं; पर मन को कोई विरला ही जोगी करता है। लोग ऊपर से योगी बन जाते हैं, पर मन उनका विषय-भोगों में लगा रहता है। शरीर से चाहे जो काम क्यों न किये जायँ, पर मन में विषयों की कामना न रहे; यानी शरीर जोगी न हो, मन जोगी हो जाय; तो सिद्धि या मोक्ष मिलने में सन्देह नहीं। सारांश यह है कि, मन के योगी होने से ईश्वर मिलता है।

महाकवि ज़ौक़ कहते हैं:—

सरापा पाक हैं, धोये जिन्होंने हाथ दुनिया से।
नहीं हाजत, कि वह पानी बहायें सरसे पाऊँ तक॥

जिन्होंने दुनियाँ से हाथ धो लिये हैं, वे सिर से पाँव तक शुद्ध हो गये हैं। उन्हें सिर से पाँव तक पानी बहा कर स्नान करने की ज़रूरत नहीं।

मन जब वासना-हीन हो जाता है, तब वह सूखी दियासलाई के समान हो जाता है। सूखी दियासलाई जिस तरह झट जल उठती है, पर गीली नहीं जलती; उसी तरह वासनाहीन मन पर परमात्मा का रङ्ग जल्दी चढ़ता है; किन्तु वासना-युक्त मन पर हरगिज़ नहीं। इसलिये मन को वासना-हीन करना चाहिये। साथ ही भक्ति भी निष्काम करनी चाहिये। ईश्वर से मुराद न माँगनी चाहिये। कामना रख कर भक्ति करने से कामना निश्चय ही पूर्ण होती है—ईश्वर भक्त की इच्छा अवश्य पूरी करता है; पर वैसी भक्ति से परिणाम में भय है; क्योंकि फलों के भोगने के लिये जन्मना और मरना पड़ता है। किन्तु जो लोग बिना किसी इच्छा के परमात्मा की भक्ति करते हैं, वे मुक्ति लाभ करते हैं—उन्हें जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता।

जब साधक के मन में कुछ कामना नहीं रहती, तब उस के मन से ईर्षा-द्वेष और मित्रता-शत्रुता सब दूर हो जाती हैं। वह

सब जगत् को एक नज़र से देखता है। वह मनुष्यों की आशा नहीं रखता, केवल परमात्मा की शरण ले लेता है; इसलिये उसे सहज में मुक्ति मिल जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है:—

तब लगि हमते सब बड़े, जब लागी है कुछ चाह।
चाह-रहित कह को अधिक, पाय परमपद थाह॥

जब तक मन में ज़रा भी आशा रहती है, तभी तक मनुष्य किसी को बड़ा मानता है और किसी का दास बनता है; जब आशा नहीं रहती, तब वह उस को समान समझता है और सब का आसरा छोड़ एक मात्र परमात्मा का आसरा पकड़ता है; इस से उस को, भव-बन्धन से छुटकारा मिल कर, परम पद की प्राप्ति हो जाती है।

छप्पय।

कन्था अरु कोपीन, फटी पुनि महा पुरानी।
बिना याचना भीख, नींद मरघट मनमानी॥
रह जग सों निश्चिन्त, फिरै जितही मन आवै।
राखे चित कूं शान्त, अनुचित नहिं भाषै॥
जो रहें लीन अस ब्रह्म में, सोवत अरु जागत यदा।
है राज तुच्छ तिहुँ भुवन को, ऐसे पुरुषन कों सदा॥१०१

101. Happy is the recluse who wears a totally worn out loin-cloth, torn into a hundred pieces as well as a covering sheet in the same tattered condi-

tion, who is free from cares and eats food easily got by begging, who sleeps in a cremation-ground or a forest, who is indifferent to friends as well as to foes, who sits in contemplation in a lonely cottage and whose vanity and passions have been totally destroyed.

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः ॥
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां
कामोच्छित्तिवशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः१०२

नाना प्रकार के विषय-भोग नाशमान् और संसार-बन्धन के कारण हैं, इस बात को जान कर भी मनुष्यो ! उनके चक्कर में क्यों पड़ते हो ? इस चेष्टा से क्या लाभ होगा ? अगर आपको हमारी बात का विश्वास हो, तो आप अनेक प्रकार के आशा-जाल के टूटने से शुद्ध हुए चित्त को, सदा, कामनाशक स्वयंप्रकाश शिवजी के चरणों में लगाओ। (अथवा अपनी इच्छाओं के समूल नाश करने के लिए, अपने ही आत्मा के ध्यान में मग्न हो जाओ) ॥१०२॥

आप आज जिन विषय-सुखों को देख कर फूले नहीं समाते, वे विषय-सुख सदा आप के साथ नहीं रहेंगे। वे आज हैं, तो कल नहीं रहेंगे। वे बिजली की चमक के समान चञ्चल हैं; अभी बिजली चमकी और फिर नहीं। आप ऐसे नश्वर, असार, क्षणस्थायी सुखों पर मत भूलो। होश करो ! आप की काया

नाशमान् है। आप सदा इस संसार में नहीं रहेंगे। आप की ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं। आप का जो दम आता है, उसे ही ग़नीमत समझिये। आप एक क़दम रख कर, दूसरा क़दम रखने की भी दृढ़ आशा न कीजिये। आप का जीवन हवा के झोकों से छिन्न-भिन्न मेघों के समान है। अभी घटा छा रही थीं; देखते-देखते हवा उन्हें कहाँ-का-कहाँ उड़ा ले गई; आकाश साफ़ हो गया। यह सारा संसार, संसार के सुख-भोग और स्त्री-पुत्र धन-रत्नादि सभी स्वप्न की सी माया हैं। यह दुनिया मुसाफ़िरख़ाना है। रोज़ अनेक आदमी मुसाफ़िरख़ाने, सराय या धर्मशालाओं में आते और जाते हैं; सदा उन में कोई नहीं रहता। वे जिस तरह एक दिन या दो-तीन दिन ठहर कर चले जाते हैं; उसी तरह आप को भी, इस दुनिया-रूपी सराय में चन्द रोज़ क़याम कर के, आगे जाना होगा। ये सारे सामान यहाँ के यहीं रह जायँगे। ये सब ऐसे ही रहेंगे, पर आप न रहेंगे। इसलिये आप होशियार रहिये, भूलिये मत। आप आज जिस जवानी पर इतने इतराते और इतने शृङ्गार-बनाव करते हैं, यह भी चन्दरोज़ा है। यह चार दिन की चाँदनी है। इस के बाद अँधेरी रात निश्चय ही आवेगी; अर्थात इसके बाद बुढ़ापा अवश्य आवेगा। उस समय आप की यह अकड़, यह उछल-कूद, यह ऐंठना, यह मूछें मरोड़ना—सब हवा हो जायगा। आप शीघ्र ही लाठी टेक कर चलने लगेंगे। आप का रूप-लावण्य नाश हो जायगा। जो लोग आप को ख़ूबसूरत समझ कर आज

प्यार करते हैं, वे ही कल आप को देख कर नाक भौं सिकोड़ेंगे। फिर भला, आप ऐसी नश्वर निकम्मी काया पर क्यों इतना अभिमान करते हैं ? आप अहङ्कार को त्यागिये और अपने लिये उस खिलाड़ी का एक मिट्टी का चलता-फिरता पुतला-मात्र समझिये। सब की शुभ कामना और परोपकार कीजिये, और एक मात्र अपने बनाने वाले से ही दिल लगाइये। इसी में आप का कल्याण है। यह जगत् कुछ भी नहीं, कोरा भ्रम है। यह मृगमरीचिका या स्वप्न की सी माया है। इस पर ज्ञानी नहीं भूलते। महात्मा "सुन्दरदास" जी कहते हैं:—

कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूतो आइ।
जब लग जाग्यौ तौ लौं, अति सुख मान्यो है॥
नींद जब आई, तब वाही कूँ स्वपन भयो।
जब पर्‌यो नरक के कुण्ड में, यूँ जान्यो है॥
अति दुःख पावे, पर निकस्यो न क्यूँ ही जाहि।
जागि जब पर्‌यो, तब स्वपन बखान्यो है॥
यह झूठ वह झूठ, जाग्रत स्वपन दोऊ।
"सुन्दर" कहत, ज्ञानी सब भ्रम मान्यो है॥

छप्पय।

अति चंचल ये भोग, जगतहूँ चंचल तैसो।
तू क्यों भटकत मूढ़ जीव, संसारी जैसो॥

आशा-फाँसी काट, चित्त तू निर्मल ह्वै रे।
साधन साधि समाधि, परम निज पद को ह्वै रे॥
करि रे प्रतीति मेरे वचन, ढुरिरे तू इह ओर को।
छिन यहै यहै दिनहूँ भल्यो, निज राखै कछु भोरको ॥१०२॥

102. The various kinds of sensual pleasures are liable to destruction. They are the causes of worldly bondage, what for, O men, then do you wander about so busily? If you trust upon my word, then it is better for you to fix your mind, made pure by the calming down of the hundredfold network of hopes, in contemplation within your own Self for the extermination of your desires.

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशयाः॥
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-
क्रीड़ाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परिक्षीयते॥१०३॥

वे धन्य हैं, जो पर्वतों की गुफाओं में रहते हैं और परमब्रह्म की ज्योति का ध्यान करते हैं, जिनके आनन्दाश्रुओं को उनकी गोद में बैठे हुए पक्षी निर्भयता से पीते हैं। हमारी ज़िन्दगी तो मनोरथों के महल की बावड़ी के किनारे के क्रीड़ा-स्थान में, लीलायें करते हुए ही, वृथा बीतती है ॥१०३॥

मतलब यह, कि वे लोग सफल-काम हैं, जो पहाड़ों की गुफाओं में बैठे हुए परमात्मा की ज्योति का ध्यान करते रहते हैं और उस ध्यान में इतने मग्न हो जाते हैं, कि उन्हें अपने तनोबदन की भी सुध नहीं रहती। उन को भीतर-ही-भीतर उस ब्रह्म के ध्यान से जो आनन्द बोध होता है, उस से उन की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगते हैं। पक्षी उन की गोद में निडर बैठे हुए उन आँसुओं को पीते हैं। उन्हें कुछ ख़बर नहीं, कि पक्षी गोद में बैठे हैं, या क्या कर रहे हैं। वे तो आनन्द में बेसुध रहते हैं। यही आनन्द परमानन्द है; इस से परे और आनन्द नहीं। जिनको यह सच्चा आनन्द मिलता है, वही सच्चे भाग्यवान् हैं। एक वह हैं और एक हम अभागे हैं, जो रात-दिन मनोरथों के महल गढ़ा करते हैं— रात-दिन मिथ्या कल्पनायें किया करते हैं। इन शेख़चिल्ली के से गढ़न्तों से हमें कोई लाभ नहीं—इन झूठे ख़याली पुलावों के पकाने में हमारा दुष्प्राप्य जीवन वृथा नष्ट होता है !

जो मनुष्य मानव-चोला पाकर परमात्मा का भजन नहीं करते, परमात्मा के दर्शनों की चेष्टा नहीं करते—उन का जीवन वृथा है। इसलिये उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है:—

दिल वह क्या, जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं॥

वह दिल ही नहीं, जिसे तेरे पाने की इच्छा न हो और वह आँख ही नहीं, जिसे तेरे दर्शन की लालसा न हो।

बीती सो बीती, अब तो होश करो !

भाइयो ! बीती सो बीती, अब तो चेत करो और प्रभु से लौ लगाओ। आज-कल मत करो, नहीं तो पछताओगे। अन्त समय पछताने से कोई लाभ न होगा। जो लोग विचार-ही-विचार करते रहते हैं, वे धोखे में रह जाते हैं और काल एक दिन अचानक आकर उनकी चोटी पकड़ लेता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:—

गये पलट आवें नहीं, सो करु मन पहचान।
आजु जोई सोई काल्हि है, "तुलसी" भर्म न मान॥
रामनाम रटिबो भलो, "तुलसी" खता न खाय।
लरिकाई तें पैरिबो, धोखे बूड़ि न जाय॥

नदी की जो धार चली गई है, लौट कर नहीं आयेगी। जो दिन चले गये हैं, वापस नहीं आयेंगे। जो दिन आज है, वही कल है। कल कोई नई बात नहीं हो जायगी। अतः जो कल करना है, उसे आज ही करो; और जो आज करना है, उसे अभी करो; क्योंकि यदि पल भर में प्रलय हो गई—आप चल बसे, तो फिर कब करोगे ? बचपन से ही राम नाम रटना अच्छा है। जो लोग बचपन से ही तैरना सीख लेते हैं, धोखे से नहीं डूबते। जो लोग यही विचार किया करते हैं, कि अमुक काम

हो जायगा, तो उस के बाद हम सब गृहस्थी के झगड़े छोड़ भगवत्-भजन करेंगे, वे इस तरह के विचार किया ही करते हैं कि, इतने में उन का समय पूरा हो जाता है और काल उन का चोटा पकड़ कर उन्हें ले जाता है। उस वक्त वह बहुत पछताते और सिर धुनते हैं, लेकिन उस समय हो क्या सकता है? उस समय उन की गति उस भौंरे की सीं होती है, जो कमल के मुख में बन्द होकर कहता है:—

रात्रिर्गमिष्यति भाविष्यति सुप्रभातं ।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजालम् ॥
इत्थं विचिन्तयाति कोशगते द्विरेफे ।
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

बड़े-बड़े शाल के लट्ठों को छेद डालने की शक्ति रखने वाला भौंरा, प्रेम के मारे, कोमल कमल में बन्द हो जाता है। रात हो जाती है और भौंरा कमल के भीतर बैठा हुआ विचार करता है:—"अब रात का अवसान होगा, सवेरा होगा, सूरज उदय होगा और यह कमल खिल जायगा; तब मैं निकल जाऊँगा। अब रात-भर यहीं आनन्द करूँ।" वह तो ऐसे विचार करता ही रहता है, कि जङ्गली हाथी कमल को उखाड़ कर मुँह में रख लेता है और भौंरे के मन-की-मन में ही रह जाती है। यही दशा संसारी विषय-लोलुपों की है! वह विचार बाँधा ही करते हैं और काल उन्हें मुँह में धर लेता है। अतः हो सके
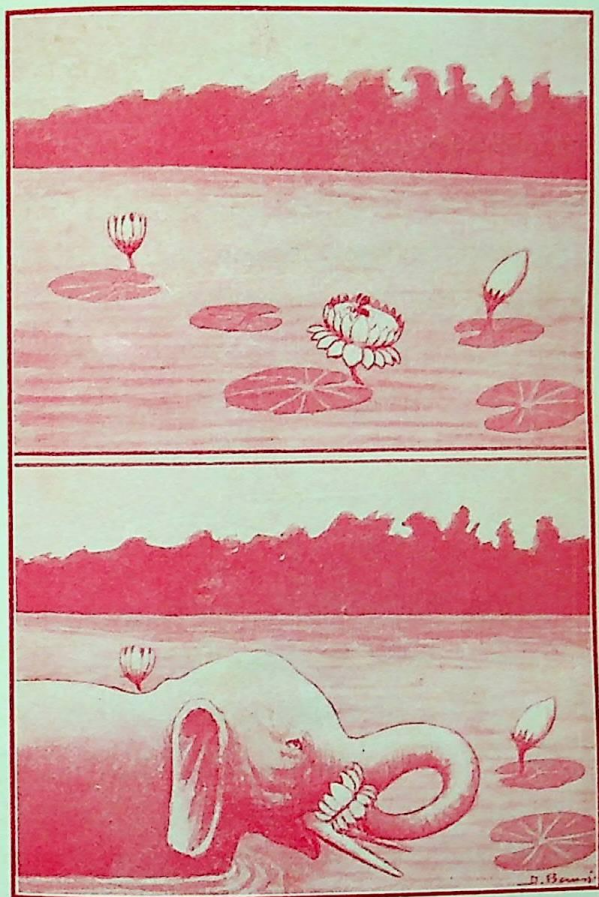
भौंरा कमल में बैठा हुआ अनेक तरह के विचार करता है, इतने में हाथी आकर भौंरा समेत कमल को खा जाता है। यही दशा हमारी है। हम रात दिन विषय-भोगों में लगे रहते हैं और मृत्यु अचानक आकर हमें लील जाती है।

(पृष्ठ २९६)

तो, बचपन में ही ईश्वर-भजन करो। बचपन में यदि ऐसा सौभाग्य न हो, तो जवानी में तो न चूको। जवानी इस के लिये अच्छा समय है। उस अवस्था में शक्ति रहती है। जवानी में ईश्वर-भक्ति करने वाला निश्चय ही मोक्ष या स्वर्ग पाता है। कहा है:—

दानं दरिद्रस्य प्रभोश्च शान्तिः
यूनां तपो ज्ञानवताञ्च मौनम्।
इच्छा निवृत्तिश्च सुखासितानां
दया च भूतेषु दिवं नयन्ति॥

दरिद्रता का किया दान, निग्रह-अनुग्रह की शक्ति होने पर क्षमा, जवानी का किया तप, विद्वान् हो कर चुप रहना, सुख-भोग की सामर्थ्य होने पर इच्छाओं को रोक लेना और प्राणियों पर दया करना—ये स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं।

ईश्वर-भजन में आज-कल मत करो।

एक धनवान् सदा घर-धन्धों में लीन रहता था। उस की स्त्री उस से बहुत-कुछ कहती कि, हे स्वामी! यह शरीर विषय-भोगों के लिए नहीं, बल्कि परमात्मा की भक्ति के लिये मिला है। इसे पारस-मणि समझ कर, इस से मोक्ष-रूपी सोना बना

लीजिये। ऐसा न हो कि, आप सोना न बनावें और यह पारस-मणि पहले ही आप से छीन ली जाय। इस शरीर का बारम्बार मिलना कठिन है। ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद यह मनुष्य-चोला मिला है। इस बार यदि इस से काम न लिया जायगा, तो फिर चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण होने पर यह मनुष्य-चोला मिलेगा; इसलिये दो चार घड़ी तो सब तरफ से मन को हटा कर परमात्मा की याद किया करो। स्त्री उस से बार बार कहती, पर वह सेठ उस की बात टाल देता।

एक दिन सेठ बीमार हो गया। उसने सेठानी से वैद्य के बुलाने को कहा। सेठानी ने वैद्य को बुलाया। वैद्य ने नाड़ी-नब्ज़ देख, रोग का हाल पूछ, दवा का नुसख़ा लिख दिया और सेवन-विधि बता कर चला गया। सेठानी ने पंसारी के यहाँ से दवा मँगा, आले में रख दी। दिन-भर हो गया, पर सेठ को दवा न दी। सन्ध्या-समय सेठ ने कहा—"क्या दवा नहीं मँगाई गई ?" सेठानी ने कहा—"जी, दवा तो मँगाली है, पर वह रक्खी है उस ताक में।" सेठ ने पूछा—"अब तक दी क्यों नहीं ?" सेठानी ने कहा—"जल्दी क्या है ? आज नहीं तो कल, नहीं तो परसों दे दूँगी। कभी न कभी दे ही दूँगी।" सेठने कहा—"अगर मैं मर गया, तो दवा फिर कौन काम आवेगी ?" सेठानी ने कहा—"मरने को तो आप मानते ही नहीं। मैं जब-जब भगवद्

भजन करने को कहती हूँ, तब-तब आप कह देते हैं कि, देखा जायगा; जल्दी थोड़े ही है। यदि आपको मरने की ही याद होती, तो ऐसा न कहते। आज दवा के लिये आपको मरने की याद आई है। जिस तरह दवा की रोग नाश के लिये ज़रूरत है; उसी तरह भजन-पूजन की जन्म-मरण का फन्दा काटने के लिये ज़रूरत है। ऐसा न हो कि, पशु-योनि मिल जाय और सारा गुड़ गोबर हो जाय।" आज स्त्री का उपदेश लग गया। सेठ को वैराग्य हो गया। सेठानी ने उसे दवा पिला दी और वह अच्छा भी हो गया। उसी दिन से उसने ईश्वर-भजन में लौ लगादी। वह और सब भूला, पर ज़िन्दगी-भर मौत और ईश्वर को न भूला।

मौत को हरदम याद रक्खो।

एक बादशाह ने अपने दरबार और बैठने के स्थानों में क़ब्रें बनवा-रक्खी थीं। वह चाहता था कि, मैं हरदम क़ब्रों को देख कर मौत को न भूलूँ। मौत की याद रहने से पापों से बचा रहूँगा और ईश्वर को न भूलूँगा। हमारे यहाँ के अनेक सच्चे सिद्ध अक्सर श्मशान भूमि में ही अपना डेरा रखते हैं। सारांश यह, मनुष्य को अपनी मौत की याद सदा रखनी चाहिये, ताकि संसार से वैराग्य हो कर ज्ञान हो और ज्ञान से मोक्ष मिले। महात्मा कबीर ने खूब ज़बर्दस्त चेतावनी दी है:—

"कबिरा" जो दिन आज है, सो दिन नाँहीं काल ।
चेत सकै तो चेतियो, मीच परी है ख्याल ॥

हे कबीर ! जो दिन आज है, वह कल नहीं होगा; यानी आज का सा मौक़ा फिर कल न मिलेगा । चेतना है तो चेत जा! देख मृत्यु तेरी घात में है । चूहे पर बिल्ली की तरह झपट्टा मारना ही चाहती है ।

गोस्वामीजी ने भी खूब कहा है:—

"तुलसी" बिलम्ब न कीजिये, भज लीजै रघुबीर ।
तन तरकसतें जात है, श्वास सार सो तीर ॥
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब ।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब ?

तुलसीदासजी कहते हैं, देर न करो, भगवान् को भज लो; क्योंकि तन-रूपी तरकस से श्वास-रूपी तीर, जो सार है, निकला जाता है । जो काम कल करना है, उसे आज ही कर डालो और जो आज करना है, उसे अभी कर डालो; क्योंकि यदि पल में प्रलय हो गई, तो फिर कब करोगे ?

जो मनुष्य दिन-रात घर-धन्धों में ही लगे रहते हैं, कभी ख़ुश होते हैं, कभी रञ्ज करते हैं, कभी कन्या के वैधव्य-दुःख को देख कर जलते रहते हैं, तो कभी पुत्र के मरण से औंधा मुँह किये पड़े रहते हैं अथवा कान्ता-वियोग या स्त्री के मरण से तड़फते हैं, अथवा धनवृद्धि के लिये दौड़ते फिरते हैं; लेकिन परमात्मा का

नाम कभी नहीं लेते; यदि लेते हैं तो हाथ को तो गोमुखी में रखते हैं, पर मन को विषयों में लगाये रहते हैं, लोगों से बातें करते रहते और सड़ासड़ माला फेरा करते हैं, ऐसों के पास एक दिन भी चतुर पुरुषों को न रहना चाहिये। कहा है:—

राजा धर्मविना, द्विजः शुचिविना, ज्ञानं विना योगिनः।
कान्ता सत्यविना, हयो गति विना, भूषा च ज्योतिर्विना॥
योद्धा शूरविना, तपो व्रत विना, छन्दो विना गीयते।
भ्राता स्नेह विना, नरो हरि विना, मुञ्चन्ति शीघ्रं बुधाः॥

धर्महीन राजा को, शौचहीन ब्राह्मण को, ज्ञानहीन योगीको, असत्यवादिनी स्त्री को, गतिहीन घोड़े को, चमक-दमक-रहित गहने को, शूरताहीन योद्धा को, नियम-रहित तप को, छन्द-विना कविता को, स्नेह-हीन भाई को और हरिभक्ति-रहित पुरुषों को बुद्धिमान लोग शीघ्र ही छोड़ देते हैं।

हरिभक्ति-रहित पुरुष को चतुर लोग इसलिये त्याग देते हैं, कि उसकी संगति में उनका मन भी कहीं वैसा ही न हो जाय। मनुष्य जैसी संगति करता है, वैसा ही हो जाता है। जो विषयी पुरुषों की संगति करता है, वह विषयी हो जाता है; पर जो ज्ञानी और वैरागियों की संगति करता है, वह ज्ञानी और वैरागी हो जाता है। महापुरुषों की एक शुभ दृष्टि से मनुष्य निहाल हो जाता है; यानी भव-बन्धन से उसका पीछा छूट जाता है। हम आगे दोनों तरह के दृष्टान्त देते हैं:—

एक राजा और महात्मा ।

किसी जङ्गल में एक महात्मा रहते थे। वह पेड़-पत्ते और हवा खाकर ज़िन्दगी बसर करते थे। उनकी शोहरत सारे देश में फैल गई। उस देश के राजा ने भी उन से मिलना चाहा। वज़ीर ने यह ख़बर महात्मा को दी। महात्मा उस जङ्गल को छोड़ भागने को तैयार हुए; लेकिन मन्त्री के बहुत समझाने-बुझाने से वह वहाँ रह गये और राजा को दर्शन देने पर भी राज़ी हो गये।

एक दिन राजा अपने परिवार और दरबारियों समेत महात्मा के दर्शन को गया। महात्मा के दर्शन कर के वह बहुत ही खुश हुआ और उन से नगर में चलकर बाग़ में तप करने की प्रार्थना की। महात्मा बहुत ज़ोर देने से इस बात पर राज़ी हो गया। राजा ने अपने बाग़ में उस के लिये एक एकान्त कमरा खूब सजवा दिया। मख़मली गद्दे, तकिये, कौच, पलँग और कुरसियाँ रखवा दीं और चौदह-चौदह बरस की सुन्दरी मनमोहिनी कामिनियाँ महात्माजी की सेवा को नियुक्त कर दीं।

महात्माजी ख़ूब आनन्द से दिन गुज़ारने और विधुवदनी कामिनियों को भोगने लगे। चन्द रोज़ में ही वह विषयों के वशीभूत हो गये। एक दिन राजा फिर उन से मिलने गया। उसने देखा कि, महात्माजी का रंग-रूप गुलाब के फूल-जैसा

हो गया है। वह मसनद के सहारे लेटे हुए हैं और चन्द्रानना स्त्रियाँ उन पर मोरछल कर रही हैं। यह तमाशा देख राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने मन्त्री से यह हाल कहा। मन्त्री ने कहा,—"महाराज! निवृत्ति-मार्ग वालों को प्रवृत्ति-मार्ग वालों की संगति, भूल कर भी, न करनी चाहिये।" कहाः—

"कामिनां कामिनीनां च संगात् कामी भवेत् पुमान्।
देहान्तरे ततः क्रोधी लोभी मोही च जायते॥"
"कामक्रोधादि संसर्गात् अशुद्धं जायते मनः।
अशुद्धे मनसि ब्रह्मज्ञानं तच्च विनश्याति॥"

कामी पुरुषों और स्त्रियों की संगति से पुरुष कामी और जन्मान्तर में क्रोधी और मोही हो जाता है।

काम क्रोध आदि के सम्बन्ध से मन भी अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध मन से, उपदेश किया हुआ, ब्रह्मज्ञान भी नष्ट हो जाता है।

एक महात्मा और वेश्या।

एक महात्मा एक दिन वर्षा में भीगते हुए और कीच में लिह्से हुए एक मकान के छज्जे के नीचे जा खड़े हुए। वह मकान राजा की वेश्या का था। महात्मा सर्दी के मारे थर-

थर, थर-थर काँप रहे थे। वेश्या की दासी ने महात्मा को देखा और अपनी स्वामिनी से सारा हाल जा कहा। वेश्या ने कहा—"जाओ, महात्मा को लिवा लाओ।" दासी उन्हें ले आई। वेश्या ने उन को स्नान करा कर नये कपड़े पहनाये और भोजन कराया। इस के बाद, आप भोजन कर के उन के पास गई और उन्हें पलँग पर लिटा कर उन के पैर दाबने लगी। महात्मा ने एक नज़र भर के वेश्या की तरफ देखा और उस के हृदय में अमृत की धारा बहा दी। वह सो गये और वेश्या रात-भर उन के चरण चापती रही। सवेरे के वक्त वह सो गई और महात्मा उठकर चल दिये। भोर में उठते ही वेश्या ने दासी से पूछा कि, महात्मा कहाँ गये? उस ने कहा, कि वे तो चले गये। वेश्या उसी समय नङ्गी होकर घर से निकल गई और एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गई। राजा ने यह समाचार सुनते ही अपने आदमी उसे लिवा लाने को भेजे। वेश्या ने कहा—"राजा से कह दो, कि अब मैं आपका वह मैला उठाने वाली पहले की भंगन नहीं हूँ।" राजा ने यह बात सुन हुक्म दे दिया कि, उसे कोई न छेड़े। अगले दिन वह कहीं चली गई। सच है, महापुरुषों की क्षण-भर की संगति से महा-पापी भी निहाल हो जाता है। निस्सन्देह सत्संग बड़ी चीज़ है।

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥

महापुरुषों की संगति से किस की उन्नति नहीं होती ? कमल के पत्ते पर पड़ी हुई बूँद मोती की शोभा को धारण करती है।

और भीः—

दोहा।

जोहि जैसी संगाति करी, सो तैसो फल लीन।
कदली सीप भुजङ्ग-मुख, एक बूँद गुण तीन॥

जो जैसी संगति करता है, वह वैसा ही फल पाता है। मेह की एक बूँद केले में कपूर, सीप में मोती और सर्प-मुख में विष हो जाती है।

सवैया।

ज्ञान बढ़ै गुनवान की संगत,
ध्यान बढ़ै तपसी-संग कीने।
मोह बढ़ै परिवार की संगत,
लोभ बढ़ै धन में चित दीने॥
क्रोध बढ़ै नर मूढ़ की संगत,
काम बढ़ै तिय के संग कीने।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै,
कवि "दीन" सुसज्जन-संगत कीने॥

सत्सङ्ग की महिमा का पार नहीं। सत्सङ्ग से ही दस्यु भील वाल्मीकि ऋषि हो गये। पद्मयोनि से पैदा हुए ब्रह्मा, कैवर्त्ति

से पैदा हुए व्यास जी, उर्वशी से पैदा हुए वशिष्ठ जी और हिरनी से पैदा हुए ऋषि शृङ्गी सत्सङ्ग से ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए; अतः महापुरुषों का सङ्ग करना चाहिये। "सत्सङ्ग" भवसागर से पार करने के लिये नौका-स्वरूप है। कहा है:—

तत्वं चिन्तय सततं चित्ते,
परिहर चिन्तां नश्वर वित्ते।
क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका,
भवति भवार्णवतरणे नौका॥

हमेशा तत्त्व की चिन्तना कर, चञ्चल धन की चिन्ता छोड़। यह जगत् अल्पकालीन है; केवल सज्जनों की संगति ही भव-सागर के पार जाने के लिये नाव के समान है।

इस संसार-वृक्ष के जितने फल हैं, सभी प्राणी के नाश करने वाले और उसे सदा दुःखों के गर्त्त में पटक रखने वाले हैं; केवल दो फल अमृत-समान हैं; कहा है:—

संसार-विष-वृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
काव्यामृत रसास्वादं आलापः सज्जनैः सह॥

इस संसार-रूपी विष-वृक्ष के दो फल अमृत के समान हैं:—

(१) काव्य-रूपी अमृत का रसास्वादन करना, (२) साधु पुरुषों की संगति करना।

शङ्कराचार्य जी ने कैसा अच्छा उपदेश किया है! इस में संसार-सागर से पार होने का सारा मसाला है:—

संगः सत्सु विधीयतां, भगवतोभक्तिर्दृढ़ा धीयतां,
शान्त्यादिः परिचीयतां, दृढ़तरं कर्माशु संत्यज्यताम्।
सद्विद्वो ह्युपसर्प्यतां, प्रतिदिनं तत्पादुका सेव्यतां,
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यम् समाकर्ण्यताम्॥

साधु पुरुषों का संग करना चाहिए। भगवान में दृढ़ भक्ति करनी चाहिये। क्षमा और दम प्रभृति का अभ्यास करना चाहिये। संसार-बन्धन के कारण "कर्म—सकाम कर्मों को" शीघ्र त्यागना चाहिये। सच्चे विद्वानों की सेवा करनी चाहिये और उन की पादुकाएँ उठानी चाहियें। ब्रह्म-बोधक एकाक्षर प्रणव "ॐ" का जाप करना चाहिये और वेद के शिरोवाक्य "वेदान्त" को सुनना चाहिये।

वाह! क्या ख़ूब कहा है! जो इस वचन पर अमल करेगा, उसे परमानन्द की प्राप्ति क्यों न होगी? अवश्य होगी।

छप्पय।

योगी जग विसराय, जाय गिरिगुहा बसत हैं।
करत ज्योति को ध्यान, मगन आँसू वरषत हैं॥
खगकुल बैठत अङ्क, पियत निःशङ्क नयनजल।
धनि-धनि हैं वे धीर! धर्यो जिन यह समाधिबल॥

हम सेवत बारी बाग सर, सरिता बापी कूपतट।
खोवत हैं योंहीं आयु को, भये निपट ही नीरघट ॥१०३॥

103. Worthy of all praise are those who live in the caves of mountains and contemplate upon the Supreme Light and whose tears of joy are drunk by birds sitting fearlessly in their laps, while our lives are passing fruitlessly away in pursuing frolicksome avocations in the play-gardens, situated on the banks of the tank, belonging to the spacious mansion of Desire.

*** आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं,**
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा॥१०४

मृत्यु ने जन्म को ग्रस रक्खा है, बुढ़ापे ने बिजली के समान चञ्चल युवावस्था को ग्रस रक्खा है, धन की इच्छा ने सन्तोष को ग्रस रक्खा है, स्त्रियों के हावभावों ने मानसिक शान्ति को ग्रस रक्खा है, जलने वालों ने गुणों को ग्रस रक्खा है; सर्प और जङ्गली जानवरों ने वन को ग्रस रक्खा है; दुष्टों ने राजाओं को ग्रस रक्खा है; अस्थिरता या चञ्चलता ने धनैश्वर्य्य को ग्रस रक्खा है; तब ऐसी कौनसी अच्छी चीज़ है; जो किसी दूसरी नाशक चीज़ के चङ्गुल में नहीं है ?॥१०४॥

---

* आ-समन्तात घ्रातं-ग्रस्तं।

खुलासा यह है, कि जन्म को मृत्यु का भय है, जवानी को बुढ़ापे का भय है, सन्तोष को लोभ का भय है, शान्ति को स्त्रियों के हाव-भाव और विलासों का भय है, गुणों को उन से जलने या कुढ़ने वालों का भय है, वन में सर्प और हिंसक पशुओं का भय है, राजाओं में दुष्ट दरबारियों का भय है, धन और ऐश्वर्य्य में क्षणभङ्गुरता का भय है। संसार में ऐसी कोई अच्छी वस्तु नहीं है, जिसे किसी का भय न हो। मतलब यह कि, संसार और संसार के सभी पदार्थ नाशमान् हैं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जिस का काल नाश नहीं कर देता, अथवा जिसे किसी तरह का भय नहीं है।

संसार की यह दशा है, तब भी तो मनुष्य चेत नहीं करता, यही तो आश्चर्य्य की बात है! अज्ञानी मनुष्य, मोहवश, अपना हानि-लाभ नहीं देखता; संसार की झूठी माया में फँसा रहता है। 'तुलसीदास' जी ने ठीक ही कहा है:—

करत चातुरी मोहवश, लखत न निज हित हान।
शुक-मर्कट-इव गहत हठ, "तुलसी" परम सुजान॥
दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तोइ नाहिं।
लखत न कण्टक मीन जिमि, अशन भखत भ्रम नाहिं॥

विषयों के संसर्ग से मनुष्य के मन में कामना—इच्छा पैदा होती है। जब इच्छा पूरी नहीं होती, तब क्रोध होता है और

क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है। मोह होने से प्राणी को अपना हित या परलोक की हानि नहीं दीखती। राग-द्वेष प्रभृति के कारण, उस में ज्ञानदृष्टि नहीं रहती; पर पढ़ने-लिखने के कारण वह अपने तईं परम चतुर समझता है और जिस तरह हठ करके तोता बहेलिये के फन्दे में, आप ही, फँस जाता है और पींजरे में क़ैद हो जाता है, तथा बन्दर छोटे मुँह की ठिलिया में रोटी के लिये हाथ डाल कर बन्दर वाले के क़ब्जे में हो जाता है; उसी तरह विषयी पुरुष, विषयों के लालच में आकर, अपने तईं संसार-बन्धन में फँसा लेता है।

मनुष्य भूख, प्यास, रोग, शोक, दरिद्रता, प्रिय-वियोग, बुढ़ापा, जन्म-मरण, चौरासी लाख योनियों में दुःख-भोग तथा नरक प्रभृति से हर तरह दुखी है, उसे ज़रा भी सुख नहीं है, पर वह मोह के मारे ऐसा अन्धा हो रहा है, कि उसे, काँटे में लगे चारे के लिये फँसने वाली मछली की तरह, कुछ भी नहीं सूझता। जिस तरह मछली को रोटी का टुकड़ा प्यारा है; उसी तरह मनुष्य को विषय-भोग प्यारा है। जिस तरह मछली को काँटा है, उसी तरह मनुष्य को "ममता" काँटा है। मतलब यह है, अज्ञानी मनुष्य विषय-रूपी चारे के लोभ से, ममता के काँटे में फँस कर, अपना नाश कराता है; पर मज़ा यह कि वह दुःख को दुःख नहीं समझता; तरह-तरह के भयों से घिरा हुआ नाना प्रकार के सङ्कट झेलता है; मछली, तोते और बन्दर की तरह बन्धन में फँसता है, पर निकलना नहीं चाहता। इन दुःखों का उसे

ज़रा भी ख़याल नहीं आता। रोज़ लोगों को मरते हुए देखता है, रोज़ बूढ़ों को असह्य कष्ट उठाते देखता है; पर आप नहीं समझता कि, मेरी भी यही गति होने वाली है! उलटा, हर साल जन्म-तिथि को वर्ष-गाँठ का उत्सव करता है। मित्रों और रिश्तेदारों को निमन्त्रण देता है। गाना बजाना और नाच-रंग कराता है। कैसी बात है, जहाँ रंज करना चाहिये, वहाँ नादान मनुष्य ख़ुशी मनाता है! उसे समझना चाहिये, कि हर साल-गिरह को उसकी उम्र का एक साल कम होता है। महात्मा 'सुन्दरदास' जी ने ख़ूब कहा है:—

जब तें जनम लेत, तब ही तें आयु घटे।
माई तो कहत, मेरो बड़ो होत जात है॥
आज और काल और दिन-दिन होत और।
दौर्‌यो-दौर्‌यो फिरत, खेलत और खात है॥
बालपन बीत्यो, जब यौवन लाग्यो है।
यौवनहु बीते, बूढ़ो डोकरो दिखात है॥
"सुन्दर" कहत, ऐसे देखत ही बुझि गयो।
तेल घटि गये, जैसे दीपक बुझात है॥

प्राणी जब से जन्म लेता है, तभी से उस की उम्र घटने लगती है। माँ समझती है कि, मेरा लाल बड़ा होता जाता है। दिन-दिन उसके रंग बदलते रहते हैं। बचपन में खाता खेलता और भागा फिरता है। बचपन के बीतते ही जवानी आ जाती

है और जवानी के बीतते ही बुढ़ापा आ जाता है और वह बूढ़ा डोकरा-सा दीखने लगता है। "सुन्दरदास" कहते हैं कि, देखते-देखते जिस तरह तेल घट जाने से चिराग़ बुझ जाता है; उसी तरह वह बुझ जाता है; यानी मर जाता है।

छप्पय।

ग्रस्यो जन्म को मृत्यु, जरा यौवन को ग्रास्यौ।
ग्रसिवे को सन्तोष, लोभ यह प्रगट प्रकास्यो॥
तैसे ही समदृष्टि ग्रासित, बनिता बिलास-वर।
मत्सर गुण ग्रासि लेत, ग्रसत बन को भुजङ्गवर॥
नृप ग्रासित किये इन दुर्जनन, कियौ चपलता धन ग्रासित।
कछुहू न देख्यो बिन ग्रासित जग, याही तें चित अति त्रसित॥१०४॥

104. Birth is threatened by death; youth which is transitory like lightning, by old age; contentment by greed for wealth; mental peace by the strong allurements of women; good qualities by jealous persons; forests by serpents and wild animals; kings by wicked courtiers and wealth and power by shortness of duration. What good thing exists there which does not lie in the clutches of something else capable of destroying it ?

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते,
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः।
जातंजातमवश्यमाशुविवशंमृत्युःकरोत्यात्मसात्तत्कि
नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम्॥१०५॥

सैकड़ों मानसिक और शारीरिक रोग स्वास्थ्य का नाश कर डालते हैं। जहाँ सम्पात्ति और प्रभुता है, वहाँ विपत्ति दरवाज़ा तोड़ कर चोर की तरह चढ़ाई करती है। जो जन्म लेता है; उसे मृत्यु शीघ्र ही ज़बर्दस्ती अपने जाबड़ों में फँसा लेती है; तब निरङ्कुश विधाता ने सदा स्थायी रहने वाली कौन सी चीज़ बनाई है ? ॥१०५॥

मनुष्य-शरीर रोगों का घर है। मानसिक और कायिक रोग सदा उस के भीतर डेरा डाले रहते और स्वास्थ्य का नाश करते रहते हैं! सम्पत्ति पर विपत्ति सदा ताक लगाये खड़ी रहती है और ज़रा-सा भी मौक़ा पाते ही दरवाज़ा तोड़ कर उसका विनाश कर देती है। जन्म लेने वाले के सिर पर मौत सदा मँडराया करती है एवं दाँव-घात देखती रहती रहती है और जब मौक़ा पाती है, उसे अपने पञ्जों में फँसा लेती है। सारांश यह कि, शरीर के साथ रोग, सम्पत्ति के साथ विपत्ति, जन्म के साथ मृत्यु, संयोग के साथ वियोग, सुख के साथ दुःख और जवानी के साथ बुढ़ापा प्रभृति एक दूसरे के नाशक विधाता ने लगा रक्खे हैं। विधाता ने कोई भी चीज़ सदा-स्थायी नहीं बनाई; जो कुछ बनाया है वह चन्दरोज़ा और नाशमान् बनाया है।

संसारकी असारता देख कर; मनुष्य को अपने तईं, इस संसार में, पाहुने की तरह समझना चाहिये। जिस तरह पाहुना

जहाँ कहीं जाता है और जहाँ ठहरता है, वहाँ के लोगों से दिल नहीं लगाता; उसी तरह समझदारों को इस दुनिया से दिल न लगाना चाहिये।

जिसको रहना उत घर, सो क्यों जोड़ै मित्त ?।
जैसे पर-घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥
इत पर-घर उत है घरा, बनिजन आये हाट।
कर्म-करीना बेचिके, उठि करि चाले बाट ॥
मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय।
सुन परतीति न ऊपजे, जीव विश्वास न होय ॥
"कबिरा" ऐसा संसार है, जैसा सैमल-फूल।
दिन दशके व्यौहार में, झूठे रङ्ग न भूल ॥

मनुष्य का अपना घर वह है जहाँ से वह आया है, यह नहीं; अतः उसे अपने उस घर से दिल न हटाना चाहिये। इस घर में आकर मिहमान की तरह रहना चाहिये और मिहमान की तरह ही अपना दिल उठाये रखना चाहिये।

यह पराया घर है और वह अपना घर है। यहाँ हाट में अपना व्यवसाय करने आये हैं। हाट में सौदा बेच कर अपनी राह लगेंगे; यानी इस दुनिया में अपने कर्मों का फल भोग कर यहाँ से चले जायँगे।

इस दुनिया में अपना कोई साथी नहीं है। सभी मतलबी यार हैं, और मतलब के लिये ही हमारे बन रहे हैं। सुन कर

प्रतीत नहीं होती और जी में विश्वास नहीं आता; पर बात सच्ची है।

"कबीरदासजी" कहते हैं,—यह संसार सेमल के फूल की तरह है। दश दिन के व्यवहार और मेल-जोल से झूठे रंग पर न भूलना चाहिये।

सारांश यह है कि, यह दुनिया पराया घर है और प्राणी-मात्र यहाँ मिहमान हैं; अथवा यह संसार सराय है और हम लोग मुसाफिर हैं। यदि हम पाहुने हैं तो; और यदि हम मुसाफिर हैं तो—दोनों हालतों में ही—हमें इस दुनिया से दिल न लगाना चाहिये। हम जहाँ से आये हैं, अथवा जहाँ हमारा घर है, हमें अपना दिल वहाँ के लिये ही उठाये रहना चाहिये।

दुनिया गोरख-धन्धा है।

यह संसार बिल्कुल मिथ्या और असार है; इस में कुछ भी तत्त्व नहीं है। केले के खम्भे और लहसन को ज्यों-ज्यों छीलते जाइये, त्यों-त्यों उन के भीतर से सिवा पत्तों और छिलकों के कुछ भी नहीं निकलता। यह जगत् भी उन की तरह ही सारहीन है। इस में कुछ भी नहीं है। यह कोरा माया-जाल या धोखा है। इस गोरख-धन्धे में जो फँस जाते हैं, वे बुरी तरह नष्ट होते और अन्त में पछताते हैं। इसलिये भाइयो! इस माया-जाल से

निकलने की चेष्टा करो। .खूब ख़बर्दार रहो! इस जगत् के सभी सुख-भोग झूठे और प्राणी के पक्ष में अहितकर हैं। 'मि० आगा हश्र' ने थियेटर के गाने के तर्ज़ में क्या .खूब कहा है:—

इस जाल में सब उलझाये, दुनिया है गोरखधन्धा।
डाल रक्खा है सबने गले में, लोभ-मोह का फन्दा॥
ये दुनियाँ है बूर का लड्डू; देखके जी ललचाये।
ना खाये तौभी पछताये, खाये तो पछताये॥
फिर भी सकल जगत है अन्धा।
इस दुनिया के सुख भी झूठे, इसका प्यार भी झूठा॥
सावधान हो! इस ठगनी ने बड़ों-बड़ों को लूटा।
मूरख! मत बन इसका बन्दा॥

यह चोला परोपकार और ईश्वर-भजन के लिये मिला है।

आप जब इस दुनिया में आने के लिये माँ के गर्भ में थे, तब आपने परमात्मा से प्रार्थना की थी, कि हे नाथ! मुझे इस नरक-कुण्ड से निकालिये; मैं दुनिया में जा कर, माया-मोह में न फँस कर, केवल आपकी ही परिस्तिश और उपासना तथा जगत् के दूसरे प्राणियों का उपकार करूँगा; पर यहाँ आ कर

बचपन आपने खेल-कूद में और जवानी स्त्री के साथ ऐश-आराम में बिता दी !! क्या आप को ऐसा ही करना था ?

यह मनुष्य-चोला इसलिये मिला है, कि मनुष्य इस जगत् में दूसरे प्राणियों की शुभ चिन्तना करे और अपने कर्म-बन्धन काट कर परमपद की प्राप्ति करे; पर लोग तो इस की चमक-दमक पर ऐसे भूल जाते हैं, कि उन्हें अपनी आगे की सफ़र का ख़याल ही नहीं रहता। ऐसा समझने लगते हैं, मानो वह सदा यहीं रहेंगे। यहाँ के लिए, जहाँ उन्हें बहुत ही थोड़े दिन रहना होता है, हज़ारों तरह के सामान करते हैं; पर आगे की लम्बी सफ़र के लिये कुछ भी नहीं करते ! यहाँ के लिये इतना आडम्बर और वहाँ के लिये कुछ भी नहीं। यह चतुराई तो अच्छी नहीं मालूम होती। उस्ताद 'ज़ौक़' ने कहा है:—

क्या यह दुनियाँ, जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
वास्ते वाँ के बी कुछ—या सब यहीं के वास्ते ॥

इस दुनिया में आकर कुछ परलोक के लिये भी करना चाहिये। यह नहीं, कि उधर की फिक्र बिल्कुल ही न की जाय।

हमें सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ और नेचर के प्रत्येक काम से परोपकार की शिक्षा मिलती है। सूर्य, परोपकार के लिये ही, आकाश में भ्रमण करता है। चन्द्रमा, परोपकार के लिये ही, कष्ट सह कर, जगत् में शीतल चाँदनी छिटकाता है। सितारे,

अँधेरी रात में, मुसाफिरों को राह दिखाने के लिये ही, रात-भर टिमटिमाते हैं। ध्रुव-तारा उत्तर दिशाका ज्ञान कराने और समुद्र के अगाध और अनन्त जल में जहाज़ों को राह दिखाने के लिये ही चमकता है। नदियाँ परोपकार के लिये ही बहती हैं। वृक्ष परोपकार के लिये ही फलते हैं। परोपकार के लिये ही, शेषजी ने इस लम्बी-चौड़ी पृथ्वी का भार अपने सहस्र फणों पर धारण कर रखा है। कच्छपने, परोपकार के लिये ही, शेष समेत पृथ्वी का भार अपनी पीठ पर वहन कर रक्खा है। भगवान् ने, परोपकार के लिये ही, बारम्बार अवतार लेकर, जन्म-मरण का कष्ट उठाया है। शिवि और दधीचि ने, परोपकार के लिये ही, अपनी जानें दे दीं। किसी कवि ने कहा है:—

बिरछा फलै न आप को, नदी न अचवे नीर।
परोपकार के कारणे, सन्तन धरो शरीर॥
शेष शीश धारे धरा, कछु न अपनो काज।
परहित पर सारथी रथी, वाइक बने न लाज॥

किसी जंगल में चूहों की एक क़तार चली जाती थी। उनमें एक चूहा अन्धा था। उसके मुख में एक तिनका पकड़ा कर, दूसरे चूहे ने उसे अपने मुँह में पकड़ रक्खा था। उसके सहारे अन्धा चूहा भी चला जाता था। यह जानवरों का हाल है। पशुओं में भी परोपकार-बुद्धि होती है। जो मनुष्य होकर परोप-

कार-शून्य है, वह पशुओं से भी गया-बीता है। ख़ासकर मनुष्य-देह तो परोपकार के लिये ही दी गई है; अतः मनुष्य को परोपकार करना ही चाहिये। कहा है:—

परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि॥
परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।
यावन्तः पशवस्तेषां चर्माण्युपकरिष्यति॥
आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति॥

धन और प्राणों से परोपकार करना चाहिए; क्योंकि परोपकार के पुण्य के बराबर सौ यज्ञों का भी पुण्य नहीं है।

परोपकार-शून्य मनुष्यों के जीने को भी धिक्कार है! पशुओं का चमड़ा भी पराये काम आता है।

अपने लिये इस जीव-लोक में कौन नहीं जीता? पराये लिये जो जीता है वही जीता है और तो मृतकवत् हैं।

सौ यज्ञों का पुण्य भी परोपकार-जन्य पुण्य की बराबरी नहीं कर सकता।

एक वैश्य ने अपने करोड़ों रुपये यज्ञों में ख़र्च कर दिये। शेष में, वह निर्धन हो गया। उसकी स्त्री ने उसे सलाह दी

कि, तुम राजा को अपने दो चार यज्ञों का फल देकर धन ले आओ, तो शेष जीवन सुख से कट जाय। वैश्य राज़ी हो गया। सेठानी ने उसे, राह में खाने के लिए, नौ रोटियाँ रख दीं। वह वन में पहुँच कर एक वृक्ष के नीचे ठहर गया। वहाँ पानी बड़े ज़ोर से बरसने के मारे राह न थी। उसी पेड़ के खोंतरे में एक कुतिया व्यायी थी। वर्षा के मारे वह नौ दिन से ख़ूराक की तलाश में कहीं जा न सकी थी; इसलिये भूखी मरणासन्न हो रही थी। वैश्य ने उसे अपनी सब रोटियाँ खिलादीं और आप भूखा रह गया। वह भूखा-प्यासा राजा के पास पहुँचा और उसे अपनी राम-कहानी कह सुनाई। राजा ने राज्य-ज्योतिषी से पूछा—"इस सेठ के कौन से यज्ञ का फल उत्तम है ?" ज्योतिषी ने कहा—"महाराज! इसने राह में कुतिया को अपनी रोटियाँ खिला कर जो उपकार किया है, उसी का फल उत्तम है; आप उसे ही ख़रीद लीजिये।" वैश्य उस परोपकार के पुण्य-फल को देने पर राजी न हुआ; तब राजा ने उसे कई लक्ष्य मुद्रा देकर विदा किया। सारांश यह, कि संसार में परोपकार और दया के समान और पुण्य नहीं है। अतः मनुष्य को निःस्वार्थ भाव से परोपकार करना चाहिये। जो मनुष्य होकर परोपकार नहीं करता, उसका जन्म वृथा है।

किसी ने कहा है:—

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं
श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम्॥

संजातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो
ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे प्राणिनोजातनष्टाः ॥

संसार में उस प्रसिद्ध कछुए का जन्म ही सफल है, जिसने इस विशाल पृथ्वी का भार उठाने के लिये अपनी पीठ दे रक्खी है; और इसी तरह ध्रुव का जन्म प्रशंसनीय है, जिसको बीच में लेकर सप्तऋषियों का ज्योति-मण्डल घूमता है। परोपकार करने में अशक्य मनुष्यों का जन्म, इस ब्रह्माण्ड में, गूलर के बीच में रहने वाले उन मच्छरों के समान वृथा है, जो पङ्ख-सहित होने पर भी कुछ नहीं कर सकते।

अतः भाइयो ! स्त्री-पुत्र प्रभृति के लिए अमूल्य जीवन वृथा नाश मत करो। ये आपके कोई नहीं। ये यहीं के साथी और बड़े स्वार्थी हैं; परलोक में आपके साथ न जायँगे; वहाँ केवल धर्म ही आपके साथ जायगा। मौत आप के लेजाने के लिए आना ही चाहती है। इसलिये चेत करो, आँखें खोलो, अब न सोओ। साँस-साँस पर जगदीश का सुमिरन करो और निष्काम भाव से प्राणियों पर दया और परोपकार करो; क्योंकि मरने पर ये ही आप के काम आयेंगे।

कविता या गाने की चीज़ों का प्रभाव मनुष्य पर बड़ी जल्दी पड़ता है; इसी से हम चार-पाँच चित्ताकर्षक और मोहभञ्जन करने वाले गाने नीचे देते हैं:—

भजन (रागबिहाग)

हे मन गुमानी ! चेत कर; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर।
बीती यह जाती है उमर; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥१॥
नारी नरक की खान है; जिस पर जगत गलतान है।
इसका मज़ा इस आन है; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥२॥
सुत बन्धु माता और पिता; कुनबा कबीला आशनाँ।
सब सुख के साथी हैं तेरे; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥३॥
दुनियाँ कहो क्या माल है; माया का फैला जाल है।
इस पर तू क्या ख़ुशहाल है; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥४॥
कहना मेरा ले मान तू, हरगिज़ न कर अभिमान तू।
एक प्रभु को साँचा जान तू; हरिको सुमिर, हरिको सुमिर ॥५॥

भजन ।

क्या देख दिवाना हुआ रे ॥ टेक ॥

माया बनी सार की सूली, नारी नरक का कूआ रे ॥१॥
हाड़ चाम का बना पींजरा, तामें मनुआँ सूआ रे ॥२॥
भाई बन्धु और कुटुम्ब घनेरा, तिनमें पच-पच मूआ रे ॥३॥
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, हार चला जग-जूआ रे ॥४॥

भजन (राग काफी) ।

नर समझत नाहिं अनारी ॥ टेक ॥
गर्भवास में उलटो लटक्यो, पायो दुःख अति भारी ।
जो प्रभु! अब के मैं बाहर निकसों, तेरो भजन करूँ हरबारी ।
पलक नाहिं देउँ बिसारी ॥ १ ॥

जन्म होत माया लिपटायो, भूल गयो सुध सारी ।
भक्ति-भाव में चित ना राख्यो, ऐसी कुमत विचारी ।
जन्म की कर दई ख़्वारी ॥ २ ॥

आया था कुछ लाभ करन को, गाँठ की पूँजी हारी ।
सौदा कर ले राम नाम का, आओ शरण गिरधारी ।
भरोसा जिनका है भारी ॥ ३ ॥

श्री सतगुरु तोहि नित समझावें, वे हैं सब के हितकारी ।
आप तरें औरन को तारें, कहै "हरिदास" पुकारी ।
उम्र योंहीं मुफ्त गुज़ारी ॥४॥

ग़ज़ल ।

उठ जागरे मुसाफ़िर ! किस नींद सो रहा है ? ।
जीवन अमूल्य प्यारे, क्यों मुफ्त खो रहा है ? ॥१॥
रहना न यहाँ पै होगा, दुनियाँ सराय फ़ानी ।
फँसकर बदी में प्यारे; क्यों मस्त हो रहा है ? ॥२॥

ले ले धरम का तोषा, मत भूल ऐ दिवाने ! ।
नेकी की खेती करले, क्यों पाप बो रहा है ? ॥३॥
माता पिता वा भाई, होंगे न कोई साथी ।
क्यों मोहरूपी बोझा, नाहक़ को ढो रहा है ? ॥४॥
किश्ती तेरी पुरानी, हिकमत से पार करले ।
ऐ दिल ! अथाह जल में, तू क्यों डुबो रहा है ? ॥५॥

भजन (लावनी)

पड़ लोभ मोह के जाल में, नर आयु क्यों खोता है ? ॥टेक॥
यह जग जान रैन का सुपना, जिसको कहता अपना-अपना ।
भूल गया ईश्वर का जपना, फँसा हुआ धन-माल में ।
क्या सुख की नींद सोता है ? ॥ १ ॥
चलै अकड़ बन छैल-छबीला, अन्त समय सब हो जाय ढीला ।
काम न आये कुटुम्ब-क़बीला, भूला जिनके ख़याल में ।
कोई साथी नहिं होता है ॥ २ ॥
अब क्यों सिर धुनि-धुनि पाछितावे, रुदन करै और रौल मचावे ।
कुछ नहिं तेरी पार बसावे, चूका पहिली चाल में ॥
क्यों खड़ा-खड़ा रोता है ? ॥ ३ ॥
समझ-सोच कर क़दम उठाना, मुश्किल मनुषजन्म है पाना ॥
कहै "मुरारी" जो है दाना, भज हर को, हर हाल में ।
क्यों पाप-बीज बोता है ? ॥ ४ ॥

महात्मा "सुन्दरदासजी" की भी सुनिये:—

बैरी घर माँहि तेरे, जानत सनेही मेरे ।
दारा-सुत वित्त तेरे, खोंसि-खोंसि खायँगे ।
औरहु कुटुम्बी लोग, लूटें चहुँ ओरही तें ।
मीठी-मीठी बात कहि, तोसूँ लपटायेंगे ॥
संकट परेगो जब, कोई नहीं तेरो तब ।
अन्तही कठिन, बाकी बेर उठि जायेंगे ॥
"सुन्दर" कहत, तातें झूठो ही प्रपञ्च सब ।
स्वप्नकी नाईं, यह देखत बिलायँगे ॥१॥

घरी-घरी घटत, छीजत जात छिन-छिन ।
भीजत ही गरिजात, माटीको सो ढेल है ॥
मुक्ति के द्वार आइ, सावधान क्यूँ न होइ? ।
बेर-बेर चढ़त न, तियाको सो तेल है ॥
करि ले सुकृत, हरि भज ले अखण्ड नर ।
याहीमें अन्तर पड़े, यामें ब्रह्म-मेल है ॥
मनुष्य-जन्म यह, जीत भावै हार अब ।
"सुन्दर" कहत यामें, जूआको सो खेल है ॥२॥

जिन को तू अपने स्नेही-मित्र और स्त्री-पुत्र, माता-पिता भाई-बहन आदि समझता है, वे तेरे घर में ही तेरे दुश्मन हैं। वास्तव में, वे सब तेरे शत्रु हैं; पर मोह के कारण तुझे वे मित्र

से मालूम होते हैं। स्त्री-पुत्र आदि तेरा धन तुझ से छीन-छीन कर खायँगे। और कुटुम्बी लोग भी तुझे चारों ओर से लूटेंगे और मीठी-मीठी बातें बनाकर तेरे लिपटेंगे। तेरे लिये वे धन-दौलत, जीव-जान और सर्वस्व तक स्वाहा कर देने की डींगें मारेंगे, लेकिन जब तुझ पर सङ्कट पड़ेगा, काल तुझ पर आक्रमण करेगा, तब तेरा कोई न होगा। अन्तकाल ही कठिन है और उस समय सब तुझे छोड़-छोड़ कर दूर हो जायँगे। "सुन्दरदास" कहते हैं, इसलिये यह सब प्रपञ्च झूठा है; कोई किसी का साथी नहीं है। मरने पर सब स्वप्न की माया की तरह विलाय जायँगे।

घड़ी-घड़ी उम्र घटती है और क्षण-क्षण काया छीजती है। जिस तरह मिट्टी का ढेला भीजते ही गल जाता है; उसी तरह यह काया गल जाती है। अरे मूढ़! मुक्ति के द्वार पर आकर, होशियार क्यों नहीं होता? मनुष्य-चोला पाकर, आवागमन से पीछा क्यों नहीं छुड़ाता? यह चोला तुझे उसी तरह बारम्बार नहीं मिलेगा; जिस तरह त्रिया का तेल बार-बार नहीं चढ़ता। तू पुण्य करले और अखण्ड अविनाशी ब्रह्म को भजले। इस में अन्तर पड़ने से अन्तर पड़ता है और इस में लग जाने से जीव ब्रह्म में मिल जाता है। इस मनुष्य-जन्म का मिलना जूए का सा खेल है। अब चाहे जीत या हार, बाजी मार ले और चाहे खो दे।

दोहा ।

रोग वियोग विपत्ति बहु, देह आयु-आधीन ।
निडर विधाता जग रच्यो, महा अथिरता लीन ॥१०५॥

105. People's health is destroyed by hundreds of mental and physical diseases. Wherever there is wealth misfortunes come in like thieves breaking open the doors of houses. He who is born, soon falls helplessly into the jaws of death from which there is no escape. Then what is there in this world which is made by the wilfull Brahama to last for ever ?

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये
कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकर विषमे यौवने विप्रयोगः॥
नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः
संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित्
॥१०६॥

प्रथमावस्थामें प्राणी माताके गर्भमें पड़ा रहता है । वहाँ वह, मलमूत्र राध लोहू प्रभृति गन्दी चीज़ों के बीच में पड़ा हुआ, बड़े-बड़े कष्ट भोगता और हिल भी नहीं सकता । दूसरी अवस्था—जवानी में, वह अपनी प्यारी स्त्री की जुदाई के दुःख सहन करता है । तीसरी अवस्था—बुढ़ापे में, वह स्त्रियों से अनादृत या अपमानित होकर, मन मलीन किये, दुःख में पड़ा रहता है । हे मनुष्यो ! इस संसार में कहीं ज़रासा भी सुख हो तो हमें बताओ ॥१०६॥

गर्भावस्था ।

माता के ख़ून और पिता के वीर्य्य से, गर्भाशय में, प्राणी की देह बनती है। चार मास बाद, उस देह में, जीव आ जाता है। उस समय वह घोर अन्धकार-पूर्ण क़ैदखाने में हाथ-पाँव-बँधा हुआ, उल्टा लटका रहता है। मुँह पर झिल्ली होने के कारण, न बोल सकता है और न रो सकता है। जिस स्थान में वह नौ मास तक रहता है, वह स्थान—गर्भाशय—मल, मूत्र, राध, ख़ून, पीव और कफ प्रभृति महागन्दे पदार्थों से भरा रहता है। वह जगह गन्दी होने के सिवा, इतनी तङ्ग भी है कि, वहाँ वह अच्छी तरह फैल-पसर भी नहीं सकता। उसी मैली और तङ्ग जगह में, जो साक्षात् नरक है, वह बड़े ही कष्ट से नौ महीने काटता है। नरक-कुण्ड के कष्टों से दुःखी हो कर, वह परमात्मा को याद करता और उस से वादा करता है कि, इस बार मैं जन्म लूँगा, तो, और कुछ न कर के, केवल आपकी उपासना ही करूँगा। ख़ैर, भगवान् दया कर उसे बाहर निकालते हैं; पर बाहर आते ही वह, माया-मोह में फँस कर, उनको भूल जाता है।

मनुष्य की पाँच अवस्थाएँ।

प्रथम अवस्था

द्वितीय अवस्था

तृतीय अवस्था

चतुर्थ अवस्था

पञ्चम अवस्था

मनुष्य की पाँचों अवस्थाओं पर ग़ौर कीजिये ! देखिये मनुष्य को किसी अवस्था में भी सुख नहीं है । याद रखिये, सुख केवल "वैराग्य" में है । अतः संसार को त्यागिये और इसके बनाने वाले से प्रीति कीजिये ।

बाल्यावस्था ।

बालावस्था भी परम दुःख की मूल है। इस अवस्था में प्राणी पराधीन और अतीव दीन रहता है। अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता और दुःख-सन्ताप,—ये विकार इस अवस्था में आ जाते हैं। बालक एक पदार्थ की ओर दौड़ता, दूसरे को पकड़ता और तीसरे की इच्छा करता है। वह बड़ी-बड़ी इच्छायें करता है, पर उस की इच्छायें पूरी नहीं होतीं। वह सदा तृष्णा के फेर में पड़ा रहता और क्षण-क्षण में भयभीत होता है। उसे कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती। जिस तरह कदलीवन का हाथी, सङ्कलों में बँधा हुआ, दीन हो जाता है; उसी तरह यह चैतन्य पुरुष, बालावस्था रूपी सङ्कलों में, महादीन हो जाता है। जिस तरह क्षण-क्षण में द्वार की ओर दौड़ने वाले कुत्ते का अपमान होता है; उसी तरह बालक का अनादर होता है। उसे सदा माता-पिता और बान्धवों का भय रहता है। यहाँ तक कि, अपने से बड़े बालकों और पशु-पक्षियों से भी उसे भीत रहना पड़ता है। स्त्री के नयन और नदी के प्रवाह से भी बालक और मन की चञ्चलता अधिक है। सच तो यह है कि, बालक और मन की चञ्चलता समान है; और सब की चञ्चलता इन दोनों की चञ्चलता के नीचे है। जिस तरह वेश्या का मन एक पुरुष में नहीं ठहरता; उसी तरह बालक का मन भी एक पदार्थ में नहीं ठहरता।

इस काम या पदार्थ से मेरा अनिष्ट होगा या कल्याण, इतना भी ज्ञान बालक को नहीं होता। जिस तरह ज्येष्ठ आषाढ़

में पृथ्वी तपती रहती है; उसी तरह सुख-दुःख और इच्छा प्रभृति के दोषों से बालक जलता रहता है।

बालक में अशक्तता और पराधीनता इतनी होती है कि वह आप न उठ सकता है, न बैठ सकता है, न चल सकता है और न खा सकता है। कोई उठा लेता है, तो गोद में आ जाता है; नहीं तो अपने मल-मूत्र में ही पड़ा-पड़ा रोया करता है। कोई दूध पिला देता है, तो पी लेता है; नहीं तो रोता रहता है। यह शिशु-अवस्था है। इस अवस्था को पार कर वह बालकावस्था में आता है; तब लिखने-पढ़ने का भार उस के सिर पर आता है। उस समय बालक गुरु से इस तरह डरता है जिस तरह कोई यमदूत से डरता है। ज़रा भी दङ्गा करने या न पढ़ने से माता-पिता और गुरु प्रभृति की ताड़नायें सहनी पड़ती हैं। अगर उसे कुछ रोग हो जाता है, तो वह साफ़-साफ़ कह नहीं सकता और उसे सह भी नहीं सकता; भीतर-ही-भीतर जलता और दुःख पाता है। यह अवस्था महा मूर्खतापूर्ण है। बालक कभी कहता है कि, मुझे बर्फ का टुकड़ा भून दो; कभी कहता है कि, आकाश का चाँद उतार दो। भोला इतना होता है कि, थाली में जल भर कर चाँद दिखाने और दूध की जगह आटा घोल कर दे-देने से भी राज़ी हो जाता है। इस अवस्था में दुःख ही-दुःख हैं; सुख और स्वाधीनता का नाम भी नहीं। परमात्मा यह अवस्था किसी को न दे।

युवावस्था।

बालावस्था के बाद युवावस्था आती है। यद्यपि यह अवस्था नीचे से ऊपर चढ़ती है; पर यह और भी बुरी है। १५। १६ साल की अवस्था में शादी कर दी जाती है। इसे 'शादी ख़ाने आबादी' कहते हैं, पर यह है बर्बादी। बेचारे के पैरों में ऐसी बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं, कि उसे जन्म-भर आज़ादी नहीं मिलती। लोहे और काठ की बेड़ियों से चाहे मनुष्य को छुटकारा मिल जाय; पर स्त्री-रूपी बेड़ियों से जीवन-भर छुटकारा नहीं मिलता। अब तक पढ़ने-लिखने की चिन्ता और गुरु प्रभृति के भय से ही दुखी रहना पड़ता था; पर अब और फ़िक्र-चिन्तायें सिर पर सवार होती हैं। वही माता पिता, जिन्हों ने शादी-शादी कह कर पैरों में स्त्री-रूपी बेड़ियाँ पहना दी थीं, उठती जवानी के पट्ठे को भून-भून कर खाते हैं। कहते हैं,—"हमने तुझे पढ़ा-लिखा दिया, तेरा शादी-व्याह कर दिया; हमारा कर्त्तव्य पूरा हुआ; अब तू कमा। अगर नहीं कमाता है, तो अपनी स्त्री को लेकर अलग हो जा।" इस समय बेचारे की जान पर बन आती है। नौकरी या रोज़गार का मिलना कोई खेल नहीं, इसलिये बेचारा भीतर-ही-भीतर जल-जल कर ख़ाक होने लगता है। अगर धनी घर में जन्म होता है, तो ये कष्ट भोगने नहीं पड़ते। उस अवस्था में और ही नाश के समान आ इकट्ठे होते हैं। धन,

यौवन और प्रभुता इन में से प्रत्येक अनर्थ की जड़ है। जहाँ ये सब इकट्ठे हो जायें, वहाँ का तो कहना ही क्या ? जिस तरह धन पाने की आशा से, निर्धन लोग धनी को घेरे रहते हैं; उसी तरह, इस अवस्था में, सब दोष आकर युवक को घेर लेते हैं। युवावस्था-रूपी रात्रि को देख कर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार "आत्मज्ञान-रूपी धन को" लूटते हैं; इसलिये चित्त शान्त नहीं रहता और विषयों की ओर दौड़ता है। विषयों का संयोग होने से तृष्णा बढ़ती है। इस तृष्णा-राक्षसी के मारे, प्राणी जन्म-जन्मान्तर में दुःख भोगता है।

इस अवस्था में विषय-भोगों की ओर मन ज़ियादा रहता है। स्त्री अत्यधिक प्यारी लगती है। नितनयी स्त्रियों पर मन चला करता है। अगर कोई मित्र आता है, तो नवयुवक उस से कहता है,—"अरे यार ! वह नाज़नी कैसी ख़ूबसूरत है ! उसने तो मेरा दिल ही ले लिया। उसके दीदार बिना मुझे क्षण-भर भी चैन नहीं। वह कैसे मिले ?" बस, ऐसी ही बातें अच्छी लगती हैं। अगर इच्छित स्त्री नहीं मिलती, तो मन में क्रोध होता है; क्रोध से मोह होता है और मोह से बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि के नष्ट होने से, मनुष्य बिना पतवार की नाव की तरह नष्ट हो जाता है। समुद्र में अगाध जल भरा है। उस में अनन्त तरंगें उठती हैं। इतना विशाल महासागर, ईश्वर-आज्ञा के विरुद्ध, मर्यादा को नहीं मेटता; पर

युवावस्था शास्त्र और ईश्वर दोनोंकी आज्ञाओंको मेट देती है। जिस तरह अँधेरे में पदार्थों का ज्ञान नहीं रहता; उसी तरह युवावस्था में शुभ-अशुभ या भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। जवानी दीवानी में लोक-लाज और हया-शर्म सब हवा हो जाती हैं।

लिख चुके हैं, युवा अवस्था में स्त्री सब से अधिक प्यारी लगती है। अगर किसी तरह स्त्री से वियोग हो जाता है, तो उस की वियोगाग्नि में पुरुष इस तरह जलता है, जिस तरह दावाग्नि से वन के वृक्ष जलते हैं। युवावस्था में बड़े-से-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि उसी तरह मलिन हो जाती है; जिस तरह वर्षाकाल में निर्मल नदी मलिन हो जाती है। इस अवस्था में "वैराग्य और सन्तोष प्रभृति" गुणों का अभाव हो जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी ने महामुनि वशिष्ठजी से कहा है—"हे मुनिवर! जिस महा-सागर में अनन्त और अगाध जलराशि है तथा लाखों करोड़ों बड़े-बड़े मगर, मच्छ और घड़ियाल हैं, उस का पार करना महा कठिन है; पर मैं उस का पार करना उतना मुश्किल नहीं समझता, जितना कि मैं इस युवावस्था का पार करना कठिन समझता हूँ। युवावस्था विषयों की ओर ले जाने वाली, महा अनर्थकारी और लोक-परलोक नशाने वाली है। जिस तरह आकाश में वन का होना आश्चर्य्य की बात है; उसी तरह युवावस्था में सब सुखों के मूल "वैराग्य, विचार, सन्तोष और शान्ति" का होना आश्चर्य्य है।"

महाराज रामचन्द्र एक और जगह कहते हैं:—"युवावस्था! मुझ पर दया कर के तू न आना! मुझे तेरी ज़रूरत नहीं, क्योंकि मेरी समझ में तेरा आना दुःखों का कारण है। जिस तरह पुत्र के मरने का सङ्कट पिता के सुख के लिए नही होता; उसी तरह तेरा आना भी सुख के लिए नहीं होता।

वृद्धावस्था।

यह अवस्था पहली दो अवस्थाओं से भी बुरी है। बाल्यावस्था महा जड़ और अशक्त है; युवावस्था अनर्थ और पापों का मूल है तथा वृद्धावस्था में शरीर जर्ज्जर और बुद्धि क्षीण हो जाती है, कूब निकल आता है, दाँत गिर पड़ते हैं, बाल सफ़ेद हो जाते हैं, बल कम हो जाता है, आँखों से कम सूझता या सूझता ही नहीं; कानों से सुनाई नहीं देता, पैरों से चला नहीं जाता, लकड़ी टेक-टेक कर चलना होता है, कफ और खाँसी अपना दौर-दौरा जमा लेते हैं, हर समय साँस फूलने लगता है। बहुत क्या—सारे रोग, शत्रुओं की तरह मौक़ा पाकर, इस अवस्था में चढ़ाई कर देते हैं। स्त्री-पुत्रादिक सभी नाते-रिश्तेदार बूढ़े को उसी तरह त्याग देते हैं; जिस तरह पके फल को वृक्ष और निकम्मे बूढ़े बैल को बैल वाला त्याग देता है।

जरा अवस्था या बुढ़ापा मृत्यु का पेशख़ीमा या लैनडोरी है। जिस तरह साँझ होने से रात निकट आती है; उसी तरह बुढ़ापे के आने से मौत नज़दीक आती है। सन्ध्या के आने पर जो दिन की इच्छा करते हैं और बुढ़ापे के आने पर जो जीने की अभिलाषा रखते हैं, वे दोनों ही मूर्ख हैं। जिस तरह बिल्ली चूहे के खा जाने की घात में रहती है और चाहती है कि, चूहा आवे तो खा जाऊँ; उसी तरह मौत देखती रहती है कि, बुढ़ापा आवे तो मैं इसे ग्रहण करूँ। ऐसा जान पड़ता है, मानो वृद्धावस्था काल की सखी है। वह आकर रोग-रूपी आग से शरीर के मांस को जलाती या पकाती है और उस का स्वामी--काल आ कर प्राणी को भक्षण कर जाता है। अशक्तता, अङ्गपीड़ा और खाँसी,—ये तीनों काल की पट-रानियाँ हैं। जिस तरह बन में बाघिन आ कर पहले शब्द करती या गरजती और मृग का नाश करती है; उसी तरह शरीर-रूपी बन में खाँसी-रूपी बाघिन आ कर बल-रूपी मृग का नाश करती है। जिस तरह चन्द्रमा के उदय होने से कमलिनी खिल उठती है; उसी तरह बुढ़ापे के आने से मृत्यु प्रसन्न होती है। जरा बड़ी ज़बर्दस्त है। इस ने बड़े-बड़े शत्रुहन्ताओं के मान मर्दन कर दिये हैं। यह शरीर को आग की तरह जलाती है। जिस तरह वृक्ष में आग लगती है, तब धूआँ निकलता है; उसी तरह शरीर-वृक्ष में जरा-रूपी-अग्नि के लगने से तृष्णा रूपी धूआँ निकलता है। जरा-रूपी ज़ञ्जीर में बँधने से मनुष्य दीन

हो जाता है, अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, बल क्षीण हो जाता है, इन्द्रियाँ निर्बल हो जाती हैं और शरीर जर्ज्जर हो जाता है; पर तृष्णा उल्टी बलवती हो जाती है । इस अवस्था में घोर दुःख है; सुख का तो लेश भी नहीं ।

जिस समय पुरुष बूढ़ा हो जाता है, उस में कमाने की शक्ति नहीं रहती; तब सभी उसे पागल समझ कर उस की हँसी करते और उस के पुत्र-पौत्रादिक उसे बुरी नज़र से देखते हैं। यहाँ तक कि, ख़ास उस की अर्द्धाङ्गी उस से घृणा करने लगती है। पुत्र उसे कोई चीज़ नहीं समझते। और लोग भी उसे वृथा की बला समझते हैं । पुत्र और पुत्रबधुएँ उसे एक टूटी-सी खाट पर पौली में डाल देते और उस के थूकने को एक ठीकरा रख देते हैं। आप समय पर अच्छे-से-अच्छा खाना खाते हैं; पर उसे, समय-बे-समय, जब याद आ जाती है, बचा-खुचा बासी-कूसी खाना एक पुरानी और फूटी सी थाली या ठीकरे में रख कर दे आते हैं। जब उस का थूक-खखार या मल-मूत्र उठाते हैं, तब उसे सैकड़ों तरह की न कहने-योग्य बातें सुनाते हैं,—"अब मर क्यों नहीं जाते ? जवान-जवान मरे जाते हैं, पर तुम को मौत नहीं आती !" प्रभृति । यह दुर्गति बुढ़ापे में होती है ।

अगर घर-गृहस्थी में सौभाग्य से कोई दुःख नहीं होता, घर वाले स्त्री-पुत्र आदि अच्छे मिल जाते हैं, घर में परमात्मा की दया से सुखैश्वर्य्य के सभी सामान मौजूद होते हैं; तो दूसरों का

भला न चीतने वाले, दूसरों को अच्छी अवस्था में देखकर कुढ़ने वाले ही तङ्ग करते हैं। वह अपनी ओरसे उसका सर्वनाश करने में कोई बात उठा नहीं रखते। यद्यपि ऐसी बातों से उन्हें कोई लाभ नहीं होता; तो भी वे बिल्ली की सी करतूतों से बाज़ नहीं आते; हरदम नाक में दम किये रहते हैं। मतलब यह कि, संसार में दुःखों की ही अधिकता है। यहाँ सुख है ही नहीं। अगर है, तो बराय नाम और उस से परिणाम में कोई लाभ नहीं; वरन हानि है। उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं:—

राहितो रंज ज़मानेमें हैं दोनों, लेकिन।
याँ अगर एक को राहत है, तो है चार को रंज ॥

निस्सन्देह संसार में सुख और दुःख दोनों ही हैं—पर बहुलता दुःख ही की है, क्योंकि चार दुःखियों में मुश्किल से एक सुखी मिलता है।

उस्ताद 'ज़ौक़' ही एक जगह और कहते हैं:—

हलावते शरमो पासदारी, जहाँमें है ज़ौक़ रंजोख़्वारी।
मज़ेसे गुज़री, अगर गुज़ारी किसीने बे नामोनंग होकर ॥

संसार से दूर रहना अच्छा; यहाँ के सम्बन्धों की जड़ में दुःख और क्लेश भरा हुआ है। जिस ने अपनी ज़िन्दगी चुपचाप गुज़ार दी; सच तो यह है, उस ने अच्छी गुज़ार दी।

सारांश यह, कि सभी महात्माओं ने संसार के दुःखों का अनुभव कर के औरों को चेतावनी दी है, कि इस मिथ्या जगत् की माया में न भूलो; इस से दिल मत लगाओ, किन्तु इस के बनाने वाले के साथ दिल लगाओ। इस के साथ दिल लगाने से तुम्हारा बुरा और उस के साथ दिल लगाने से भला है।

गोस्वामी 'तुलसीदासजी' ने कहा है:—

सलिल युक्त शोणित समुझ, पल अरु अस्थि समेत।
बाल कुमार युवा जरा, है सु समुझ करु चेत॥
ऐसेहि गति अवसान की, "तुलसी" जानत हेत।
ताते यह गति जानि जिय, अविरल हरि चित चेत॥

स्त्री की रज और पुरुष के वीर्य से तुम्हारे शरीर के खून, मांस और हड्डियाँ बनीं। फिर तुम गर्भाशय से बाहर आये। फिर बालक अवस्था में रहे; उस के बाद युवावस्था आई; फिर बुढ़ापा आया। फिर तुम मरे और कर्म फल भोगने को फिर जन्म लिया। इस तरह लोक-वासना के कारण तुम्हें बारम्बार जन्मना और मरना पड़ता है। इस में कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं, इन बातों को याद करते रहो और कष्टों से बचने के लिये सावधान हो कर परमात्मा से प्रीति करो; तभी तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे सारे नातेदार मतलबी हैं; केवल एक वह सच्चा सहायक और रक्षक है। यही सब विषय नीचे के भजनों में कैसी ख़ूबी से दिखाये हैं:—

भजन (राग धनाश्री)।

हरि बिन और न कोई अपना, हरि बिन और न कोई रे।
मात पिता सुत बन्धु कुटुम सब, स्वारथ के ही होई रे ॥१॥
या काया को भोग बहुत दे, मरदन कर-कर सोई रे।
सो भी छूटत नैक न खसकी, संग न चाली धोई रे ॥२॥
घर की नारि बहुत ही प्यारी, तन में नाहीं दोई रे।
जीवत कहती संग चलूँगी, डरपन लागी सोई रे ॥३॥
जो कहिये यह द्रव्य आपनो, जिन उज्जल मति खोई रे।
आवत कष्ट रखत रखवारी, चलत प्राण ले जोई रे ॥४॥
इस जग में कोई हितू न दीखे, मैं समझाऊँ तोई रे।
"चरणदास-सुखदेव" कहैं, ये सुन लीजो सब कोई रे ॥५॥

भजन (राग सोरठ)।

सुध राखो वा दिन की कछु तुम, सुध राखो वा दिन की रे।
जा दिन तेरी यह देह छुटैगी, ठौर बसौगे बन की रे ॥१॥
जिन के संग बहुत सुख कींने, तेरो मुख ढँक होयँगे न्यारे रे।
जम के त्रास होयँ बहु भाँती, कौन छुटावनहारे रे ॥२॥

देहल लों तेरी नारि चलेगी, बड़ी पौल लों माई रे।
मरघट लों सब बीर भतीजे, हंस अकेला जाई रे॥३॥
द्रव्य पड़े और महल खड़े रहें, पूत रहैं घर माहीं रे।
जिन के काज पचै दिन-राती, सो सँग चालत नाहीं रे॥४॥
देव पितर तेरे काम न आवें, जिनकी सेवा लावें रे।
"चरणदास-सुखदेव" कहत हैं, हरि-बिन मुक्ति न पावें रे॥५॥

परमात्मा की भक्ति करो तो ऐसी करो कि, परमात्मा के सिवा अन्य किसी भी देवी-देवता या संसारी पदार्थ को कुछ समझो ही नहीं; यानी उस जगदीश के सिवा सब को झूठे, निकम्मे और नाशमान् समझो। केवल उस के प्रेम में ग़र्क़ हो जाओ और उस से प्रेम के बदले में कुछ माँगो नहीं, तब देखो, क्या आनन्द आता है! 'कबीर' साहब कहते हैं:—

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोरे अंग॥

इसी बात को उस्ताद 'ज़ौक़' ने किस तरह कहा है:—

कहा पतंग ने यह, दारे शमा पर चढ़ कर।
अजब मज़ा है, जो मर ले किसी के सर चढ़ कर॥

ऐसी प्रीति को ही प्रीति कहते हैं। दीपक और पतङ्ग, मछली और जल, नाद और कुरङ्ग, चातक और मेघ,—इनकी

प्रीति आदर्श प्रीति है। ऐसी प्रीति से ही सच्ची सिद्धि मिलती है—ऐसी प्रीति वालोंको ही परमात्माके दर्शन होते हैं।

दोहा।

सह्यो गर्भ-दुख जन्म-दुख, जौवन त्रिया-वियोग।
वृद्ध भये सबहिन तज्यो, जगत किधौं यह रोग?॥

106 In their earliest stage of existence creatures remain in their mothers' wombs in the midst of impurities suffering great hardships with motionless bodies. In youth comes the unbearable pain of separation from consorts. Then comes the miserable old age marked unmistakeably by the insolence of women. Thus O men, let us know if there is any the least happiness in this world!

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं,
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥१०७

मनुष्य की उम्र औसत सौ बरस की मानी गई है। उस में से आधी रात में सोने में गुज़र जाती है; बाक़ी में से एक भाग बचपन में और एक भाग बुढ़ापे में चला जाता है। शेष में जो एक भाग बचता है.—वह रोग, वियोग, पराई चाकरी, शोक और हानि प्रभृति नाना प्रकार के क्लेशों में बीत जाता है। जल-तरङ्गवत् चञ्चल जीवन में प्राणियों के लिये सुख कहाँ है?॥१०७॥

आयु का हिसाब ।

खुलासा—शास्त्रों में मनुष्य की आयु सौ बरस की मानी गई है। उसमें से पचास बरस, यानी आधी आयु तो रात के समय सोने में बीत जाती है। अब रहे पचास बरस; उनके तीन भाग कीजिये। पहले १७ साल बचपन की अज्ञानावस्था और पराधीनता में बीत जाते हैं। दूसरे १७ साल वृद्धावस्था में चले जाते हैं और शेष १६ साल नाना प्रकार के रोग, शोक, वियोग, हानि-लाभ की चिन्ता और दूसरों से लड़ने-झगड़ने प्रभृति में बीत जाते हैं।

प्राणी को कभी सुख नहीं ।

पचास साल में से पहले १७ बरस बचपन में बीतते हैं। इस अवस्था में, पैदा होते ही, बच्चा पराधीन होता है। आप उठ-बैठ चल-फिर नहीं सकता। कोई उठा लेता है, तो उठ आता है; नहीं तो मल-मूत्र में ही पड़ा रहता है। कोई खिला-पिला देता है, तो खा-पी लेता है; नहीं तो पड़ा-पड़ा रोया करता है। कैसी बुरी अवस्था है! इसमें ज़रा भी सुख दिखाई नहीं देता। इस के बाद ज्यों ही वह ५।६ साल का

हुआ, कि उस पर पढ़ने-लिखने का भार आ पड़ता है। रात-दिन पढ़ने लिखने की चिन्ता में बेचारा पागल-सा बना रहता है।

इस के बाद जवानी आती है। जवानी में स्त्री आ जाती है। अगर धन नहीं कमाता, तो माता-पिता कहते हैं:—"हमने तुम्हारी शादी कर दी, बना जितना पढ़ा-लिखा दिया, अब कमाओ; यदि नहीं कमाते, तो अपनी लुगाई को लेकर अलग हो जाओ। हमसे तुम्हारा दोनों का ख़र्च उठाया नहीं जाता।" अगर कोई धन्धा लग गया, तो ख़ैर; नहीं तो जब तक नौकरी-चाकरी या रोज़गार नहीं लगता, रात-दिन बेचारा भाड़ में चनों की तरह भूना जाता है। अगर धन्धा भी लग जाता है, तो स्वामी के राज़ी या नाराज़ होने की चिन्ता लगी रहती है अथवा कारोबार के नफ़े-नुक़सान की फ़िक्र शरीर को भीतर-ही-भीतर जलाये देती है। इसी बीच में रोग भी होते हैं। दूसरों से मुक़दमेबाज़ी होती है। इस तरह इस अवस्था में भी चैन नहीं मिलता।

अब रहा बुढ़ापा। यह तो दुःखों का भाण्डार ही है। इसमें अनेक रोग शत्रुओं की तरह चढ़ाई करते हैं, शरीर काम नहीं देता और घर के लोग अनादर करते हैं। इस अवस्था में और भी मिट्टी ख़राब होती है। इस तरह स्पष्ट है, कि प्राणी को इस चञ्चल जीवन में क्षण-भर भी सुख नहीं मिलता।

दुःखपूर्ण जीवन से प्राणी सन्तुष्ट !

यद्यपि इस जीवन में ज़रा भी सुख नहीं है, क्षण-भर भी शान्ति नहीं है; तो भी मनुष्य का ऐसा मोह है कि, वह मरना नहीं चाहता; मौत का नाम सुनने से काँप उठता है। अगर इस जीवन में सुख होता, तो न जाने क्या होता? घोर कष्ट और दुःखों में भी यदि मनुष्य मरता है तो कहता है—"हम कुछ न जिये, अगर और कुछ दिन जीते तो……"

किसी कवि ने कहा है—

हो उम्र ख़िज़्र भी, तो कहेंगे बवक्ते मर्ग।
हम क्या रहे यहाँ, अभी आये अभी चले॥

चाहे हज़ारों बरस की उम्र हो जाय, मरते समय यही कहेंगे, इस संसार में कुछ भी न रहे, अभी आये अभी जाते हैं। जीने की अभिलाषा बनी ही रहती है।

घृणित जीवन से भी क्यों घृणा नहीं होती?

मनुष्य-जीवन में दुःख-ही-दुःख हैं; फिर भी मनुष्य इस घृणित जीवन से सन्तुष्ट क्यों रहता है? इस से उसे घृणा क्यों नहीं होती? जिस तरह मैले से भङ्गी को घृणा नहीं होती; उसी तरह जिन के स्वभाव में मनुष्य-जीवन के दुःख समा गये हैं,

उन्हें इस मलिन और घृणित जीवन—दुःखपूर्ण जीवन से घृणा नहीं होती। मैले का कीड़ा मैले में ही सुखी रहता है; मैले से निकलने में उसे दुःख होता है। यही हाल उन का भी है, जिन के अन्तःकरण मलिन हैं। वे मलिन गृहस्थाश्रम में ही सुखी हैं।

मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है ?

मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। यह ८४ लाख योनियाँ भोगने के बाद मिलता है। अगर मनुष्य इस मानव-जीवन में भी चूक जाता है, आवागमन—जन्म-मरण—के फन्दे से छूटने का उपाय नहीं करता, तो पछताता और रोता है; पर यह सुअवसर उसे फिर जल्दी नहीं मिलता। इस पर एक दृष्टान्त है:—

अवसर चूके पछताना होता है।

किसी राजा के ३६० रानियाँ थीं। राजा विदेश गया था। जिस दिन वह लौट कर आया उस दिन ३६० वें नम्बर की रानी के यहाँ उस के जाने की बारी थी। रानी ने दासियों से कह दिया कि, मैं सोती हूँ; जब राजाजी आवें, मुझे जगा देना। रात को राजा आया; किन्तु दासियों ने भय के मारे रानी को न जगाया। सवेरे राजा चला गया। रानी ने उठ कर पूछा—"क्या राजाजी आये थे ?" दासियों ने कहा—"हाँ, आये थे।

हम लोग उनके भय के मारे आपको जगा न सकीं।" रानी बहुत रोई पछताई। उसे ३६० दिन तक फिर राह देखनी पड़ी। बस; यही हाल उन का है, जो इस मनुष्य-जन्म को वृथा गँवा देते हैं। इस में भगवद्भक्ति या उपासना नहीं करते। मर जाने पर, ८४ लाख योनियों को भोग कर, फिर कहीं ऐसा अवसर हाथ आता है। अतः मनुष्य को, सब जञ्जाल छोड़ कर एक मात्र भगवद्भक्ति में लगना चाहिये; एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाना चाहिये। दम निकले तो जगदीश्वर की याद करता हुआ ही निकले। इसी में कल्याण है। साँस का भरोसा क्या ? आया आया, न आया न आया। "गुरु कौमुदी" में कहा है:—

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे क्षणे।
बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्त्तते॥

अरे जीव ! प्रत्येक क्षण हरि का नाम भज। हरि का नाम कल्याण-धाम है। जो साँस बाहर निकल जाता है, उस का क्या भरोसा ? आवे, न आवे।

महाभारत में आयु की क्षणभंगुरता पर एक इतिहास लिखा है:—

एक ब्राह्मण राह भूल कर किसी भयानक बन में जा निकला। वहाँ हाथी और सर्प प्रभृति भयानक हिंसक पशु घूम रहे थे। एक पिशाचनी हाथ में फाँसी लिये सामने आ

रही थी। उन्हें देख कर वह डरके मारे रक्षा का स्थान खोजने लगा। उसने एक अन्धा कूआ देखा, जिस में घास छा रही थी तथा अनेक प्रकार की बेलें लग रही थीं। वह एक बेल को पकड़ कर, औंधा सिर किये, कूएँ में लटक गया। थोड़ी देर बाद उस ने नीचे की ओर देखा, तो एक बड़ा भारी सर्प मुँह फाड़े हुए नज़र आया; ऊपर की ओर देखा, तो एक मस्त हाथी खड़ा दीखा। उस हाथी के छः मुख थे। उसका आधा शरीर सफ़ेद और आधा काला था। जिस बेल को वह ब्राह्मण पकड़े हुए था, उसको वह हाथी खा रहा था और सफ़ेद तथा काले दो चूहे उस बेल की जड़ को काट रहे थे।

इसका मतलब यों है:—वह ब्राह्मण जीव है। सघन बन यह संसार है। काम क्रोध आदि भयानक जीव इस जीव के नष्ट करने को घूम रहे हैं। स्त्री-रूपी पिशाचनी, भोग-रूपी पाश लेकर, इस जीव के फँसाने के लिये फिरती है। कूएँ में जो बेल लटक रही है, वही आयु है। उसीको पकड़ कर यह जीव लटक रहा है। कूएँ में जो काल सर्प है, वह इस जीव का काल है, वह अपनी घात देख रहा है; उधर रात-दिन-रूपी चूहे इस आयु-रूपी बेल की जड़ काट रहे हैं। वह हाथी वर्ष है। उसके छः मुख छः ऋतुएँ हैं। शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष उस हाथी के वर्ण या रंग हैं। मनुष्य इस तरह मौतके मुँह में है। हर क्षण मौत उसे निगलती जा रही है, पर आश्चर्य्य है कि, इस आफ़त में भी—मृत्यु-मुख में पड़ा हुआ भी—वह

अपने को सुखी समझता है और इस नितान्त भय-पूर्ण जीवन से सन्तुष्ट है।

बीत गई सो बीत गई, आगे की सुधि लो।

बहुत से लोग कहा करते हैं, कि हमने सारी उम्र परपीड़न या पापकर्मों में खोई, भगवान् को कभी भूल कर भी याद न किया; अब हम क्या कर सकते हैं? यह कहना भारी भूल है। जो समय बीत गया, वह तो लौट कर आवेगा नहीं; पर जो समय हाथ में है, उसे तो सुकर्म और ईश्वर की याद में लगाना चाहिये। यदि बाक़ी उम्र भी व्यर्थ के झञ्झटों में गँवाई जायगी, तो अन्त काल में भारी पछतावा होगा। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र,
धरा धन धाम है बन्धन जीको।
बारहिं बार विषैफल खात,
अघात न जात सुधारस फीको।
आन औसान तजो अभिमान,
कही सुन, नाम भजो सिय-पीको।
पाय परमपद हाथ सों जात,
गई सो गई, अब राख रही को॥

एक नटकी उपदेशप्रद कहानी।

एक राजा बड़ा ही कञ्जूस था। उसने प्रचुर धन सञ्चय किया था; पर उस से न तो वह अपने पुत्र को सुख भोगने देता था और न ख़र्च के डर से अपनी कन्या की शादी ही करता था। एक दिन एक नट-नटी उस के दरबार में आये और राजा से तमाशा देखने की प्रार्थना की। राजा ने कहा—"अच्छा, अमुक दिन देखा जायगा।" नटनी बार-बार याद दिलाती रही और राजा बार-बार टालता रहा। अन्त में नटनी ने वज़ीर से कहा—"अगर राजा साहब तमाशा न देखें, तो हम चले जायँ; हमें ख़र्च खाते बहुत दिन हो गये।" यह सुन वज़ीर ने राजा से कहा—"महाराज! आप तमाशा देख लीजिये। हम लोग चन्दा कर के नट को कुछ दे देंगे। अगर आप तमाशा न देखेंगे, तो बड़ी बदनामी होगी।" राजा इस बात पर राज़ी हो गया। तमाशा हुआ। तमाशा करते-करते जब दो घड़ी रात रह गई और राजा ने कुछ भी इनाम न दियां, तब नटनी ने नट से कहा:—

रात घड़ी भर रह गई, थाके पिञ्जर आय।
कह नटनी सुन मालदेव, मधुरा ताल बजाय॥

नटनी की बात सुन कर नट ने कहा:—

बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
कहे नाट सुन नायिका, ताल में भंग न पाय॥

एक तपस्वी भी वहाँ तमाशा देख रहा था। उसने ये सवाल-जवाब सुनते ही नट को अपना कम्बल दे दिया, राजा के लड़के ने उसे अपनी हीरों की जड़ाऊ कड़ों की जोड़ी दे दी और राजकन्या ने अपने गले का हीरों का हार दे दिया।

राजा यह सब देख कर चकित हो गया। उसने सब से पहले तपस्वी से पूछा—"तुम्हारे पास यही एक कम्बल था। तुम ने क्या समझ कर उसे कम्बल दे दिया ?" तपस्वी ने कहा—"आप के ऐश्वर्य्य को देख कर मेरे मन में भोगों की वासना उठ खड़ी हुई थी; पर नट के दोहे से मेरा विचार बदल गया। मैं ने उस से यह उपदेश ग्रहण किया कि, बहुत-सी आयु तो तप में बीत गई; अब जो थोड़ी-सी रह गई है, उसे भोगों की वासना में क्यों ख़राब करूँ ? मुझे नट से उपदेश मिला, इस से मैंने अपना एक-मात्र कम्बल—अपना सर्वस्व उसे दे दिया।"

इस के बाद राजा ने राज-पुत्र से पूछा—"तुम ने क्या समझ कर अपनी बेशक़ीमत कड़ों की जोड़ी उसे दे दी ?" राज-पुत्र ने कहा—"मैं बड़ा दुखी रहता हूँ, क्योंकि मुझे आप कुछ भी खर्च करने नहीं देते। दुखी हो कर मैं ने यह विचार कर रखा था कि, किसी दिन राजा को विष दे कर मरवा दूँगा; पर इस नट के दोहे से मुझे यह उपदेश मिला है कि, राजा की बहुत-सी

आयु तो बीत गई, अब वह बूढ़ा हो गया है; दो-चार बरस की बात और है; इस अर्से में वह आप ही मर जायगा, अतः पितृ हत्या क्यों की जाय ? इसी उपदेश के बदले में, मैं ने नट को कड़ों की जोड़ी दे दी।"

फिर राजा ने राज-कन्या से पूछा—"तुम ने अपना क़ीमती हार नट को क्यों दिया ?" कन्या ने कहा—"मेरी जवानी आ गई है; आप ख़र्च के भय से मेरी शादी नहीं करते। कामदेव बड़ा बलवान् है। काम की प्रबलता के मारे, मेरा विचार वज़ीर के लड़के के साथ निकल भागने का था; पर नट के दोहे से मुझे यह उपदेश मिला कि, राजा की बहुत-सी आयु तो चली गई; अब जो शेष रह गई है, वह भी बीतने ही वाली है। थोड़े दिनों के लिये, पिता के नाम में क्यों बट्टा लगाऊँ ? यह अनमोल उपदेश मुझे नट के दोहे से मिला, इसी से मैं ने अपना बहुमूल्य हार उसे दे दिया। हे पिता ! नट के दोहे ने आप की जान और इज्ज़त बचाई है; अतः आपको भी उसे कुछ इनाम देना चाहिये।" राजा ने सब बातें सोच-समझ कर नट को इनाम दे विदा किया और वज़ीर के लड़के के साथ कन्या की शादी कर दी। राज-पुत्र को गद्दी दे कर आप वैरागी हो गया और अपनी शेष रही आयु आत्मविचार में लगा दी। इसी तरह सभी संसारियों को, अपनी शेष आयु सुकर्म और ब्रह्म-विचार में लगा, जन्म-मरण से पीछा छुड़ा, नित्य सुख-शान्ति लाभ करनी चाहिये।

बाल-बच्चों का क्या किया जाय ?

प्रथम तो स्त्री-पुत्र प्रभृति आप के कोई नहीं; एक सराय के मुसाफिर के समान हैं। यहाँ आकर नाता जुड़ गया है। अपने-अपने टाइम पर सब अपनी-अपनी राह लगेंगे। इसके सिवा, ये आप से सच्ची मुहब्बत भी नहीं करते। आप से इन का काम निकलता है, पाप-पुण्य की गठरी आप बाँधते हैं और सुख ये भोगते हैं; इसी से कोई आप को "बाबूजी" कोई "चाचाजी" और कोई "नानाजी" कहता है। अगर आप इन की ज़रूरतों या फरमायशों को पूरी न करें, तो ये आप का नाम भी न लें। ऐसे स्वार्थी लोगों की मिथ्या प्रीति के फेर में पड़ कर, आप अपने अमूल्य और दुष्प्राप्य जीवन को क्यों नष्ट करते हैं? जब आप इस देह को छोड़ कर परलोक में जायँगे, तब क्या ये आप के साथ जायँगे? हरगिज़ नहीं। कोई पौली तक और कोई श्मशान तक आप की लाश के साथ जायँगे। वहाँ पहुँच, आपको जला-बला ख़ाक कर सब भूल जायँगे।

आप भी मुसाफिर हैं और आप के स्त्री-पुत्र भी मुसाफिर हैं। आप की अगली सफर बड़ी लम्बी है। यह तो बीच का एक मुक़ाम है। कर्म-भोग भोगने को आप यहाँ ठहर गये और कर्म-वश ही इन सब से आपका मेल हो गया। ये अपनी सफर का प्रबन्ध करें चाहे न करें, पर आप तो अवश्य करें। इनके झूठे मोह में आप न भूलें। अगर आप बाल-बच्चों की रोटी

और कपड़ों की फिक्र में लगे रहेंगे, तो यह फिक्र तो अन्त तक लगा ही रहेगा और आप को ले जाने वाली गाड़ी या मौत आ जायगी। उस समय बड़ी कठिनाई होगी। जो लोग उम्र-भर गृहस्थी के झंझटों में लगे रहे, अन्त में उन का बुरा ही हुआ। ये घर-झगड़े ही तो ईश्वर-दर्शन या स्वर्ग अथवा मोक्ष की प्राप्ति में बाधक हैं। महात्मा 'शेख़ सादी' ने कहा है:—

ऐ गिरफ्तारे पाये बन्दे अयाल।
दिगर आज़ादगी मवन्द ख़याल॥
ग़मे फ़रज़न्दो नानो जामओ कूत।
वाज़द आरद ज़े सेर दर मलकूत॥

ऐ औलाद की मुहब्बत में गिरफ़्तार रहने वाले, तू किसी तरह भी बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता। सन्तान, रोटी-कपड़ा तथा जीविका की फिक्र तुझे स्वर्ग की चिन्ता से रोकती है। इसलिये "सब तज और हर भज।"

क्या घर में रह कर ईश्वर-उपासना नहीं की जा सकती ?

घर-गृहस्थी में रह कर ईश्वर की भक्ति और उपासना की जा सकती है; पर, घर में रह कर भक्ति करना है टेढ़ी खीर। जैसी संगति होती है, वैसा ही मनुष्य हो जाता है। ज्ञानियों

की संगति में ज्ञान की और स्त्रियों की सुहबत में काम की उत्पत्ति होती है। घर में रह कर वैराग्य की उत्पत्ति होना कठिन है। किसी कवि ने कहा है:—

जाइयो तहाँ ही, जहाँ संग न कुसंग होय,
कायरके संग, शूर भागे पर भागे है।
फूलन की वासना, सुहाग-भरे वासन पै,
कामिनी के संग, काम जागे पर जागे है॥
घर बसे घर पै बसो, घर वैराग कहाँ?
काम क्रोध लोभ मोह, पागे पर पागे है।
काजर की कोठरी में, लाखहु सयानो जाय,
काजर की एक रेख, लागे पर लागे है॥

संसारियों की संगति में मनुष्य संसारी हो जाता है; विषय-भोगों की ओर ही उस का मन चलायमान होता है तथा स्त्री-पुत्र आदिकों में उसका राग बना ही रहता है; पर जो वेदान्त-ग्रन्थों को विचारते और महापुरुषों की संगति करते हैं, उन का अन्तःकरण शुद्ध होते रहने की वजह से, उन्हें, गृहस्थाश्रम में ही, वैराग्य उत्पन्न होने लगता है। गृहस्थी में एक न एक दुःख बना ही रहता है। उस दुःख के कारण, मनुष्य के मन में वैराग्य भी पैदा होता रहता है। विषयों में दुःख समझना ही वैराग्य का और सुख समझना ही राग का हेतु है। महामूढ़ों को भी कुछ-न-कुछ वैराग्य बना ही रहता है। जिस तासमय कोई कष्ट आ

है, स्त्री-पुत्र आदि मर जाते हैं, धन नाश हो जाता है, तब मूढ़ भी अपने तईं और संसार को धिक्कारता है; लेकिन ज्योंही वह कष्ट दूर हो जाता है, उस का वैराग्य भी काफ़ूर हो जाता है। पर, वास्तव में, वैराग्य का कारण—है गृहस्थाश्रम ही; क्योंकि विना गृहस्थाश्रम तो किसी की उत्पत्ति होती ही नहीं। रामचन्द्र और वशिष्ठ प्रभृति को गृहस्थाश्रम में ही वैराग्य हुआ था। और भी बड़े-बड़े संन्यासियों को गृहस्थाश्रम में ही वैराग्य हुआ था। वैराग्य उत्पन्न होते ही, उन्होंने घर-गृहस्थी त्याग, वन की राह ली थी।

यह बात भी नहीं है कि, गृहस्थाश्रम में ज्ञान होता ही न हो। जनकादिक महात्मा गृहस्थाश्रम में ही ज्ञानी हुए थे। ज्ञान का कारण "वैराग्य" है। जो गृहस्थ हो कर, सदैव, वैराग्य और विचार में मग्न रहता है, उस के ज्ञानी होने में सन्देह नहीं; पर जो संन्यासी होकर भी भोगों में राग रखता है, उस के अज्ञानी होने में संशय नहीं। "वैराग्य" ही आत्मज्ञान का साधन है। मनुष्य—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास—किसी आश्रम में क्यों न हो, विना वैराग्य के ज्ञान नहीं और ज्ञान विना मोक्ष नहीं। जो पुरुष गृहस्थाश्रम में रह कर भी उस में आसक्त नहीं होता, जल में कमल की तरह रहता है, उस की मुक्ति में ज़रा भी सन्देह नहीं। एक दृष्टान्त इस मौक़े का हमें याद आया है, उस से पाठकों को अवश्य लाभ होगा:—

राजा जनक और शुकदेव जी।

एक बार व्यास जी ने शुकदेव जी से कहा कि, तुम राजा जनक के पास जा कर उपदेश लो। शुकदेव जी जनक के द्वार पर गये। भीतर ख़बर कराई, तो राजा ने कहला भेजा कि, द्वार पर ठहरो। शुकदेव जी तीन दिन तक द्वार पर खड़े रहे, पर उन्हें क्रोध न आया। राजा ने उन के क्रोध की परीक्षा करने के लिये ही, उन्हें, तीन दिन तक, द्वार पर खड़ा रक्खा और चौथे दिन अपने पास बुलाया। वहाँ जा कर शुकदेव जी क्या देखते हैं कि, राजा जनक सोने के जड़ाऊ सिंहासन पर बठे हैं, सुन्दरी नवयौवना स्त्रियाँ उन के चरण दाब रही हैं और कुछ मोरछल और पङ्खे कर रही हैं। जगह-जगह विषय-भोग या ऐश-आराम के सामान धरे हैं। सामने ही सुन्दरी नर्त्तकियाँ नाच कर रही हैं। यह हाल देख कर, शुकदेव जी के मन में राजा की ओर से घृणा हुई। उन्होंने मन में कहा—"नाम बड़े और दर्शन छोटे" वाली बात है। यह तो भोगों में आसक्त हैं; पिता जी ने इन्हें परम ज्ञानी क्यों कहा ? राजा जनक शुकदेव जी के मन की बात ताड़ गये। दैवात; उसी समय मिथिलापुरी में ज़ोर से आग लग गई। बाहर से दूत दौड़े आये और कहने लगे—"महाराज ! पुरी में आग लग गई है और राजद्वार तक आ पहुँची है।" शुकदेव जी मन में सोचने लगे कि, रमे

दण्ड-कमण्डल बाहर रक्खा है, कहीं वह न जल जाय । उस समय राजा ने कहा—

"अनन्तवत्तु मे वित्तं, यन्मे नास्ति हि किञ्चन,
मिथिलायां प्रदग्धायां, न मे दह्यति किञ्चन ।"

मेरा आत्मरूप-धन अनन्त है। उस का अन्त कदापि नहीं हो सकता। इस मिथिला के जलने से तो मेरा कुछ भी नहीं जल सकता।

राजा जनक के इस वाक्य से, पदार्थों में उन की आसक्ति नहीं—अनासक्ति ही साबित होती है। अगर कोई मनुष्य, गृहस्थी में रह कर, स्त्री-पुत्र-धन प्रभृति में अनासक्त रहे, उनमें ममता न रक्खे, चाहे व्यवहार सब तरह के करे, वह सच्चा ज्ञानी है, उस की मोक्ष अवश्य होगी।

ममता ही दुःखों का कारण है। जिस की किसी भी पदार्थ में ममता नहीं, उसे दुःख क्यों होने लगा ? उस की ओर से वह पदार्थ मिले तो अच्छा, न मिले तो अच्छा; बचा रहे तो भला और नष्ट हो जाय तो भला। जिसकी जिस चीज़ में ममता होती है, उसे उस चीज़ के नाश होने या उस के न मिलने से अवश्य दुःख होता है। कहा है।

यस्मिन वस्तूनि ममता मम नायस्तत्र तत्रेव ।
यत्रेवाहमुदासे मुदा स्वभाव सन्तुष्टः ॥

जिस-जिस चीज़ में मनुष्य की ममता है, वही-वही दुःख है और जिस-जिस से उसे उदासीनता है, वही-वही सन्तुष्टता है। मतलब यह कि, "ममता" ही दुःखों का मूल है। घर-गृहस्थी में रहो और गृहस्थी के सारे कार्य्य-व्यवहार करो; पर किसी भी पदार्थ में ममता मत रक्खो। तुम्हारी ओर से कोई मर जाय तो शोक नहीं, धन-दौलत नष्ट हो जाय तो रंज नहीं, आ जाय तो ख़ुशी नहीं; इस तरह उदासीन-भाव रक्खो। अगर इस तरह गृहस्थी में रहो, तो तुम से बढ़ कर ज्ञानी कौन है? तुम्हें अवश्य मोक्षपद मिलेगा।

निर्मोही पुरुष।

एक मनुष्य के एक ही लड़का था। लड़का जवान हो गया था। उस की शादी भी हो गई थी। एक दिन पिता ने किसी उद्देश्य से शाम को एक सभा बुलाने का निमन्त्रण दिया। दैवयोग से, दोपहर को उस का पुत्र अचानक मर गया। उसने उस की लाश को बैठक में लिटा कर, ऊपर से कपड़ा उढ़ा दिया और आप द्वार पर बैठ कर शान्त-भाव से हुक्का पीने लगा। इतने में सभा का समय हो गया; मित्र लोग आने लगे। उन में से एक मित्र उसी बैठक में किसी ज़रूरी काम से गया। वहाँ एक लाश पड़ी देख, उस ने बाहर आकर पूछा,—"यह क्या!"

उसने कहा—"भाई ! लड़का मर गया है। पहले सभा का काम कर लें, तब सब मिल कर इसे श्मशान-घाट पर ले चलेंगे।" मित्र लोग उस निर्मोही पिता की बात सुन कर चकित हो गये। उन्होंने कहा—"तुम तो अजब आदमी हो ! तुम्हें अपने इकलौते जवान पुत्र का भी रंज नहीं! उसने कहा—"भाई ! मेरा इस का क्या नाता ? हम सब सराय के मुसाफिर हैं। पूर्वजन्म के कर्मवश, एक दूसरे से मिल गये हैं। अपना-अपना समय होने से, अपनी-अपनी राह चले जा रहे हैं; इस में रञ्ज या शोक की बात ही क्या है ?" ऐसे ही मनुष्य, गृहस्थी में रहकर भी, जन्म-मरण के फन्दे से छूटकर, मोक्षलाभ करते और जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

काम करो, पर मन को ईश्वर में रक्खो।

अगर भगवान् कृष्ण के कथनानुसार संसार के काम-धन्धे किये जायँ, तो भी हर्ज नहीं; पर मन को संसारी पदार्थों या विषय-भोगों से हटा कर एक मात्र भगवान् में लगाना चाहिये। दुनियवी काम करते रहने और मनको भगवान् में लगाये रहने से सिद्धि मिल सकती है। महाकवि 'रहीम' कहते हैं:—

दोहा।

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परी, काया भीजत नाहिं॥

सारा दारमदार मन पर है। व्यभिचारिणी स्त्री घर के धन्धे किया करती है, पर मन को हर क्षण अपने यार में रखती है। गाय जहाँ-तहाँ-घास चरती-फिरती है, पर मन को अपने बच्चे में रखती है। स्त्रियाँ जब धान कूटती हैं, तब एक हाथ से मूसल चलाती हैं और दूसरे से ओखली के धान को ठीक करती जाती हैं। इसी बीच में यदि उन का बच्चा आ जाता है, तो उसे दूध भी पिलाती रहती हैं; किन्तु उन का ध्यान बराबर मूसल में ही रहता है। अगर ज़रा भी ध्यान टूटे, तो हाथ के पलस्तर उड़ जायँ। इसी तरह मनुष्य, यदि संसार के काम-धन्धे करता हुआ भी, ईश्वर में मन लगा कर उस की भक्ति करता रहे, तो कोई हर्ज नहीं; उसे भगवत्-दर्शन अवश्य होंगे। यद्यपि इस तरह संसार में रहकर सिद्धि लाभ करना—है बड़े शूरवीरों का काम; तोभी इस तरह अनेक लोग, गृहस्थी में रहते हुए भी, मोक्ष-पद पा गये हैं।

ईश्वर-प्राप्ति की सहज राह कौनसी है ?

गृहस्थी में रहने की अपेक्षा, गृहस्थी त्याग कर, वन के एकान्त भाग में रहकर, भगवत् में मन लगाना अवश्य आसान है। गृहस्थी में रहने से मन विषय-भोगों की ओर दौड़ता ही है। स्त्री को देखने से काम जागता ही है; पर न देखने से मन नहीं चलता। पराशर ऋषि ने मत्स्यगन्धा देखी, तो उन का मन चलायमान हुआ। विश्वामित्र ने मेनका देखी, तो उन का मन

बिगड़ा। शिव ने मोहिनी देखी, तो उन का मन चञ्चल हुआ। इसीलिये पहले के अनेक महापुरुष, अपने-अपने घर त्याग कर, वन में चले गये और वहाँ उन्हें सिद्धि प्राप्त होगई। पर वन में जाकर भी, जो मन को विषयों में लगाये रहते हैं, ममता को नहीं त्यागते; कामना को नहीं छोड़ते, वे गृहस्थों से भी बुरे हैं। वे धोबी के कुत्ते की तरह घर के न घाट के।

त्याग में ही सुख है।

जो धन-दौलत, राजपाट, स्त्री-पुत्र प्रभृति को त्याग कर वन में रहते हैं; किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं रखते, यहाँ तक कि, खाने के लिये पाव-भर आटे की भी ज़रूरत नहीं रखते; जहाँ जगह पाते हैं वहीं पड़ रहते हैं; जो मिल जाता है, उसी से पेट भर लेते हैं,—वे सचमुच ही सुखी हैं। शङ्कराचार्य्य महाराज ने "मोहमुग्दर" में कहा है—

सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः;
शय्याभूतलमजिनंवासः।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः,
कस्य सुखं न करोति विरागः॥

जो देव-मन्दिर या पेड़ के नीचे पड़े रहते हैं, ज़मीन ही जिन की चारपाई है, मृगछाला ही जिन का वस्त्र है, सारे विषय-

भोग के सामान जिन्होंने त्याग दिये हैं; यानी वासना-रहित हो गये हैं,—ऐसे किन मनुष्यों को सुख नहीं है ? अर्थात् ऐसे त्यागी सदा सुखी हैं।

देह के नहीं' मन के वैराग्य से लाभ है।

अनेक लोग गेरुए कपड़े पहन लेते हैं, लम्बी-लम्बी मालायें गले में डाल लेते हैं, तिलक-छापे या राख लगा लेते हैं; पर उन का मन सदा भोगों में लगा रहता है। वे शरीर को वैरागियों का सा बना लेते हैं; पर मन उन का भोगियों का सा रहता है; इसलिये उन का जन्म वृथा जाता है। आज-कल साधु-संन्यासी बनना एक प्रकार का रोज़गार हो गया है। जिन से किसी तरह की मिहनत-मज़दूरी नहीं होती, वे साधु-वेष बना कर लोगों को ठगते और घर मनीआर्डर भेजते हैं। बहुतसे ढोंगी नगरों में आकर बड़े आदमियों के यहाँ डेरे लगा देते हैं, चेले-चेलियों से भेंट लेते हैं, नवयौवना सुन्दरियों को पास बैठा कर उपदेश देते हैं, अपने क़दमों में रुपये और अशर्फियों के ढेर लगवाते हैं। भला, ऐसों का मन परमात्मा में लग सकता है ? जब विश्वामित्र और पराशर-जैसे, हवा और पानी पर गुज़ारा करने वाले, मुनियों का मन स्त्रियों को देखते ही चञ्चल हो गया; तब रबड़ी-मलाई और मावा, मोहन-भोग उड़ाने

वालों का मन कैसे स्त्रियों पर न चलेगा ? ऐसा कौन है, जिस का मन स्त्रियों ने खण्डित नहीं किया ? कहा है—

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो ?
विषयिणः कस्यापदो नागताः ?
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः ?
को नाम राज्ञां प्रियः ?
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः ?
कोऽर्थी गतो गौरवं ?
को वा दुर्जन-वागुरा-निपातितः
क्षेमेण यातः पुमान् ?

किस को धन पाकर गर्व नहीं हुआ ? किस विषयी पर आफ़त नहीं आई ? पृथ्वी पर किस का मन नारी ने आकृष्ट नहीं किया ? कौन राजाओं का प्यारा हुआ ? कौन काल की नज़र से बचा ? किस मँगते का गौरव हुआ ? कौन सज्जन दुष्टों के जाल में फँस कर कुशल से रहा ?

संन्यासियों को स्त्री-दर्शन भी मना है ।

धर्मशास्त्र में लिखा है:—

सम्भाषयेत् स्त्रियं नैव, पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां, नो पश्येल्लिखितामपि ॥

यस्तु प्रव्राजितो भूत्वा पुनः सेवेत्तु मैथुनम् ।
षष्ठिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥

यति को स्त्री से बात न करनी चाहिये, पहले की देखी हुई स्त्री की याद न करनी चाहिये तथा स्त्रियों की चर्चा भी न करनी चाहिये और स्त्री का चित्र भी न देखना चाहिये।

जो संन्यासी होकर स्त्री के साथ मैथुन करता है, वह ६० हज़ार वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है।

और विषयों से मन को रोकना उतना कठिन नहीं, जितना कि स्त्री से रोकना कठिन है; इसी से स्त्री का चित्र तक देखने की मनाही की है। जो ढोंगी साधु-संन्यासी दुनियादारों के घर आते और स्त्रियों में बैठे रहते हैं, उन को उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

ढोंगी साधुओं के लिये अमूल्य उपदेश।

बनावटी या ढोंगी साधुओं के सम्बन्ध में महात्मा "तुलसी-दासजी" ने कहा है:—

तन को योगी सब करें, मन को बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय ॥१॥
जाके उर बर-वासना, भई भास कछु आन।
"तुलसी" ताहि बिडम्बना, केहि विधि कथहि प्रमान? ॥२॥

काह भयो बन-बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं?।
बनते-बनते बनि गयो, "तुलसी" घर ही माहिं ॥३॥
रामचरण परचै नहीं, बिन साधन-पद-नेह।
मूँड़ मुड़ायो वादिंही, भाँड़ भये तजि गेह ॥४॥
कीर सरस बाणी पढ़त, चाखन चाहत खाँड़।
मन राखत वैराग महँ, घर में राखत राँड ॥५॥
जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
"तुलसी" दोनों नहिं मिलें, रवि-रजनी इक ठाम ॥५॥
तब लगि योगी जगत्-गुरु, जब लगि रहे निरास।
जब आशा मनमें जगी, जग गुरु योगी दास ॥७॥

(१)

शरीर को योगी बहुत लोग करते हैं; पर मन को कोई बिरला ही योगी करता है; अगर मन योगी हो जाता है; तो सहज में सिद्धि या मोक्ष मिल जाती है। दूसरे शब्दों में यों समझिये कि, लोग भेष तो संन्यासी-महात्माओं-कासा कर लेते हैं; पर मन उन का विषय-भोगों में लगा रहता है; इसलिये उन को कुछ भी लाभ नहीं होता,—सिद्धि नहीं मिलती। अगर वे लोग शरीर को चाहे गृहस्थोंका-सा रक्खें, उत्तम-से-उत्तम खाने खायँ, बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े पहनें; पर मन में स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, गाड़ी-घोड़े, नाच-रंग आदि की वासना और ममता न रक्खें; तो उन्हें निश्चय ही सिद्धि मिल

सकती है। मतलब यह कि, मन के योगी होने से सिद्धि मिलती है; कपड़े रँगने, माथा मुँड़ाने और डण्ड-कमण्डल प्रभृति रखने से सिद्धि नहीं मिलती।

(२)

जिस के विशुद्ध हरि-भक्ति-पूर्ण हृदय में काम, लोभ और मोह प्रभृति की वासना पैदा हो जाती है, वह अपनी वासना पूरी करने के लिये, नाना प्रकार के नीच कर्म करता है; फिर, उस की जो फ़ज़ीती और बदनामी होती है, उस का यथार्थ रूप में वर्णन करना कठिन है। मतलब यह है कि, जिस के हृदय में केवल एक भगवान् की वासना होती है, उस का हृदय श्रेष्ठ और विशुद्ध समझा जाता है। यदि उस के हृदय में इस के सिवा-भगवान् के अतिरिक्त और वासना उत्पन्न हो उठती है, उस का दिल धन-दौलत, स्त्री और राजपाट प्रभृति पर चलायमान हो जाता है; तो उस की संसार में बड़ी बदनामी होती है। सारांश यह कि, यदि कोई संन्यासी, यति या हरिभक्त, विषयों को त्याग कर फिर विषयों के जाल में फँसता है, रांड रखता है, इत्र-फुलेल लगाता है, मलमल-ख़ासा पहनता है और गद्दे-तकियों पर आराम करता है, तो उसकी वर्णनातीत अपकीर्त्ति होती है।

(३)

अगर कोई शख़्स घर छोड़ कर और संन्यासी का भेष बना कर बन-बन फिरता है; पर उस का मन भगवान् में नहीं लगता,

तो उस के घर छोड़ने और तकलीफ़ उठाने से कोई लाभ नहीं। वह वैरागी तो बन जाता है, भेष तो संन्यासियोंका-सा धर लेता है; पर उस का मन विषयों में लगा रहता है; इसलिये वह धोबी के कुत्ते की तरह घर और घाट कहीं का नहीं रहता; लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो घर में ही रहते हैं; पर सत्सङ्ग करते और हरि-यश सुनते हैं। वे सत्सङ्ग के प्रभाव और गुरु की दया से, विषयोंसे मन को हटा कर, ईश्वर के गुण-गान करने लगते हैं। फिर; धीरे-धीरे उन की भक्ति ईश्वर में बढ़ जाती है और वे सच्चे भक्त हो जाते हैं। अनेक लोग घर में ही रह कर इस तरह सिद्धि लाभ कर चुके हैं। सारांश यह, विषयों से मन खींच लेने वाला, ममता और वासना न रखने वाला गृहस्थ भला; पर विषयों में मन रखने वाला, ममता और वासना को न त्यागने वाला त्यागी-संन्यासी भला नहीं।

(४)

जिन का भगवान् के चरण-कमलों में सच्चा प्रेम नहीं है, जिन का हरि-भक्ति के साधन—सन्तों के चरणों में नेह नहीं है, जो महात्माओं की संगति और पदवन्दना नहीं करते, वे वृथा ही घर छोड़, सिर मुँड़ा, भेष बदल कर भाँड़ हो गये हैं।

भाँड़ जिस तरह लोगों को रिझाने और रुपया कमाने के लिये अनेक प्रकार के स्वांग धरते हैं; उसी तरह आज-कल बहुत-से लोग, रुपया कमाने और अपने तईं पुजवाने को, संन्या-

सियोंका-सा भेष बनाते हैं। वे न तो भगवान् को जानते हैं और न उसके जानने के लिये महात्माओं की संगति और उन की सेवा ही करते हैं। उन्हें सिर मुँड़ाने, गेरुए कपड़े पहनने और घर त्यागने से कोई लाभ नहीं।

(५)

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो घर-गृहस्थी में रहते हैं और शरीर से अपने कुल के व्यवहार करते हैं; पर मन को सब ओर से खींच कर, ममता को त्याग कर, उसे परमात्मा में लगाते हैं। प्रह्लाद और अम्बरीष प्रभृति ऐसे ही भक्त हो गये हैं। कुछ ऐसे लोग होते हैं, जों तन और मन दोनों से ही ईश्वर की भक्ति और उपासना करते हैं। नारद और शुकदेव की गणना ऐसों में ही है। इन्होंने घर त्याग कर हरिभक्ति की। कुछ ऐसे लोग होते हैं कि, जो लोगों को रिझाने और हलवा-पूरी तथा खीर-खाँड़ उड़ाने के लिये, वेदान्त और पुराणों को सीख लेते हैं और तोतें की तरह मीठी-मीठी बातें बनाते हैं। सीधे-सादे भोंदू लोग, उन की बातों पर रीझ कर, उन्हें रबड़ी-मलाई और मोहन-भोग खिलाते हैं। ऐसे मालों के खाने से जब कामदेव जोर करता है; तब काम-शान्ति के लिये, ये लोग इधर-उधर से व्यभिचारिणी दुष्टाओं को उड़ा ला कर घर में रख लेते हैं। मन में समझते हैं हम वैराग्यवान् हैं और इस अभिमान में चूर भी रहते हैं। स्वयं जगत् से पुजना चाहते हैं; पर आप घर में रक्खी हुई राँड़ को पूजते हैं। ऐसों का मानव-जन्म वृथा नष्ट होता है।

(६)

जो कामी या स्त्री-लोलुप होते हैं, उन का मन भगवान् में नहीं लग सकता; पर जो सच्चे ईश्वर-भक्त होते हैं, वे विषय-भोग और स्त्रियों का नाम तक नहीं लेते। विषयी पुरुषों से हरि-भक्ति नहीं हो सकती और हरि-भक्तों से स्त्री नहीं भोगी जा सकती। जिस तरह सूरज और रात अथवा दिन और रात एकत्र नहीं हो सकते; उसी तरह राम और काम दोनों एकत्र नहीं हो सकते। मतलब यह है, जिन्हें ईश्वर के दर्शन करने हों, जिन्हें परमपद या सिद्धि प्राप्त करनी हो, वे स्त्रियों के दर्शन, उन की चर्चा और उन के चित्रों तक से बचें; क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति में स्त्री एक खाई के समान है।

(७)

जब योगी के मन में आशा नहीं रहती, उसे किसी से कुछ चाहना नहीं रहती, तब योगी जगत् का गुरु होता है; लेकिन जब योगी के मन में आशा-तृष्णा का उदय होता है, जब योगी किसी से कुछ चाहता है; तब योगी चेला हो जाता है और जगत् उस का गुरु हो जाता है; यानी जगत् उस की निन्दा करता और उसे नसीहत देता है। मतलब यह, सच्चे योगियों को किसी भी पदार्थ की चाहना नहीं होती; अतः वे जगत् को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं; पर वासना या इच्छा रखने वाले जगत् की खुशामद करते और इस तरह संसारी आदमियों से छोटे बनते हैं।

कोरा संन्यासी-भेष धारना नरक के सामान करना है ।

आज-कल अनेक वेद-विरुद्ध काम करने वाले, मनगढ़न्त मत चलाने वाले, झूठ बोलने वाले, बगुला और बिलाव की सी वृत्ति रखने वाले फिरते हैं। गृहस्थों को चाहिये कि, उन का बातों से भी सत्कार न करें। ठगों का सत्कार होने से ही ठग-साधु बढ़ रहे हैं। उन में से कोई मूर्ति बना कर पूजता और पुजवाता है। कोई अपने को कबीरपन्थी, कोई नानकपन्थी, कोई रामानुजी और कोई दादूपन्थी कहता है। इन पन्थों से कोई लाभ नहीं। जब तक 'आत्म-ज्ञान' नहीं होता, तब तक सिद्धि या मोक्ष नहीं मिलती; अतः मन को, सब तरफ से हटाकर, आत्म-चिन्तन में लगाना चाहिये। ढोंग करने से मनुष्य-जन्म वृथा जाता है। काम तो सब यतियों के से किये जाते हैं, कष्ट भी उन्हीं की तरह उठाये जाते हैं; पर परिणाम में मिलता कुछ भी नहीं। बिना आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-विचार के कल्याण नहीं होता। गृहस्थों को भी चाहिए कि, ऐसे ठगों का आदर-सम्मान न करें। ऐसे बनावटी साधु-संन्यासी आप नरक में जते और अपने शिष्यों को भी नरक में घसीट ले जाते हैं।

किसी ने ठीक यही बात, कविता में, बड़ी खूबी से कही है:—

"आत्मभेद"-बिन फिरें भटकते,
सब धोखे की टाटी में।

कोई धातु में ईश्वर मानत,
कोई पत्थर कोई माटी में ॥
वृक्ष में कोई, जल में कोई,
कोई जङ्गल कोई घाटी में ।
कोई तुलसी, रुद्राक्ष में कोई,
कोई मुद्रा कोई लाठी में ॥
भगत कबीर, कोई कह नानक,
कोई शङ्कर-परिपाटी में ।
कोई नीमार्क रामानुज है,
कोई वल्लभ-परिपाटी में ॥
कोई दादू, कोई ग़रीब-दासी,
कोई गेरू रँग की हाटी में ।
कहै "आज़ाद" भेष जो धारे,
चले नरक की भाटी में ॥

संन्यासी एक जगह न रहे ।

संन्यासी का मन किसी की प्रीति में न फँस जाय अथवा किसी से उस की मुहब्बत न हो जाय; इसलिये धर्म-शास्त्र में संन्यासियों को एक दिन से ज़ियादा एक गाँव में रहना तक मना लिखा है । कहा है:—

आबे दरिया बहे तो बेहतर।
इन्साँ रवा रहे तो बेहतर॥
पानी न बहे तो उस में दुर्गन्ध आये।
ख़ञ्ज़र न चले तो मोर्चा खाये॥

'गिरिधर' कवि कहते हैं।

कुण्डलिया।

(१)

बहता पानी निर्मला, पड़ा गन्ध सो होय।
त्यों साधू रमता भला, दाग़ न लागे कोय॥
दाग़ न लागे कोय, जगत से रहे अलहदा।
राग-द्वेष-युत प्रेत, न चितको करे बिच्छेदा॥
कह "गिरिधर" कविराय, शीत उष्णादिक सहता।
होय न कहुँ आसक्त, यथा गंगा-जल बहता॥

(२)

रहनो सदा इकन्तको, पुनि भजनो भगवन्त।
कथन-श्रवण अद्वैतको, यही मतो है सन्त॥
यही मतो है सन्त, तत्त्व को चिन्तन करनो।
प्रत्यक् ब्रह्म अभिन्न, सदा उर-अन्तर धरनो॥
कह "गिरिधर" कविराय, वचन दुर्जन को सहनो।
तजके जन-समुदाय, देश निर्जन में रहनो॥

संन्यासियों के कर्त्तव्य कर्म ।

("यति-पञ्चक" से)

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो,
भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
विशोकमन्तः करणे रमन्तः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

(२)

मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः,
पाणिद्वयं भोक्तुममन्त्रयन्तः ।
कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयंतः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

(३)

देहादिभावं परिवर्त्तयन्तः,
आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ।
नान्तं न मध्यं न वहिः स्मरन्तः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

(४)

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः,
सुशान्त सर्वेन्द्रियतुष्टिमन्तः ।

अहर्निशं ब्रह्मसुखे रमन्तः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

(५)

पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः,
"पतिं पशूनां" हृदि भावयन्तः ।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः,
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

भावार्थ ।

(१)

वेदान्त वाक्य या उपनिषदों में अथवा ब्रह्म विद्या में मन लगाये रहनेवाला, केवल भिक्षा के अन्न से सन्तुष्ट रहने वाला, मन को शोक-ताप-शून्य कर के सन्तुष्ट रहने वाला और कोपीन पहनने वाला योगी भाग्यवान् है।

(२)

केवल वृक्ष के मूल में आश्रय लेने वाला, दोनों हाथों को भोजन के लिये न लगाने वाला, आत्मश्लाघा की तरह लक्ष्मी की निन्दा करने वाला अर्थात् अपनी तारीफ़ और धन से दूर रहने वाला, एवं कोपीन धारण करने वाला योगी सुखी है।

(३)

सुखासक्ति—वासना को त्यागने वाला, अपने स्वरूप में औरों को देखने वाला, अन्त, मध्य और पुत्र-कलत्रादि को न याद करने वाला एवं कोपीन बाँधने वाला यति भाग्यवान् है।

(४)

अपने आत्मा के ही आनन्द में मग्न रहने वाला, आँख, कान, नाक, जीभ प्रभृति इन्द्रियों के विषय-सुखों के त्यागने से सन्तुष्ट और आत्मसाक्षात्कार से .खुश रहने वाला एवं दिन-रात ब्रह्म के दर्शनों से पैदा हुए आनन्द में रहने वाला तथा कोपीन पहनने वाला योगी सुखी है।

(५)

"शिवाय नमः" इस पाँच अक्षर के, आत्मा को शुद्ध करने वाले, मन्त्र का उच्चारण करने वाला, हृदय में पशुपति शङ्कर की भावना करता हुआ, भिक्षान्न पर गुज़ारा करके, दिशाओं में घूमने वाला और कोपीन धारण करने वाला योगी भाग्यवान् है।

यतिपञ्चक का फल ।

वास्तविक महापुरुष होने की इच्छा रखने वालों को उपरोक्त "यतिपञ्चक" कण्ठाग्र कर लेना और इस पर अमल करना चाहिये; तब उन्हें निश्चय ही शान्ति और सिद्धि मिलेगी।

छप्पय ।

शताहि वर्ष की आयु, रात में बीतत आधे ।
ताके आधे-आध, वृद्ध बालकपन साधे ॥
रहे यहै दिन, आधि-व्याधि गृहकाज समोये ।
नाना विधि बकवाद करत, सबहिन को खोये ॥

जल की तरंग बुदबुद-सदृश, देह खेह ह्वै जात है।
सुख कहो कहाँ इन नरनकौं, जासों फूलत गात है ? ॥१०७॥

107. The average longevity of a man is estimated at hundred years. Half of it passes away in nights. Of the remainder one portion is spent in childhood and another in old age. What finally remains is led with hardship caused by disease and separation in other people's service etc. Where is the happiness for living beings in a life which is as restless as the currents of water ?

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं,
यन्मुञ्चन्त्युपभोग काञ्चन धनोन्यै कान्ततो निःस्पृहाः।
न प्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो,
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम्॥१०८॥

उन बुद्धिमान, निर्मल ज्ञानवाले, ब्रह्मज्ञानियों का कठिन व्रत देखकर हमें बड़ा विस्मय होता है, जो विषय-भोग, धन-दौलत, सोना-चाँदी और स्त्री-पुत्र प्रभृति को एक-दम से त्याग देते हैं और फिर उन की इच्छा नहीं रखते; क्योंकि हम से तो उन चीजों की आशा मात्र भी नहीं त्यागी जाती, जो हमें न भूतकाल में मिलीं-न वर्त्तमानकाल में मिल रही हैं और न भविष्यत में मिलने की पक्की उम्मीद है ॥१०८॥

सत् और असत् का विचार करने वाले, देह और आत्मा को अलग-अलग समझने वाले, इस संसार को स्वप्नवत् मानने वाले,

इस जगत् की झूठी चमक-दमक पर मोहित न होने वाले पुरुष "ज्ञानी" कहलाते हैं। जिन के सामने से माया का पर्दा हट जाता है, जिन्हें देह के नाशमान् और आत्मा के नित्य और अविनाशी होने का ज्ञान हो जाता है, उन्हें परमात्मा दीखने लगता है। उन्हें परमात्मा के ध्यान में जो आनन्द आता है, उस की बराबरी त्रिभुवन के सारे सुखैश्वर्य्य भी नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानी इस जगत् से नाता क्यों जोड़ने लगे? जब तक उन्हें ज्ञान नहीं होता, माया का पर्दा उन की आँखों के सामने से नहीं हटता, शरीर और आत्मा का भेद मालूम नहीं होता, तभी तक वे इस संसारी जाल में फँसे रहते हैं; जहाँ उन्हें ज्ञान हुआ, और उन्होंने संसार की असलियत समझी, तहाँ फौरन ही इसे छोड़ा। एक बार छोड़ कर, फिर इस की इच्छा वे इसलिये नहीं करते, कि वे समझ-बूझ कर इसे छोड़ते हैं; ज़बर्दस्ती या किसी के बहकाने से अथवा दूकानदारी के लिए तो वे इसे छोड़ते ही नहीं, जो उन की लालसा इस में बनी रहे।

जो लोग रुपया पैदा करने या पुजने के लिये घर-गृहस्थी को छोड़ते हैं, उन का मन संसार के विषय-भोगों में लगा रहता है। वे न तो इधर के ही रहते हैं और न उधर के ही। वे 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का" अथवा '.खुदा ही मिला न विसाले सनम' या "दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम" वाली कहावतों को चरितार्थ करते हैं। ऐसे कच्चे त्यागियों के सम्बन्ध में गोस्वामि 'तुलसीदास' जी कहते हैं:—

इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान।
"तुलसी" अधवर के भये, ज्यों बघूर को पान॥

अर्थात् इधर तो वे अपना घरबार और स्त्री-पुत्र तथा अपने कुल के कामों को छोड़ बैठते हैं और उधर भगवान् को भी नहीं भजते। वे हवा के बवण्डर या भभूले में चक्कर खाने वाले पत्ते की तरह अधबिच में ही चक्कर खाते रहते हैं।

अगर वे अपने घर में ही रहते तो अपने कुल-वर्णके अनुसार कर्म करते और महात्माओं की संगति तथा उन की सेवा-टहल से संसार की असारता, अपने नातेदारों की स्वार्थपरता एवं ईश्वर की महिमा का ज्ञान लाभ करके, ईश्वर की भक्ति करते हुए प्रह्लाद, जनक और अम्बरीष प्रभृति की तरह, घर में रह कर ही, सिद्धि लाभ करते। नादान लोग, विना पूर्ण वैराग्य और ज्ञान के, घर-गृहस्थी को छोड़ कर बन में चले तो जाते हैं; परन्तु उन की वासना—ममता अपने घर वालों अथवा पराई स्त्रियों या धन-दौलत में बनी ही रहती है, इसलिए वे संसारियों की निन्दा के भय से लुक-छिप कर विषयों को भोगते और परमात्मा में मन नहीं लगाते। इस तरह उन के लोक-परलोक दोनों बिगड़ते हैं—वे न तो संसारी सुख ही भोग सकते हैं और न स्वर्ग या मोक्ष ही लाभ कर सकते हैं। सारांश यह, मनुष्य को संसार से पूरी विरक्ति होने पर संन्यास लेना चाहिये और एक बार त्यागी बन कर फिर अत्यागी न बनना चाहिये। त्यागी होकर विषयों

में लालसा रखने वाले महा नीच हैं। उन की दोनों जहान में घोर दुर्गति होती है।

प्रत्येक मनुष्य को समझना चाहिये कि, यह संसार वास्तव में ही माया-जाल है। यहाँ कोई किसी का नहीं है। सब अपना-अपना मतलब गाँठते हैं। मतलब नहीं, तो कोई किसी का नहीं। "तुलसीदासजी" कहते हैं:—

"तुलसी" स्वारथ के सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं।
सरस वृक्ष पंछी बसें, निरस भये उड़ जाहिं॥

सभी स्वार्थ के सगे हैं; बिना स्वार्थ कोई किसी का नहीं है। जब तक वृक्ष में फल रहते हैं, तभी तक पक्षी उस पर रहते हैं; जहाँ वृक्ष फलहीन हुआ, कि वे उसे छोड़ कर और जगह उड़ जाते हैं। यही हाल संसार का है। सब खड़े-दम का मेला है। सभी जीते-जी के साथी हैं; मरते ही सारी मुहब्बत उड़ जाती है। जो स्त्री अर्द्धाङ्गी कहलाती है, जो पुरुष को अपना प्राणप्यारा कहती है, उसे गले से लगाती है और उस के लिये जान तक देने को तैयार रहती है, दम निकलते ही उस से डरने या भय खाने लगती है। अगर वह रोती भी है, तो अपने सुखों के लिये रोती है; उस के लिए नहीं रोती। और कुटुम्बी —माता-पिता बहिन भाई इत्यादि भी दम निकलते ही कहने लगते हैं,—"जल्दी उठाओ, अब घर में रखना ठीक नहीं।"

इस मौक़े की एक कहानी हमें याद आई है। उसे हम पाठकों के उपकारार्थ नीचे लिखते हैं:—

सब जीते जी के साथी हैं।

एक सेठ का लड़का किसी महात्मा के पास जाया करता था। सेठ को भय हुआ कि, कहीं पुत्र वैराग्य न ले ले; इसलिये उसने पुत्र-बधू से कहला दिया कि, वह पुत्र को हर तरह से अपने वश में करले; जिस से महात्मा की संगति छूट जाय। लड़के की स्त्री उस दिन से उस की सेवा-टहल और भी ज़ियादा करने लगी; हाथों में उस का मन रखने लगी। लड़का जब घर से बाहर जाता, तभी वह कहती—"आपका वियोग मुझ से सहा नहीं जाता। क्षण-भर में ही मेरे प्राण अकुलाने लगते हैं; अतः आप मुझे छोड़ कर कहीं न जाया करें। लड़के ने महात्मा के पास जाना कम ज़रूर कर दिया; पर कभी-कभी वह चला ही जाता था। एक दिन वह बहुत दिन बीच में देकर पहुँचा। महात्मा ने कहा—"भाई, आज-कल तुम आते क्यों नहीं ?" उसने कहा—"मेरी स्त्री मुझे बहुत ही प्यार करती है। उसे मेरे विना क्षण-भर भी कल नहीं पड़ती; इसी से आना नहीं होता।" महात्मा ने कहा—"भाई ! ये सब झूठी बातें हैं। संसार में कोई किसी को नहीं चाहता। अगर तुम को विश्वास न हो, तो परीक्षा कर लो।"

सेठ के पुत्र ने परीक्षा करना ही उचित समझा। महात्मा ने उसे प्राणायाम या साँस चढ़ाने की क्रिया सिखा दी। जब वह प्राणायाम की क्रिया में पक्का हो गया, तब महात्मा ने कहा—

"आज तू घर जाकर कहना, कि मेरे पेट में बड़ा दर्द है। इस के बाद साँस चढ़ाकर पड़ जाना; पर पहले यह कह देना कि, यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो अमुक महात्मा को बुलाये बिना मुझे मत जलाना।" लड़का घर पहुँचा और पेट के दर्द के मारे चिल्लाने लगा। कुछ देर बाद ज़मीन पर गिर पड़ा और माता-पिता से कहने लगा—"यदि मैं मर जाऊँ, तो बिना अमुक महात्मा को बुलाये और दिखाये मुझे मत जलाना।" इस के बाद उसने साँस चढ़ा लिया। घरवालों ने उसे देखा तो बोले—"अब इस में दम नहीं, काठी-कफन् लाओ और श्मशान की तैयारी करो।" इतने में उस की माँ बोली,—"पुत्र ने अमुक महात्मा को बुलाने को कहा था, इसलिये पहले उन्हें बुलवालो।" सेठ ने महात्मा के पास आदमी भेजा। वह तत्काल चले आये। उन्हें देखते ही सेठ बोला—"मैं मर जाऊँ तो हानि नहीं; पर मेरा पुत्र जी उठे, यही मेरी इच्छा है।" यही बात सेठानी और लड़के की स्त्री ने भी कही। महात्मा ने कहा—"मैं एक पुड़िया देता हूँ। तुम में से जो कोई इसे खा लेगा, वह मर जायगा और लड़का जी उठेगा।" इस बात के सुनते ही, सब लगे बग़लें झाँकने और बहाना करने। तब महात्मा ने कहा—"खैर, तुम सब नहीं खाते, तो मैं ही खा लेता हूँ।" यह कह, महात्मा ने पुड़िया खा ली और क्रिया-द्वारा लड़के का साँस उतार, उसे होश में कर दिया। लड़के ने सारा हाल सुना। सुनते ही उसे संसारी मुहब्बत का सच्चा हाल मालूम हो गया

और उसने घर छोड़ वैराग्य ले लिया। देखिये! कुटुम्बियों की प्रीति का चित्र महात्मा "सुन्दरदासजी" कैसी उमदगी के साथ खींचते हैं:—

(१)

मात पिता युवती सुत बान्धव।
लागत है सब कूँ अति प्यारो॥
लोक कुटुम्ब खरो हित राखत।
होई नहीं हमतें कहुँ न्यारो॥
देह-सनेह तहाँ लग जानहु।
बोलत है मुख शब्द उचारो॥
"सुन्दर" चेतन-शक्ति गई जब।
बेगि कहें घर बार निकारो॥

(२)

रूप भलो तब ही लग दीसत।
जौं लग बोलत-चालत आगे॥
पीवत खात सुनै और देखत।
सोइ रहे, उठि के पुनि जागे॥
मात पिता भइया मिलि बैठत।
प्यार करे युवती गल लागे॥
"सुन्दर" चेतन-शक्ति गई जब।
देखत ताहि सबै डरि भागे॥

मा, बाप, स्त्री, पुत्र और नातेदार सब को पुरुष बहुत ही प्यारा लगता है। सब लोग उस से खूब मुहब्बत करते और चाहते हैं कि, यह हम से अलग न हो। लेकिन यह देह की मुहब्बत उसी समय तक है, जब तक कि प्राणी अच्छी तरह बोलता चालता है। "सुन्दरदासजी" कहते हैं,—जहाँ शरीर में से चेतन शक्ति—आत्मा निकल कर गई, कि वे ही सब कहने लगते हैं—"इसे जल्दी घर से बाहर निकालो।" जबतक प्राणी बोलता, चालता, खाता, पीता, सुनता और देखता है एवं सोकर फिर जाग उठता है; तभी तक मा-बाप और भाई पास बैठते हैं और युवती गले से लगकर प्यार करती है। "सुन्दरदासजी" कहते हैं,—ज्योंही चेतन-शक्ति शरीर से निकल कर बाहर गई कि, लोग उसे देखते ही डर कर भागने लगते हैं।

जिस संसार की ऐसी गति है, जो निरा माया-जाल या गोरखधन्धा है, जिस में कुछ भी सार-तत्त्व नहीं है, जिस में स्वार्थपरता या .खुदग़रज़ी कूट-कूट कर भरी है, उस पर मूर्ख ही लट्टू होते हैं। जो दाना और समझदार हैं, वे उस के जाल में नहीं फँसते। अगर फँस भी जाते हैं, तो सब को छोड़-छाड़कर अलग हो जाते हैं। जितने विद्वान और महात्मा हुए हैं, सभी ने कहा है—"इस संसार के साथ दिल मत लगाओ; इस के बनाने वाले के साथ दिल लगाओ। इसी में आपकी भलाई और आपका कल्याण है। उस की शरण में जाने वाले के पास दुःख और क्लेश नहीं फटकते। वह अपने शरणार्थी की सदा रक्षा

करता है। कौरव-सभा में उसी ने द्रौपदी की लाज रक्खी थी। जो उसे याद करता है, उसकी ख़बर वह अवश्य लेता है।" कहा है:—

जो तुम को सुमिरत जगदीशा, ताहि आपनो जानत ईशा।
अभिमानी से हो तुम दूरा, सतवादी के जीवन-मूरा।
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, जिमि हर-शरण न एकौ बाधा।

दोहा।

बड़े विवेकी तजत हैं, सम्पति सुत पितु मात।
कन्था और कोपीन हूँ, हम से तजो न जात ॥१०८॥

108. How wonderful is the action of those wise in the knowledge of Brahma and pure of reason, who renounce altogether, without any further desire to regain them the pleasures of life, gold and all other objects of wealth! We neither possessed such things before, nor do we possess them now, nor is there any certainty of getting them hereafter, still we are unable to give up even the desire for obtaining them.

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाऽप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥१०९॥

वृद्धावस्था भयङ्कर बाघिनी की तरह सामने खड़ी है। रोग शत्रुओं की तरह आक्रमण कर रहे हैं, आयु फूटे हुए

घड़े के पानी की तरह निकली चली जा रही है। आश्चर्य की बात है, फिर भी लोग वही काम करते हैं, जिस से उन का अनिष्ट हो ! ॥१०६॥

बुढ़ापा मौत का पेशख़ीमा है।

बुढ़ापा मौत का पेशख़ीमा या बक़ौल "सिसरो" ज़िन्दगी के ड्रामा या नाटक का आख़िरी सीन है। इसी से चतुर पुरुष बुढ़ापे को देखते ही समझ लेते हैं कि, मौत अब आने वाली है—हमारे जीवन-नाटक का अन्तिम पर्दा गिरने ही वाला है—हमारी ज़िन्दगी का अभिनय अब ख़तम होने ही वाला है। इसी से अगर उन्होंने जवानी और बचपन के दिन वृथा के जञ्जालों में भी खोये हैं; तो बुढ़ापे में वे चेत जाते हैं और सब तज कर हर भजने लगते हैं; पर ऐसे समझदारों की संख्या बहुत थोड़ी है। ज़ियादा तादाद उन अज्ञानियों की है, जो बुढ़ापे को सामने देख कर भी, दम और खाँसी के आक्रमण होने पर भी, घर-वालों से तिरस्कृत होने पर भी, संसार की ममता नहीं छोड़ते। अनेक बूढ़े ठीक चला-चली के समय शादी-विवाह करते हैं; अनेक बेटे पोतों की पालना में लगे रहते हैं और अनेक धन बढ़ाने की चिन्ता में ही मशग़ूल रहते हैं। इन सब कामों से मनुष्यों का अनिष्ट साधन होता है। न तो उन्हें इस जन्म में ही क्षण-भर को शान्ति मिलती है और न मरने पर अगले जन्म में ही। ममता और कामना के कारण उन का संसार-बन्धन दृढ़ होता जाता है और वे बार-बार मरते और जन्म लेते तथा

इस घोर दुःख को सुख समझते हैं । भगवान् जाने, उन्हें इन घोर दुःखों को देख कर भी कैसे सन्तोष होता है ? भगवान् 'शङ्कराचार्य' कहते हैं:—

यावज्जननं तावन्मरणं, तावज्जननी जठरे शयनम् ।
इति संसारे स्फुटतर दोषः, कथमिह मानव ! तव सन्तोषः ?॥

जब तक जन्म ग्रहण करना है, तब तक मरना और माता के पेट में सोना है । संसार में यह दोष स्पष्ट है । हे मनुष्य ! फिर भी तुझे इस जगत् से कैसे सन्तोष है ?

रोज़ आँखों से देखते हैं, कि इस संसार में ज़रा भी सुख नहीं है । माता के पेट में प्राणी नौ महीने तक घोर नरक-कुण्ड में पड़ा-पड़ा सड़ता है । वहाँ परमात्मा से बारम्बार विनय करता है, कि मुझे इस नरक से बाहर कीजिये । मैं बाहर जाते ही, केवल आपका भजन करूँगा; पर बाहर आते ही, वह सब भूल जाता है । उसे अपने वादे का ध्यान भी नहीं रहता । बाल्यावस्था वह खेल-कूद या पढ़ने-लिखने में गँवा देता है; तरुणावस्था में वह तरुणी के फन्दे में फँसा रहता है और बुढ़ापे में नाती-पोतों और दोहितों का सुख देखना चाहता है । इसी तरह उस की सारी उम्र बीत जाती है और जिस काम के लिए वह यहाँ आया था, वह काम अधूरा या बिना हुआ रह जाता है और समय पूरा होने पर, काल चोटी पकड़ कर ले जाता है । इसके बाद; वह फिर जन्म लेता और मरता है । इस तरह उसे ८४ लक्ष योनियों में जन्म लेते

पड़ता है; तब कहीं फिर ऐसा अवसर उसे मिलता है; यानी जन्म-मरण की फाँसी काटने वाली मनुष्य-देह मिलती है। अतः ज्ञानी को चाहिए कि, अपने मन को अपने अधीन करे और एकाग्र चित्त से परमात्मा की उपासना में लवलीन हो जाय। इस दुर्लभ मनुष्य-देह को वृथा न गँवावे।

महात्मा 'चरणदास' ने यही सब मोह-मदिरा का नशा उतारने और ग़फ़लत को दूर करने वाली बातें नीचे के भजन में बड़ी ही ख़ूबी से अदा की हैं:—

भजन (राग जंगला)।

पीले रे प्याला हो जा मतवाला, प्याला प्रेम हरी रसका रे ।।टेक।।
पाप-पुण्य दोउ भुगतन आये, कौन तेरा और तू किसका रे?।
जो दम जीवे प्रभु के गुण गाले, धन यौवन सुपना निश का रे ।।१।।
बाल अवस्था खेल गँवाई, तरुण भया नारी-वश का रे ।
वृद्ध भया कफ़ बाय ने घेरा, खाट परा नहिं जाय मसका रे ।।२।।
नाभ-कमल-विच है कस्तूरी, कैसे भरम मिटे पशु का रे ।
मन सतगुरु यों भरमत डोले, जैसे मिरग फिरै बन का रे ।।३।।
लख चौरासी से उबरा चाहे, छोड़ "कामिनी-चसका" रे ।
प्रेम लगन "चरणदास" कहत हैं, नखसिख स्वास भरा विष का रे।।४।।

बुढ़ापे में तो मोक्ष-रूपी सोना बना लो ।

मनुष्य की आयु फूटे घड़े के जल की तरह नित्य निकली चली जा रही है। प्राणी हर क्षण काल के गाल में है । जब तक

वह काल के गले के नीचे नहीं उतरता, तभी तक ख़ैर है। पर मज़ा यह कि, मनुष्य आप काल के गाल में है; तोभी विषयों का पीछा नहीं छोड़ता। इसकी दशा उस मैंडक के समान है, जो साँप के मुँह में फँसा हुआ मच्छरों को मारने की चेष्टा करता था। मनुष्य नित्य देखता है कि, करोड़पति, अरब पति और राजा-महाराजा अपनी धन-दौलत को यहीं छोड़-छोड़ कर चले जा रहे हैं; पर, फिर भी उसे होश नहीं होता! भला इस बेहोशी और ग़फ़लत का भी कोई ठिकाना है! बचपन और जवानी में ही परमात्मा से प्रीति करनी चाहिये। अगर उन अवस्थाओं में भूल हो गई हो; तो बुढ़ापे में तो अवश्य ही सम्हल जाना चाहिये। यह काया पारस-मणि है। यह इसलिये मिली है कि, इस से मोक्ष-रूपी सोना बना लिया जाय। जो लोग देर करते हैं, अवधि बीतने पर, यह पारस-मणि उन से छीन ली जाती है और वे मोक्ष-रूपी सोना नहीं बना पाते; यानी मोक्ष-लाभ के उपाय करने के पहले ही काल उन्हें ले जाता है।

पारस-पत्थर की बटिया।

एक महापुरुष के पास पारस-पत्थर की बटिया थी। उन्होंने एक दरिद्र गृहस्थ पर दया कर, उसे वह बटिया दे दी और कह दिया कि, हम तीर्थ करने जाते हैं; १८ महीने बाद लौटेंगे; तब तक तुम इस बटिया से इच्छानुसार सोना बना कर, अपना

दारिद्र-दुःख दूर कर लेना। महात्मा चले गये। गृहस्थ ने बाज़ार में जाकर लोहे का भाव पूछा। भाव महँगा था, इसलिये सोचा कि, जब लोहा सस्ता होगा, लाकर झट सोना बना लूँगा। इस तरह १८ महीनों में जब दो चार दिन रह गये, तब वह लोहा गाड़ियों पर लदा कर लाया। विचार किया—"अब क्या देर है; झट सोना बना लेंगे।" उसे तो ख़याल रहा नहीं और १८वें मास का आख़िरी दिन आ गया। महात्मा भी आ गये। उन्होंने आते ही अपनी पारसमणि माँगी। गृहस्थ ने कहा—"मैं आज शाम को ही आप की बटिया दे दूँगा।" महात्मा ने कहा—"अब समय हो गया; एक क्षण भी बटिया तुम्हारे पास रह नहीं सकती।" महात्मा ने बटिया ले ली। गृहस्थ रोता और हाथ मलता रह गया। यह दृष्टान्त है। दृष्टान्त यह है कि, समय पूरा हो जाने पर, काल इस बात की प्रतीक्षा नहीं करता कि, किसी का काम हुआ है या नहीं; वह तो प्राणी को लेकर चलता बनता है; अतः समय रहते मोक्ष का उपाय करना चाहिये। आग लगने पर कूआ खोदने से कोई लाभ नहीं! बुढ़ापा या मौत का पेशख़ीमा आया देख कर भी होश न करना, भारी नादानी है।

मनुष्यो! विषयों को छोड़ो और परलोक बनाने की फ़िक्र करो; क्योंकि काल तुम्हारे सिरों पर उसी तरह मँडरा रहा है; जिस तरह बाज़ चिड़िया की घात में मँडराया करता है। महात्मा 'सुन्दरदास' जी ने खूब कहा है:—

(१)

तू अति ग़ाफ़िल होइ रह्यो शठ,
कुञ्जर-ज्यूँ कछु शङ्क न आनै।
माय नहीं तन में अपनो बल,
मत्त भयो विषया-सुख ठानै।
खोंसत खात सबै दिन बीतत,
नीत-अनीत कछु नहिं जानै।
"सुन्दर" केहरि-काल महारिपु,
दन्त उखारि कुम्भस्थल भानै॥*

अरे शठ! तू बहुत ही ग़ाफ़िल और असावधान हो रहा है। हाथी की तरह मन में भय नहीं करता। तेरे शरीर में तेरा बल नहीं समाता। मतवाला होकर विषय-भोगों का आनन्द लूट रहा है। छीनते और खाते तेरे दिन बीते जा रहे हैं। तू न्याय-अन्याय कुछ नहीं समझता। "सुन्दरदास" कहते हैं, घोर शत्रु काल-रूपी सिंह तुझे उसी तरह मार डालेगा, जिस तरह केशरीसिंह हाथी के दाँत उखाड़ कर उस का कुम्भस्थल फाड़ डालता है।

---

* इस कविता में मनुष्य को हाथी और मौत को सिंह माना है। सिंह जिस तरह हाथी के दाँत उखाड़ कर, उसके कुम्भस्थल को चीर डालता है; उसी तरह काल-सिंह मनुष्य को मार डालता है। (हाथी की पेशानी के ऊपरी भाग में, सामने ही, जो दो गोले होते हैं।' उन्हें "कुम्भ-स्थल" कहते हैं।)

(२)

सन्त सदा उपदेश बतावत।
केश सबै सिर श्वेत भये हैं॥
तू ममता अजहुँ नहिं छाँड़त।
मौतहु आइ सन्देश दये हैं॥
आजु, कि काल, चलै उठि मूरख !
तेरे हि देखत केते गये हैं॥
"सुन्दर" क्यूँ नहिं राम सँभारत ?।
या जग में कहु कौन रहे हैं ?॥

सन्त लोग सदा उपदेश देते हैं। तेरे सिर के बाल सफेद हो गये हैं; मौत ने अपना सन्देशा दे दिया है। अरे मूर्ख ! आज या कल तू उठ जायगा। पर अफसोस ! इतनी ख़बर पाने पर भी, तू होश नहीं करता और अब तक भी ममता नहीं छोड़ता ! अरे शठ ! तेरी आँखों-देखते-देखते कितने ही चले गये हैं; क्या तू यहाँ ही रहा आवेगा ? इस जगत् में कौन रहा है ? अब भी तू भगवान् को याद क्यों नहीं करता ?

(३)

करत-करत धन्ध, कछु न जाने अन्ध।
आवत निकट दिन, आगले चपाकदे॥
जैसे बाज़ तीतर कूँ, दावत है अचानक।
जैसे बक मछरी कूँ, लीलत लपाकदे॥

जैसे माच्छिका की घात, मकरी करत आय।
जैसे साँप मूसक कूँ, ग्रसत गपाक दे॥
चेत रे अचेत नर ! "सुन्दर" सँभार राम।
ऐसे तोहि काल आय, लेइगो टपाक दे॥

अरे अन्धे ! धन्धों में लग कर तुझे होश नहीं, तेरे अन्तिम दिन शीघ्र-शीघ्र नज़दीक आ रहे हैं। जिस तरह बाज़ अचानक आकर तीतर को दबा लेता है, जिस तरह बगुला मछली को चट से निगल जाता है, जिस तरह मकड़ी मक्खी की घात में लगी रहती है, जिस तरह साँप चूहे को गप से गपक लेता है; उसी तरह काल तुझ पर झपट्टा मारना ही चाहता है। अरे गाफ़िल मनुष्य ! होश कर और भगवान् को याद कर।

(४)

मेरो देह, मेरो गेह, मेरो परिवार सब।
मेरो धन-माल, मैं तो बहु विधि भारो हूँ॥
मेरे सब सेवक, हुकम कोउ मेटे नाहिं।
मेरी युवती को, मैं तो अधिक पियारो हूँ॥
मेरो वंश ऊँचो, मेरे बाप-दादा ऐसे भये।
करत बड़ाई, मैं तो जगत-उजारो हूँ॥
"सुन्दर" कहत, मेरो-मेरो करि जानै शठ।
ऐसे नाहिं जाने, मैं तो काल ही को चारो हूँ॥

यह मेरी देह है; यह मेरा घर है, यह सब मेरा कुटुम्ब है, यह मेरा धन-माल है, मैं हर तरह से बड़ा आदमी हूँ। मेरे सब नौकर हैं, जो मेरी आज्ञा को उल्लङ्घन नहीं करते। मैं अपनी युवती का बहुत ही प्यारा हूँ; मेरा कुल और वंश ऊँचा है; मेरे बाप-दादा ऐसे नामी हुए; मैं जगत् का उजियारा हूँ; इस तरह मनुष्य अपनी बड़ाई करता और शेख़ी बघारता है। "सुन्दरदास" कहते हैं, शठ मेरा ही मेरा करता है; पर यह नहीं जानता कि, मैं स्वयं ही मौत का चारा हूँ।

(५)

माया जोरि जोरि, नर राखत जतन करि।
कहत है, एक दिन, मेरे काम आइ है॥
तोहि तौ मरत, कछु बेर नहिं लागे शठ।
देखत-हि-देखत, बबूलासो बिलाइ है॥
धन तो धर्‍यो ही रहे, चलत न कौड़ी गहै।
रीते हाथन से जैसो आयो, तैसो ही जाइ है॥
करिले सुकृत, यह बेरिया न आवै फेरि।
"सुन्दर" कहत, नर पुनि पछिताइ है॥

मनुष्य धन जोड़-जोड़ कर रखता है और कहता है कि, यह एक दिन मेरे काम आवेगा। अरे मूर्ख! तुझे तो मरते देर न लगेगी; देखते-देखते, पानी के बबूले की तरह, विलाय जायगा। तेरा धन यहाँ-का-यहीं रक्खा रह जायगा; चलते

समय कौड़ी भी तू साथ न ले जायगा; जिस तरह रीते हाथों आया था, उसी तरह ख़ाली हाथों चला जायगा। अरे मूर्ख! परोपकार या धर्म-पुण्य करले, यह मौक़ा फिर न मिलेगा। "सुन्दरदास" जी कहते हैं, अगर हमारी चेतावनी पर ध्यान न देगा, तो अन्त समय पछतावेगा।

किसी कवि ने मोह-निद्रा में सोने वाले ग़ाफ़िल को जगाने और उसे अपने कर्तव्य पर आरूढ़ करने के लिये कैसा अच्छा भजन कहा है:—

भजन।

मूरख छाँड़ वृथा अभिमान ॥टेक॥

औसर बीत चल्यो है तेरो, तू दो दिन को महमान ॥

भूप अनेक भये पृथ्वी पर, रूप-तेज-बल-खान्।
कौन बच्यो या काल बली से ? मिट गये नाम निशान ॥१॥

धवल धाम, धन, गज, रथ, सेना, नारी चन्द्र-समान।
अन्त समय सब ही को तज के, जाय बसे समसान ॥२॥

तज सतसंग भ्रमत विषयन में, जा विधि मर्घट-स्वान।
क्षण-भर बैठ न सुमिरन कीनो, जासों होत कल्यान ॥३॥

रे मन मूढ़ ! अन्त मत भटके, मेरो कह्यौ अब मान।
"नारायण" ब्रजराज कँवर से, बेगि करो पहचान ॥४॥

दोहा ।

कुपित सिंहनी ज्यों जरा, कुपित शत्रु ज्यों रोग ।
फूटे घट जल त्यों वयस, तऊ अहितयुत लोग ॥१०६॥

109. Old age stands in front like a ferocious-looking she-wolf. Diseases attack the physical body like so many enemies. Life is leaking away like water from a broken vessel. Still it is strange that men go on doing what will bring them harm in the end !

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ।
तदपि तत्क्षणभंगिकरोति चेदहह कष्टमपंडितताविधेः ॥११०॥

ब्रह्मा की यह अज्ञानता खटकती है, कि वह मनुष्य को गुणों की खान, पृथ्वी का भूषण और प्राणियों में रत्नरूप बनाता है; किन्तु उसे क्षणभङ्गुर कर देता है ॥११०॥

मनुष्य समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ, अशरफुल मखलूक़ात, गुणों का सागर और सृष्टि की शोभा है। यह सब होने पर भी, उसकी उम्र कुछ नहीं; वह पानी के बुलबुले की तरह क्षण-भर में ही नाश हो जाता है! ब्रह्मा गुणों की खान— पृथ्वी के शोभा-रूप पुरुष को बनाता है, यह तो अच्छी बात है; किन्तु उसे क्षणभर में ही नाश कर देता है, यह दुःख की बात है! यह विधाता की मूर्खता है। यदि वह पुरुष को सदा रहने

वाला—अमर और अजर बनाता, तो अच्छा होता। इस में उसकी बुद्धिमत्ता दीखती। क्योंकि अपने बाग़ में आप ही वृक्ष लगा कर, आप ही जल सींच और बढ़ाकर, अपने ही हाथों से अपने लगाये हुए वृक्ष को कोई नहीं काटता। जो ऐसा करता है; वह मूर्ख ही समझा जाता है।

विधाता की और भी ग़लतियाँ।

इस सृष्टि की रचना में, विधाता ने अपनी अनुपम कारीगरी और चातुरी के जो काम किये हैं; उन्हें देखकर मनुष्य की अक्ल दंग रह जाती है। तरह-तरह के फल-फूल और वृक्ष-लता-पत्रादि; नाना प्रकार के जल, थल और आकाश में विचरने वाले प्राणी; अनगिन्ती तारे और सूरज-चन्द्रमा तथा नील गगन प्रभृति को देखकर, रचयिता की रचनाचातुरी की हज़ार दिल से तारीफ़ करनी पड़ती है। निस्सन्देह, विधाता की क्षमता और बुद्धिमत्ता, चातुरी और कारीगरी का पार पाना असम्भव है; तथापि यह कहना पड़ता है कि, उस चतुर कारीगर ने भूलें भी बहुत की हैं। जिस तरह उसने मनुष्य को, सृष्टि का सर्दार (Lord of creation) बना कर, क्षणभङ्गुर करने की भूल की है; उसी तरह उसने सोने में सुगन्ध और ईख में फूल न लगाने तथा चन्द्रमा को कलङ्की बनाने की भूलें की हैं। किसी ने कहा है:—

शशिनि खलु कलंकः, कराटकं पद्मनाले,
युवतिकुचनिपातः, पक्वता केशजाले।
जलधिजलमपेयं, पाण्डिते निर्धनत्वं,
वयसि धनविवेको, निर्विवेको विधाता ॥

चन्द्रमा में कलङ्क, कमल की डण्डी में काँटे, युवतियों की छातियों का गिर जाना, बालों का सफेद हो जाना, समुद्र के जल का पीने-योग्य न होना, विद्वानों का धनहीन रहना और बुढ़ापे में धनागम की चिन्ता रहना,—ये सब विधाता की मूर्खता का परिचय देते हैं।

कहाँ तक कहें, विधाता ने ऐसी-ऐसी अनेक भूलें की हैं। हमने उसकी भूलों के चन्द नमूने यहाँ दिखा दिये हैं। ये सब भूलें मन में काँटे की तरह खटकती हैं; पर इन सब में भी, मनुष्य-जैसे प्राणी का, क्षण-भर में ही, बबूले की तरह, बिलाय जाना सब से अधिक खटकता है।

119. How painful is the lack of wisdom of BRAHMA, who creates man as a mine of all the good qualities, a gem among all creatures and the ornament of the universe, yet makes him perishable in a moment!

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ॥
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते हा
कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥१११॥

मनुष्य की वृद्धावस्था बड़ी खेदजनक है। इस अवस्था में शरीर सुकड़ जाता है, चाल मन्दी पड़ जाती है, दन्त-पंक्ति टूट कर गिर जाती है, दृष्टि नाश हो जाती है, बहरा-पन बढ़ जाता है, मुँह से लार टपकती है, बन्धुवर्ग बातों से भी सम्मान नहीं करते, स्त्री भी सेवा नहीं करती और पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं ॥१११॥

बुढ़ापे का चित्र।

मनुष्य का बुढ़ापा सचमुच ही दुःखों की खान है। जिस तरह शत्रु घात लगाये रहते हैं और मौक़ा पाते ही हमला करते हैं; वैसे ही रोग जवानी में तो दबे-छिपे पड़े रहते हैं, पर बुढ़ापे की अवाई देखते ही प्राणी पर चढ़ बैठते हैं। बुढ़ापे में शरीर निकम्मा हो जाता है, खाल झूलने लगती है, इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं, आँखों से दिखाई नहीं देता, कानों से सुनाई नहीं देता, पैरों से चला नहीं जाता और दम चढ़ा करता है। हर समय खों-खों लगी रहती है; दाँत अलग ही कष्ट देते और हिल-हिल कर प्राण लेते हैं। कोई कड़ी चीज़ खाई नहीं जाती। ज़रा भी कड़ी चीज़ दाँतों-तले आने से दम निकलने लगता है। जिस समय दन्त-पीड़ा के मारे माथा और कनपटी भन्नाने लगते हैं, तब मनुष्य मृत्यु को याद करने लगता है। दाँतों पर उस्ताद 'ज़ौक़' ने ख़ूब कहा है:—

मनुष्य की वृद्धावस्था बड़ी खेदजनक है। शरीर काम नहीं देता, स्त्री सेवा नहीं करती—देखते ही आँखें निकालती है। पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं।

पृष्ठ ४५१

जिन दाँतों से हँसते थे हमेशा, खिल-खिल ।
अब दर्द से हैं वही रुलाते, हिल-हिल ॥
पीरी में कहाँ, अब वह जवानी के मज़े ।
ए ज़ौक़, बुढ़ापे से है दाँता-किल-किल ॥

जिन दाँतों से जवानी में खिल-खिला—खिल-खिलाकर हँसा करते थे, अब बुढ़ापे में वही हिल-हिल कर हमें रुलाते हैं। ऐ ज़ौक़ ! बुढ़ापे में अब वह जवानी के मज़े कहाँ हैं ? अब तो इस बुढ़ापे से दाँता-किल-किल है !

महाकवि 'नज़ीर' अकबराबादी "बुढ़ापे" का क्या ही अच्छा चित्र खींचते हैं:—

बुढ़ापा ।

क्या क़हर है यारों, जिसे आ जाय बुढ़ापा ।
और ऐश जवानी के तईं, खाय बुढ़ापा ॥
इशरत को मिला ख़ाक में, ग़म लाय बुढ़ापा ।
हर काम को, हर बात को, तरसाय बुढ़ापा ॥
सब चीज़ को होता है, बुरा हाय ! बुढ़ापा ।
आशिक़ को तो अल्लाह, न दिखलाय बुढ़ापा ॥१॥
आगे तो परीज़ाद ये, रखते थे हमें घेर ।
आते थे चले आप, जो लगती थी ज़रा देर ॥

सो आके बुढ़ापे ने किया, हाय! ये अन्धेर।
जो दौड़ के मिलते थे, वो अब लेते हैं मुँह फेर॥
सब चीज़ को होता है, बुरा! हाय बुढ़ापा।
आशिक़ को तो अल्लाह, न दिखलाए बुढ़ापा॥२॥

क्या यारो, उलट हाय गया हम से ज़माना।
जो शोख़ कि थे; अपनी निगाहों के निशाना॥
छेड़े है कोई डाल के, दादा का बहाना।
हँस कर कोई कहता है, कहाँ जाते हो नाना॥
सब चीज़ को होता है, बुरा हाय! बुढ़ापा।
आशिक़ को तो अल्लाह, न दिखलाए बुढ़ापा॥३॥

पूछें जिसे कहता है वो, क्या पूँछे है बुड्ढे।
आवें तो ये गुल-शोर; कहाँ आवे है बुड्ढे॥
बैठें तो ये है धूम, कहाँ बैठे हैं बुड्ढे।
देखें जिसे वह कहता है, क्या देखे है बुड्ढे॥
सब चीज़ को होता है, बुरा हाय! बुढ़ापा।
आशिक़ को तो अल्लाह; न दिखलाए बुढ़ापा॥४॥

वह जोश नहीं, जिसके कोई ख़ौफ़ से दहले।
वह ज़ोम नहीं, जिस से कोई बात को सहले॥
जब फस हुए हाथ, थके पाँव भी पहिले।
फिर जिसके जो कुछ शौक़ में आवे, सोई कहले॥

बगुले जल-हीन सरोवर को और भौंरे कमल हीन तालाब को त्याग रहे हैं।

(पृष्ठ ४००)
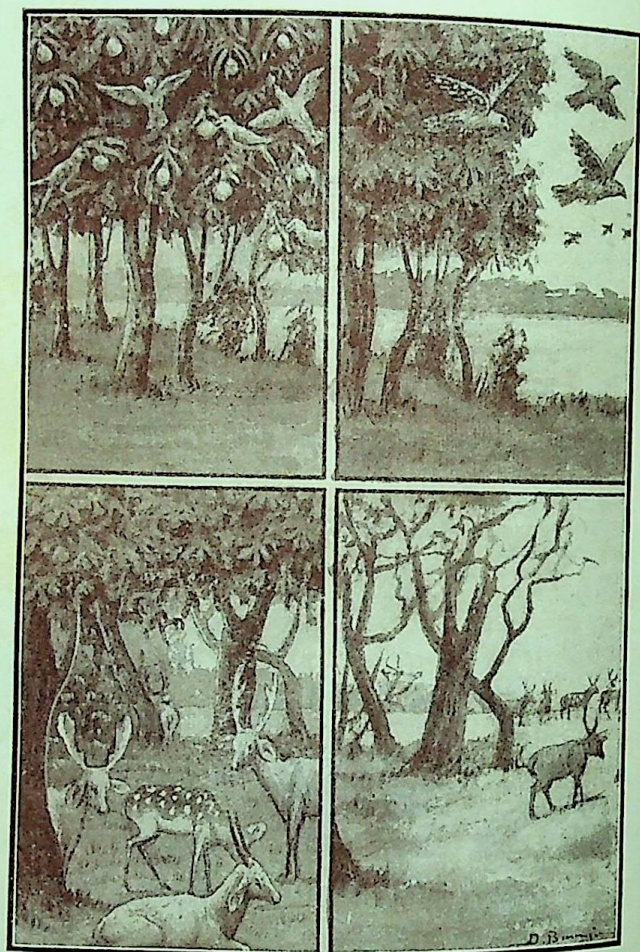
सभी स्वार्थ के सगे हैं। स्वार्थ बिना कोई किसी का नहीं। देखिये, फलहीन वृक्ष को पक्षी और जले हुए जंगल को हिरन त्याग रहे हैं। पृ० ४०० (शेष पुश्तपर देखिये।)

सब चीज़ को होता है, बुरा हाय ! बुढ़ापा ।
आशिक़ को तो अल्लाह, न दिखलाय बुढ़ापा ॥५॥

करते थे जवानी में, तो सब आपसे आ चाह ।
और हुस्न दिखाते थे, वह सब आनके दिलख़्वाह ॥
यह क़हर बुढ़ापे ने किया, आह नज़ीर आह !
अब कोई नहीं पूँछता, अल्लाह ही अल्लाह !
सब चीज़ को होता है, बुरा हाय ! बुढ़ापा ।
आशिक़ को तो अल्लाह, न दिखलाय बुढ़ापा ॥

बुढ़ापे में निर्धनता मरण है ।

यदि मनुष्य जवानी में प्रचुर धन कमा कर रख देता है, तब तो बुढ़ापा सुख से पार हो जाता है; घर वाले हलवा और मोहन-भोग खिलाते, गरमागरम दूध पिलाते अथवा कोई और सुख से खाये जाने-योग्य पदार्थ बना देते हैं; यदि पास पैसा नहीं होता, तो सभी घर वाले हर तरह से अनादर करते और सूखे टुकड़े सामने रखते हैं; इच्छा हो बूढ़ा खाय, इच्छा हो न खाय । अगर बूढ़े के पास धन होता है, तो स्त्री, पुत्र, पौत्र और पुत्री तथा पुत्र-बधुएँ हर समय बूढ़े की हाज़िरी में खड़े रहते हैं; मुँह से बात नहीं निकलती और काम हो जाता है। अगर बूढ़े के पास धन नहीं होता, तो सब उसे त्याग देते हैं;

क्योंकि यह संसार मतलब का है; विना स्वार्थ, विना मतलब और विना पैसे, कोई बात नहीं करता। मतलब से ही लोग एक दूसरे के नातेदार और सम्बन्धी बने हुए हैं; वास्तव में, कोई किसी का नहीं है।

कहा है:—

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः, शुष्कसरः सारसाः।
पुष्पं पर्य्युषितं त्यज्यन्ति मधुपा, दग्धं वनान्तं मृगाः॥
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिकाः भ्रष्टश्रियं मन्त्रिणः।
सर्व्वः कार्यवशाद् जनोऽभिरमते, कस्यास्तिको वल्लभः?॥

फलहीन वृक्ष को पक्षी त्याग देते हैं, सूखे तालाब को सारस छोड़ देते हैं, मधुहीन फूलों को भौंरे त्याग देते हैं, जले हुए वन को हिरन छोड़ देते हैं, धनहीन पुरुषों को वेश्याएँ त्याग देती हैं और श्रीहीन राजा को मन्त्री त्याग देते हैं। सब मतलब से एक दूसरे को चाहते हैं; नहीं तो कौन किसको प्यारा है?

"मोहमुद्गर" में लिखा है:—

यावद् वित्तोपार्जनशक्तः, तावत् निज परिवारो रक्तः।
तदनु च जरया जर्जर देहे, वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे॥

जब तक धन कमाने की सामर्थ्य रहती है, तब तक कुटुम्ब के लोग राज़ी रहते हैं; इसके बाद, बुढ़ापे से शरीर जर्जर होते ही, कोई बात तक नहीं पूछता।

संसार की यही धारा है। जिस पुत्र के लिये बचपन में कहीं से धन लाते और उसे अच्छा खिलाते-पिलाते और पहनाते थे, हर तरह लाड़-प्यार करते थे; पास पैसा न होने पर भी, पढ़ाने-लिखाने में अपनी शक्ति से अधिक ख़र्च करते थे; आप तंगी भोगते थे, पर पुत्र को तंगदस्त न होने देते थे; आप फटे कपड़े पहने फिरते थे; पर उसे अच्छे-से-अच्छा पहनाते थे; अब वही पुत्र मुँह से नहीं बोलता, मौक़ा पड़ने से वह या उसके पुत्र गालियाँ देते और कभी-कभी बूढ़े को मार तक बैठते हैं; पुत्र-बधुयें दिन-भर तनतनाया करतीं और कहती हैं,—"ससुरजी मरें तो संकट कटे; दिन-भर पड़े-पड़े खाते और थूक-थूक कर घर ख़राब करते हैं, हमसे तो रोज़-की-रोज़ मैला साफ़ नहीं होता"। बेटों की बहुएँ तो बहुएं, ख़ास अपनी अर्द्धाङ्गी देखते ही आँखें चढ़ा लेती और खाँउँ-खाँउँ करती रहती है। बूढ़े पति को आलिङ्गन करना, उसकी सेवा करना तो दूर की बात है, उसे पास बैठाना भी बुरा समझती है। बीमारी में सेवा-शुश्रूषा करती-करती कहने लगती है—"अब तो तुम मर जाओ तो अच्छा हो। मुझसे यह सब अब नहीं होता।" कहाँ तक गिनावें, बुढ़ापे में ऐसे-ऐसे अनगिन्ती दुःख आ घेरते हैं; पर आश्चर्य तो यह है कि, इतने पर भी, अज्ञानियों का मोह नहीं छूटता। हमें एक मोहान्ध बूढ़े की कहानी याद आई है, उससे पाठकों को बहुत कुछ ज्ञान होगा—उनकी आँखें खुल जायँगीः—

एक बूढ़े सेठ की दुर्दशा।

किसी नगर में एक बूढ़ा सेठ रहता था। उसने जवानी में बहुत-सा धन सञ्चय किया था। बुढ़ापे में, पुत्रों ने उससे सारा धन अपने हाथों में ले लिया। बूढ़े को पौली में, एक टूटी सी चारपाई पर, एक फटी-पुरानी गुदड़ी बिछा कर, पटक दिया। एक लाठी उसके हाथ में दे दी और कह दिया कि, घर में चोर-चकोर या कुत्ता-बिल्ली न आने पावें। सब घर के भोजन कर लेने पर, बचा-खुचा खाना, एक फूटी-सी थाली में रख कर, बहुएँ बूढ़े को दे जातीं। कुछ दिन इस तरह गुज़रे। पुत्र-बधुओं को यह भी अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—"ससुरजी के कारण निकलने-बैठने में बार-बार घूँघट करना होता है, इससे बड़ा कष्ट होता है। अच्छा हो, यदि ये ऊपर के चौबारे में रख दिये जायँ और एक घण्टी इन्हें दे दी जाय। जब इन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत होगी, यह घन्टी बजा देंगे।" कलियुग में जोरू का हुक्म .खुदा के हुक्म के बराबर समझा जाता है। बेटों ने अपनी घरवालियों की बात मंज़ूर करली और कह-सुन कर बूढ़े को ऊपर पहुँचा दिया और एक घण्टी उसे दे दी। बूढ़े को जब खाना या पानी वग़ैरः की ज़रूरत होती, घण्टी बजा देता। कुछ दिनों बाद, एक दिन, बूढ़े का नाती ऊपर चला गया। बूढ़ा उसे खिलाता रहा। शेष में, वह खेलता-खेलता घण्टी ले आया। अब तो मुश्किल हो गई; बूढ़ा खाने-पीने विना मर गया। २४ घण्टे बीतने

पर किसी को उसकी याद आई। देखा, तो बूढ़ेराम कूच कर गये थे। पुत्रों ने उसे श्मशान पर ले जाकर जला दिया। बुढ़ापे में ऐसी ही दुर्गति होती है।

बुढ़ापे में ममता और भी बढ़ जाती है।

एक बूढ़ा अपने मकान की पौली में पड़ा रहता था। कोई उस की बात न पूछता था। बेचारा ज्यों-त्यों कर के दिन काटता था। एक दिन उस का पोता उसे मारने और गाली देने लगा। बूढ़ा भी उसे गाली देने लगा। इतने में नारद जी उधर से आ निकले। उन्होंने बूढ़े से सारा हाल पूछा। उसकी दुर्दशा का हाल सुनकर, नारद जी ने उस से कहा--"तुम्हारा जीवन वृथा है। तुम या तो वन में जाकर तप करो या हमारे साथ स्वर्ग को चलो।" सुनते ही बूढ़ा लाल हो गया और बोला--"महाराज! अपनी राह लीजिये। मेरे नाती-बेटे मुझे मारें चाहे गाली दें, आप क़ाज़ी या मुल्ला? मैं इन्हीं में ख़ुश हूँ।" नारद जी संसार की मोह-ममता देखकर दङ्ग रह गये। बात यह है कि, अज्ञानी लोगों की तृष्णा और ममता बुढ़ापे में और भी बढ़ जाती है। वे हजारों तरह के कष्ट सहते और अपमानित होते हैं; पर गृहस्थाश्रम को नहीं त्यागते। इसी मिथ्या और स्वार्थपर संसार की हाय-हाय में एक दिन मर जाते और ममता के कारण

बार-बार जन्म लेते और मरते हैं। इस तरह उन के जन्ममरण का चक्र घूमा ही करता है।

मोह त्यागने में ही भलाई है।

मोह-ममता ही संसार-बन्धन का कारण है। ज्ञानी समझते हैं कि, यहाँ कोई किसी का नहीं है। सभी सराय के मुसाफिर हैं। राह चलते-चलते एक जगह एकत्र हो गये हैं। अपना-अपना समय होने पर, अपनी-अपनी राह लगते हैं। न कोई किसी की स्त्री है और न कोई किसी का पति है; न कोई किसी का पुत्र है और न पिता; न कोई किसी का भतीजा है और न चाचा प्रभृति। स्वार्थ की जञ्जीर में सब बँधे हुए हैं। फिर इन स्वार्थियों का साथ भी सदा-सर्व्वदा को नहीं। आज साथ हैं, तो कल अलग हो जायँगे। जन्म के साथ मृत्यु निश्चित है और संयोग के साथ वियोग अटल है। जब पुरुष का स्त्री से वियोग होता है, तब उस को बड़ा कष्ट और शोक होता है। इसी तरह पुत्र के मरने पर भी महा शोक होता है। पर जो ज्ञानी हैं, तत्त्ववेत्ता हैं, वे इस जगत् के नातों की असलियत को जानते हैं; अतः, या तो वे गृहस्थी को तज देते हैं या कुटुम्बियों में रहते हुए भी उन में मोह-ममता नहीं रखते। जो परिवार में रहते हुए भी, परिवार में मोह-ममता नहीं रखते, वे जीवन्मुक्त हैं। धन्य हैं ऐसे नररत्न!

एक निर्मोही राजा की कहानी भी सुनने और ध्यान देने योग्य है—

निर्मोही राजा।

किसी नगर में एक ज्ञानी राजा था। उसे सब निर्मोही कहते थे। एक दिन उसका राजकुमार वन में शिकार खेलने गया। उसे प्यास ज़ोर से लगी। पानी की खोज में, वह एक मुनि के आश्रम में जा पहुँचा। मुनि ने उसे जल पिलाया और पूछा—"आप किसके पुत्र हैं?" लड़के ने कहा—"मैं निर्मोही राजा का पुत्र हूँ!" महात्मा ने कहा—"राजकुमार! एक ही मनुष्य निर्मोही भी हो और साथ ही राजा भी हो, यह नितान्त असम्भव है। जो राजा होगा, वह निर्मोही न होगा और जो निर्मोही होगा, वह राजा न होगा।" राजकुमार ने कहा—"यदि आपको विश्वास नहीं आता; तो आप जाकर परीक्षा कर लीजिये।" मुनि ने कहा—"अच्छा, हम नगर में जाते हैं। जब तक हम न लौटें, तब तक आप यहीं ठहरें।" यह कहकर मुनि महाराज नगर को चले गये और राजभवन के द्वार पर जा पहुँचे। द्वार पर उन्हें एक दासी खड़ी मिली।

मुनि ने दासी से कहाः—

दोहा।

तू सुन चेरी श्याम की, बात सुनावौं तोहि।
कुंवर विनास्यौ सिंह ने, आसन परयौ मोहिं॥

दासी ने जवाब दिया:—

दोहा ।

ना मैं चेरी श्याम की, नहि कोई मेरो श्याम ।
प्रारब्धवश मेल यह, सुनो ऋषी अभिराम ॥

इस के बाद ऋषि आगे चले, तो उन्हें राजकुमार की स्त्री मिली । उस से उन्होंने कहा:—

दोहा ।

तू सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवनवान ।
देवीवाहन दलमल्यौ, तुम्हरो श्रीभगवान् ॥

स्त्री ने जवाब दिया ।

दोहा ।

तपिया पूरब जनम की, क्या जानत हैं लोक ।
मिले कर्मवश आन हम, अब बिधि कीन वियोग ॥

इस के बाद ऋषि ने राजकुमार की माता से मिलना चाहा । वे रानी के पास जा पहुँचे और उस से मिल कर उन्होंने कहा:—

दोहा ।

रानी तुमको विपति अति, सुत खायो मृगराज ।
हमने भोजन ना कियो, तिसी मृतक के काज ॥

रानी ने जवाब दिया:—

दोहा ।

एक वृत्त डालें घनी, पंछी बैठे आय ।
यह पाटी पीरी भई, उड़-उड़ चहुँ दिशि जायँ ॥

इस के बाद ऋषि राज-दरबार में गये और राजा से मिले। कुशल-प्रश्न होने के बाद, ऋषि ने कहा:—

दोहा ।

राजा मुख तें राम कहु, पल-पल जात घड़ी ।
सुत खायो मृगराज ने, मेरे पास खड़ी ॥

राजा ने जवाब दिया ।

दोहा ।

तपिया तप क्यों छाँड़ियो, इहाँ पलक नहिं सोग ।
वासा जगत सराय का, सभी मुसाफिर लोग ॥

राजा का जवाब सुनते ही ऋषि को विश्वास हो गया कि, राजा ही नहीं, राजा और राजा का सारा कुटुम्ब निर्मोही है ।

मनुष्य को प्रथम तो गृहस्थाश्रम में रहना ही नहीं चाहिये और यदि रहे भी, तो निर्मोही राजा की तरह मोह त्याग कर रहे। ममता त्याग कर गृहस्थी में रहने से, मनुष्य भवबन्धन में नहीं बँधता और संसार के दुःख-क्लेश उसे सन्तप्त नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानी को जीवन्मुक्त कहते हैं ।

पर हम देखते हैं कि, बुढ़ापे में मनुष्य की आशा-तृष्णा और भी बढ़ जाती हैं। बूढ़ा रात-दिन अपने बेटे-पोतों और दोहितों की चिन्ता में ही मग्न रहता है। आप मरने के किनारे बैठा रहता है; तोभी पुत्र-पौत्रों के लिये धन की चिन्ता किया करता है। उसे कम-से-कम इस चला-चली की अवस्था में तो परमात्मा का भजन करना चाहिये; पर बूढ़े से यह नहीं होता। शङ्कराचार्य कृत "मोहमुद्गर" में लिखा है:—

बालस्तावत् क्रीड़ासक्तः, तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्नः, परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः॥

बचपन में मनुष्य खेल-कूद में लगा रहता है, जवानी में युवती स्त्री में आसक्त रहता है और बुढ़ापे में चिन्ता-फिक्रों में डूबा रहता है; लेकिन परम ब्रह्म की चिन्ता में कोई नहीं लगा रहता है।

शोक या चिन्ता करना वृथा है।

यह संसार मिथ्या और नाशमान् है। यहाँ कोई किसी का नहीं। फिर वृथा शोच-फिक्र में अपनी दुर्लभ मनुष्य-देह को नाश करना और जिस काम के लिये जगत् में आये हैं, उस काम की ओर ध्यान न देना, सचमुच ही भारी नादानी है। पुत्र मर गया तो क्या? स्त्री मर गयी तो क्या? धन चला गया तो क्या? जिस तरह पुत्र-स्त्री या मित्र-यार प्रभृति चले गये, वै

गये; उसी तरह हम भी एक दिन मर जायँगे; फिर शोच किस का ? यदि वे चले जाते और हम सदा बने रहते; तोभी शोच कर सकते थे; पर जब सभी को जाना है, तब कौन किस का शोच करे ? कहा है—

अष्टकुलाचलसप्तसमुद्राः ब्रह्म-पुरन्दर-दिनकर-रुद्राः ।
न त्वं, नाहं, नायं लोकः, तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥

हिमालय और विन्ध्याचल प्रभृति आठ पर्वत, सातों समुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य्य और रुद्र सभी अनित्य और नाशमान् हैं। न तू, न मैं और न यह लोक स्थायी हैं; तो फिर शोक किसलिये किया जाता है ?

मृत्यु से डरने और घबराने की जरूरत नहीं ।

जब तक मनुष्य को शरीर और शरीरी अथवा देह और आत्मा के अलग-अलग होने का ज्ञान नहीं होता, जब तक वह इस बात को नहीं समझता कि, आत्मा अमर, अविनाशी, नित्य और शाश्वत है; वह कभी नहीं मरता; उसे जल डुबा नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, हवा सोख नहीं सकती, तलवार बन्दूक़ प्रभृति मार नहीं सकतीं, तभी तक वह डरता और घबराता है। यह शरीर नाश होता है, आत्मा नहीं; मरना, एक कपड़ा उतार कर दूसरा पहनना है; शरीर आत्मा के

ठहरने की धर्मशाला मात्र है; अगर यह धर्मशाला टूट जायगी, तो आत्मा दूसरी में जा रहेगा,—ऐसा ज्ञान होते ही, मनुष्य के मन में भय और भावना नहीं रहती। दुःख-सुख का सम्बन्ध शरीर से है, आत्मा से नहीं; आत्मा को दुःख-सुख नहीं व्यापते, क्योंकि वह निराकार है,—ऐसा ज्ञान होते ही, दुःख आप-से-आप भाग जाते हैं—हाँ, मौत की याद हर दम रखनी चाहिये, क्योंकि मौत को याद रखने से पाप नहीं होते और परमात्मा की शरण में शान्ति लाभ करना ही अच्छा मालूम होता है; पर मौत से डरना कभी न चाहिये। जो शरीर और आत्मा में भेद नहीं समझते, वे ही मौत के नाम से काँप उठते हैं; किन्तु जो शरीर और आत्मा को जुदा-जुदा समझते हैं, जीवन में कभी पाप नहीं करते, सदा पराया भला करते और परमात्मा को हर क्षण याद करते हैं, वे हँसते-हँसते चोला छोड़ देते हैं। भीष्म-पितामह कई दिनों तक शरशय्या पर लेटे रहे, उन्हें जरा भी कष्ट न मालूम हुआ। अन्तिम दिन, उन्होंने, जगदीश को याद करते-करते, यह नश्वर चोला, हँसते-हँसते, त्याग दिया।

भीष्म पितामह आत्मतत्त्व को पूर्णतया जानने वाले थे। वे जानते थे कि, मैं पहले भी था, अब वर्त्तमान में भी हूँ और आगे भविष्य में भी इसी तरह रहूँगा। शत्रु मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। हाँ, वे मेरी इस देह का नाश कर सकते हैं; पर देह के नाश होने से मेरी क्या हानि ? इस देह के नाश होने पर, दूसरी देह इस से ताज़ा और नई मुझे मिलेगी। मेरा आत्मा

नित्य और अविनाशी है, उसे नाश करने वाला जगत् में कोई भी नहीं। गीता में कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥२३॥
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

मुझको काटे, कहाँ है वह तलवार ?
दाग़ दे मुझको, कहाँ है वह नार ?
गरम मुझको करे, कहाँ है वह पानी ?
हवा में कब ताब, सुखाने की ?
मौत को मौत, न आयेगी।
कसद मेरा, जो करके आयेगी ॥

मौत का शोक दूर करने का नुसख़ा।

———::::———

महात्मा बुद्ध के ज़माने में, किसी स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र-शोक सब शोकों से भारी होता है; इसलिये वह स्त्री शोकाभिभूत होकर, महात्मा बुद्ध के पास गयी और उन से लड़के के जिला देने की प्रार्थना की। महात्मा ने कहा—"जिस घर में कोई न मरा हो, उस घर से थोड़े से राई के

दाने ले आओ। अगर तुम वैसे दाने ले आईं, तो हम तुम्हारे पुत्र को ज़िन्दा कर देंगे।" वह स्त्री घर-घर पूछती फिरी; पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला, जिस में मौत न हुई थी। अतः वह बैरंग वापस आई और महात्मा से सारा हाल निवेदन कर दिया। सुनते ही महात्मा ने कहा—"मौत प्राणिमात्र के पीछे लगी हुई है; जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा। यह संसार नाशमान् है। आगे-पीछे सब को इस जगत् से चल देना है। कोई सदा-सर्वदा के लिये यहाँ नहीं आया। इसलिये, इस में शोक की कोई बात नहीं। मूर्ख ही मरे हुए का शोच किया करते हैं, ज्ञानी नहीं। ज्ञानी जानते हैं कि, आत्मा अजर, अमर, अविनाशी और नित्य है; इसी से वे शोच नहीं करते; किन्तु मूर्ख देह को आत्मा समझते हैं; इसी से शोक करते हैं।" महात्मा का यह उपदेश सुनते ही, स्त्री का शोक दूर हो गया और उसे परम शान्ति लाभ हुई।

भगवान् की शरण में ही सुख है।

——:※:——

इस जगत् में मनुष्य को किसी अवस्था में भी सुख नहीं है। फिर बुढ़ापा तो हर तरह दुःखों की खान ही है। अतः मनुष्य को जवानी में ही, आगे आने वाले बुढ़ापे का ख़याल कर के विषयों से मन को हटा लेना और परिवार वालों में नाम को भी मोह न रखना चाहिये। समझदार को कम-से-कम जवानी के उतार में तो

घर जञ्जाल त्याग, वन में जा, परमात्मा की भक्ति और उपासना करनी चाहिये। मन बारम्बार दबाने और समझाने से शान्त हो जाता है और धीरे-धीरे रही-सही ममता भी छूट जाती है। अभ्यास के कारण, अन्तकाल में, भगवत् में ही मन रहने से, मनुष्य की मुक्ति भी हो जाती है; यानी आवागमन से पीछा छूट जाता है। परब्रह्म की शरण में चले जाने से जो आनन्द आता है, उसे लिखकर बता नहीं सकते।

खुलासा—बुढ़ापे का चित्र देखकर, मौत को सिर पर मँडराती समझ कर, कुटुम्बियों का नाता झूठा समझ कर, विषय-वासनाओं को त्याग कर, पुत्र-कलत्र और धन-दौलत की ममता छोड़ कर, वैराग्य में मन लगाओ। अच्छा हो, यदि शरीर में शक्ति-सामर्थ्य होते हुए, घर से निकल कर, वन में जा बसो और सब से नाता तोड़, एक मात्र परमात्मा से नाता जोड़ लो। उसका नाता ही सच्चा नाता है; और सब नाते झूठे हैं। उसकी शरण में चले जाने से शोक-ताप सता नहीं सकते। भगवान् को भूलने से ही मनुष्य दुःख भोगता और संसारी शत्रुओं से तंग रहता है; किन्तु जो भगवान् के चरण-कमलों में चला जाता है, उसका कोई अनिष्ट कर नहीं सकता, और शोक-ताप तो उस से हज़ार कोस दूर भागते हैं। याद रक्खो, परमात्मा की शरण में चले जाने वाले से काल और यमराज तक भय खाते हैं और ऋद्धि-सिद्धि तो उस के सामने हाथ बाँधे ही खड़ी रहती हैं। 'भगवान्' ने कहा है:—

जो समीप आवै शरणाई ।
राखौं ताहि प्राण की नाई ॥

गोस्वामी "तुलसीदासजी" कहते हैं:—

कोटि विघ्न संकट बिकट, कोटि शत्रु जो साथ ।
'तुलसी' बल नहीं कर सकें, जो सुदृष्टि रघुनाथ ॥
राखनहारा साइयाँ, मारि न सकिहै कोय ।
बाल न बङ्का कर सकै, जो जग वैरी होय ॥

बुढ़ापे में तो जगदीश को याद करो ।

बुढ़ापा आजाने पर भी, जो परलोक बनाने की सुध नहीं करते, स्त्री-पुत्रों की ममता में पड़कर, घर-गृहस्थी के जञ्जाल में फँसकर, उम्र पूरी कर देते हैं, उनकी भयङ्कर हानि और निन्दा होती है । कहा है:—

मूर्खो द्विजातिः स्थविरो गृहस्थः ।
कामी दरिद्रो, धनवान् तपस्वी ॥
वेश्या कुरूपा, नृपतिः कदर्य्यः ।
लोके षडेतानि विडम्बितानि ॥

मूर्ख ब्राह्मण, बूढ़ा गृहस्थी, दरिद्री कामी, धनवान तपस्वी, कुरूपा वेश्या और स्वेच्छाचारी राजा—ये ६ अपना फ़जीता और लोक-निन्दा कराने वाले हैं ।

जो बुढ़ापे तक भी गर्भावस्था का किया इक़रार पूरा नहीं करते, उन को विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोग पुरुष नहीं 'नपुंसक' कहते हैं। उन को बारम्बार जन्म लेना और मरना होता है। अतः बुढ़ापे में तो मनुष्य को सब तज कर हर भजना और अपना परलोक सुधारना चाहिए।

देखिए, नीचे के चन्द भजनों में कैसे मद-मोह नाश करने वाले, ग़ाफ़िलों की ग़फ़लत छुड़ाने वाले और सोतों को जगाने वाले उपदेश भरे पड़े हैं:—

भजन (राग रेखता)।

जो तू प्रभु-नाम से अपने, मुहब्बत दिल बढ़ावेगा।
कहा मेरा मान ले प्यारे, फिर आवेगा न जावेगा ॥१॥
जन्म और मरण दुःख-दोज़ख़, तुझे हरगिज़ न छावेगा।
वही प्रभु-नाम तुझको, सब अज़ाबों से बचावेगा ॥२॥
रहेगा याद में हरदम, क़दम ख़ादिम कहावेगा।
यहाँ-वहाँ—दो जहानों में, तुझे शाबाश दिलावेगा ॥३॥
समझ मक़बूल जब तुझको, सभी कोई सर नवावेगा।
डरेगा काल भी तुझसे, न जम ज़ालिम सतावेगा ॥४॥
बचैगा ग़ज़ब ग़ालिब से, नहीं ग़म गैब खावेगा।
मिटेगा ख़ौफ़ का ख़तरा, ख़ुशामद ख़ुद करावेगा ॥५॥
हुकम जो मुर्शद "बिवादास" का, दर अमल लावेगा।
मिलेगा मोहन प्यारे से, शुबा मिट सुख समावेगा ॥६॥

भजन (ग़ज़ल)।

ऐ दिल ! क्या हिर्स करता है, तुझे संसार क्या करना।
सदा जंगल में रहना है, तुझे घर-बार क्या करना ॥१॥

रहा मालो-मकाँ किसका ? जो रहवेगा तेरा बाक़ी।
यहाँ दो दिन का जीना है, तुझे शृङ्गार क्या करना ॥२॥

हज़ारों नामवर गुज़रे, नहीं जिनका निशाँ बाक़ी।
ये सब दो दिन की दुनियाँ हैं, तुझे ज़र तार क्या करना॥३॥

उठा ले हाथ तू सब से, ख़ुदा से दिल लगा अपना।
तुझे ये लाल याक़ूतों के, गजरे हार क्या करना ॥४॥

वतन जागीर को लेकर, करेगा क्या बता तो दिल !।
लहदको याद कर अपनी, तुझे गुलज़ार क्या करना ॥५॥

ये सब दो दिन के साथी हैं, तेरे माँ बाप और भाई।
जो मुश्किल में नहीं साथी, उन्हें फिर प्यार क्या करना॥६॥

कुजा रुस्तम कुजा हातिम, कुजा लुकमाँ कुजा दारा।
हमा दर ख़ाक शुद पिनहाँ, तुझे इज़्हार क्या करना ॥७॥

महल किसका ? मकाँ किसका ? किधर और जगह है तेरी ?।
तू ख़ुद हुशियार है ऐ दिल ? तुझे हुशियार क्या करना ? ॥८॥

दिल अपना इश्क़ में माबूद के, रंग ले बहुत पक्का।
तुझे ये रंग रेज़ीयें, गुले अनार क्या करना ? ॥९॥

छप्पय ।

भयो संकुचित गात, दन्तहु उखरि परे माहि ।
आँखिन दीखत नाहिं, वदन ते लार परत बहि ॥
भई चाल बेचाल, हाल बेहाल भयो अति ।
वचन न मानत बन्धु, नारिहू तजी प्रीति-गाति ॥
यह कष्ट महा दिये वृद्धपन, कछु मुख सों नहिं कहि सकत ।
निज पुत्र अनादर कर कहत, यह बूढ़ो यों ही बकत ॥१११॥

111. How pitiable is the old age of a man, when his limbs begin to contract, his gait becomes feeble, the rows of teeth are broken off, the eye-sight is gone, deafness is on the increase, the mouth begins to give water, the relatives do not show respect even by word, the wife ceases to serve and even the sons become unfriendly.

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ॥
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनुर्नरः
संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥११२॥

मनुष्य नाटक के ऐक्टर के समान है; जो क्षण-भर में बालक, क्षण-भर में युवा और कामी रसिया बन जाता है तथा क्षण में दरिद्र और क्षण में धनैश्वर्य-पूर्ण हो जाता है । फिर; अन्त में, बुढ़ापे से जीर्ण और सुकड़ी हुई खाल का रूप दिखाकर, यमराज के नगर की ओट में, छिप जाता है ॥११२॥

महाराज भर्तृहरिजी ने मनुष्य का नाटक के स्टेज-ऐक्टर से .खूब ही अच्छा मिलान किया है। सचमुच ही मनुष्य नाटक के ऐक्टर का साही काम करता है।

थियेटर में जिस तरह एक ही ऐक्टर कभी बालक, कभी जवान, कभी बूढ़ा, कभी धनी, कभी निर्धन, कभी राजा, कभी फ़क़ीर, कभी साधु, कभी असाधु तथा कभी रोगी और निरोगी, त्यागी, और अत्यागी, भोगी और योगी, गृहस्थ और संन्यासी बन कर, तरह-तरह के तमाशे दिखाता और शेष में नाटक के पर्दे के पीछे छिप जाता है; उसी तरह मनुष्य बालक और जवान, धनी और निर्धन प्रभृति के स्वाँग भर और दिखा-कर, अन्त में जीवन-नाटक का आख़िरी सीन—बुढ़ापे का रूप—दिखाकर, यमपुरी-रूपी पर्दे की ओट में जाकर छिप जाता है; यानी इस दुनिया से कूच कर जाता है।

छप्पय।

छिन में बालक होत, होत छिनही में यौवन।
छिन ही में धनवन्त, होत छिन ही में निर्धन॥
होत छिनक में वृद्ध, देह जर्जरता पावत।
नट ज्यों पलटत अंग, स्वांग नित नये दिखावत॥
यह जीव नाच नाना रचत, निचल्यो रहत न एकदम।
करके कनात संसार की, कौतुक निरखत रहत यम॥११२

112. A man is like a stage-actor. He is a child for a short space of time and then becomes young

जिस तरह गुलाबजल, गंगाजल, शराब और मूत्रके घड़े में एक ही सूर्य का अक्स पड़ता है ; उसी तरह मनुष्य और पशु-पक्षी सब में एक ही ब्रह्म का प्रकाश है । पृष्ठ ४७३

enjoying lustful pursuits. In one moment he is poor and in another the possessor of great wealth and power. Ultimately with limbs worn out with old age and a body covered all over with wrinkles he makes his exit entering the metropolis of the god of Death.

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयनेवा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥११२॥

हे परमात्मा ! मेरे शेष दिन, किसी पवित्र वन में, "शिव शिव" रटते हुए बीतें; सर्प और पुष्प-हार, बलवान शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थर की शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनियों के समूह में मेरी समदृष्टि हो जाय, मेरी यही इच्छा है ॥११३॥

खुलासा—कोई विरक्त पुरुष परमात्मा से प्रार्थना करता है, कि मेरी मति ऐसी करदे कि, मुझे सर्प और हार, शत्रु और मित्र, पुष्प-शय्या और शिला, रत्न और पत्थर, तिनका और सुन्दरी स्त्री सब एकसे दीखने लगें; इन में मुझे कुछ भेद न मालूम हो, मैं समदर्शी हो जाऊँ और मेरा शेष जीवन किसी पवित्र वन में "शिव शिव शिव" जपते बीते।

जब सभी शरीरों में एक ही व्यापक ब्रह्म दीखने लगे; शत्रु-मित्र में भेद न मालूम हो; हर्ष-शोक और दुःख-सुख सब में

चित्त एकसा रहे; तब योगसिद्धि हुई समझनी चाहिए। 'कबीरदास' कहते हैं:—

समदृष्टि सतगुरु ! करौ, मेरौ भरम निकार।
जहाँ देखूँ तहाँ एक ही, साहब का दीदार॥
समदृष्टि तब जानिये; शीतल समता होय।
सब जीवन की आत्मा, लखै एकसी सोय॥
समदृष्टि सतगुरु किया, भरम किया सब दूर।
दूजा कोई दीखे नहीं, राम रहा भरपूर॥

यही अवस्था सर्वोत्तम अवस्था है। इसी में परमानन्द है। इस अवस्था में शोक और दुःख का नाम भी नहीं है; पर यह अवस्था उन्हीं को प्राप्त होती है, जिन पर जगदीश की कृपा होती है या जिन के पूर्व जन्म के सञ्चित पुण्यों का उदय होता है।

समदर्शी होने के उपाय।

——::o::——

समदर्शिता ही परमानन्द की सीढ़ी है।

चित्त की समता ही योग है। जब समान दृष्टि हो गई, तब योगसिद्धि में बाक़ी ही क्या रहा ? जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है, कि समस्त जगत् और जगत् के प्राणियों में एक ही चेतन आत्मा है; छोटे-बड़े, नीच-ऊँच सभी शरीरों में एक ही ब्रह्म का प्रकाश है; तब उस की नज़र में सभी समान

हो जाते हैं। जब वह राजा-महाराजा, अमीर और ग़रीब, मनुष्य और पशु-पक्षी, हाथी और चींटी, सर्प और मगर—सब में एक ही चेतन आत्माको व्यापक देखता है; तब उसके दिल में किसी से राग और किसी से विराग, किसी से विरोध और किसी से प्रणय-भाव रह नहीं जाता; उस समय उसे न कोई शत्रु दीखता है और न कोई मित्र। इस अवस्था में पहुँचने पर, वह न किसी को अपना समझता है, न पराया। इस समय ही उसे स्त्री और पुरुष, दोस्त और दुश्मन, सर्प और पुष्प-हार, सोना और मिट्टी प्रभृति में कोई फ़र्क़ नहीं मालूम होता। इस अवस्था में, उसके अन्तःकरण से दुःखों का घटाटोप दूर होकर, परमानन्द की प्राप्ति होती है। उस समय जो आनन्द होता है, उसको क़लम से लिख कर बताना, कठिन ही नहीं, असम्भव है।

समस्त जगत् में एक ही आत्मा व्यापक है ?

बेशक, सारे जगत् में एक ही चेतन आत्मा है। जिस तरह गुलाब-जल से भरे घड़े में, गङ्गा-जल से भरे घड़े में, मूत्र से भरे घड़े में और शराब से भरे घड़े में एक ही सूर्य का प्रतिबिम्ब—अक्स पड़ता है, सब में एक ही सूर्य दीखता है; उसी तरह मनुष्य, पशु-पक्षी और मगर-मच्छ प्रभृति जगत् के सभी प्राणियों में एक ही चेतन ब्रह्म का प्रतिबिम्ब या प्रकाश है। अलग-अलग

प्रकार के शरीरों या उपाधियों के कारण, सब में एक ही आत्मा होने पर भी, अलग-अलग आत्मा दीखते हैं। लेकिन भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न आत्माओं का होना, अज्ञानियों को ही मालूम होता है; जो सच्चे तत्त्ववेता और पूर्ण ज्ञानी हैं अथवा जो आत्मतत्त्व की तह तक पहुँच गये हैं, उन्हें सभी शरीरों में एक ही आत्मा दीखता है। वे समझते हैं कि, जो आत्मा हम में है, वही समस्त जगत् और जगत् के प्राणियों में है। बकरी के शरीर में जो आत्मा है, वह बकरी; हाथी के शरीर में जो आत्मा है, वह हाथी; और मनुष्य के शरीर में जो आत्मा है, वह मनुष्य कहलाता है। जिन-जिन शरीरों में आत्मा प्रवेश कर गया है, उन्हीं-उन्हीं शरीरों के नाम से वह पुकारा जाता है; शरीरों या उपाधियों का भेद है; आत्मा में कोई भेद नहीं। नदी, तालाब, झील, बावड़ी, झरना, सोता और कूआँ—इन सब में एक ही जल है, पर नाम अलग-अलग हैं। दीपक, मशाल, चिराग़ और अग्नि सब में एक ही अग्नि है, पर नाम अलग-अलग हैं। एक लोहे के डण्डे पर कपड़ा लपेट कर जो अग्नि जलाई जाती है, उसे मशाल कहते हैं और एक मिट्टी के दीवले में जो अग्नि जलती है, उसे दीपक कहते हैं। पृथ्वी एक ही है, पर उसके नाम अलग-अलग हैं। किसी को नगर, किसी को गाँव, किसी को ढानी और किसी को घर कहते हैं; पर है तो सब धरती ही। ताना और बाना एक ही सूत के दो नाम हैं; पर है दोनों में ही सूत। बन एक ही है; उस में अनेक

वृक्ष हैं और उनके नाम तथा जातियाँ अलग-अलग हैं। बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से वीज होता है; अतः बीज वृक्ष है और वृक्ष बीज है। दोनों एक ही हैं, पर नाम अलग-अलग हैं। बाप से बेटा पैदा होता है; अतः बाप में और बेटे में एक ही आत्मा है, अतएव बाप बेटा है और बेटा बाप है। बहुत कहना-समझाना वृथा है। निश्चय ही सब में एक ही चेतन आत्मा है, पर भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों के कारण नाम अलग-अलग हैं। भ्रम के कारण मनुष्य को असल बात समझ नहीं पड़ती। मृगमरीचिका में जल नहीं है; पर भ्रमवश मनुष्य को जल दीख पड़ता है और वह कपड़े उतार कर तैरने को तैयार हो जाता है। रस्सी-रस्सी है, साँप नहीं; पर अँधेरे में वही रस्सी साँप-सी दीखती है और मनुष्य डर कर उछलता और भागता है। इसी तरह जब तक मनुष्य के हृदय में अज्ञान-रूपी अन्धकार रहता है, उसे और-का-और दीखता है। देह और आत्मा अलग-अलग हैं। देह नाशमान और आत्मा अविनाशी है; पर अज्ञानी को, जिसके दिल में अँधेरा है, देह और आत्मा एक मालूम होते हैं तथा शरीर और आत्मा दोनों ही नाशमान् जान पड़ते हैं। इसी तरह सब जगत् में एक ब्रह्म व्यापक है—शरीर-शरीर में एक ही चेतन आत्मा है; पर अज्ञानी सब प्राणियों में एक ही आत्मा नहीं मानता है। अज्ञान-अन्धकार के मारे, वह इस बात को नहीं समझता, कि मुझमें, ऊधो में, माधव में, रामा में, मेरी स्त्री में, मेरे पुत्र में,

माधव के पुत्र में, घोड़े में, हाथी में, सर्प में और सिंह में एक ही आत्मा है; यानी जो आत्मा मुझमें है वही समस्त जगत्में है। 'बिहारीलाल' कवि ने कहा:—

मोहन मूरति श्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
वसत सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ॥

श्याम की मोहिनी मूरत की गति अति अद्भुत है। वह सुन्दर हृदय में रहती है, तोभी उसका प्रतिबिम्ब—अक्स—सारे जगत् में पड़ता है।

महाकवि 'नज़ीर' कहते हैं:—

ये एकताई ये यकरंगी, तिस ऊपर यह क़यामत है।
न कम होना, न बढ़ना और हज़ारों घट में बँट जाना॥

ईश्वर एक है और एक रङ्ग है—निर्विकार और अक्षय है; उसमें रूपान्तर नहीं होता और वह घटता-बढ़ता भी नहीं; लेकिन अचम्भे की बात है कि, वह घट-घट में इस तरह प्रकट होता है, जिस तरह एक सूर्य्य का प्रतिबिम्ब सैकड़ों जलाशयों में दिखाई देता है।

क्या जीवात्मा और परमात्मा में भी कुछ भेद नहीं है?

निस्सन्देह; जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। दोनों में एक ही आत्मा है। जीव की उपाधि अन्तःकरण है और

परमेश्वर की उपाधि माया है। जीव की उपाधि छोटी है और परमात्मा की बड़ी है; इसी से ईश्वर में जो सर्वज्ञता प्रभृति धर्म्म हैं; जीव में वे नहीं। गङ्गा की बड़ी धारा में नाव और जहाज़ चलते हैं, हज़ारों मगर-मच्छ और करोड़ों मछलियाँ तैरती हैं तथा किनारे पर लोग स्नान करते हैं। पर वही गङ्गाजल अगर एक गिलास में भर लिया जाय, तो उसमें न तो नाव और जहाज़ होंगे, न मगर-मच्छ और और मछलियाँ होंगी और न किनारे पर लोग स्नान करते होंगे। दर-असल, गङ्गा की बड़ी धारा में जो जल है, वही जल गिलास में है। वह गङ्गा का बड़ा प्रवाह है और गिलास में थोड़ा-सा जल है। जिस तरह दोनों जलों के एक होने में सन्देह नहीं; उसी तरह जीवात्मा और परमात्मा के एक होने में सन्देह नहीं। सारांश यह कि, जीवात्मा, परमात्मा और समस्त जगत् में एक ही ब्रह्म है। जो इस बात की तह तक पहुँच जायगा, वह किससे बैर करेगा और किससे प्रीति ? जब तक मनुष्य इस बात को अच्छी तरह नहीं समझ लेता और यही बात उस के दिल पर नक़्श हुई नहीं रहती कि, जो आत्मा मेरे शरीर में है वही जगत् के और प्राणियों के शरीरों में है, तभी तक वह किसी को अपना और किसी को पराया, किसी को अपनी स्त्री और किसी को अपना पुत्र, किसी को शत्रु और किसी को मित्र, किसी को सर्प और किसी को फूलों का हार समझता है; किसी से खुश होता है और किसी से नाराज़, किसी से

विरोध करता और किसी से प्रणय। पहले के पहुँचे हुए महात्मा जी सिंहों को अपने आश्रमों में भेड़-बकरी की तरह पालते और सर्पों को गले का हार बनाये रहते थे, वह क्या बात है ? और कुछ नहीं, यही बात है, कि वे भीतरी दिल से सिंह में और अपने में एक ही आत्मा समझते थे; इसी से वे उनसे डरते नहीं थे और सिंह तथा सर्प प्रभृति हिंसक जीव भी उन्हें कष्ट न पहुँचाते थे।

'कैवल्योपनिषद्' में लिखा है:—

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा, विश्वस्यायतन महत्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं स त्वमेव त्वमेव तत्॥

जो ब्रह्म सब प्राणियों का आत्मा, सम्पूर्ण विश्व का आधार, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और नित्य है, वह तुही है और तू वही है।

ज्ञानकाण्ड उपनिषद् ही तो वेद का निषकर्ष और सार है। उसमें सर्वत्र आत्मा को ही ईश्वर कहा है। हमारे वेद ही नहीं, संसार के समस्त धर्मशास्त्र—कुरान और बाइबिल आदि में भी यही बात कही है। कुरान में "ला इलाहा इल्ला अल्ला" यही निचोड़ कहा है यानी आत्मा के सिवा दूसरा और ईश्वर नहीं है। बाइबिल में भी 'ईसामसीह' ने कहा है—"Ye are the living temples of God. अर्थात् तुम ईश्वर के जीवित मन्दिर हो; अर्थात् "तत्त्वमसि।" वह तुम हो।

समदर्शी होने से मोक्ष मिलती है।

"समस्त जगत् में एक ही ब्रह्म या चेतन आत्मा व्यापक है— इस बात को जाने-समझे बिना, मनुष्य समदर्शी हो नहीं सकता; इसी से हमने यह बात विस्तार से समझाई है। अब रही यह बात कि, समदर्शी होने की क्या ज़रूरत है ? समदृष्टि होने से क्या लाभ है ? इन प्रश्नों का उत्तर हम संक्षेप में ही दिये देते हैं— समदृष्टि हो जाने से मनुष्य का दुःख और क्लेशों से पीछा छूट जाता है; वर्णनातीत परमानन्द की प्राप्ति होती है; संसार-बन्धन कट जाता है; आवागमन का झगड़ा मिट जाता है; प्राणी को बारम्बार जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता; उस की मोक्ष हो जाती है और वह परमपद या विष्णुत्व को प्राप्त हो जाता है। स्वामी शङ्कराचार्य जी महाराज कहते हैं:—

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ, मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं, वाञ्छस्यचिराद् यदि विष्णुत्वम् ॥

हे मनुष्य ! यदि तू शीघ्र ही मोक्ष* या विष्णुत्व चाहता है, तो शत्रु और मित्र, पुत्र और बन्धुओं से विरोध और प्रणय

* "मोक्ष" किसी पदार्थ का नाम नहीं है और वह किसी देश या दूसरी दुनिया में नहीं मिलती। हृदय में जो अज्ञान की गाँठ है, उस के खुल जाने या नाश हो जाने को ही "मोक्ष" कहते हैं।

मत कर; यानी सब को एक नज़र से देख, किसी में भेद न समझ।

सार—यदि मोक्ष, मुक्ति या परमानन्द चाहते हो; तो सब जगत् में अपने ही आत्मा को देखो, किसी को अपना और किसी को पराया, किसी को शत्रु और किसी को मित्र मत समझो।

छप्पय।

सर्प, सुमन को हार, उग्र बैरी अरु सज्जन।
कंचन मणि अरु लोह, कुसुम-शय्या अरु पाहन॥
तृण अरु तरुणी नारि, सबन पर एक दृष्टि चित।
कहूँ राग नहिं रोष, द्वेष कितहुँ न कहुँ हित॥

शरीर आत्मा नहीं है। शरीर को आत्मा समझना "अविद्या" है। अविद्या के कारण ही संसार-बन्धन है। उस बन्धन के नाश को ही "मोक्ष" कहते हैं।

कामनाओं का हृदय में जो निवास है, उसी को "संसार" कहते हैं। कामनाओं के सब तरह से नाश हो जाने को "मोक्ष" कहते हैं।

मुक्त हुआ पुरुष फिर संसार में नहीं आता। सांख्यसूत्र है— "यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम।" जिस पद को पाकर फिर नहीं लौटता, वही मेरा परम स्वरूप है।

ह्वै है कब मेरी यह दशा, गंगा के तट तप जपत।
रस-भीने दुर्लभ दिवस ये, बीतेंगे "शिव-शिव" रटत? ॥११३॥

113. O lord, let my remaining days be now spent repeating the name of Shiva in some holy forest, my sight making no difference between a serpent or a garland of flowers, between a powerful enemy or a friend, between a precious gem or an ordinary stone, between a bed made soft by flowers or a flat stone, and between a straw or a group of beautiful women.
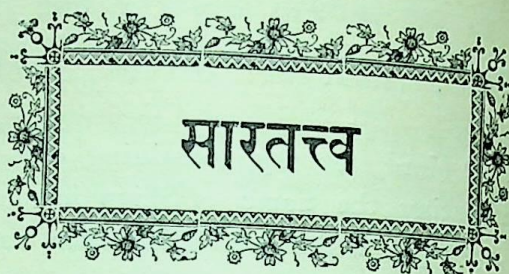
इस ग्रन्थ के ४२६ पेजों में और करोड़ों वेदान्त-ग्रन्थों में जो विषय कहा गया है, उसे हम आधे श्लोक में कहे देते हैं:—
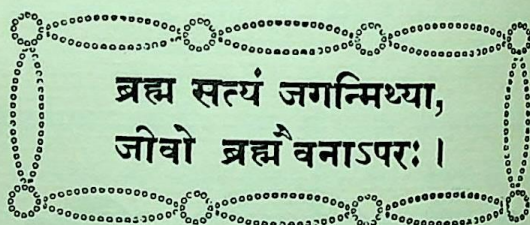
ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म-रूप है।

———

आत्मा-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर।

(१) प्रश्न—आत्मा कैसा है ?

उ०—आत्मा अचिन्त्य, अनन्तरूप, कल्याणरूप, अमृत, माया का भी कारण, आदि-मध्य और अन्त से हीन, विभु, एक आनन्द-रूप और अद्भुत है।

(२) प्रश्न—क्या सब प्राणियों में एक ही आत्मा है ?

उ०—निस्सन्देह, सभी प्राणियों में एक ही आत्मा है। "श्वेताश्वतरोपनिषद्" में लिखा है—"एक ही चेतन देव सारे भूतों में छिपा हुआ है। वही सब में व्याप रहा है और वही सब भूतों का अन्तरात्मा है। वही कर्मों का अध्यक्ष या ज्ञाता, सब भूतों का निवास-स्थान, साक्षी, चेतन, द्वैत से रहित और निर्गुण है।

(३) प्र०—क्या शरीर और आत्मा दो अलग-अलग पदार्थ हैं ?

उ०—बेशक, शरीर और आत्मा दो अलग-अलग पदार्थ हैं। शरीर जड़ और नाशमान् है; किन्तु आत्मा चेतन और अविनाशी है। शरीर रहने का घर और आत्मा उस में रहने वाला है।

(४) प्र०—जीवन और मरण अथवा जन्म और मृत्यु किसे कहते हैं ?

उ०—शरीर और आत्मा के संयोग को "जीवन", और इनके वियोग को "मरण" कहते हैं। जब आत्मा नये शरीर में प्रवेश करके संसार में आता है, तब कहते हैं कि "जन्म हुआ" और जब आत्मा पुराने शरीर को त्याग कर चल देता है, तब कहते हैं कि "मृत्यु हुई"।

(५) प्र०—क्या यह शरीर ही आत्मा नहीं है ?

उ०—नहीं, यह देह या शरीर या चोला मनुष्य नहीं है। इस देह को धारण करने वाला अथवा इस देह में बसने वाला एक सूक्ष्म-से भी-सूक्ष्म पदार्थ है, जो हृदय के अन्दर रहता है। उसे ही मनुष्य, जीवात्मा, देही या शरीरी कहते हैं।

(६) प्र०—बचपन, जवानी और बुढ़ापा—ये अवस्थायें किस की होती हैं, आत्मा की या शरीर की ?

उ०—बचपन, जवानी और बुढ़ापा,—ये अवस्थायें शरीर की होती हैं, आत्मा की नहीं। शरीर की अवस्थायें बदलती रहती हैं, मगर शरीर के अन्दर रहने वाला जीवात्मा सदा जैसा-का-तैसा बना रहता है। शरीर की अवस्था बदलने पर, उस की अवस्था में कुछ भी फेरफार नहीं होता। बचपन के

शरीर में आत्मा जैसा रहता है, जवानी और बुढ़ापे के शरीर में भी वैसा ही रहता है। मतलब यह, आत्मा सदा एकसा रहता है, वह न कभी बच्चा होता है, न बूढ़ा और जवान।

(७) प्र०—शरीर के साथ जो आत्मा या चेतन वस्तु पैदा होती है, वह क्या शरीर के साथ ही नाश नहीं हो जाती ?

उ०—शरीर के साथ जो चेतन वस्तु या आत्मा पैदा होती है, वह शरीर के नाश होने पर नाश नहीं हो जाती। शरीर नष्ट हो जाता है; पर उस के अन्दर रहने वाला आत्मा नाश नहीं होता; वह अपने "कर्मानुसार" फिर नया शरीर पाता है। हम लोग जिस तरह आज हैं, उसी तरह पहले भी थे और आगे भी रहेंगे। हमने अब तक अनगिन्ती जन्म लिये हैं और आगे भी, जब तक मोक्ष न हो जायगी, इसी तरह जन्म लेते और मरते रहेंगे। देखने में आता है, कि माँ के पेट से निकलते ही बालक को हर्ष, शोक और भय आदि होने लगते हैं। हाल के पैदा हुए बालक को अपने पहले जन्म की हर्ष, शोक और भय पैदा करने वाली बातें याद होती हैं; इसी से वह हँसता, डरता और रोता है। अगर हाल के जन्मे बालक ने पहले कभी जन्म न लिया होता, तो वह पैदा होते ही, अपनी भूख शान्त करने के लिए, माँ के स्तनों को खोज कर उन से लग न जाता। बालक ने पहले अनेक जन्म लिये हैं और प्रत्येक बार माताओं के स्तन-पान किये हैं; इस बार भी उसे पहले जन्म की बात याद है, उसे स्तन-पान का अनुभव है, दूध पीने के लाभ का

ज्ञान है; इसी से वह इस जन्म में, पैदा होते ही, बिना किसी के सिखाये, स्तन पीने लगता है। इस से साफ मालूम होता है, कि हाल के जन्मे बच्चे के भीतर चैतन्य वस्तु—आत्मा है और वह पहले जन्म में भी था। उसी आत्मा ने अपना पहला शरीर छोड़ कर, इस नये शरीर में प्रवेश किया है। उस बालक का पहला शरीर नाश हो गया है; पर उस के अन्दर रहने वाला आत्मा ज्यों-का-त्यों है; वह पुराने शरीर को त्याग-त्याग कर नये-नये शरीर धारण करता है। शरीर नाश होते जाते हैं, मगर आत्मा कभी नाश नहीं होता। इसी से शास्त्रों में आत्मा को अमर और अविनाशी तथा नित्य या सदा-सर्वदा रहने वाला कहा है।

(८) प्र०—शरीर और आत्मा का मुक़ाबिला करो।

उ०—शरीर में रहने वाला आत्मा नित्य, अविनाशी, अक्षय, निराकार, निर्विकार, सूक्ष्म-से भी-सूक्ष्म, अजर और अमर है; किन्तु शरीर अनित्य, नाशमान्, घटने-बढ़ने वाला, साकार, विकारवान्, स्थूल और बूढ़ा होने तथा मरने वाला है।

आत्मा कभी मरता नहीं, सदा रहा आता है, इसी से उसे नित्य कहते हैं। आत्मा का कभी नाश नहीं होता, कोई भी उस का नाश नहीं कर सकता। मनुष्य की तो बात ही क्या है, स्वयं जगदीश परम परमात्मा भी, आत्मा का नाश नहीं कर सकता; क्योंकि आत्मा स्वयं ही ब्रह्म है। कोई भी, अपना नाश आप नहीं कर सकता। आग आत्मा को जला

नहीं सकती, जल डुबा या गला नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती; अतः आत्मा के अविनाशी होने में कोई सन्देह नहीं। आत्मा निराकार है; यानी उस के आकार या अङ्ग-प्रत्यङ्ग नहीं; इसलिये वह घटता-बढ़ता नहीं; बस, इसी वजह से उसे अक्षय भी कहते हैं। पैदा होना, अस्तित्त्व, बढ़ना-घटना, रूपान्तर होना और नाश होना—ये छः "भाव-विकार" हैं। ये छः देह के धर्म हैं। शरीर पैदा होता है, घटता-बढ़ता है, शरीर में ही जवानी और बुढ़ापा प्रभृति रूपान्तर या फेरफार होते हैं तथा शरीर का नाश होता है; यानी शरीर की ये छः अवस्थायें होती हैं; किन्तु आत्मा इन छहों विकारों से अलग रहता है। न वह पैदा होता है, न घटता-बढ़ता है, न उस में रूपान्तर होते हैं और न उस का नाश होता है; इसी से उसे निर्विकार कहते हैं। आत्मा सूक्ष्म-से भी-सूक्ष्म है, इसलिये वह बुद्धि वग़ैरः से जाना भी नहीं जा सकता। आत्मा न बूढ़ा होता है और न मरता है; इसी से उसे अजर अमर कहते हैं।

(६) प्रश्न—क्या स्त्री और पुरुष में आत्मा अलग-अलग होते हैं ?

जिस तरह बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था के शरीर में एक ही आत्मा होता है; उसी तरह स्त्री, पुरुष और नपुंसक प्रभृति में एक ही आत्मा होता है। आत्मा जैसे-जैसे शरीरों को धारण करता है; वैसा-ही-वैसा हो जाता है। शरीर स्त्री या पुरुष होता है; आत्मा नहीं। एक ही आत्मा दो तरह के

शरीरों में रहने से स्त्री और पुरुष कहलाता है। स्त्री के शरीर में रहने वाला आत्मा, जब पुरुष के शरीर में आ जाता है; तब पुरुष कहलाता है और पुरुष के शरीर में रहने वाला आत्मा, जब स्त्री के शरीर में आ जाता है; तब स्त्री कहलाता है। आत्मा स्त्री या पुरुष नहीं होता; किन्तु शरीर स्त्री या पुरुष होता है।

(१०) प्रश्न—मरने के बाद इन्द्रियाँ अपना-अपना काम क्यों नहीं करतीं ?

उ०—शरीर जड़ है और आत्मा चेतन है। शरीर घर है और आत्मा दीपक है। जिस तरह घर में दीपक का प्रकाश रहता है; उसी तरह शरीर-रूपी घर में आत्मा-रूपी दीपक का प्रकाश रहता है। यह चेतन आत्मा ही सारी इन्द्रियों के गुणों का प्रकाशक है। चेतन आत्मा की रोशनी से ही इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं। जब आत्मा शरीर-रूपी घर को छोड़ जाता है; तब शरीर—घर—में अँधेरा हो जाता है। इन्द्रियाँ जो आत्मा की ज्योति से अपना-अपना काम करती थीं; उस के शरीर में न रहने से बे-काम हो जाती हैं।

(११) प्रश्न—क्या ईश्वर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं ?

उ०—नहीं; ईश्वर और आत्मा बिल्कुल एक ही हैं। इन में कुछ भेद नहीं।

(१२) प्रश्न—ईश्वर सर्व्वज्ञ और सर्व्वशक्तिमान् है; पर जीवात्मा तो सर्व्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं; तब दोनों एक कैसे हुए ?

उ०—जीवात्मा की उपाधि "अन्तःकारण" है और ईश्वर की उपाधि "माया" है। जीवात्मा की उपाधि छोटी-सी है; पर ईश्वर की उपाधि—माया सारे ब्रह्माण्ड में फैल रही है; इसी से ईश्वर में सर्व्वज्ञता आदि धर्म रहते हैं; पर जीवात्मा में नहीं। परन्तु सुखरूपता दोनों में समान है तथा नित्यत्त्व और चेतनत्त्व धर्म भी दोनों में बराबर हैं। इस से स्पष्ट है कि, ईश्वर और आत्मा में भेद नहीं; उपाधि के छोटेपन और बड़ेपन के कारण, दोनों में भेद जान पड़ता है।

यही सवाल किसी आदमी ने एक महात्मा से किया था। महात्मा ने कहा—"मुझे प्यास ज़ोर से लगी है, अतः पहले गङ्गाजी से एक तूम्बी जल भर लाओ।" वह आदमी एक तूम्बी गङ्गा-जल भर लाया और महात्मा के सामने रख दिया। महात्माने कहा—"यह तो गङ्गाजल नहीं है। गङ्गाजल में तो सैकड़ों नाव और अगनबोट आदि चलते हैं, बड़े बड़े मगर और घड़ियाल तथा मछलियाँ तैरती हैं, किनारे पर घाट बने हैं, लोग स्नान करते हैं; पर इस में तो इन में से एक भी नहीं, फिर मैं इसे कैसे गङ्गाजल समझूँ ?" उस जल लाने वाले ने कहा—"महाराज ! वह गङ्गा का बड़ा भारी प्रवाह है, जिस के किनारे पर्वत और वृक्षादिक हैं तथा जिस में जहाज़ चलते और मनुष्य नहाते हैं; और यह उसी प्रवाह का एक छोटा सा अँश है। इस में वे सब कैसे रह सकते हैं ? पर इस के गङ्गाजल होने में ज़रा भी शक नहीं; जो मधुरता आदि गुण उस में हैं, वे ही

सब इस में भी हैं। यह सुनते ही महात्मा ने कहा—"बस, तेरा सवाल हल हो गया। यही बात ईश्वरात्मा और जीवात्मा में है। दोनों एक ही हैं। ईश्वर नित्य और चेतन है; आत्मा भी नित्य और चेतन है। वह सुख-रूप है और यह भी सुख-रूप है। आत्मा की उपाधि अन्तःकरण है और ईश्वर की उपाधि माया है। आत्मा की उपाधि छोटी-सी है, उस का दायरा छोटा है; इसी से आत्मा में सर्व्वज्ञता आदि नहीं; पर ईश्वर की उपाधि माया सारे विश्व में व्याप रही है, उस का दायरा बहुत बड़ा है; इसी से उसमें सर्व्वज्ञता आदि धर्म हैं।

(१३) प्रश्न—क्या ईश्वर सर्व्वव्यापक है ? अगर ईश्वर सर्व्वत्र है, तो वह दीखता क्यों नहीं ?

उ०—जिस तरह दूध में मक्खन, दही में घी, तिलों में तेल, पहाड़ी झरनों में जल और अरणी में अग्नि की ज्योति है; उसी तरह परमात्मा सर्व्वत्र है। जिस तरह तिलों में तेल है, पर दीखता नहीं; दूध में मक्खन है, पर दीखता नहीं; ईख में रस है, पर दीखता नहीं; उसी तरह आत्मा सब शरीरों में है, पर दीखता नहीं।

(१४) प्र०—क्या सब में एक ही आत्मा है ? अगर सब में एक ही आत्मा है, तो अलग-अलग क्यों दीखता है ?

उ०—निश्चय ही सारे विश्व में अथवा संसार के सभी शरीरों में एक ही आत्मा है। स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस, घोड़ा,

गधा, हाथी, ऊँट, कुत्ता और बिल्ली प्रभृति संसार के सभी प्राणियों में एक ही आत्मा है। इन सब में अलग-अलग आत्मा नहीं हैं; पर भ्रमवश या अज्ञान से, जिस तरह एक ही सूर्य, अनेक जल से भरे हुए घड़ों में, अनेक सूर्यों की तरह दीखता है; उसी तरह एक ही आत्मा, अनेक शरीरों में, अनेक आत्माओं की तरह दीखता है। बुद्धिमान् समझता है कि, सूरज एक है, पर अनेक घड़ों में अनेक सूरजों की तरह दीखता है; उसी तरह ज्ञानी समझता है कि, सारे संसार में एक ही आत्मा व्याप रहा है; पर अनेकों शरीरों में अनेकों आत्माओं की तरह दीखता है।

(१५) प्र०—अगर जगत् के सभी शरीरों में एक ही आत्मा है, तो एक के सुखी होने से सभी सुखी क्यों नहीं होते और एक के दुखी होने से सभी दुखी क्यों नहीं होते और एक के मरने से सभी मर क्यों नहीं जाते इत्यादि ?

उ०—एक शरीर में हाथ, पैर, नाक, कान, अँगुली प्रभृति अनेक अवयव हैं, पर उस शरीर के सारे अवयवों में एक ही आत्मा है। इतने पर भी, पैर में दर्द होने से हाथ में दर्द नहीं होता; नाक में सुख होने से कान में सुख नहीं होता और एक अङ्ग के टूट जाने से सारे अङ्ग नहीं टूट जाते। मतलब यह है कि, जिस तरह एक शरीर के अवयवों में एक आत्मा होने से सब में सुख-दुःख नहीं होता, उसी तरह ब्रह्माण्ड के शरीर में एक आत्मा है और संसार के सारे शरीर उस के अवयव हैं। एक शरीर के

सुखी-दुखी होने से विराट के और शरीर सुखी-दुखी नहीं होते; क्योंकि वे सब शरीर विराट के अवयव मात्र हैं। और भी खुलासा यों है कि, जिस तरह हमारे इस शरीर के हाथ-पैर आदि अवयव हैं; हमारे एक अवयव को कष्ट होने से दूसरे अवयव को कष्ट नहीं होता; उसी तरह हम सारे ही प्राणी उस विराट-शरीर के अवयव हैं। हम में से एक के दुखी होने से दूसरा दुखी नहीं होता और सुखी होने से दूसरा सुखी नहीं होता।

आत्मा से सुख-दुःख आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है। सुख दुःख आदि का सम्बन्ध अन्तःकरण से है। गरमी-सरदी, सुख-दुःख आदि आत्मा को नहीं मालूम होते; किन्तु अन्तःकरण को मालूम होते हैं। सब अलग-अलग शरीरों में आत्मा तो एक ही है; मगर अन्तःकरण अलग-अलग हैं। इसी कारण, एक को सुख होने से सब को सुख और एक को दुःख होने से सब को दुःख नहीं होता। "एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ़ः" इत्यादि श्रुतियों से साफ मालूम होता है कि, आत्मा सारे शरीरों में एक ही है। इच्छा, संकल्प, संशय, लज्जा और भय आदि मन से सम्बन्ध रखते हैं। जो ऐसा समझते हैं कि, आत्मा को सुख होता है, आत्मा को दुःख होता है तथा शरीर-शरीर में अलग-अलग आत्मा हैं, वे सब भूल करते हैं; वे नादान और अज्ञानी हैं।

एक बात और है.—आत्मा नित्य और आदि-अन्त-रहित है, उस का विनाश कभी नहीं होता, इसलिए आने वाले और

जाने वाले, पैदा होने वाले और नाश होने वाले सुख-दुःखों का सम्बन्ध आत्मा से नहीं हो सकता। दो समान पदार्थों का सम्बन्ध होता है, यही नियम है। अन्तःकरण और सुख-दुःख आदि दोनों ही उत्पत्ति और विनाश में समान हैं; अतः अन्तःकरण को ही दुःख-सुख मालूम होते हैं। निर्गुण, निराकार, नित्य और विकार-रहित आत्मा को अनित्य (सदा न रहने वाले) सुख-दुःख नहीं घेर सकते। सुख-दुःख अनित्य हैं और अन्तःकरण भी अनित्य है। अनित्य का अनित्य के साथ ही मेल हो सकता है; नित्य और अनित्य का संयोग कभी हो नहीं सकता। अब साफ तौर से समझ में आ जायगा कि, सुख-दुःख का सम्बन्ध अन्तःकरण से है, आत्मा से उन का कुछ भी सरोकार नहीं। आत्मा को कभी कोई दुःख नहीं होता। अज्ञान से आत्मा का बन्धन मालूम होता है। अभिमान के कारण या विषयों और इन्द्रियों के सम्बन्ध से सुख-दुःख आदि पैदा होते हैं और वह अन्तःकरण को मालूम होते हैं; आत्मा का उन से कोई सरोकार नहीं। बस, यही वजह है कि, सब शरीरों में एक आत्मा होने पर भी, अन्तःकरणों के अलग-अलग होने से, एक को सुख होने से दूसरे को सुख और एक को दुःख होने से दूसरे को दुःख नहीं होता।

(१६) प्र०—मनुष्य बन्धन-मुक्त कैसे हो सकता है ?

उ०—जिस तरह मरु-भूमि में भ्रम से जल दीख पड़ता है, पर वास्तव में वहाँ जल का नाम भी नहीं—मरुभूमि ही है; उसी

तरह यह जगत् जैसा दीखता है, वैसा नहीं है; भ्रम से वैसा दीखता है। असल में मिथ्या प्रपंच है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, यह मेरा घर है—यह सब वासना के खेल हैं; यानी वासना से ही संसार दीखता है। असल में, न कोई किसी का पुत्र है और न पिता, न पुत्री। वासना के कारण ही यह जीव बन्धन में बँधता है। वासना के कारण ही यह नाना प्रकार के कष्ट भोगता है। वासना के त्याग से ही परमानन्द की प्राप्ति होती है और जीव ज्ञानी हो जाता है। हृदय में कामनाओं का होना ही "संसार" है और कामनाओं का सब तरह से नाश हो जाना ही "मोक्ष" है। जो बन्धन से छूटना चाहें, वे वासना या कामना त्यागें।

(१७) प्र०—क्या पुत्र-पौत्रों के होने से गति हो जाती है?

उ०—नहीं; यह अज्ञानियों का भ्रम है। पुत्र तो कुत्ते बिल्ली और सूअरों के भी होते हैं, क्या उन की गति हो जाती है? हरगिज़ नहीं। पुत्र से न तो किसी की गति हुई और न होगी। गति अपने पुरुषार्थ से होती है। अगर पुत्रों से गति होती, तो पहले के मोक्ष चाहने वाले अपने पुत्रों को क्यों त्याग जाते? जो पुत्र से गति होना मानते हैं, वे मोहान्ध हैं।

(१८) प्र०—क्या तीर्थाटन से भी मुक्ति नहीं हो सकती?

उ०—जिन पुरुषों के मन और वाणी आदि शुद्ध हैं, उन के पद-पद में तीर्थ हैं; किन्तु जिन के मन मलिन हैं, उन के लिये

गङ्गा भी कीकट देश के समान है, यह बात "देवी भागवत" में कही है।

"कपिल गीता" में कहा है—यह तीर्थ है, वह तीर्थ है, ऐसा समझ कर अज्ञानी मारे-मारे फिरते हैं, क्योंकि उन्हें आत्मा-रूपी तीर्थ का हाल मालूम नहीं।

"गीता" में कहा है—जिस की आत्मा में प्रीति है, जो आत्मानन्द से तृप्त है या जो आत्मा से सन्तुष्ट है, उसे कुछ भी नहीं करना है; यानी उस के लिये तीर्थों में भटकने या और काम करने की ज़रूरत नहीं।

जिस तरह तालाब के निर्मल और ठहरे हुए जल में सूर्य का बिम्ब—अक्स—दीखता है; उसी तरह शुद्ध मन वाले को परमेश्वर दीखता है। जिस का मन स्थिर और शुद्ध है, उस के चरणों में तीर्थ हैं। किसी ने कहा है—

दिल बदस्त आर्वूद कि हज्जे अकबर अस्त।
अज़ हज़ारों क़ाबा यक दिल बेहतर अस्त॥

(१६) प्र०—महात्माओं ने पुत्रों को दुःखदायी और शत्रु क्यों कहा है ?

उ०—पुत्र सचमुच ही शत्रु होते हैं। पुत्र इस जन्म ही में माता-पिता को दुःख से नहीं छुड़ा सकते, तब मरने पर क्या सुखी करेंगे ? पुत्र तो केवल धन के साथी हैं। वे पूर्व जन्म के लेनदार हैं। अपना ऋण चुकने को पुत्ररूप में जन्म लेते हैं। असल में, पुत्र का नाम ही दुःखों की खान है। जिन के पुत्र नहीं होता, वे

पराये पुत्रों को देख कर मन में कुढ़-कुढ़ कर मरते हैं। हाय! हमारे धन का कौन मालिक होगा ? ग़रीबों को पुत्र न होने से इतना दुःख नहीं होता, जितना धनियों को होता है। अगर किसीके पुत्र होकर मर जाता है, तो वह जीते जी ही मर जाता है। अगर पुत्र की शादी हो जाती है और फिर वह मर जाता है, तो माता-पिता के जलन की सीमा नहीं रहती; पुत्र-बधू को देख-देख कर रात-दिन रोते-कलपते हैं। अगर पुत्र कुपुत्र निकल जाता है, तब तो माता-पिता को पद-पद पर जलना और कुढ़ना पड़ता है। उन को पुत्र न होने वालों से भी अधिक सन्ताप होता है। अगर पुत्र सुपुत्र होता है, तो उस के जीने की चिन्ता रहती है, फिर उस के शादी-विवाह की फ़िक्र रहती है और औलाद हो जाने पर उस की औलाद की चिन्ता रहती है। सारांश यह, पुत्रवानों को सदा चिन्ताग्नि में जलना पड़ता है और शेष में पुत्र से कोई लाभ भी नहीं। मरने पर पुत्र धन का मालिक हो जाता है और पिता का नाम भी नहीं लेता। अगर कोई श्राद्ध वगैरः करता है, तो वह अपने नाम और लोक-लाज को करता है; पिता की आत्मा की शान्ति के लिये नहीं करता। इसी से तत्त्वज्ञानी लोग पुत्र की इच्छा नहीं रखते और पुत्र को ऐसा शत्रु कहते हैं, जो ऊपर से मित्र मालूम होता है; पर वास्तव में पक्का शत्रु होता है। अनेक पुत्र दरिद्री पिता को मारते-पीटते हैं। उसे दहलीज़ में टूटीसी खाट पर पटक कर बासी-कूसी खाना देते और

अनेक दुर्गति करते हैं। आश्चर्य है, फिर भी मोहान्ध अज्ञानी पुत्र-ही-पुत्र चिल्लाया करते हैं।

(२०) प्र०—ज्ञान, ध्यान, स्नान और शौच किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा को सब प्राणियों में एक रूप से देखना ही "ज्ञान" है। मन का विषयों से रहित हो जाना ही "ध्यान" है। मन के मैलों को दूर करना ही 'स्नान' है और इन्द्रियों के निग्रह करने को ही "शौच" कहते हैं।

(२१) प्र०—संसार-बन्धन से किस तरह छुटकारा मिल सकता है ?

उ०—विषयों में लगे हुए चित्त को, विषयों से हटा कर, ब्रह्म में लगा देने से संसार-बन्धन से छुटकारा हो सकता है।

(२२) प्र०—आत्मा के साक्षात्कार में बाधक कौन है ? परमात्मा का स्पष्ट दर्शन कब होता है ?

उ०—आँख, कान, नाक प्रभृति इन्द्रियाँ और रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श आदि विषय अनर्थों की जड़ हैं। इन्द्रियाँ सदा विषयों की ओर पुरुष को ले जाती हैं और विषय, विष की तरह, घातक हैं। विषयासक्तों को आत्मा या परमात्मा का दर्शन नहीं होता।

विषय और इन्द्रियाँ पैदा होने वाले और नाश होने वाले हैं; किन्तु आत्मा अजन्मा और अविनाशी है; अतः उस का और इनका मेल नहीं, क्योंकि मेल समान-समान का होता है;

नाशमान और अविनाशी का मेल हो नहीं सकता। आत्मा इन से परे और सब का साक्षी है। उस आत्मा की प्राप्ति सत्य से होती है। सत्य से ही मन का निरोध होता है। मन का निरोध होते ही आत्मा साफ़ दीखता है; यानी शुद्ध साफ़ और निर्मल मन में ही आत्मा दीखता है, जिस तरह साफ़ दर्पण में चेहरा दीखता है। अशुद्ध मन में आत्मा नहीं दीखता। अशुद्ध मन बन्धन का कारण और शुद्ध मन मोक्ष का कारण है। मन के शुद्ध हो जाने से बुरे-भले कर्मों का नाश हो जाता है। कर्मों के नाश हो जाने से पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है। मतलब यह है कि, आत्मा या परमात्मा के दर्शन चाहने वालों को, इन्द्रियों को विषयों से हटाकर, मन को शुद्ध करना ज़रूरी है। जिस तरह लकड़ियों के न रहने से अग्नि अपने कारण में लय हो जाती है; यानी बुझ जाती है; उसी तरह वृत्तियों से रहित हुआ मनभी अपने कारण में लय हो जाता है; यानी शान्त हो जाता है। जब मन शान्त हो जाता है, उस की चञ्चलता नाश हो जाती है, वह स्थिर हो जाता है; तब आत्मा का दर्शन होने लगता है। जिस तरह चञ्चल हवा से हिलते हुए मैले गदले जल में सूरज का बिम्ब या अक्स नहीं दीखता; उसी तरह अशुद्ध, मैले और चञ्चल चित्त में आत्मा नहीं दीखता। अतः मन की चञ्चलता और उस की गन्दगी को दूर करना ज़रूरी है।

(२३) प्र०—परमेश्वर कहाँ है? उस का ध्यान कैसे करना चाहिए?

उ०—यह जो हमारा शरीर है, यही उस देवता—परमेश्वर—के रहने का मन्दिर है। इस में जो चेतन जीव है, वही केवल "शिव" है। मनुष्य को हृदय-कमल में परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। चञ्चल या चलायमान चित्त से वह नहीं दीखता।

(२४) प्रश्न—सारे दुःखों का मूल कारण क्या है ?

उ०—तृष्णा—इच्छा। जिस के मन में तृष्णा है, उस का मन सदा इधर-उधर भटकता रहता है, वह कभी शान्त नहीं होता। मन के शान्त हुए विना प्राणी को सुख नहीं; अतः तृष्णा को त्यागना चाहिए; किसी भी वस्तु की इच्छा न रखनी चाहिए। यहाँ तक कि, स्वर्ग और मोक्ष की भी इच्छा न रखनी चाहिए।

(२५) प्रश्न—अगर यह जगत् जड़ है, तो यह चेष्टा कैसे करता है ?

उ०—बेशक यह जगत् जड़, नाशमान् और दुःख-रूप है; किन्तु ब्रह्म चेतन, नित्य और सुख-रूप है। जिस तरह चुम्बक-पत्थर की विलक्षण शक्ति से लोहा चेष्टा करने लगता है; उसी तरह ब्रह्म-चेतन की विलक्षण शक्ति से यह जगत् भी चेष्टा करता है।

(२६) प्र०—ईश्वर और जीव की एकता प्रमाणित करो।

उ०—ईश्वर और जीव में भेद नहीं है। जैसे ब्रह्म निरवयव और निराकार है; वैसे ही जीव भी निरवयव और निराकार है। एक ही चेतन अन्तःकरण-रूपी उपाधियों के अन्तर्गत तो

"जीव" कहलाता है और वही चेतन अन्तःकरण रूपी उपाधियों से रहित "ईश्वर" कहलाता है। ब्रह्म-चेतन अकर्त्ता और अभोक्ता है; जीव-चेतन भी अकर्त्ता और अभोक्ता है। ब्रह्म-चेतन नित्य और शुद्ध है; जीव-चेतन भी नित्य और शुद्ध है। जीव और ईश्वर को एक समझने वाला मोक्ष लाभ करता है। जिस का ऐसा निश्चय है, वही आत्मज्ञानी है। जिसे आत्मज्ञान नहीं, वह मूर्ख और अज्ञानी है।

(२७) प्र०—आत्मज्ञान की प्राप्ति का मुख्य साधन क्या है ?

उ०—वैराग्य। बिना वैराग्य के आत्मज्ञान हो ही नहीं सकता।

(२८) प्र०—वैराग्य किसे कहते हैं ?

उ०—संसार से राग या प्रीति न रखना ही वैराग्य है।

(२९) प्र०—क्या स्त्री-पुत्र, धन-दौलत और मकान-हाट प्रभृति किसी में भी ममता न रखनी चाहिये ?

उ०—हाँ, नहीं रखनी चाहिये; इस जगत में जितने जीव हैं, वे सभी मुसाफिर हैं और मकान-महल प्रभृति सराय हैं। कोई भी मुसाफिर दूसरे मुसाफिर से नाता नहीं जोड़ता, प्रीति नहीं करता; क्योंकि घड़ी दो घड़ी या चार दिन का साथ है। इतने से समय के लिए मोह-ममता करना मूर्ख का काम है। जब स्त्री-पुत्र आदि मुसाफिर हैं और मकान-महल प्रभृति सराय हैं, तब इन में ममता रखना अनुचित नहीं तो क्या उचित है ? मकान-महल प्रभृति में ममता रखना तो भूल है ही; ममता तो

शरीर में भी न रखनी चाहिए; क्योंकि यह शरीर भी तो सराय ही है। इस शरीर-रूपी सराय में जीव चन्द रोज़ को आ बसा है, जब इस की पुकार हो जायगी, इस के लेने के लिये मौत-रूपी रेल गाड़ी आ जायगी, तब यह इस शरीर-रूपी सराय को छोड़-कर, क्षण भर में ही रेल में बैठ जायगा; यानी शरीर को त्याग कर चल देगा।

(३०) प्र०—शूरवीर कौन है ?

उ०—जो संसारी शत्रुओं को जीत सकता है, वह शूरवीर नहीं हो सकता; किन्तु जो अपने ही शरीर, मन और इन्द्रियों को जीत लेता है, वही शूरवीर है। व्यासदेव ने कहा है:—"जो रण में जय लाभ करता है वह शूरवीर नहीं कहलाता, शूरवीर वही है जो इन्द्रियों पर जय-लाभ करता है। जो शास्त्रों को पढ़ सकता है, वह पण्डित नहीं कहलाता; पण्डित वही है, जो धर्म का आचरण करता है। चटाचट खूब बोलता है, वह वक्ता नहीं; वक्ता वही है, जो दूसरों के हितकी कहता है। जो धन दान करता है, वह दाता नहीं; दाता वही है, जो दूसरों का सम्मान करता है।

(३१) प्रश्न—संसार में सदा स्थिर न रहने वाले पदार्थ क्या हैं ?

उ०—जवानी, जीवन, मन, शरीर की छाया, धन और प्रभुता,—ये सदा नहीं रहते। जवानी थोड़े ही दिन रहती है—देखते-देखते झट चली जाती है और बुढ़ापा आ जाता है।

जिन्दगी भी सदा नहीं रहती। मनुष्य पानी के बुलबुले की तरह पैदा होता और चट ही बिलाय जाता है। धन और प्रभुता भी सदा नहीं रहते। जो आज राजा है, कल वह फ़क़ीर हो जाता और दरदर मारा-मारा फिरता है। अतः इन पर फूलना—अभिमान करना, अज्ञानियों का काम है।

(३२) प्र०—मनुष्य का सब से बड़ा कर्त्तव्य—फ़र्ज़—क्या है?

उ०—ईश्वर-भजन करना; क्योंकि वह स्वामी है। स्वामी ध्यान दे, चाहे न दे; पर सेवक को अपने कर्त्तव्य-पालन या फ़र्ज़ अदा करने में न चूकना चाहिए। जो उम्र विषय-भोगों में वृथा बीत गई सो बीत गई; पर जो बाक़ी रही है, उस का क्षण-क्षण परमात्मा के भजन में लगाना चाहिए, क्योंकि कौन जाने यह श्वास बाहर निकल कर भीतर न आवे।

किसी ने कहा है:—

अरे भज हरेर्नाम क्षेमधाम क्षणे—क्षणे।
वहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्त्तने॥

अरे जीव! हरि के नाम को क्षण-क्षण भज, हरि का नाम कल्याण का घर है। जो श्वास बाहर चला जाता है, उस के भीतर आने का कौन विश्वास? आवे और न आवे।

ऐसी ही बात 'कबीरदास' ने कही है:—

नव द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन।
रहने का आश्चर्य है, गये अचम्भा कौन?॥

मनुष्य-शरीर नौ दरवाज़ों का पींजरा है। इस में नौ दरवाज़े हैं,—दो आँखों में, दो नाक में, दो कानों में, एक मुँह में, एक गुदा में और एक गुप्त इन्द्रिय में। इस तरह नौ द्वार हैं। इसी नौ द्वारे के पींज़रे में पवन-रूपी पत्ती—जीव—रहता है। इतने द्वार होने पर भी, वह इस पींजरे में रहता है, यही आश्चर्य की बात है। इतने द्वारों से निकल जाने में क्या आश्चर्य? तात्पर्य यह कि, जीव न जाने कब इस शरीर को छोड़ भागे। जब तक जीव इस शरीर में है, तभी तक हरिभजन या मोक्ष-लाभ करने की तदबीरें की जा सकती हैं। जीव के इस शरीर से निकल भागने के बाद, यह मौक़ा हाथ से निकल जायगा। जीव इस शरीर को त्यागते ही कीड़े, मकोड़े, साँप, छछूँदर, बिल्ली, कुत्ते, गधे, घोड़े प्रभृति की योनि में जन्म ले लेगा। उन योनियों में ज्ञान-शक्ति नहीं होती; अतः उन शरीरों में जाकर मोक्ष-लाभ हो नहीं सकता। मनुष्य-शरीर से ही मोक्ष मिल सकती है, पर मनुष्य-शरीर बार-बार नहीं मिलता। ८४ लाख योनियाँ भुगत लेने पर मनुष्य-जन्म मिलता है; अतः इस सुअवसर को हाथ से गँवाना भारी अज्ञानता है। जो इस में चूकेगा, लाखों-करोड़ों वर्ष तक पछतावेगा; अतः जब तक जीवन है, मन को सब ओर से रोक कर, विषयों को विषवत् त्याग कर, हरि का भजन करो।

(३३) प्र०—वैराग्य पैदा होने और पापों से बचने का मूल कारण क्या है?

उ०—मृत्यु को याद रखना। मौत को याद रखने से पाप नहीं होते और वैराग्य उत्पन्न होता है। श्मशान-घाट पर जाने से ही मनुष्य के चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो उठता है, पर वह घर आकर सब भूल जाता है, फिर विषयों में लग जाता है। एक बादशाह ने पाप और अन्याय से बचने के लिए ही, अपने दरबार में, सामने ही, एक क़ब्र बनवा रक्खी थी, कि क़ब्र को देखते रहने से मुझ से अन्याय-कर्म न होंगे। मृत्यु अटल है। और सब टल जायँ, पर मृत्यु टल नहीं सकती, वह अवश्य आवेगी; चाहे आज आवे और चाहे कल। जिसने जन्म लिया है, उसे मरना ही होगा। जो मरने की बात भूल जाते हैं, जिन्हें यह याद नहीं रहता कि, हम दो दिन या दस दिन में मरेंगे, वही पाप-कर्म करते हैं और उन्हें ही संसार से विरक्ति नहीं होती। जिन को हर क्षण मौत दीखती है; उन का मन विषय-भोगों या स्त्री-पुत्र, धन-दौलत प्रभृति में नहीं लगता। संसार से मन के हटने का ही नाम "वैराग्य" है।

(३४) प्र०—कौन किसी का भी बुरा नहीं चाहता?

उ०—जो वैराग्यवान है, जिसे संसार की असलियत का पता है, जिसे अपने जीवन का क्षण-भर का भी भरोसा नहीं है, जो धन, यौवन, शरीर और भोगों को नाशमान् समझता है, जो सब के अन्दर एक चेतन-आत्मा को देखता है, वह भूल कर भी किसी का बुरा नहीं चाहता।

(३५) प्र०—दुःखों और सुखों का हेतु क्या है?

उ०—संसार के भोगों में राग ही दुःखों का और इन में वैराग्य ही सुखों का कारण है। दूसरे शब्दों में यों समझिये—जो संसार में ममता रखता है, वह नाना प्रकार के दुःख भोगता है और जो संसार में ममता नहीं रखता, संसार को त्याग देता है, वह परम सुख पाता है। वैराग्य के सिवा, संसार में और कहीं सुख है ही नहीं, यह निश्चय है।

(३६) प्र०—राग और वैराग्य का क्या कारण है ?

उ०—विषयों में सुख मालूम होना ही राग का कारण है और इन में दुःख मालूम होना ही वैराग्य का कारण है। जब मनुष्य धन और स्त्री-पुत्र आदि से सुखी होता है, तभी उसे इन सब में राग या प्रीति होती है; पर जब उसे इनसे दुःख होता है, तब उसे वैराग्य होता है। किसी को स्त्री ख़ूब प्यार करती है, उसे अच्छी तरह आलिङ्गन करती है, उस की सेवा में हरदम खड़ी रहती है, उस के सिवा और किसी पुरुष को नहीं चाहती, तब मनुष्य का मन स्त्री में और भी फँसता है,—वही राग है । पर यदि स्त्री पुरुष को प्यार नहीं करती, उस के घर में आते ही कलह करती है, कड़े शब्द कहती है, हर तरह तंग करती है, मीठी बातें नहीं बोलती, पर-पुरुष को चाहती है; तब उस का मन स्त्री से हट जाता है, वह उसे बुरी मालूम होती है, अतः उसे वैराग्य हो जाता है । महाराजा भर्तृहरि को जब तक यह मालूम था कि, पिंगला मुझे ख़ूब चाहती है, अष्ट पहर मेरा ही भजन करती है, तब तक उन का मन उसी में फँसा

रहा; लेकिन ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि, वह पर-पुरुषरता है; यह कुलटा है और अश्वपाल से प्रीति रखती है, उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। वे राजपाट, धन-दौलत सब को त्याग संन्यासी हो गये।

(३७) प्र०—क्या गृहस्थाश्रम में वैराग्य हो सकता है ?

उ०—सब की पैदायश ही गृहस्थाश्रम से है। गृहस्थी में सदा सुख ही रहे, ऐसा हो नहीं सकता। इस में एक-न-एक दुःख बना ही रहता है। कभी लड़का मरता है, कभी स्त्री मरती है, कभी धन नाश हो जाता है, कभी ऋण-भार सिर पर चढ़ता है, कभी शत्रु सताते हैं; अतः मनुष्य को ज़रा-बहुत वैराग्य होता ही रहता है; पर यह "मन्द वैराग्य" होता है। जब मनुष्य पर कष्ट आता है, उसे वैराग्य होता है; पर ज्योंही दुःख टल कर सुख की घड़ी आती है, उस का वैराग्य नहीं रहता। पर वैराग्य का मूल कारण है गृहस्थाश्रम ही। रामचन्द्रजी और वशिष्ठजी प्रभृति महापुरुषों को गृहस्थी में ही वैराग्य हुआ था। जनक प्रभृति को गृहस्थाश्रम में ही ज्ञान हुआ था। जनक महाराज गृहस्थी में रह कर भी सच्चे त्यागी थे और उन्हें लोग विदेह कहते थे। ज्ञान का कारण वैराग्य है। जिसे गृहस्थाश्रम में वैराग्य है, वह ज्ञानी है; पर जिसे संन्यासाश्रम में भी राग है, वह अज्ञानी है। ख़ूब याद रक्खो, बिना वैराग्य ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं होती। जो मनुष्य गृहस्थी में रह कर भी, उस में कमल की तरह रहता है, उस की

मुक्ति हो जाती है। यद्यपि कमल जल में रहता है, पर पानी उस पर नहीं ठहरता; इसी तरह जो गृहस्थी में रहता है, गृहस्थी के सब काम विषय-भोगादि करता है; पर उन में ममता या आसक्ति नहीं रखता, वह "जीवन्मुक्त" है। राजा जनक गृहस्थी में रह कर क्या नहीं करते थे? पर उन की आसक्ति या ममता किसी भी पदार्थ में नहीं थी।

(३८) प्र०—संसार में स्त्री कौन है और पुरुष कौन है ?

उ०—जो पुरुष अपने हृदय में रहने वाले पुरुष-रूप स्वप्रकाश आनन्द-रूप आत्मा को नहीं जानता, वह स्त्री है; क्योंकि जैसे स्त्री का पति उस से अलग होता है; उसी तरह उस आत्मा को न जानने वाले ने भी अपने से अलग पति मान रक्खा है। मतलब यह, जिस में वैराग्य और आत्म-विचार नहीं, वह स्त्री है।

(३९) प्र०—ईश्वर के भजन-स्मरण में वैराग्य की क्या ज़रूरत है।

उ०—बिना वैराग्य के पुरुष का मन ईश्वर-भजन में नहीं लगता, इसलिये वैराग्य की ज़रूरत है। मन एक है। जब तक वह विषय-भोगों में लगा रहता है, तब तक वह ईश्वर में नहीं लग सकता; लेकिन जब वह विषय-भोगों से हट जाता है, तब वह ईश्वर में लग जाता है। जब मन में विषय-भोगों की चाह बनी रहती है, जब वह विषय-भोगों की लालसा से भरा रहता है, तब उस में ईश्वर के लिये जगह नहीं रहती; लेकिन जब वह विषय-भोगों से ख़ाली हो जाता है; यानी शुद्ध और साफ़ हो

जाता है; तब उस निर्मल और खाली मन में परमेश्वर बैठ सकता है। अतः परमेश्वर के दर्शन चाहने वाले को पहले वैराग्य-द्वारा अपना मन शुद्ध करना चाहिए।

(४०) प्र०—संसार में सर्प से भी भयङ्कर कौन है ?

उ०—स्त्री सर्प से भी भयङ्कर है। सर्प के विष से मनुष्य एक बार ही मरता है; पर स्त्री के विष से बार-बार मरता है; यानी वासना बनी रहने से, वह बार-बार जन्म लेता और मरता है।

(४१) प्र०—स्त्री-रूपी सर्प के विष से बचने का क्या उपाय है ?

उ०—स्त्री की याद न करना और उसे कभी न देखना। उस की छाया से भी दूर रहना।

(४२) प्र०—स्त्री-सङ्ग से क्या हानि है ?

उ०—जिस में जिस की वासना रहती है, उसे वह स्वप्न में भी दीखता है; इसी तरह मरण-काल में जब पुरुष की वासना स्त्री-में रहती है; तब उसको प्राप्त करने के लिये वह फिर शरीर धारण करता है। मरते समय विशेष कर स्त्री में मन रहता ही है, इसी से ज्ञानी लोग पहले ही स्त्री से अलग हो जाते हैं; जिससे मरण-काल में उस में वासना न रहे। इसके सिवा, कामी पुरुष और स्त्रियों के सङ्ग से पुरुष कामी हो जाता है और दूसरा जन्म लेने पर क्रोधी और मोही होता है। काम, क्रोध और मोह प्रभृति से मन अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध मन में

ब्रह्मज्ञान नहीं ठहरता। जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान-शून्य होता है; वह कीड़े मकोड़ों की योनि पाता है। इन शरीरों को पाकर फिर वह नरक से नहीं निकल सकता; इसलिये स्त्रियों का सङ्ग नहीं करना चाहिये।

(४३) प्र०—सच्चा ज्ञानी कैसा होता है ?

उ०—जिस का किसी पदार्थ में राग न हो, यहाँ तक कि स्त्री-पुत्र प्रभृति में भी राग न हो। अगर संन्यासी हो तो मठ, चेलों और धन प्रभृति में राग न हो, शत्रु-मित्र आदि सब जीवों को एक नज़र से देखे—किसी को अपना और किसी को पराया न समझे; किसी को भी जिस से भय न हो और किसी से भी जिसे भय न हो; जो आत्मा को अमर और अविनाशी तथा शरीर से अलग समझता हो; जो सब प्राणियों में एक आत्मा को देखता हो; जो ईश्वर और जीव में भेद न समझता हो; जो नष्ट हुए, मरे और बीती बात का शोक न करता हो, यानी सर्व्वस्व नाश हो जाने और पुत्र तथा स्त्री तक के मर जाने पर भी, नाम मात्र को भी रञ्ज न करता हो, वही सच्चा ज्ञानी है। किन्तु जो ज्ञानी की सी बातें तो बघारता हो, पर वैराग्य से शून्य हो, वह बन्ध्यज्ञानी है।

(४४) प्र०—चित्त की शुद्धि का साधन क्या है ?

उ०—शुद्ध अन्न।

(४५) प्र०—शुद्ध अन्न कैसा होता है ?

उ०—जो सत्य धर्म से कमाया जाता है, वही शुद्ध द्रव्य होता है। उस शुद्ध द्रव्य से जो खाने-पीने के पदार्थ खरीदे जाते हैं, वही शुद्ध कहे जाते हैं। वैसे शुद्ध पदार्थों के खाने से मन शुद्ध हो जाता है; क्योंकि अन्न के द्वारा सत्य-धर्म का असर चित्त पर भी होता है। शुद्ध चित्त में ही वैराग्य और विवेक आदि पैदा होते हैं। असल में सत्य बोलना सर्वोपरि है। सत्य से योंही चित्त शुद्ध हो जाता है और इस से अन्न भी शुद्ध होता है; इसलिए हमेशा सत्य के आश्रय रहो; सत्य को न त्यागो। सत्य के समान जगत् में कोई दूसरा धर्म या भक्ति-उपासना नहीं है।

(४६) प्र०—चोर और दुष्टों को भी साधु बनाने वाला क्या है ?

उ०—"सतसङ्ग।" सतसङ्ग की महिमा शेष-शारदा भी नहीं गा सकते। कमल पर स्थित जल की बँद भी मोती-जैसी लगती है। लोहा काठ के सङ्ग में रहने से जल में नहीं डूबता। नदी-नालों का जल भी गङ्गाजल के संग मिल कर गङ्गाजल हो जाता है। नागर पान के सङ्ग ढाक का पत्ता भी राजा तक पहुँच जाता है। चींटी फूल में बैठकर महादेवजी के सिर पर चढ़ जाती है। चन्दन के साथ नीम भी चन्दन हो जाता है। पारस-पत्थर को छू जाने से लोहा कुन्दन हो जाता है। बाँस मिश्री के साथ मिलकर उसी के साथ तुलता है। सत्संग से ही घोर बन में जाकर, डाकूपना करने वाले भील वाल्मीकि महर्षि होगये; अतः सत्संग को चित्त की शुद्धि का मुख्य उपाय

समझना चाहिए और कुसङ्ग से बचना चाहिए । क्योंकि उस से चित्त अशुद्ध हो जाता है ।

(४७) प्र०—क्या चित्त की शुद्धि का और भी कोई उपाय है ?

उ०—हाँ, परोपकार या दूसरों पर दया करने से भी चित्त शुद्ध हो जाता है । दयालु-चित्त मनुष्य ही दूसरों का भला करते हैं । असल में चित्त-शुद्धि का "दया" मुख्य साधन है । जो मनुष्य-शरीर पाकर उपकार नहीं करता, वह पशुओं से भी गया-बीता है । ईश्वर ने मनुष्य-शरीर परोपकार के लिए ही दिया है । शास्त्रों में लिखा है—"धन और प्राणों से परोपकार करना चाहिए; क्योंकि परोपकार के बराबर सौ यज्ञों का भी पुण्य नहीं है । जो परोपकारहीन है, उस का जीना वृथा है । जानवरों का चमड़ा भी पराये काम आता है । अपने लिए कौन नहीं जीता ? जो पराये लिए जीता है, वही जीता है । वृक्ष अपने लिए फल नहीं देते, नदियाँ अपने लिए नहीं बहतीं, शेषजी ने पृथ्वी परोपकार के लिए ही अपने सिर पर धर रक्खी है । भगवान् कृष्ण पराये काम के लिए ही सारथी बने थे । सन्त लोग परोपकार के लिए ही शरीर धारण करते हैं; अतः मनुष्य का सब से बड़ा कर्त्तव्य परोपकार या दया करना है । इस से चित्त शुद्ध हो जाता है और शुद्ध चित्त में परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं ।

(४८) प्रश्न—ज्ञानवान की नज़र में सब में एक ही आत्मा है, तो फिर ज्ञानी सब के साथ खान-पानादि क्यों नहीं करता ?

उ०—ज्ञानी दो तरह के होते हैं।

(४९) (क) जीवन्मुक्त, जिन्हें अपनी देह की भी सुध नहीं होती। वे राजा जनक की तरह विदेह और अजगर-वृत्ति वाले होते हैं। वे न किसी से भिक्षा माँगते और न कहीं जाते हैं। अगर कोई उन्हें खिला देता है, तो खा लेते हैं; कोई जल पिला देता है, तो जल पी लेते हैं। कोई धूप में बिठा देता है, तो वहीं बैठे रहते हैं और कोई वर्षा में पटक देता है, तो वहीं पड़े रहते हैं। उन्हें धूप, छाया और वर्षा सब समान हैं। वह आत्मानन्द में डूबे रहते हैं। उन को जगत् नहीं दीखता। उन्हें सर्वत्र आत्मा-ही-आत्मा दीखता है। उन की नज़र में न कोई ब्राह्मण है और न भंगी-चमार; उन को तो आत्मा-ही-आत्मा दीखता है; अतः उन के मुँह में ब्राह्मण अन्न डाल दे तो वैसा ही, भंगी अन्न डाल दे तो वैसा ही; उन को दोष नहीं लगता। दोष उन्हें लगता है, जिन्हें वर्णाश्रम-धर्म का ज्ञान होता है। वह तो सब तरह निर्दोष हैं। वेदादिक शास्त्रों की आज्ञा भी उन पर नहीं चलती, क्योंकि वह तो ब्रह्मरूप हैं और महान् सुख में डूब रहे हैं। ऐसे महापुरुष जीवन्मुक्त हैं।

(ख) दूसरे प्रकार के ज्ञानियों की गिन्ती आचार्य-कोटि में है। वे भी सब प्राणियों में एक ही आत्मा देखते हैं, इसी से वे किसी से राग-द्वेष नहीं रखते; परन्तु वे समवर्त्ती नहीं होते।

वे भङ्गी, चमार और ब्राह्मण सब का झूठा नहीं खाते, क्योंकि उन्हें वर्णाश्रम-धर्म का ज्ञान है। सब तरह के व्यवहार और वर्णाश्रम-धर्म को समझने वाला यदि सब के साथ खावे-पीवेगा, तो उसे दोष लगेगा। जो पागलों की तरह होता है, जिसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए; क्या विधि है और क्या निषेध है; इन बातों का ज्ञान नहीं होता, उसे दोष नहीं लगता। सब किसी से समान बर्त्ताव करने या हर किसी के साथ खाने-पीने से कोई ज्ञानी नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता, तो भंगी-चमार, जो सब का झूठा खाते हैं, ज्ञानी कहलाते। ज्ञानी वही है, जिस में राग-द्वेष आदि नहीं हैं तथा जो आत्मानन्द से आनन्दित है; पर जिस में राग-द्वेष हैं, जो विषय-भोगों में आनन्द मानता है, वह ज्ञानी नहीं—अज्ञानी है।

पाप-पुण्य उसे लगते हैं, जिसे ज्ञान होता है। बालक को धर्म-अधर्म और पुण्य-पाप का ज्ञान नहीं होता, इसी से उसे पाप-पुण्य नहीं लगते। बालक को आचार का ज्ञान नहीं होता। वह ऊपर मुँह से रोटी खाता जाता है और नीचे से मल-मूत्र त्याग करता जाता है। लोगों को उस की इस क्रिया पर ग्लानि नहीं होती। इसी तरह जीवन्मुक्त को पाप-पुण्य नहीं लगते, वह चाहे जो करे, क्योंकि उसे ज्ञान ही नहीं। उस के भले-बुरे कामों को देख कर कोई उसे भला-बुरा भी नहीं कहता। किन्तु आचार्य्य कोटि के ज्ञानी यदि माँस मदिरा सेवन करें, हर

किसी का झूठा खाँय, पर स्त्री-गमन करें, तो उन्हें पाप ज़रूर लगेगा; क्योंकि उन्हें सब तरह का ज्ञान होता है और लोग भी उन से घृणा करते हैं। आचार्य्य-कोटि में वही ज्ञानी है, जो उन कामों को नहीं करता, जिन की शास्त्रों में मनाही है और उन कामों को करता है, जिन की शास्त्रों में आज्ञा है। किन्तु जिन कामों को करता है, उन को निष्काम होकर अनासक्तता से, श्रेष्ठ आचार के लिए करता है अथवा निषिद्ध और विहित दोनों कर्म नहीं करता; यानी जिन की शास्त्रों में आज्ञा है और जिन की मनाही है, दोनों ही प्रकार के काम नहीं करता; केवल आत्म-चिन्तन ही करता है, वह आचार्य्य-कोटि में है।

(५०) प्र०—मुक्त किसे कहते हैं ?

उ०—जिस पुरुष का मोक्ष में अभिमान है, देहादिकों में ममत्व है, वह न योगी है और न ज्ञानी; पर जो न किसी की निन्दा करता है और न स्तुति; न किसी को देता है और न किसी से लेता है; जो सर्वत्र राग-रहित है; यानी जिसे किसी भी पदार्थ—स्त्री-पुत्र धन-जायदाद प्रभृति से राग नहीं—किसी में भी ममता नहीं—वही मुक्त है। जिस का मन अपने तईं चाहने वाली स्त्री को सामने देख कर अथवा मौत को सामने देख कर भी व्याकुल नहीं होता, वही मुक्त है।

(५१) प्र०—क्या आत्मा उच्च और नीच नहीं होता ?

उ०—आत्मा में अपवित्रता और नीचता नहीं। एक ही आत्मा ऊँच-नीच सब शरीरों में है। शरीरों के गुण-दोषों से

वह गुण-दोष वाला नहीं होता। एक ही आकाश मन्दिर में भी है, पाखाने में भी है, भंगी-चमार के घरों में भा है, उत्तमोत्तम मूर्त्तियों में भी है, मल-मूत्र की बाल्टियों में भी है, परन्तु अति सूक्ष्म होने के कारण, उस का उपाधियों से कोई सम्बन्ध नहीं; वही बुरी-भली उपाधियों के कारण बुरा-भला भी नहीं होता। यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है। आत्मा तो आकाश से भी सूक्ष्म है; अतः वह असंग और निर्लेप है।

(५२) प्र०—संसार में कितने प्रकार के मनुष्य हैं और उन में से कौन से परमात्मा के दर्शन करते हैं ?

उ०—संसार में तीन तरह के मनुष्य हैं:—(१) कृपण और आलसी, (२) विषय-भोगी, (३) उदार और उद्योगी। इन में से पहले प्रकार के कञ्जूस और आलसी तो कभी परमात्मा तक पहुँच ही नहीं सकते; क्योंकि वह हाथों से दान नहीं करते और पैरों से महात्माओं तक नहीं पहुँचते। दूसरे प्रकार के विषय-भोगी अन्धे हैं। उन्हें न परमार्थ दीखता है और न परमेश्वर; इसलिए वह परमेश्वर का भजन-पूजन नहीं कर सकते। तीसरे प्रकार के लोग उद्योगी और दाता हैं। वे हाथों से दान करते और पैरों से चल कर महात्माओं की सेवा में पहुँच जाते हैं; अतः सत्संग के कारण उन्हें ज्ञान हो जाता है। उन का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है; इसलिए वह परमेश्वर के दर्शन पाते हैं।

जो पुरुष रात-दिन स्त्री-पुत्रों की सेवा में लगे रहते हैं, रात-दिन उन के ही सुख-चैन की फिक्र रखते हैं, वह कभी सत्सङ्ग नहीं करते; इसलिए वह स्त्री-पुत्रों की फिक्र करते-करते ही मर जाते हैं और फिर जन्म लेते और मरते हैं। उन की मोक्ष नहीं होती।

जो पुरुष वेद-शास्त्रों में लिखे हुए कर्म करते रहते हैं, वह कभी आत्मा का ख़याल भी नहीं करते; वह कर्म करते-करते ही मर जाते हैं। उनकी भी मोक्ष नहीं होती।

जो पुरुष वेद-शास्त्रों की परवा न करके, आत्म-विचार छोड़ कर और किसी ओर ध्यान ही नहीं देते, उनको परमानन्द या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(५३) प्र०—सब वेद-शास्त्रों का सार क्या है ?

उ०—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मरूप है और दूसरा कोई नहीं—यही सब शास्त्रों का सार तत्त्व है।

(५४) प्र०—प्राणी बन्धन से कब छूटता है ?

उ०—जब मनुष्य इस बात को समझ लेता है कि, आत्मा असङ्ग, अकर्त्ता, अभोक्ता और चैतन्य-स्वरूप है; तभी वह बन्धन से छूट जाता है; अर्थात् अपने असली स्वरूप का ज्ञान हो जाना ही मुक्ति का हेतु है।

(५५) प्र०—जीव और ईश्वर का मेल कब होता है ?

उ०—जब अविद्या और माया त्याग दी जाती हैं; तब ईश्वर और जीव का मेल हो जाता है। इन दोनों के मेल में "अविद्या और माया" बाधक हैं।

(५६) प्र०—परमेश्वर कहाँ रहता और वह किस तरह मिलता है ?

उ०—परमेश्वर इसी काया में रहता है। जब तक जीव उसे बाहर खोजता फिरता है, वह नहीं मिलता; लेकिन जब वह उसे इस काया में ही खोजता है, तब वह मिल जाता है और प्रसन्न होकर, पिता की तरह पुत्र को, मोक्ष-रूपी महान् फल देता है। असल में, ईश्वर इसी काया में रहता है; पर मूर्ख लोग उसे काशी, द्वारका, रामेश्वर आदि में खोजते फिरते हैं। ऐसे अज्ञानी भटकते-भटकते मर जाते हैं, पर ईश्वर नहीं मिलता। वे लोग—"छोरा बग़ल में ढिंढोरा शहर में" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं।

(५७) प्र०—किनका अधिकार मोक्ष में है और किनका कर्मों में ?

उ०—जो पुरुष कर्म करते हुए भी, अपने तईं कर्मों का करने वाला और उनके फल भोगने वाला नहीं मानते, अपने तईं असंग और सच्चिदानन्द, स्वरूप समझते हैं, वे ही ज्ञान और मोक्ष के अधिकारी हैं; किन्तु जो समझते हैं कि, हम इस काम को करते हैं और हम ही इसका फल भोगेंगे, उन का कर्मों में अधिकार है, उनकी मोक्ष हो नहीं सकती; इसीलिये भगवान् ने कहा है—कर्म करो, पर निष्काम हो कर करो; यानी फल-प्राप्ति की इच्छा से कर्म मत करो। यदि कोई पुरुष इस विचार से ईश्वर-भजनकरेगा कि, मुझे इसके फल-स्वरूप

राज्य-सुख और स्त्री पुत्रादि मिलें, तो उसे मरकर जन्म लेना होगा और वह इच्छित फल उसे भोगने होंगे। लेकिन जो, बिना किसी कामना को मन में रक्खे, ईश्वर-भजन करेगा, उसे फल भोगने को जन्म न लेना होगा; यानी उसकी मोक्ष हो जायगी।

(५८) प्र०—जीव डरता क्यों है ?

उ०—जीव अज्ञान से डरता है। वास्तव में उसे किसी का भय नहीं। जब मन किसी दूसरे की कल्पना करता है, तभी उसे भय लगता है। असल में, एक अपने आत्मा के सिवा दूसरा कोई है ही नहीं, फिर डर और भय किसका ? असल में सब आफ़तों की जड़ यह मन है। वास्तव में, न बन्धन है न मोक्ष। बन्धन और मोक्ष मन के संकल्प मात्र हैं। मन के शान्त होने पर वे शान्त हो जाते हैं। जिस तरह बच्चा अपनी ही परछाहीं से डरता है; उसी तरह यह जीव अपने संकल्पों से डरता है।

(५९) प्र०—क्या आत्मा सचमुच अजर और अमर है ?

उ०—बेशक; आत्मा अनादि, अजर और अमर है। यह जीव, अज्ञान के कारण, अपने अजर अमर आत्मा में जन्म और मरण आदि मानता है। जब इसे किसी सत्पुरुष का उपदेश मिलता है, तब इसे होश होता है। उस समय यह अपने तईं अजर और अमर समझ कर, जन्म-मरण से रहित हो जाता है। जिस तरह एक बनिये को, गेरु-घुले लोटे के जल से आबदस्त लेने

पर, गुदा-द्वारा ख़ून गिरने का भ्रम हो गया था; उसी तरह जीव को अपने स्वरूप में भ्रम हो रहा है।

(६०) प्र०—इस जीव को सुख कब मिलता है ?

उ०—जब यह जीव अहङ्कार और ममता को त्याग देता है। जब तक मनुष्य के मन में "मैं और तू" का झगड़ा रहता है, जब तक उसकी ममता स्त्री-पुत्र और घर-मकान आदि में रहती है, तब तक उसे सुख नहीं होता।

(६१) प्र०—यह संसार असार और महा मलिन है; फिर लोग इसकी मोह-ममता में क्यों फँसे हैं ? इसे त्यागते क्यों नहीं ?

उ०—जो लोग मोह-ममता में फँसे हैं, उन्हें मलिन वस्तुओं से भी घृणा नहीं होती। जिस तरह भङ्गी को मैले के देखने या उठाने से नफ़रत नहीं होती; उसी तरह मोह-ममता में फँसे हुए गृहस्थों को ऐसे गृहस्थाश्रम से भी घृणा नहीं होती, जो महागन्दगी का स्थान और दुःख-शोक का भण्डार है। कहीं गू पड़ा है, कहीं वमन पड़ी है, कहीं रहँट पड़ा है, कहीं थूक और खखार पड़ा है, कहीं कोई रोता है, और कहीं कोई हाय-हाय करता है। वजह यह है कि, उनका स्वभाव ही भङ्गी की तरह वैसा ही हो जाता है। उनका दिमाग़ गन्दा हो जाता है। घर-गृहस्थी की मलिनता और गन्दगी प्रभृति उनके दिमाग़ में समा जाती हैं। क़साईख़ाने की दुर्गन्ध क़साइयों के दिमाग़ में और मोचीख़ाने की बदबू मोचियों के माथे में समा जाती है।

तात्पर्य यह है, जिनके अन्तःकरण मोह और ममता से मैले हो गये हैं, उनको गृहस्थी के नाना प्रकार के दुःख देखकर भी गृहस्थी से घृणा नहीं होती; किन्तु जिनके अन्तःकरण सत्सङ्ग से शुद्ध हो जाते हैं, उनको गृहस्थी से नफ़रत होने लगती है। उन्हें गृहस्थी जञ्जाल मालूम होती है। बाज़-बाज़ लोग बेगार में पकड़े हुओं की तरह गृहस्थी में काम करते हैं और ज्योंहीं मौक़ा पाते हैं त्योंही छोड़ भागते हैं।

(६२) प्र०—गृहस्थी में भी किसे विक्षेप नहीं होता ?

उ०—जिसमें ममता नहीं, उसे विक्षेप क्यों होने लगा ? जो ममता त्याग कर गृहस्थी के काम करता है, उसे विक्षेप नहीं होता। जिसे संसारी विषय-भोगों में ममता नहीं, वह घर में रहता हुआ भी सुखी है। जिस में ममता है, वह गृह-त्यागी भी दुःखी है।

(६३) प्र०—मन के निरोध के साधन क्या हैं ?

उ०—वैराग्य और अभ्यास। मनुष्य या देवता की मूर्त्ति या सूरज चन्द्रमा प्रभृति जो अपने को प्यारे लगते हों, उनमें मनको लगा कर मन का निरोध करना चाहिए। पहले मन को स्थूल पदार्थों में लगाना चाहिए। जब मन स्थूल में लगने लगता है, तब धीरे-धीरे अभ्यास से सूक्ष्म में जाकर ठहर जाता है। बिना स्थूल पदार्थ में लगे, सूक्ष्म में मन लग नहीं सकता। बिना मन के एक जगह ठहरे, परमानन्द मिल ही नहीं सकता। मतलब यह है, मन के रोकने या ठहराने में ही परम सुख है और

उस के इधर-उधर भटकाने में घोर दुःख है। मूर्त्ति-पूजा इसी लिये जारी की गई थी, कि लोग स्थूल मूर्त्ति का ध्यान करते-करते सूक्ष्म आत्मा के ध्यान करने-योग्य हो जायँ। जब स्थूल मूर्त्ति में ही मन न लगेगा, तब सूक्ष्म आत्मा में कैसे लगेगा? भूगोल या जुगराफिया पढ़ने वाले पहले नक़शा देखते हैं। नक़शा देखते-देखते फिर सारे पहाड़ और देश तथा नगर प्रभृति उनकी नज़र में जम जाते हैं। नक़शा सामने न होने पर भी, सारा नक़शा उनको अपने नेत्रों के सामने दीखने लगता है। उसी तरह मूर्त्ति पर ध्यान जमाने वालों का, पीछे, अभ्यास से, बिना मूर्त्ति, ध्यान जमने लगता है। मूर्त्ति में भगवान् नहीं हैं, मूर्त्ति ख़ाली ध्यान जमाने का साधन-मात्र है। जो मूर्त्ति को ही भगवान् मान लेते हैं, वे अज्ञानी हैं।

जो लोग कहा करते हैं कि, मूर्त्तिपूजा से ईश्वर नहीं मिलता, उन्हें महाकवियों के निम्नलिखित वाक्यों पर ध्यान देना चाहिये:—

(१)

आख़िर को इश्क़े कुफ़्र से ईमान हो गया।
मैं बुत-परस्तियों से मुसल्मान हो गया ॥१॥

मैं मूर्त्तिपूजा करते-करते ईश्वर-भक्त हो गया। प्रतीक के द्वारा ही मुझे ईश प्राप्ति हुई। मुझे असत् से सत् की प्राप्ति हुई।

काबे जाना भी तो बुतख़ाने से होकर ज़ाहिद ।
दूर इस राह से अल्लाह का घर कुछ भी नहीं ॥२॥

भक्त महाशय ! अगर काबे जाना हो तो जाओ; पर मन्दिर में होकर भी एक राह उधर को जाती है। सच तो यह है, कि उस मार्ग से अल्लाह का घर कुछ भी दूर नहीं है। मूर्त्ति-पूजा से भी ईश-प्राप्ति अनायास हो जाती है।

तेरी सूरत को देखता हूँ मैं ।
उसकी सूरत को देखता हूँ मैं ॥३॥

तेरी सूरत में मुझे ईश्वर की माया दीखती है। तेरा चेहरा उसकी सृष्टि का बढ़िया नमूना है।

तेरी .खूबसूरती को देख कर मेरा दिल कलेजे से निकला पड़ता है, तो तेरा गढ़ने वाला तो तुझ से भी बढ़कर होगा; अतः मैं तुझे छोड़, उससे ही प्रेम क्यों न करूँ ? बहुत से लोग ईश्वर की कुदरत के नमूने या प्राकृतिक शोभा देख-देख कर सच्चे ईश्वर-भक्त बन गये हैं।

(२)

(६४) प्र०—ईश्वर सर्व व्यापक कहलाता है, पर वह दीखता क्यों नहीं ? उसे कैसे देख सकते हैं ?

उ०—हाँ, ईश्वर सर्वत्र है। ज़मीन, आस्मान, सूरज, चाँद, समुद्र, नदी, पशु, पक्षी और मनुष्य सब में ईश्वर है। उसे देखने के लिये उत्सुक रहो, उसके प्रेम में डूब जाओ, वह दीखेगा। पर

यह भी याद रक्खो, कि वह इन चमड़े की आँखों से नहीं दीखता, वह ज्ञान की आँखों से दीखता है ।

महा कवि 'दाग़' कहते हैं:—

यहाँ भी तू, वहाँ भी तू, ज़मीं तेरी, फ़लक तेरा ।
कहीं हमने, पता पाया, न हरगिज़, आजतक तेरा ॥

यहाँ भी तू है और वहाँ भी तू है। ये ज़मीन-आस्मान सब तेरे ही हैं। फिर भी तेरा पता नहीं मिलता। कहीं तेरी सर्व्वव्यापकता ही तो तेरे ग़ुम होने का कारण नहीं ?

रहिए मुश्ताक़ जलव-ये दीदार ।
हमने माना नज़र नहीं आता ॥

उसके दर्शनों के लिये इच्छुक रहने की आवश्यकता है। यह दूसरी बात है कि, वह दिखाई न दे।

देख, गर देखना है 'ज़ौक़' कि वह परदानशीं ।
दीदये रोज़ने दिलसे, है दिखाई देता ॥

अगर तू उस पर्दानशीन यार को सचमुच ही देखना चाहता है, तो उसे मानस चक्षुओं से देखने की कोशिश कर, क्योंकि चर्मचक्षुओं से वह नहीं दीखता।

'कृष्ण भगवान्' स्वयं गीता में कहते हैं:—

"विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा" मूढ़ लोग ईश्वर को नहीं देख सकते। सिर्फ़ वही देख सकते हैं, जिनके

ज्ञान के नेत्र हैं; यानी ईश्वर ज्ञान की आँखों से दीखता है, चमड़े की आँखों से नहीं दीखता।

महाकवि 'ग़ालिब' कहते हैं:—

असले शहूद शाहिदो मशहूद एक हैं।
हैराँ हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाब में॥

जब देखने वाला, दृश्य और दर्शक एक ही हैं। जब सब में एक ईश्वर है; तब फिर किस का दर्शन किया जाय? सारे संसार में ब्रह्म व्यापक है और वह मैं ही हूँ, "सोऽहं भाव" दिखाया है।

और भी—

क़तरे में दजला दिखाई न दे, और जुज़्व में कुल।
खेल लड़कों का हुआ, दीदये बीना न हुआ॥

बूँद में जिस ने समुद्र को न देखा और व्यष्टि में समष्टि को—तो वह ज्ञान-चक्षु ही क्या हुए? आत्मसाक्षात्कार कोई लड़कों का खेल थोड़े ही है। इसमें शुद्ध अद्वैतवाद है; यानी जीव ब्रह्म सब एक ही हैं और एक ब्रह्म के सिवा दूसरा और कोई नहीं है।

उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं:—

दाना ख़िरमन है हमें, क़तरा है दरिया हमको।
आये है जुज़ में नज़र, कुलका तमाशा हमको॥

हम दाने में ढेर और बूँद में समुद्र देखते हैं। हम व्यष्टि में समष्टि का तमाशा देखने वाले हैं; तङ्ग-नज़र नहीं हैं।

महाकवि 'ज़ौक़' कहते हैं—

वह पहलू में बैठे हैं, और बद-गुमानी।
लिये फिरती मुझको, कहीं-का-कहीं है॥

वह ईश्वर पहलू-बग़ल में बैठा है; पर भ्रम-वश मैं उसे जहाँ-तहाँ खोजता फिरता हूँ।

जहाँ के आईने से, दिल का आईना है जुदा।
उस आईने में, हम आईनेगर को देखते हैं॥

संसार के दर्पण से दिल का दर्पण अलग है। दिल के दर्पण में हम दर्पण बनाने वाले—ईश्वर—को देखते हैं।

(६५) ईश्वर की सेवा से क्या फल मिलता है ?

महाकवि 'ग़ालिब' कहते हैं:—

तेरी बन्दानवाज़ी, हफ्त किशवर बख़्शा देती है।
जो तू मेरा, जहाँ मेरा, अरब मेरा, अजम मेरा॥

तेरी सेवा निष्फल नहीं जाती। तेरी सेवा करने से सातों विलायत का राज्य मिल जाता है। अगर तू मेरा हो जाय, तो संसार मेरा, अरब मेरा और अजम मेरा।

मनुष्य की सेवा में कुछ लाभ नहीं; लाभ है जगदीश की सेवा में; उस की कृपा होने से फिर कोई अभाव नहीं रहता।

(६६) ईश्वर कैसा है ?

उ०—महाकवि 'दाग़' कहते हैं:—

सिफ़ातो जात में यकता है तू, ऐ वाहिदे मुतलक़ ।
न कोई तेरी सानी है, न कोई मुश्तरक तेरा ॥

हे त्रिविध भेद-शून्य परमात्मा ! तू अद्वितीय है, तेरा जोड़ा नहीं है और कोई तेरा शरीक या साझी भी नहीं है।

(६७) मनुष्य देवताओं से कब बढ़ सकता है ?

उ०—अगर मनुष्य किसी भी चीज़ की इच्छा न रक्खे, उसमें मोह-ममता और वासना न हो; तो वह देवताओं से भी बढ़ कर ही है।

उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं:—

जिस इन्साँ को, सगे दुनिया न पाया ।
फरिश्ता उसका, हमपाया न पाया ॥

जो मनुष्य संसार का कुत्ता नहीं—संसार का दास नहीं, वह देवताओं से बढ़ कर है।

हमारे यहाँ भी 'शुकदेवजी' ने कहा:—

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृग्भिक्षुस्तु निःस्पृहः ।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकी विभवे सति ॥

निस्पृह—इच्छारहित भिक्षु जैसा सुखी है; वैसा सुखी इन्द्र भी नहीं। जब त्रिलोकी का विभव होने पर भी, निस्पृह भिखारी के समान इन्द्र सुखी नहीं है, तब और कौन हो सकता है !

अर्थात् कामना—वासना-हीन भिखारी देवराज से भी बड़ा है।

(६६) अगर अपने प्यारे नातेदार—स्त्री-पुत्र प्रभृति मर जायँ, तो क्या रञ्ज न करना चाहिये ?

उ०—बेशक; रञ्ज या शोक मुतलक न करना चाहिये। जो आया है, वह जायगा और जन्मा है सो मरेगा। एक दिन सभी जुदा हो जायँगे।

उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं:—

करें जुदाई का किस-किस की रञ्ज हम ए ज़ौक़ ? ।
कि होने वाले हैं सब हम से अनक़रीब जुदा ॥

ऐ ज़ौक़ ! किस-किस की जुदाई या वियोग का हम रञ्ज करें ? एक दिन सभी हम से जुदा हो जायँगे।

भगवान् 'श्रीकृष्ण' ने भी कहा है:—

अशोच्यान न्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

हे अर्जुन ! तुम तो ऐसे लोगों की चिन्ता कर रहे हो, जिन की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इस पर पण्डितों की सी बातें छाँटते हो ! पण्डित लोग जीते हुए और मरे हुओं का शोक नहीं करते।

(७०) प्र०—क्या सच्चे ईश्वर-प्रेमी या अव्वल दर्जे के ज्ञानी ज्ञात-पाँत को नहीं मानते ?

उ०—बेशक; जो पहुँचे हुए फ़क़ीर या महात्मा हैं, जिन्होंने आत्म-तत्त्व को पा लिया है, वे सब को एक ही समझते हैं; वे ज़ात-पाँत नहीं समझते। ईश्वर-प्रेमी को जाति से क्या मतलब ?

उस्ताद 'ज़ौक़' कहते हैं:—

मतलब न कुफ़्र से है न इसलामसे है काम।
दिल दे के ए सनम, तुझे सबसे बरी हुए॥

धर्माधर्म से अब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। तुझ से सम्बन्ध जोड़ कर, हम सब से बरी हो गये।

(७१) जब सब में एक ही आत्मा है, सभी में एक ब्रह्म-व्यापक है, तब किस से वैर और किससे विरोध ?

उ०—एक हाथी ताल में जल पीने गया, उस ताल के निर्मल जल में अपनी ही परछाईं को दूसरा हाथी समझ, वह उस से लड़ने लगा। वहाँ दूसरा हाथी न था, पर उसे वृथा भ्रम हुआ। बस, इसी तरह संसार में, हे मनुष्य! सर्वत्र तू ही तू है, पर भ्रम से तू अपने तईं ही दूसरा समझ कर लड़ता फिरता है। उस्ताद 'ज़ौक़' ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है:—

आप आईन-ये हस्ती में है तू अपना हरीफ़।
वर्ना याँ कौन था जो तेरे मुक़ाबिल होता॥

संसार में तू ख़ुद अपना प्रतिद्वन्द्वी बना हुआ है। संसार एक आईना है। जिस में तुझे अपनी ही सूरत दीख रही है

पर तू समझता है कि, कोई दूसरा है। इसी भ्रम के कारण, तू परेशान हो रहा है। अगर तुझे यह भ्रम न होता, तो संसार में तेरा जवाब न होता, तू अद्वितीय होता; यानी अगर तू समझ लेता कि, जगत् में सर्वत्र मैं ही मैं हूँ, दूसरा तो कोई नहीं है। इस अवस्था पर पहुँचने से तू पूरा सिद्ध हो जाता।

(७२) प्र०—मनुष्य का शोक-दुःख से क़तई पाछा कब छूट सकता है ?

उ०—जब वह संसार की मोह-माया त्याग, एक मात्र ब्रह्म-विचार में लीन हो जाय। देखिये महाकवि 'नज़ीर' ने ब्रह्मानन्द पर क्या खूब लिखा है:—

ब्रह्मानन्द।

है आशिक़ और माशूक़ जहाँ वाँ शाह वज़ीरी है बाबा।
नै रोना है नै धोना है नै दर्द-असीरी है बाबा॥
दिन-रात बहारैं चुहलैं हैं और ऐश सफ़ीरी है बाबा।
जो आशिक हुए सो जानैं हैं यह भेद फ़क़ीरी है बाबा॥
हर आन हँसी हर आन खुशी हर वक्त, अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फक़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥१॥

कुछ जुल्म नहीं कुछ ज़ोर नहीं कुछ दाद नहीं फ़रियाद नहीं।
कुछ क़ैद नहीं कुछ बन्द नहीं कुछ ज़ब्र नहीं आज़ाद नहीं॥
शागिर्द नहीं उस्ताद नहीं वीरान नहीं आबाद नहीं।
हैं जितनी बातें दुनियाँ की सब भूल गए कुछ याद नहीं॥

हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त़ अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा ॥२॥

जिस सिम्त नज़र कर देखे हैं उस दिलबर की फुलवारी है।
कहीं सब्ज़ी की हरियाली है कहीं फूलों की गुलकारी है॥
दिन-रात मगन ख़ुश बैठे हैं और आस उसी की भारी है।
बस आप ही वह दातारी है और आप ही वह भण्डारी है॥
हर आन हँसी हर आन खुशी हर वक्त़ अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फक़ीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा ॥३॥

हम चाकर जिसके हुस्न के हैं वह दिलबर सब से आला है।
उसने ही हमको जी बख़्शा उसने ही हमको पाला है॥
दिल अपना भोला-भाला है और इश्क़ बड़ा मतवाला है।
क्या कहिए और नज़ीर आगे अब कौन समझने वाला है॥
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त़ अमीरी है बाबा।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए तब क्या दिलगीरी है बाबा ॥४॥

(२)

क्या इल्म उन्होंने सीख लिए जो बिन लेखे को बाँचे हैं।
और बात नहीं मुँह से निकले बिन होंठ हिलाए जाँचे हैं॥
दिल उनके तार सितारों के तन उनके तबल तमाँचे हैं।
मुँहचंग ज़बाँ दिल सारंगी पा घुङ्घरु हाथ कमाँचे हैं॥
हैं राग उन्हींके रंग भरे और भाव उन्हीके साँचे हैं।
जो बे-गत बे-सुर ताल हुए बिन ताल पखावज नाचे हैं ॥१॥

जब हाथ को धोया हाथों से जब हाथ लगे थिरकाने को।
और पाँव को खींचा पाँवों से और पाँव लगे गत पाने को॥
जब आँख उठाई हस्ती से जब नयन लगे मटकाने को।
सब काछ कछे सब नाच नचे उस रसिया छैल रिझाने को॥
हैं राग उन्हीं के रँग भरे और भाव उन्हीं के साँचे हैं।
जो बे-गत बे-सुरताल हुए बिन ताल पखावज नाचे हैं॥२॥

था जिसकी ख़ातिर नाच किया जब मूरत उस की आय गई।
कहीं आप कहा कहीं नाच कहा और तान कहीं लहराय गई॥
जब छैल छबीले सुन्दर की छबि नैनों भीतर छाय गई।
एक मुरछागति सी आय गई और जोत में जोत समाय गई॥
है राग उन्हीं के रँग भरे और भाव उन्हीं के साँचे हैं।
जो बे-गत बे-सुर-ताल हुए बिन ताल पखावज नाचे हैं॥३॥

सब होश बदन का दूर हुआ जब गत पर आ मिरदंग बजी।
तन भंग हुआ दिल दंग हुआ सब आन गई बे आन सजी॥
यह नाचा कौन नज़ीर अब याँ और किसने देखा नाच अजी।
जब बूँद मिली जा दरिया में इस तान का आख़िर निकला जी॥
हैं राग उन्हीं के रँग भरे और भाव उन्हीं के साँचे हैं।
जा बे-गत बे-सुरताल हुए बिन ताल पखावज नाचे हैं॥४॥

❀ इति शुभम् ❀
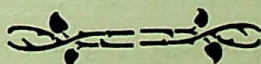
विज्ञापन।

महाकवि ग़ालिब।

जिन का उर्दू भाषा के साहित्य से थोड़ा भी लगाव है, वे महा-कवि ग़ालिब को जानते हैं। महाकवि ने उर्दू-भाषा में जो कुछ लिखा है, ग़नीमत है। उसी प्रतिभाशाली कवि के सर्वप्रिय काव्य को भावार्थ-सहित हमने प्रकाशित किया है। यही नहीं, पुस्तक के आदि में महाकवि का जीवन-चरित्र और उन के काव्य की समालोचना भी विस्तृतरूप से की गई है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के काव्यों को पढ़ कर जो लोग अपनी प्रतिभा और विचार-शक्ति को समुज्ज्वल करना चाहते हैं, उन से हम इस पुस्तक के पढ़ने के लिये ज़बरदस्त सिफ़ारिश करते हैं। मूल्य प्रति पुस्तक ॥) और डाक ख़र्च ।≡)

उस्ताद ज़ौक़।

जिन्होंने उर्दू या फ़ारसी पढ़ी है, वे उस्ताद ज़ौक़ से भली-भाँति परिचित हैं। आप देहली के बादशाह बहादुरशाह के उस्ताद थे।

उस्ताद ज़ौक़ की कविता में सरसता, भावों की स्वच्छता, शब्दों की उपयुक्त योजना और स्पष्टता आदि विशेष गुण थे।

इन्हीं गुणों के कारण आप की कविता सर्व-साधारण में ख़ूब प्रचलित हुई। उर्दू में जैसी मुहाविरेदार कविता उस्ताद ज़ौक़ की होती थी, वैसी कम कवियों की होती थी।

इस पुस्तक के आदि में महाकवि का जीवन-चरित्र है। उस के बाद उन की कविताऐं हैं। कविताओं का अनुवाद भी सरल हिन्दी में दिया गया है। इस पुस्तक में क़ठिन शब्दों के अर्थ भी लिखे गये हैं। हिन्दी में ऐसी पुस्तकें कहीं प्रकाशित नहीं हुई हैं। महाकवि ग़ालिब के बाद हमारे यहाँ यह दूसरी पुस्तक छपी है। छपाई-सफाई सर्व्वाङ्ग-सुन्दर है। देखने-योग्य है। दाम ॥।) डाक-महसूल पैकिंग ।≡)

महाकवि दाग़।

यह उर्दू कवि-बचन-माला का तीसरा दाना है। इसमें महाकवि ग़ालिब और ज़ौक़ की तरह महाकवि दाग़ का जीवन-चरित्र और उनकी उत्तमोत्तम कविताएँ लिखी गई हैं। प्रत्येक कविता के नीचे उसका सरल हिन्दी-अनुवाद है। महाकवि दाग़ की कविताएँ बहुत ही मज़ेदार और सब किसी की समझ में आने योग्य हैं। नमूना मुलाहिज़ा कीजियेः—

सितम ही करना ज़फ़ा ही करना।
निगाहे उल्फ़त कभी न करना॥
तुम्हें क़सम है हमारे सिर की।
हमारे हक़ में कमी न करना॥

छपाई-सफ़ाई मनोमोहक १४४ सफों की पुस्तक का दाम १) डाक महसूल पैकिंग ।≡)

महाकवि नज़ीर ।

महाकवि नज़ीर अकबराबादी आगरे के रहने वाले थे। आप प्रथम श्रेणी के विद्वान् और पहुँचे हुए फ़क़ीर थे। आपकी कविताओं को लोग गली-गली में गाते फिरते हैं। आपने भगवान् कृष्ण के बालपन, रासलीला, रुक्मिणी-हरणलीला, कालीमदन, बंसीलीला प्रभृति पर भी बड़ी ही मजेदार कवितायें लिखी हैं। ज़रा नमूना देखिये:—

(२) बाल लीला ।

यारो सुनो ये दाधि के लुटैया का बालपन ।
और मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन ॥
मोहन स्वरूप नृत्य करैया का बालपन ।
बन बन के ग्वाल गौवें चरैया का बालपन ॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन ।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥१॥

ज़ाहिर में सुत वो नन्द जसोदा के आप थे ।
वरना वो आपी माई थे और आपी बाप थे ॥
परदे में बालपन के ये उनके मिलाप थे ।
जोती-सरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे ॥

ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥२॥

आपने प्रेम-सम्बन्धी फुटकर शेरों के सिवा "पेट," "मनुष्य" "बचपन," "बुढ़ापा," "रोटी," "संसार मिथ्या" बञ्जारानामा प्रभृति पर भी बड़ी ही मनोहर कवितायें लिखी हैं। आपकी ब्रह्मानन्द-सम्बन्धी कविता इसी पुस्तक के अन्त में देखें। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले शौक़ीन आपकी कविताओं को तरसते थे। जब से यह पुस्तक छपी है, धड़ा-धड़ बिक रही है। आप इसे अवश्य देखें। दाम १)

रिआयत।

जो सज्जन दाग़, ज़ौक़, ग़ालिब और नज़ीर-चारों पुस्तकें एक साथ मँगायेंगे, उन्हें ३।) की जगह २॥।) रुपया देने होंगे। डाक-महसूल १ पाई न देना होगा।

उपन्यास-सम्राट्

हाजीबाबा।

सम्पादक

भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्जन महोदय।

पृष्ठ-संख्या ३५० चित्र-संख्या २४

यह रहस्य-पूर्ण उपन्यास हाल ही में छप कर तैयार हुआ है। उपन्यास तो आपने बहुतेरे देखे होंगे; लेकिन हम दावे के साथ कहते हैं, कि ऐसा एक भी उपन्यास आपने देखा न होगा।

इसकी भाषा इतनी आसान है, कि बच्चे भी आसानी से समझ सकते हैं। आदमी कैसा ही ग़मगीन क्यों न हो; कोई कितना ही गम्भीर क्यों न हो; इस उपन्यास की दो-चार सतरें पढ़ते ही सारी ग़मगीनी और गम्भीरता भाग जाती है। मुहर्रमी सूरत भी मारे हँसी के लोटन-कबूतर हो जाती है। इस उपन्यास का विषय बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। थोड़ा पढ़ते ही आँख और छाती से चिमट जाता है। जब तक यह उपन्यास समाप्त नहीं होता, तब तक अपने पढ़ने वालों का खाना, पीना और सोना भुलाये रहता है।

भारत की लाटगीरी करने से पहले लार्ड कर्जन ने सम्पादित कर यूरोप में बड़ा नाम पाया था। इसकी ख़ूब आपके मकान की शोभा बढ़ाने लायक़ है। सब मिला इसमें चौबीस हाफटोन तस्वीरें दी गई हैं। हर तस्वीर ऐसी है कि देखिये तो देखते ही रहिये। मोटे काग़ज़ पर बड़े ही साफ़ अक्षरों में पुस्तक छापी गयी है। रेशमी चमचमाती जिल्द है सैकड़ों पृष्ठ के इस मोटे उपन्यास का दाम सिर्फ़ साढ़े तीन रुपये बे-जिल्द के तीन रुपये। वैराग्य शतक वगैरः तीनों शतकों के साथ मँगाने वालों को ३॥) का "हाजी बाबा" २) दो रुपये में ही मिलेगा। डाक-महसूल दस आने।

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी,

गंगा भवन, मथुरा।

(यू० पी०)